गर्म राख

[सामाजिक उपन्यास]

उपेन्द्रनाथ अश्क

नीलाभ प्रकाशन गृह
इलाहाबाद, १

मूल्य ८)

• प्रकाशक—नीलाभ प्रकाशन गृह, ५, खुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद, १
• मुद्रक—बॉब प्रिंटर्स, ६६, हीवट रोड, इलाहाबाद ।

शुभश्री भाभी तथा भाई श्री एस० एन० भूत
के लिए सस्नेह

आम पाठक से प्रार्थना है कि वह नाम के चक्कर में न पड़े, उपन्यास को एक बार पढ़ जाय, निश्चय ही वह इस में पर्य्याप्त मनोरंजन पायगा।

गंभीर पाठक से वांछा है कि वह इसे कम से कम दो बार, साल छै महीने के अन्तर से, पढ़े। उसे अपना श्रम बेकार न मालूम होगा।

काट कर ही अपनी सत्ता सिद्ध करने वाले छिद्रान्वेषी आलोचक के हितार्थ पर्याप्त सामग्री इस उपन्यास में है, वह अपने दांत शौक से तेज़ करे।

स्नेही और सृजन-शील आलोचक के परामर्श लेखक के सिर आंखों पर। उन की बाट वह उत्सुकता से देखेगा।

विज्ञप्ति

गर्म राख के पात्रों में, हो सकता है, कुछ पाठकों को अपने ही जीवन के कुछ पहलू प्रतिबिम्बित होते दीख पड़ें, हो सकता है, कुछ स्थलों पर उन्हें यह भी लगे कि उपन्यास उन्हीं को लेकर लिखा गया है। ऐसा साम्य आकस्मिक ही हो सकता है। लेखक ने जान बूझ कर वैसा किया है, किसी पाठक को ऐसे भ्रम में न पड़ना चाहिए।

उन स्नेहियों का आभार पाठक और प्रकाशक दोनों के सिर है, जिन्हों ने लेखक की अस्वस्थता में, समय समय पर डिक्टेशन लेकर, इस उपन्यास की प्रगति में सहायता पहुँचायी। अलमोड़ा के श्री त्रिलोचन पाण्डेय और भाई मेंहदी रत्ता इस संबंध में विशेष आभार के अधिकारी हैं।

रानी खेत के प्रसिद्ध चित्रकार श्री न० र० उपरेती को प्रावरण-चित्र के सुन्दर डिज़ायन तथा श्री सुप्रभात नन्दन को उसे रंगों में उतारने का श्रेय प्राप्त है। कृष्ण प्रेस के मशीन मैन श्री रयाज़ुलहसन ने उसे बड़े श्रम के साथ छापा है। प्रकाशक उन के कृतज्ञ हैं।

१

बात आज की नहीं उस ज़माने की है जब पाकिस्तान को अस्तित्व में आने के लिए अभी नौ दस वर्ष दरकार थे, लाहौर की एक-मात्र मुख्य-मासिक-पत्रिका 'मालती' के सम्पादक महाशय गोपाल दास और अस्तंगत 'मंजरी' के सम्पादक कवि 'चातक' आमने सामने बैठे थे। तभी महाशय जी ने मालती का ताज़ा अंक बीच में से खोल कर श्री चातक की ओर बढ़ाया

"हमारी नयी लेखिका !" उन्हों ने कहा।

श्री चातक ने ललक कर 'मालती' का वह अंक उन से ले लिया। इस प्रयास में वे अपनी कुर्सी से तनिक उठ भी गये और बड़ी उत्सुकता से मालती की उस नयी लेखिका का चित्र देखने लगे।

"हर महीने मालती एक न दो नयी लेखिकाएँ हिन्दी संसार को देती है," महाशय गोपाल दास ने गर्व-स्फीत-स्वर में कहा, "पंजाब में हिन्दी का प्रचार केवल लड़कियों में है और लड़कियों में जो पत्रिका सब से अधिक जाती है, उसका नाम है—'मालती' ! मालती के पाठकों ही में नहीं, लेखकों में भी लड़कियों की संख्या अधिक है। आपके लिए उचित क्षेत्र यही है।" यह कहते और आंख को तनिक सा दबाते हुए महाशय जी मुस्कराये।

उनकी वेश-भूषा के साथ उनकी यह भंगिमा मेल न खाती थी।

भलामानुस समझता है फिर कुछ और, परन्तु अब मैंने इस सिद्धान्त को उलट दिया है और इसी लिए भूषा को भी।" मालती के सम्पादक उन खादी-धारियों में से थे जो इस सिद्धान्त को उलटने में भले लोगों की सहायता करते हैं। 'मालती' पर सम्पादक के स्थान पर उनकी पत्नी का नाम जाता था जो न केवल सर्वथा अनपढ़ थी, वरन् पढ़े-लिखों को मूर्ख भी समझती थी। पंजाब में उर्दू के सरकारी और ग़ैर-सरकारी प्रचार की प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप हिन्दी का जो प्रचार हो रहा था और 'रत्न' 'भूषण' 'प्रभाकर' की परीक्षाओं में प्रति वर्ष जो सहस्रों लड़कियाँ बैठती थीं, प्रकट उनके लाभ हेतु, परन्तु वास्तव में उन की अधकच्ची शिक्षा का लाभ उठाने के लिए, महाशय गोपाल दास ने यह पत्रिका निकाल रखी थी। उस में शायद ही कभी कोई ऐसा लेख छपता था, जिस में स्त्रियों की समस्याओं का यथार्थ विश्लेषण अथवा समाधान उपस्थित किया जाता हो। चटपटी कहानियां, रूमानी कविताएँ, शृङ्गार के नुस्खे, स्त्रियों की समस्याओं पर 'मालती' की ग्राहक लड़कियों के भावुकतामय लेख, 'मालती-परिवार' के नये विवाहित जोड़ों अथवा नवजात शिशुओं के फ़ोटो और फिर स्त्रियों के गुप्त-रोगों की औषधियों के विज्ञापन (जो महाशय जी दूसरे नाम से अपनी ही एक जॉली फार्मेसी की ओर से देते थे।) ये सब मालती को 'मालती' बनाते थे— पंजाब में स्त्रियों की एक-मात्र-हिन्दी-पत्रिका! और महाशय जी जहाँ खादी पहन कर गाँधी-भक्त बने हुए थे, वहाँ मालती के कारण उत्कट हिन्दी-भक्त भी।

'मंजरी' की बात चला कर उन्हों ने चातक जी की असफलता पर जो व्यंग्य किया था, वह उन्हें बुरा न लगे, इस विचार से महाशय गोपाल दास ने तत्काल अपनी बात रद कर दी। "परन्तु इस में आप का भी क्या दोष!" हिं हिं कर हँसते हुए उन्हों ने कहा, "आप ने अपनी रसीली कविताओं और अपनी ओज-पूर्ण वाणी के कारण

पाठकों से जो सीधा सम्बन्ध स्थापित किया, वह हम कहाँ कर सकते हैं ?...हिं...हिं...लड़कियां तो अब भी आप की 'मंजरी' का दम भरती हैं। हमें कई बार पत्र आते हैं कि 'मालती' को 'मंजरी' ऐसा बनाइए। पर यह बात आपके सहयोग बिना कैसे सम्भव हो सकती है ? इसके लिए कवि चातक चाहिएँ महाशय गोपाल दास नहीं......हिं हिं...हिं हिं...।"

वे क्षण भर को रुके, पर जब कवि मौन ही रहे तो महाशय जी फिर बोले, "मंजरी की असफलता का वास्तव कारण तो महाशय चन्द्रभान की लम्पटता है। मैनेजिंग डायरेक्टरी का वेतन वे अलग पाते रहे और अपने प्रेस में मंहगे दामों पत्रिका छाप कर और दफ़्तर में सभी अपने आदमी भर कर लिमेटिड कम्पनी की सारी पूँजी वे अलग हड़प कर गये। आप रहे सम्पादक, आप क्या कर लेते। हिं हिं...हिं हिं...हिं हिं..."

कवि चातक ने कदाचित् उन का यह वक्तव्य नहीं सुना। जब महाशय जी की 'हिं हिं' बन्द हुई तो कुछ क्षण सोच कर कवि चातक जो बोले तो वह मालती के संग किसी प्रकार के सहयोग की बात न थी।

"मैं सोचता हूं", कवि ने कहा, "आपकी इन सत्या जी ने हमारी एक बड़ी मुश्किल आसान कर दी।"

महाशय गोपाल दास ने उत्तर में केवल मुँह बा दिया।

"मेरी बड़ी पुरानी साध है," कवि चातक ने कहा, "कि पंजाब लिट्रेरी लीग की भाँति हम भी एक 'संस्कृति समाज' की स्थापना करें। मंत्री ज़रा दौड़ धूप करने वाला चाहिए सो उस के लिए मेरा ख्याल था कि जगमोहन से कह दूँगा। महिला-मंत्री की आवश्यकता थी, उस के लिए सत्या जी मान जायँ तो अच्छा रहे।"

और यह कहते हुए कवि चातक उठे।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं," महाशय गोपाल दास ने खीसें निपोरीं,

"मैं शान्ता बहन जी से कहूंगा !"

"शान्ता बहन, कौन शान्ता बहन ?"

"शान्ता विद्यालय गोपाल नगर की प्रिंसिपल ! आप उन्हें न जानते ?"

"अरे शान्ता !" और कवि हँसे, "तो उससे सत्या जी का क्य सम्बन्ध ?"

"सत्या जी उनकी सहेली हैं। उन्हीं के यहाँ सत्या जी से हमार परिचय हुआ था। उन्हीं ने सत्या जी से चार ग्राहकों के पैसे औ कहानी तथा यह चित्र लाकर दिया था। आप शान्ता जी को निमन्त्रि करेंगे तो सत्या जी अपने आप आ जायँगी।"

परन्तु श्री चातक ने कुछ उत्तर नहीं दिया। "अच्छा तो चर दिये !" कहते हुए वे उठे, "कविता अब जो पहली हम लिखेंगे, वह आपको भेजेंगे। मूड तो बन गया है, हो सकता है आज ही एव हो जाय। वही आपको भेज देंगे।"

महाशय गोपाल दास साथ ही उठे, "चित्र साथ में भेजना आप न भूलिएगा।" उन्हों ने कहा। "मैं पहले पृष्ठ पर उसे दूँगा। मालती को आप अपनी ही पत्रिका समझिए ! 'मंजरी' की भाँति ! उस से कम प्रचार यह आपका न करेगी !"

परन्तु कवि चातक, मन ही मन अपनी नयी कविता की पहली पंक्ति गुनगुनाने लगे थे। उन्हों ने उत्तर नहीं दिया। दोनों हाथ मस्तक पर रखे और नमस्कार करते और मुस्कराते हुए वे सीढ़ियां उतर गये।

महाशय गोपाल दास को सीढ़ियों से उनकी गुनगुनाहट सुनायी दी :

"चित्र तुम्हारा देखा सुन्दर, देखा नहीं तुम्हें अनजानी।"
चित्र तुम्हारा.............................. !

पंडित धर्मदेव वेदालंकार (जिन्हें उनके मित्र वेतकल्लुफ़ी मिले आदर से पंडित जी, धर्म जी या केवल वेदालंकार जी कह कर पुकारते थे) रूप रंग और भूषा से न पंडित लगते थे, न धर्म देव, न वेदालंकार—क़ीमती सिल्क का सूट, जिसकी क्रीज़ आठों पहर ऐंठी रहती, सूट के साथ मैच करती हुई रेशमी टाई, पैरों में फ़्लेक्स के चमचमाते शू और सिर पर बढ़िया सोला हैट—वे हाल ही में इंग्लिस्तान से वापस आये कोई आई० सी० एस० दिखायी देते थे। पंडित अथवा वेदालंकार कदापि नहीं। वेदालंकारी के ज़माने की यदि कोई बात उन में प्रकट दिखायी देती थी तो वह था उनका साइकिल पर पिछले पहिये की खूँटी से चढ़ना। उस समय जब सभी साइकिल सवार बायां पांव पैडल पर रख, दायां कैरियर के ऊपर से घुमा, काठी पर जम जाते, पंडित धर्म देव वेदालंकार साइकिल के पिछले पहिये की खूँटी से कई कदम फुदक-फुदक कर साइकिल पर चढ़ते।

वे ब्राह्मण न थे, परन्तु आर्य समाज का सिद्धान्त है कि वर्ण जन्म से नहीं, कर्म से होता है और इसी सिद्धान्त के अनुसार गुरुकुल के सभी स्नातक, ब्राह्मण हों अथवा अब्राह्मण, अपने आपको पंडित लिखते थे। श्री धर्म देव अरोड़ा थे, अच्छे खत्री जिन्हें अपने से नीचा समझते हैं। गुरुकुल से निकलते ही उन्हों ने अपने आप को पंडित लिखना आरम्भ

कर दिया था। परन्तु इस बात को वर्षों बीत चुके थे। अब न उनके वे पंडिताऊ कपड़े थे, न यज्ञोपवीत न चुटिया, न वे रूखे खड़े, तेल और कंघी की कृतज्ञता से मुक्त केश और न वह आस्तिकता। उन्हों ने जैसा कि पंजाबी में कहते हैं, ज़बरदस्त कलाबाज़ी खायी थी। रहा आर्य-समाज, तो उस के वार्षिक चुनाव के अतिरिक्त वे उसकी किसी बैठक में भाग न लेते। वार्षिक चुनाव में भी इस लिए कि लाहौर आर्य समाज के प्रधान मंत्री गुरुकुल के एक पुराने स्नातक और उनके सहपाठी मित्र पंडित बकुल सेन विद्यालंकार थे। उनके प्रेस में पंडित धर्म देव की पुस्तकें छपती थीं, टैक्स्ट बुक कमेटी के वे सदस्य थे और अपनी पुस्तकें लगवाने में श्री धर्म देव को सुविधा रहती थी। दूसरी बीस बातें थीं जिसके कारण श्री धर्म देव चाहते थे कि वे ही आर्य समाज के मन्त्री बने रहें। इस अवसर पर न केवल वे स्वयं चुनाव में भाग लेते थे, वरन् अपने ही जैसे दूसरे स्नातकों को भी पकड़ लाते थे, गुरुकुल से जिनका नाता वहां से ली गयी डिग्री के अतिरिक्त और किसी प्रकार का न था। ऐसे अवसरों पर पं० धर्म देव वेदालंकार सदैव आगे बढ़ कर बैठते। तर्क-वितर्क और वाद-विवाद में, धोती कुर्ता पहने अपने सहपाठियों और नये स्नातकों को उसी उपेक्षा से देखते, जैसे भेड़िये की नसल का पला हुआ कुत्ता सूखे के मारे अपने देशी भाई को देखता है। कई बार वाद-विवाद में वे संतोष और संयम को हाथ से दे देते। परन्तु पंडित बकुल सेन धर्म जी के स्वभाव की इस कमज़ोरी से परिचित थे। उनकी अपार विद्वता और संस्कृति का वास्ता देकर वे उन्हें चुप करा देते। और जहां धर्म देव उन्हें मन्त्री बने रहने में सहायता देते, वे उनको किसी प्रकार के कार्य से सम्बन्ध न रखने पर भी, कार्य कारिणी का सदस्य चुन लेते।

बिना कोई विशेष काम किये सभा सोसाइटियों की कार्य कारिणियों का सदस्य बनना, उन के विशेष अधिवेशनों में अपनी सुशिक्षित,

सुसज्जित, सुसंस्कृत पत्नी के साथ जाना और उन के विशिष्ट सदस्यों को अपने घर बुला कर चाय पिलाना और उन पर अपनी विद्वता और पत्नी की सुन्दरता का रोब गाँठना पंडित धर्म देव वेदालंकार का प्रिय शग़ल था। यही कारण था कि जब श्री चातक ने अपने 'संस्कृति समाज' की एग्जेक्टिव की बात सोची तो वेदालंकार जी का नाम उन्हों ने सब से पहले रख लिया। यह भी सोच लिया कि समाज की पहली इन्फार्मल—अनौपचारिक—बैठक उन्हीं के फ़्लेट पर हो। चाय भी पी जाय और उन की सुन्दर पत्नी से मधुरालाप करने का स्वर्ण-अवसर भी प्राप्त किया जाय।

'मालती कार्यालय' से नीचे उतर कर अभी कवि चातक कुछ ही पग चल पाये थे और उनकी कविता की दूसरी पंक्ति अभी उनके ओठों पर न आ पायी थी, कि उन्हें सामने से पं० धर्म देव आते दिखायी दिये। कविता की पहली पंक्ति भी कवि के ओठों से विलीन हो गयी। वेदालंकार जी के घर से कवि की जिस मधुर-कल्पना का सम्बन्ध था, उसका ध्यान आ जाने से उनके ओठों पर एक मन्द-मुस्कान आ गयी और उनकी गति मन्द से मन्दतर हो गयी।

"कहिए धर्म जी किधर से?" कवि चातक ने पंडित धर्म देव के पास आते ही पूछा।

धर्म जी साइकिल से उतरे। "सर सिकन्दर हयात खाँ के यहाँ गया था।" उन्हों ने ऐसी बेपरवाही से कहा जैसे सर सिकन्दर हयात खाँ उनके नाई अथवा धोबी हों।

"सर सिकन्दर के यहाँ?" श्री चातक ने भरसक आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"हाँ, वे 'कलाकार संघ' वाले एक शो देने जा रहे हैं न; निम्मो जी

(धर्म जी की पत्नी) उसमें भाग ले रही हैं ; उन सब का अनुरोध था कि मैं सर सिकन्दर से उसका उद्घाटन करने को कहूं। कहिए आप किधर ?"

"घर जा रहा था। मालती सम्पादक बरबस पकड़ कर ऊपर ले गये।"

"कई दिनों से आप हमारी ओर नहीं आये।"

"आज ही कल मैं आकर आपको कष्ट देने की सोच रहा था। आप से जिस 'संस्कृति-समाज' की बात हुई थी, सोचता हूं, उसकी एक इन्फार्मल मीटिंग करके उसे आरम्भ कर दिया जाय। महीने में दो चार बार इकट्ठे मिल बैठने का अवसर मिले। कुछ काम भी हो, कुछ मनोरंजन भी।"

"अवश्य अवश्य, मेरा पूरा सहयोग सदा आपके साथ रहेगा, जब चाहे बुलाइए।"

और उन्हों ने साइकिल की पिछली खूँटी पर पाँव रखा।

"मैं चाहता था, आप और हम इकट्ठे मिल कर उस की कुछ रूप-रेखा बना लें। किन किन लेखकों और कलाकारों को उस की पहली बैठक में बुलाया जाय ? प्रधान मंत्री तो आप ही रहेंगे, दौड़ धूप करने वाला एक मंत्री आप को दे दिया जायगा।"

पंडित धर्म देव ने खूँटी पर रखा हुआ पाँव फिर नीचे कर लिया। उन की आकृति पर त्वरा की जो भंगिमा थी, वह एक अवकाश की सी मुद्रा में बदल गयी। मुस्करा कर उन्हों ने कहा, "चलिए अभी बना लेते हैं।"

और वहीं श्री चातक के साथ चलते चलते उन्हों ने विभिन्न नाम गिनाने आरम्भ किये, जिन्हें इन्फार्मल मीटिंग में बुलाना जरूरी था। श्री चातक को किसी नाम में आपत्ति न हो, इस विचार से वे प्रत्येक व्यक्ति की सांस्कृतिक योग्यता, संस्कृति के प्रसार में उस की लगन आदि का

सविस्तार ब्यौरा देते गये—ओंकार नाथ संचालक 'भारत न्यूज़ एजेंसी' के सम्बन्ध में उन्हों ने कहा, "इस पर न जाइए कि उन का साहित्यिक या सांस्कृतिक काम नहीं के बराबर है। आज की संस्कृति में वही लोग महत्व नहीं रखते जो साहित्य का सृजन करते हैं अथवा कलाकार हैं। कला और साहित्य का प्रचार और प्रसार करने वालों का भी महत्व कम नहीं। ओंकार नाथ हमारी हर बैठक का विवरण प्रान्ति के सभी मुख्य-मुख्य हिन्दी-उर्दू पत्रों में देंगे। उन की यह सांस्कृतिक सेवा कम नहीं"......श्याम लाल 'आर्कीटैक्ट'* के सम्बन्ध में उन्हों ने कहा— "श्याम लाल श्री रामानन्द इंजनीयर के सुपुत्र ही नहीं, स्वयं भी बड़े अच्छे आर्कीटैक्ट हैं। आर्कीटैक्ट को हमारे यहाँ विशेष महत्व नहीं देते। हम उसे इंजनीयर से छोटा, उसका सहायक समझते हैं, परन्तु आर्कीटैक्ट का दर्जा इंजनीयर से किसी तरह कम नहीं। वह निरा सौध-शिल्पी नहीं जो किसी भवन का, नींव से लेकर शिखर तक, निर्माण कर सकता है। उसे उतनी ही ट्रेनिंग दरकार है, जितनी डाक्टर को अथवा किसी ऊँचे दर्जे के कलाकार को। वह कलाकार है, कलाकार से बढ़ कर है। क्योंकि कलाकार गणित से घबराता है और आर्कीटैक्ट इंच-इंच का हिसाब रखता है।" और पं० धर्म देव ने श्री चातक को यह बता कर कि इंगलिस्तान में कितने ट्रेण्ड आर्कीटैक्ट हैं और कितने छात्र आर्कीटैक्ट और वे कैसे निपुण हैं; यह बताया कि यदि उन को कभी 'संस्कृति समाज' का भवन निर्माण करने की ज़रूरत पड़ी तो निश्चय ही श्री श्याम लाल की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए उन को इस मीटिंग में बुलाना ज़रूरी है।

वेदालंकार जी अपने सभी मित्रों के गुण, और उन गुणों से संस्कृति समाज को जो लाभ होने जा रहा था, वह सब सविस्तार बता रहे थे और

---

*Architect=सौध-शिल्पी

श्री चातक उनके ज्ञान और उनके मित्रों और परिचितों के विशाल सरकल से प्रभावित थे कि कवि ने देखा—पं० धर्म देव भाटी गेट की ओर जाने के बदले अनारकली की ओर मुड़े जा रहे हैं......

"आप घर को नहीं जा रहे ?" श्री चातक ने, जो मन ही मन पं० धर्म देव के सुसज्जित ड्राइंग रूम में चाय का गर्म-गर्म प्याला पीने और उनकी श्रीमती से मीठी-मीठी बातें करने की सोच रहे थे, सहसा रुक कर पूछा।

"घर ही जा रहा हूं।" वेदालंकार जी निरन्तर चलते हुए बोले।

"पर इधर से, आप ने घर क्या बदल दिया ?" श्री चातक ने फिर कदम बढ़ा कर कहा।

"नहीं मैं यथा-सम्भव भाटी गेट की ओर से नहीं जाता," श्री धर्म देव ने नाक भौं चढ़ा कर बड़ी उपेक्षा से कहा, "वह मार्ग बड़ा गन्दा है। मैं तो माल ही से जाता हूं।"

"पर उधर से जाने में तो बड़ा चक्कर पड़ेगा।"

"मैं खुली हवा और खुला मार्ग पसन्द करता हूं।"

परन्तु डेढ़ दो मील पैदल चलने के विचार ही से कवि का उत्साह भंग हो गया। बोले, "मैं मीटिंग के लिए एक सरक्यूलर छपवाता हूं। आप मित्रों की एक सूची बना लीजिए। उन को वह सरक्यूलर भिजवा दीजिएगा। बैठक आप ही के यहाँ होगी। चाय आप ही को पिलानी पड़ेगी।"

"हाँ हाँ मेरे ही यहाँ रखिए।"

"तो मैं कल शाम आऊँगा।"

"बहुत अच्छा, नमस्कार !"

और पंडित धर्म देव वेदालंकार, अनारकली के बीचों बीच पिछले हिये की खूँटी पर पाँव रख कर फुदकने लगे।

कवि चातक कुछ क्षण तक उन्हें फुदकते हुए देखते रहे फिर वे घर

की ओर मुड़े। पर कुछ ही पग चलकर फिर रुके और कुछ सोच वे गणपत रोड की ओर को हो लिये।

अपनी कविता का तार उन्हों ने पुनः पकड़ लिया :

चित्र तुम्हारा देखा सुन्दर.........

३

श्री धर्मदेव वेदालंकार का साथ छोड़ कर पहले कवि चातक ने सोचा था कि घर चलें, पर घर की सुधि आते ही घर का नक्शा उनकी आँखों के सम्मुख घूम गया और अपने उस रूमानी मूड में उन्हों ने गोपाल नगर चलने का निर्णय किया। कविता गुनगुनाते-गुनगुनाते, गणपत रोड पर से होते हुए वे मोहन लाल रोड के नाके पर आ खड़े हुए और गोपाल नगर के लिए तैयार एक ताँगे पर बैठ गये।

मोहन लाल रोड यद्यपि यथेष्ट खुली सड़क थी—सड़क की अपेक्षा उसे बाज़ार कहना अधिक युक्त-संगत होगा, क्योंकि दोनों ओर दूकानें बनी थीं और रौनक भी काफ़ी रहती थी। इस पर भी आँख और मन को आकर्षित करने के लिए वहाँ कोई चीज़ न थी। दोनों ओर पुस्तकों—अधिकतर पुरानी पुस्तकों—की दुकानें होने के कारण यद्यपि स्कूल तथा कालेज (स्कूल के अधिक और कालेज के कम) छात्रों की खासी भीड़ रहती, पर स्कूल के लड़के और पुरानी पुस्तकों की दुकानें कोई ऐसा आकर्षक दृश्य प्रस्तुत नहीं करतीं कि अपने ध्यान में मग्न कवि र चौंक कर उधर देखने लगे। इसके अतिरिक्त जहाँ तक धूल और का सम्बन्ध है, मोहन लाल रोड अपने साथ पैंतालिस का कोण पिछले वाली चंगड़ मुहल्ला रोड से किसी तरह पीछे न थी। प्रकट है चातक ने दोनों ओर लगी पुस्तक-विक्रेताओं की दुकानों, उनके वे घर

पड़ते साइन बोर्डों और उन दुकानों पर लगी हुई स्कूल के छात्रों की रौनक को आँख भर कर नहीं देखा। देखा भी तो उनकी दृष्टि प्रकट वह सब देखते हुए भी कहीं और लगी रही और वे मन ही मन अपनी उस अनजान प्रेयसी की प्रशंसा में कविता लिखते रहे।

उन्हों ने कविता की दूसरी पंक्ति सोच ली थी और वे गुनगुना रहे थे :

चित्र तुम्हारा देखा सुन्दर, देखा नहीं तुम्हें अनजानी।
पर लगता है जैसे तुम हो, युग युग की मेरी पहचानी ॥

कि उनका तांगा मोहन लाल रोड की समाप्ति पर लोयर माल की ओर मुड़ा और उन्होंने देखा कि भाटी की ओर से शुक्ला जी बायें हाथ की हथेली पर चूना सुपारी और तमाखू रखे, दायें हाथ के अँगूठे से उसे मलते आ रहे हैं। कवि ने शुक्ला जी को आवाज़ दी और ताँगे वाले को रुकने के लिए कहा।

शुक्ला जी ने (जिनका पूरा नाम एच. पी. (हरिप्रसाद) शुक्ल था; पर जिन्हें उनके मित्र शुक्ला जी कह कर पुकारते थे) कवि चातक को देखा और जोर से ताली बजाने के अन्दाज़ में बायें हाथ पर पड़ी खैनी को फटका और हाथ को निचले ओठ के पास ले जाकर उसे दाँतों की निचली पंक्ति और निचले ओठ के मध्य भर दिया। इस प्रकार कि वह भाग ऐसे उभर आया जैसे वहां बर्र ने काट रखा हो। तब दायें हाथ से बायीं बग़ल में दबे काग़ज़ों का पुलन्दा निकाल और बायें से धोती को सम्हाल कर वे ताँगे पर कवि चातक के साथ आ बैठे और यह सोच कर कि पैदल गोपाल नगर जाने के कष्ट से बच गये, उन्हों ने संतोष की एक लम्बी साँस ली और मज़े से खैनी का आनन्द लेने लगे।

शुक्ला जी पाँच सवा पाँच फुट के छरहरे बदन के पत्रकार थे। 'साप्ताहिक वीर विक्रमादित्य' के सम्पादक थे। शुद्ध खादी का कुर्ता धोती पहनते थे। सर्दियों में उस पर एक पट्टी की जाकेट अथवा बन्द गले का कोट भी पहन लेते। छोटी-छोटी, ओठों के बराबर कटी मूंछें और अन्दर को कुछ धँसे हुए कल्ले। खैनी खाना और दूसरों की कलंक-कहानियों की चर्चा करना—फिर चाहे वे कहानियाँ राजनीतिक हों, सामाजिक हों, धार्मिक हों अथवा मात्र वैयक्तिक—उन्हें बड़ा प्रिय था। उनका सब से बड़ा गुण उनकी मुस्कान थी जो सदा उनके ओंठों पर बनी रहती थी। कोई उनकी प्रशंसा करे अथवा गाली दे, वह मुस्कान उन के ओठों से चिमटी रहती थी। बुजुर्गों का कथन है कि गाली सुन कर भी जो व्यक्ति मुस्कराये उस से डरना चाहिए। न डरें तो बचें अवश्य (व्यर्थ में आग से खेलना कौन सी बुद्धिमत्ता है।) पर यदि बचना सम्भव न हो तो फिर अपने आपको पूर्णतया उस संकट के लिए तैयार कर लेना चाहिए जिसका सामना उसके सत्संग के कारण आपको करना पड़ेगा। पर उस संकट का प्रकट-चिन्ह शुक्ला जी की आकृति पर दिखायी न देता था। देखने में तो वे बड़े निरीह लगते थे। मृदु भाषी और हँस मुख!

पास में आकर उनके बैठते ही कवि चातक ने संस्कृति-समाज की बात छेड़ी। खैनी का रस बात करने में बाहर न उछल पड़े, इस लिए, मुँह इस तरह ऊँचा कर के कि उनकी ठोडी बाहर को निकली पड़ती थी, शुक्ला जी दत्तचित्त हो कर श्री० चातक की स्कीम को सुनने लगे। बीच बीच में वे बड़ी प्रसन्नता से 'हूं, हूं' अथवा एक आध शब्द में अपनी सम्मति भी प्रकट करते जाते थे। जब श्री चातक ने कहा कि वे प्रधान-मंत्री के लिए पंडित धर्म देव वेदालंकार का नाम उपयुक्त समझते हैं, उनके यहाँ संस्कृति समाज की बैठकें करने के लिए पर्य्याप्त स्थान भी है और चाय पानी की व्यवस्था भी हो सकती है और

मन्त्री जगमोहन हो जायगा......तो उनकी बात काट कर उसी प्रकार खैनी का रस बाहर गिरने से बचाते हुए, शुक्ला जी ने पूछा, "कोषाध्यक्ष कौन बनेगा ?"

कवि चातक ने निमिष-भर के लिए सोचा। यह पद उन्हों ने अपने लिए तय कर रखा था, पर अपनी स्कीम को सफल बनाने के हेतु, इस छोटे लाभ का त्याग करना उचित समझ, उन्हों ने कहा, "आप से अच्छा कोषाध्यक्ष हमें कहाँ मिलेगा, कोषाध्यक्ष आप ही बनिए।"

यह सुन कर शुक्ला जी के ओठों पर बड़ी प्यारी मुस्कान आ गयी। उन की दायीं नासिका तनिक काँपी और इस विश्वास के लिए श्री चातक को धन्यवाद देते हुए अपनी तथा अपनी टोली की समस्त सेवाएँ उन्होंने 'संस्कृति समाज' के लिए सहर्ष प्रस्तुत कर दीं।

शुक्ला जी सदा अपने साथ एक टोली बनाये रखते थे। अर्जुन रोड गोपाल नगर में जो मकान उन के पास था, उस का मासिक किराया १५ रुपया था। उस का ऊपर का चौबारा ओरिएण्टल कालेज में पढ़ने वाले एक छात्र के पास था जो उसका पाँच रुपया मासिक किराया देता था और कभी-कभी 'वीर विक्रमादित्य' में लेख भी लिखा करता था। मध्य का भाग एक कुटुम्ब के पास था जिस में चचा, चची और भतीजा रहते थे। चचा-भतीजे कवि थे—'किसलय' और 'कंटक' और चची एक स्कूल में पढ़ाती थीं और घर का खर्च चलाती थीं। चचा तो केवल कविता करते, पर भतीजे पढ़ने के साथ ट्यूशन भी करते। शास्त्री करके बी० ए० कर चुके थे और अंग्रेज़ी में एम० ए० करने का जतन कर रहे थे। अढ़ाई कमरे उन के पास थे। ५ रुपये उन का किराया वे देते थे। निचले भाग में एक कमरा और रसोईघर शुक्ला जी ने अपने पास रख छोड़ा था और शेष दो कमरे पाँच पाँच रुपये मासिक में अपने पत्र के दो उप-सम्पादकों को दे रखे थे। इन में से एक उन के अपने गाँव का था और वक्त-बेवक्त, जब उन की पत्नी बीमार होती,

अथवा पीहर चली जाती, तो चार रोटियाँ भी सेंक देता था।

इस मकान के सब निवासी उन की टोली में सम्मिलित थे। शुक्ला जी इस बात का भरसक प्रयास करते कि उन में से कोई मकान छोड़ कर न जाय, अर्थात् किसी का हाथ उतना तंग न हो कि उनका मकान छोड़ कर उसे किसी धर्मशाला में आश्रय लेना पड़े। एक बार ऊपर के चौबारे में रहने वाले लड़के के घर से दो महीने तक रुपये न आये और उस ने आशङ्का प्रकट की कि उसे कदाचित् चौबारा छोड़ना पड़े। झट शुक्ला जी ने उसे एक हिन्दी दैनिक में पार्ट-टाइम ट्रांसलेटर लगवा दिया। फिर एक बार 'किसलय' जी की पत्नी को नौकरी से जवाब मिल गया और इस बात की सम्भावना हो गयी कि शायद उन्हें मकान छोड़ कर कहीं और जाना पड़े। सात दस दिन में शुक्ला जी ने उनको फिर किसी दूसरी पाठशाला में नौकरी दिला दी।

एक को ट्यूशन लेकर दे, दूसरे को नौकरी, इस के प्रवेश-शुल्क का प्रबन्ध कर, उसको थोड़ा सा कर्ज लेकर दे—इस प्रकार वे सदा अपनी टोली को बनाये रखते थे। इतने पर भी यदि कोई व्यक्ति उनका मकान छोड़ने को विवश होता तो वे तत्काल, बल्कि उसके मकान छोड़ने से पहले ही, दूसरा आदमी ले आते। सनातन-धर्म-प्रतिनिधि-सभा, महावीर दल, सेवा-समिति, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, राष्ट्र-भाषा, प्रचारक-संघ, राष्ट्र-भाषा-प्रचारक-समिति और ऐसी ही दूसरी संस्थाओं से अपना सम्पर्क बनाये रखते ताकि यदि उनकी टोली के किसी आदमी को आवश्यकता हो तो उसे कहीं न कहीं लगा दें और यदि उतने पर भी आवश्यकता पड़ जाय तो अपनी टोली के रिक्त-स्थान की पूर्ति भी कर सकें।

चन्द रुपयों के लिए कोई इतने पापड़ भी बेल सकता है, कदाचित् यह बात कुछ लोगों को अत्युक्ति-पूर्ण लगे, पर निम्न-मध्य-वर्ग में जहाँ वेतन का दर चालीस से सत्तर रुपये से अधिक न था (और आज की

मँहगाई में भी सौ डेढ़ सौ से नहीं बढ़ा), जीवन का साथ निबाहने के हेतु लोग जो पापड़ बेलने को विवश हैं, यदि उस का ब्योरा दिया जाय तो ऐसी बातें प्रकाश में आयँ, जिन्हें पढ़ना अथवा सुनना भी लोगों को स्वीकार न हो। फिर जहाँ तक शुक्ला जी का प्रश्न है, सवाल चन्द रुपयों का न था। इस टोली को बनाये रखने से न केवल उन्हें मुफ़्त रहने को मिलता, कुछ रुपये ऊपर से लाभ रहता और उनके घर में आश्रय पाने वाला एक-आध शरणार्थी रोटी पकाने से सफ़ाई करने तक उन के सभी काम कर देता, बल्कि इस टोली द्वारा उन्हें कुछ न कुछ शक्ति भी प्राप्त थी। वे अपनी इस टोली को प्रत्येक संस्था में ले जाते और इस के द्वारा उन्हें अपनी बात मनवाने में काफ़ी सुविधा रहती।

अपने उस किराये के मकान का नाम उन्हों ने 'शुक्ल-साहित्य-सदन रख छोड़ा था। साहित्य से उस मकान का कितना नाता था। यह प्रश्न विवाद-ग्रस्त भी हो सकता है, परन्तु यह नाम रखने के लिए उन के मकान में एक डेढ़ कवि का होना ही पर्य्याप्त था।

गोपाल नगर आ गया था। श्री चातक अपनी स्कीम बता चुके थे। पदाधिकारियों का भी चुनाव हो गया था। अन्त में कवि ने बताया कि उस समय तक संस्कृति से सम्बंध रखने वाली कोई संस्था पनप नहीं सकती, जब तक महिलाएँ उस में भाग न लें और पुरुषों के कंधे से कंधा मिला कर काम न करें। 'संस्कृति समाज' के लिए एक महिला मन्त्री का होना अत्यावश्यक है। तब शुक्ला जी ने झट कहा कि आप 'विनोदिनी जी' (शुक्ला जी के मकान में रहने वाले कवि विनोद जी 'किसलय' की पत्नी) को रख लीजिए। उनके......पर श्री चातक ने तत्काल उनकी बात काट कर कहा, "यदि 'संस्कृति-समाज' को

सफलता से चलाना हो तो उस के लिए अधेड़-आयु के बदले ऐसी युवा लड़की को रखना पड़ेगा, जो भाग दौड़ कर सके और समाज को महिलाओं में प्रिय बना सके।"

"तो प्रकाशवती को बनाइए!" शुक्ला जी ने कहा।

"प्रकाशवती, यह नाम तो कभी नहीं सुना।"

"विशारद में पढ़ती है, कंटक जी की छात्रा है।"

पर कवि चातक तो अपने लिए क्षेत्र बना रहे थे। जिस क्षेत्र पर किसी दूसरे का अधिकार हो, उसे लेकर वे क्या करते। बड़ी बेपरवाही से उन्हों ने कहा कि उन की एक परिचिता हैं, बहुत अच्छी लेखिका और कवियित्री हैं, वे उन से कहेंगे, वे आ जायँ तो सोसाइटी का बेड़ा पार हो जाय। नहीं फिर प्रकाशवती जी को ही कष्ट दिया जायगा।

शुक्ला जी उन कवियित्री जी का नाम पूछने वाले थे, पर तभी अर्जुन स्ट्रीट आ गयी और शुक्ला जी ने ताँगे वाले से रुकने को कहा। तांगे से उतरते हुए उन्हों ने कवि चातक से कुछ क्षण चल कर 'शुक्ल-साहित्य-सदन' को पवित्र करने की प्रार्थना की। चातक जी ने उत्तर दिया कि वे ज़रा आगे जा रहे हैं, वापसी पर रुकेंगे।

तांगा चल पड़ा और शुक्ला जी दूर चले गये तो श्री चातक ने तांगे वाले को 'शान्ता विद्यालय' भीष्म पितामह रोड चलने के लिए कहा और मन ही मन सोचने लगे कि वे किस प्रकार शान्ता जी से सत्या जी की बात चलायेंगे, क्योंकि पुरानी परिचिता होने तथा गोपाल नगर में सब से अच्छे विद्यालय की संचालिका होने के नाते श्री चातक द्वारा संचालित किसी चीज़ पर वे अनायास ही अपना अधिकार समझेंगी और जब उन्हें पता चलेगा कि चातक जी सत्या को चाहते हैं तो उन्हें बुरा लगेगा। सोच सोच कर उन्हों ने तय किया कि वे यह बात चलायेंगे ही नहीं। केवल उन्हें निमन्त्रण देंगे और 'मालती' का वह अंक बेपरवाही से खोलते हुए सत्या जी का पता पूछेंगे।

ताँगे वाले न पूछा "क्यों जी किथे रोकिए ? भीषम रोड ते खतम होण एूँ आयी ए।"*

"अरे रोको रोको।" कवि चातक चौंक कर बोले। उन्हों ने देखा कि वे शान्ता विद्यालय के सामने से गुज़रे जा रहे हैं और वे चिल्लाये; "मुझे यहीं उतरना है।"

सफलता से चलाना हो तो उस के लिए अधेड़-आयु के बदले ऐसी युवा लड़की को रखना पड़ेगा, जो भाग दौड़ कर सके और समाज की महिलाओं में प्रिय बना सके।"

"तो प्रकाशवती को बनाइए!" शुक्ला जी ने कहा।

"प्रकाशवती, यह नाम तो कभी नहीं सुना।"

"विशारद में पढ़ती है, कंटक जी की छात्रा है।"

पर कवि चातक तो अपने लिए क्षेत्र बना रहे थे। जिस क्षेत्र पर किसी दूसरे का अधिकार हो, उसे लेकर वे क्या करते। बड़ी बेपरवाही से उन्हों ने कहा कि उन की एक परिचिता हैं, बहुत अच्छी लेखिका और कवियित्री हैं, वे उन से कहेंगे, वे आ जायँ तो सोसाइटी का बेड़ा पार हो जाय। नहीं फिर प्रकाशवती जी को ही कष्ट दिया जायगा।

शुक्ला जी उन कवियित्री जी का नाम पूछने वाले थे, पर तभी अर्जुन स्ट्रीट आ गयी और शुक्ला जी ने ताँगे वाले से रुकने को कहा। तांगे से उतरते हुए उन्हों ने कवि चातक से कुछ क्षण चल कर 'शुक्ल-साहित्य-सदन' को पवित्र करने की प्रार्थना की। चातक जी ने उत्तर दिया कि वे जरा आगे जा रहे हैं, वापसी पर रुकेंगे।

तांगा चल पड़ा और शुक्ला जी दूर चले गये तो श्री चातक ने तांगे वाले को 'शान्ता विद्यालय' भीष्म पितामह रोड चलने के लिए कहा और मन ही मन सोचने लगे कि वे किस प्रकार शान्ता जी से सत्या जी की बात चलायेंगे, क्योंकि पुरानी परिचिता होने तथा गोपाल नगर में सब से अच्छे विद्यालय की संचालिका होने के नाते श्री चातक द्वारा संचालित किसी चीज़ पर वे अनायास ही अपना अधिकार समझेंगी और जब उन्हें पता चलेगा कि चातक जी सत्या को चाहते हैं तो उन्हें बुरा लगेगा। सोच सोच कर उन्हों ने तय किया कि वे यह बात चलायेंगे ही नहीं। केवल उन्हें निमन्त्रण देंगे और 'मालती' का वह अंक बेपरवाही से खोजते हुए सत्या जी का पता पूछेंगे।

ताँगे वाले न पूछा "क्यों जी कित्थे रोकिए ? भीषम रोड ते खतम होण गूँ आयी ए।"*

"अरे रोको रोको।" कवि चातक चौंक कर बोले। उन्हों ने देखा कि वे शान्ता विद्यालय के सामने से गुज़रे जा रहे हैं और वे चिल्लाये; "मुझे यहीं उतरना है।"

४

'शान्ता विद्यालय' पीले रंग की दो मंज़िली इमारत में था। पहली कक्षा से लेकर मिडिल तक लड़कियाँ उस में पढ़ती थीं, पर यह कोई महत्व की बात नहीं और न इस का मान शान्ता बहन को था। महत्व का बात यह थी कि विद्यालय में 'रत्न' 'भूषण' और 'प्रभाकर' की कक्षाएँ भी थीं और 'रत्न' पास लड़कियों को अंग्रेज़ी में मैट्रिक कराने का भी प्रबन्ध था और इस बात की पूरी आशा थी कि कुछ ही वर्षों में विद्यालय भूषण पास लड़कियों को अंग्रेज़ी में एफ़० ए० और प्रभाकर पास छात्राओं को अंग्रेजी में बी० ए० करा दिया करेगा।

सरसरी नज़र से देखने पर (विशेष कर पंजाब के बाहर वाले लोगों को) इस में कोई महत्व की बात दिखायी न देगी, पर उस समय जब निम्न-मध्य-वर्गीय समाज में लड़कियों की शिक्षा का उद्देश्य केवल विवाह की मंडी में उनका मूल्य बढ़ाना हो, शिक्षा का यह ढंग महत्व प्राप्त कर लेता है। साधारणत: जो लड़की पन्द्रह सोलह वर्ष की आयु में मैट्रिक करती, वह इस ढंग से उस वयस तक बी० ए० (केवल अंग्रेज़ी में) कर लेती। साधारण लड़कियाँ चौथी अथवा पांचवीं के बाद (और कई बार साथ ही) रत्न पास कर लेतीं, फिर केवल दो वर्ष में अंग्रेजी में मैट्रिक कर लेतीं। जो माता-पिता अपनी लड़कियों को बी० ए० देखने के इच्छुक होते, वे उन्हें साथ-साथ भूषण और प्रभाकर करा

देते। लड़कियाँ हिन्दी तथा अंग्रेज़ी साथ-साथ पढ़तीं और साथ-साथ हिन्दी अंग्रेजी की परीक्षाएँ देतीं। माता-पिता इस ढङ्ग से कम समय और कम फ़ीस में अपनी लड़कियों को मैट्रिक, एफ़० ए० और बी० ए० का (डिग्री न सही) डिप्लोमा दिलाने में और उन के लिए उचित वर ढूँढ़ने में सफल हो जाते। कालेज में पढ़ी बी० ए० पास लड़कियों से क्योंकि साधारण मध्य-वर्गीय-युवक डरता, इसलिए इन घर में अथवा प्राइवेट विद्यालयों में पढ़ी-लिखी लड़कियों की माँग अधिक रहती। 'शान्ता विद्यालय' के खुलने से पहले गोपाल नगर की लड़कियों को निस्बत रोड आदि के विद्यालयों में जाना पड़ता था। शान्ता बहन ने गोपाल नगर में विद्यालय खोल कर गोपाल नगर वालों पर बड़ा एहसान किया था और इस बात का उन्हें गर्व था।

श्रीमती शान्ता भगत राम सहगल—जिन्हें गोपाल नगर वासी शान्ता बहन और कवि चातक बेतकल्लुफ़ी से 'शान्ता जी' अथवा केवल 'शान्ता' या केवल 'तुम' कह कर सम्बोधित करते थे—साधारणतः संध्या के समय ऊपर की मंज़िल में होती थीं। निचली मंज़िल में क्लासें लगती थीं और ऊपर की मंज़िल में वे अपने पति श्री भगत राम सहगल और बच्चों के संग रहती थीं। कभी-कभी जब परीक्षाएँ समीप होतीं अथवा स्कूल के समय में वे अपना काम निबटा न पातीं तो शान्ता बहन निचली मंज़िल में, बरामदे के दायीं ओर के छोटे से कमरे में, (जिसकी चौखट पर अंग्रेजी में 'प्रिंसिपल' लिखा रहता) काम कर रही होतीं। यद्यपि ऊपर जाने में कवि चातक को किसी प्रकार की मनाही न थी, पर वे शान्ता जी से सदैव इस कमरे के एकांत ही में मिलना पसन्द करते थे।

ताँगे से उतर कर कवि ने देखा कि सामने के कमरे में कोई क्लास,

लगी हुई है। सोचा शान्ता जी अपने कमरे में होंगी। झट बरामदे की सीढ़ियां चढ़ कर प्रिंसिपल के कमरे की ओर बढ़े, परन्तु कमरा बन्द था। चपरासी का काम करने वाली 'माई' से ज्ञात हुआ कि 'बहन जी' ऊपर हैं। विवश हो कवि वापस फिरे और बराबर की गली में से हो कर मकान के पिछवाड़े सीढ़ियों में पहुंचे। सीढ़ी चढ़ते हुए मन ही मन उन्हों ने सोचा कि शान्ता मिल जाय, कहीं इतनी दूर आना विफल न हो।

परन्तु उनका आना विफल नहीं हुआ। सीढ़ियों ही से उन्हें एक बच्चे के रोने और शान्ता बहन के चीखने की आवाज़ सुनायी दी और जब वे सीढ़ियां चढ़ गये तो आँगन का दृश्य देख कर कुछ क्षण स्तम्भित से वहीं चौखट में खड़े रहे। सामने शान्ता विद्यालय की विदुषी प्रिंसिपल श्रीमती शान्ता देवी 'प्रभाकर' साहित्य-रत्न अपने काले कलूटे बच्चे को गर्दन से पकड़े धड़ाधड़ पीट रही थीं; ज़ोर ज़ोर से चिल्ला रही थीं; बच्चा उन से भी ऊँची आवाज़ में चिंघाड़ रहा था और उस की नाक से लेसदार सी चीज़, अपने ही तार से लटकने वाली मकड़ी की भांति नीचे फर्श की ओर चली जा रही थी। शान्ता बहन शायद बर्तन मलते मलते बच्चे को पीटने आ गयी थीं, क्योंकि मिट्टी से लिथड़े हुए उन के हाथ बच्चे के मुँह और शरीर पर जहाँ जहाँ पड़े थे, पाँचों अंगुलियों के कीचड़ सने निशान बन गये थे।

कवि चातक के सौन्दर्य-प्रिय-कवि-हृदय को यह सब देख कर प्रबल आघात लगा। वे उलटे पांव लौट जाते, परन्तु तभी शान्ता बहन की दृष्टि उन पर जा पड़ी और अपने रूप को यथा-सम्भव मृदुल बना, बरबस खींच-खांच कर एक मुस्कान ओठों पर ला कर, लिथड़े हुए हाथ मस्तक तक ले जाने का उपक्रम सा करते हुए, उन्होंने कवि का अभिवादन किया और कहा कि वे अन्दर जा कर 'उन' के पास बैठें! वे दो-तीन बर्तन मल कर आती हैं।

गर्म राख

शान्ता जी मँझले क़द की अट्ठाइस वर्ष की महिला थीं, परन्तु अट्ठाईस के बदले वे अड़तीस वर्ष की लगती थीं। कवि चातक अन्दर कमरे में उनके पति श्री भगत राम के पास जा बैठे तो वे रोते हुए बच्चे को छोड़, फिर जाकर बर्तन मलने में संलग्न हो गयीं।

यौवन के उन गुलाबी जाड़ों के से मधुर-मदिर दिनों में, जिनका सम्बन्ध पन्द्रह से अठारह वर्ष तक की वयस से है (क्योंकि कहने को तो अट्ठाईस वर्ष की स्त्री भी युवती कहाती है) जब हर लड़की सुन्दर लगती है और उड़ने की आतुर चिड़िया की भांति पंख फटफटाने लगती है, एक कांग्रेसी युवक ने शान्ता जी का मन मोह लिया था।

वह युवक सनातन धर्म कालेज में पढ़ता था। कांग्रेस की सरगर्मियों में अपने कई दूसरे साथियों के संग, पढ़ाई की सी नीरस चीज़ को कुछ सरस बनाने के विचार से, खूब बढ़-चढ़ कर भाग लेता था। गांधी-सप्ताह था और वह खादी बेचने के पुण्य के साथ, लाहौर की गलियों में छिपे सौंदर्य को खोज निकालने के फल की आशा में, एक बांह पर खादी का थान और दूसरे हाथ में गज़ थामे, उनकी गली में चला आया था। बातें करने में पटु और मुस्कराने में दक्ष ! वह शान्ता जी को बहुत अच्छा लगा था। उस दिन के बाद, लिखाई-पढ़ाई का ध्यान छोड़, वे स्वयं कांग्रेस के आन्दोलन में बड़े ज़ोरों से भाग लेने लगीं, परी महल लाहौर में होने वाली चर्खा प्रतिद्वन्द्वता में वे सर्वप्रथम रहीं और उस समय जब वे उस युवक के अधिकाधिक निकट हो गयी थीं, वह किसी और के निकट हो गया। माता-पिता के धन के बल पर कई कई वर्ष लाहौर के जीवन का रस लूटने वाले भ्रमर-वृत्ति युवकों में से वह भी एक था। उस के साथ इस सन्निकटता के कारण शान्ता जी ने अपने आपको कुछ विचित्र सी स्थिति में पाया। मां ने भी उस स्थिति को देखा और सिर पीट लिया। आज कल की पढ़ाई को, ज़माने की निर्लज्जता को और 'घर उजाड़ कांग्रेस' को दबी ज़बान

से बीसों गालियां दीं। मां बेटी में कुछ रोना रुलाना हुआ; बाप-बेटी में कुछ डांट-डपट हुई; पति-पत्नी में कुछ खुसर-फुसर हुई और तत्काल एक ज़रूरत-मन्द वर खोज निकाला गया और सप्ताह भर में कुमारी शान्ता तुल्ली श्रीमती शान्ता भगत राम सहगल बन कर गोपाल नगर के एक लकड़ी के टाल की स्वामिनी बन गयीं।

पहला लड़का उन के सात ही महीने बाद पैदा हो गया। प्रसव के दिनों में वे मायके आ गयी थीं। आठवें महीने पैदा होता तो मर जाता, परन्तु 'सतमाहें' तो बच जाते हैं। बच्चा हृष्ट-पुष्ट था। गोरा चिट्टा। न अपने पिता पर न माँ पर। परन्तु नानी ने उसके पिता को विश्वास दिला दिया कि वह अपने स्वर्गीय परनाना पर है। उस के पिता ने भी स्वयं माना कि नाक और ओंठ तो नाना के हैं, पर घुँघराले बाल सिवा परनाना के कुटुम्ब भर में और किसी के नहीं हुए। बच्चा यद्यपि आठ पाउंड का होगा, पर नानी सदा उसे पांच पाउंड का ही बताती। प्यार से उस का नाम उस ने 'चूहा' रख दिया और परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि अपने परनाना की निशानी वह चूहा किसी न किसी प्रकार बचा रहे।

बच्चे की मुसीबत से छुटकारा मिला और उन के पति ने बच्चे को अपना भी लिया तो श्रीमती शान्ता देवी ने, मानो पहली बार, अपने इर्द-गिर्द आँख भर कर देखा और जैसे पहली बार अनुभव किया कि वे तो एक दम गंदगी में आ पड़ी हैं। उनकी दशा पहाड़ों पर भ्रमण करने वाले उस यात्री की सी थी जो आँधी पानी और बर्फ़ के तूफ़ान से बच कर किसी पहाड़िये के गंदे, सीले, अँधेरे झोपड़े में आश्रय ले; उस की काँगड़ी में बिजली के हीटर का सा सुख और उसके गंदे मैले लिहाफ़ में रेशमी रज़ाई की सी नर्मी और गर्मी पाये और जब तूफ़ान गुज़र जाय और बाहर सूरज की धूप और भी निखर कर शिखरों और गहरी घाटियों को अपने स्निग्ध, गर्म, विशाल आलिंगन में बाँध ले तो उसे अपने

वातावरण की संकीर्णता, ठंडक, अंधकार और गंदगी का पहली बार आभास मिले; वह सहसा उठे और उस झोपड़े को तज कर अपनी सुखद-यात्रा पर चल पड़े।

शान्ता जी को श्री भगत राम, उनका घर, उनका लकड़ी और कोयले का टाल, 'कोयलों की दलाली में हाथ और मुँह काला'— सब अखरने लगा। उनका पति युवक था। वंश में कदाचित कुछ दाग़ होने से अथवा माता-पिता की छाया सिर से उठ जाने के कारण वह उस समय तक कुँवारा बना हुआ था। यों खूब हृष्ट-पुष्ट था। चौड़ा चकला वक्ष, खुले अंग, बलिष्ट हाथ पैर। पर न जाने क्यों, उसके आलिंगन में शान्ता जी को बड़ा मानसिक कष्ट होता। उस के ऊपर की दन्त-पंक्ति में दोनों ओर दो परदान्त थे और उन में प्रतिदिन दातुन करने पर भी पीला-पीला सा कुछ फँसा रहता था। फिर यद्यपि उस ने अपनी पत्नी के अनुरोध पर टाल से आकर नहाना और कपड़े बदलना आरम्भ कर दिया था, पर न जाने क्यों, शान्ता जी को अपने पति के शरीर से बराबर लकड़ियों और कोयलों की गंध आती थी। और फिर टाल वाले की पत्नी कहलाना भी उनके अहम् को स्वीकार न था। फल यह हुआ कि उन्हों ने पढ़ाई का तार जहाँ से छोड़ा था, वहीं से फिर पकड़ लिया।

वे हिन्दी-रत्न की परीक्षा अपने विवाह से पहले दे चुकी थीं। नव-शिशु अभी चन्द महीने का था कि उन्होंने हिन्दी भूषण की पढ़ाई आरम्भ कर दी। घर का सब काम करना, बच्चे की देख-भाल करना, दूसरे बच्चे के आगमन की तैयारी करना और पढ़ना— ये सब काम वे साथ-साथ करती रहीं। वे सातवें महीने से थीं जब वे भूषण की परीक्षा में बैठीं इधर भूषण की परीक्षा का परिणाम निकला, उधर उनके घरेलू जीवन की परीक्षा का। उनके फिर लड़का हुआ। वह पूर्ण रूप से अपने पिता पर था। काला कलूटा और भारी भरकम! भूषण की परीक्षा में वे उन्हीं

दिनों पास हुई थीं, इस लिए उसका नाम 'भूषण' रखा गया।

शान्ता जी ने भूषण के बाद प्रभाकर और प्रभाकर के बाद साहित्य-रत्न किया। उनके दो और लड़के हुए। उन कम्बख्तों में से एक भी अपने नाना, पर-नाना पर न गया और न ही वे उन में से किसी को उतना प्यार कर पायीं। अपने पति का टाल बिकवा कर उन्होंने 'शान्ता विद्यालय' की नींव डाली और उनका पति 'टाल वाला' कहाने के बदले 'विद्यालय वाला' कहाने लगा और कोयलों की दलाली के बदले शिक्षा की दलाली करने लगा। अधिक से अधिक संख्या में लड़कियाँ शान्ता विद्यालय में आयें, इस उद्देश्य से गोपाल नगर के घरों में जाना; किसी न किसी बड़े व्यक्ति द्वारा विद्यालय में किसी न किसी चीज़ का उद्घाटन कराते रहना; किसी न किसी लेखक, कवि, अथवा अध्यापक को विद्यालय में निमन्त्रित करते रहना और इस प्रकार शिक्षा-प्रसार के शुभ काम में अपनी सी कर देने का भार उसने अपने वृषभ-कंधों पर ले लिया। शान्ता जी विद्यालय की प्रिंसिपल बन गयीं और उनके काम का बोझ भी कम न रहा। इस व्यस्तता के बावजूद बच्चे भी पैदा होते रहे, पर दूसरों के बच्चों की देख-रेख में अपने बच्चों की देख-रेख पति-पत्नी दोनों के लिए कठिन हो गयी। विद्यालय से इतनी आय न थी कि प्रत्येक बच्चे के लिए एक एक आया रखी जाय। इतने बड़े भवन का किराया, उसमें काम करने वाले अध्यापक-अध्यापिकाओं के वेतन आदि को निकाल कर कठिनाई से घर के खर्च भर को पैसे बचते। इस-लिए जब घर में नौकर न होता या कहारिन बीमार पड़ जाती, शान्ता जी को स्वयं सब काम करना पड़ता और इस व्यस्तता में उन्हें जो खीज होती उसका फल उन बच्चों को भुगतना पड़ता जो अपने रंग रूप से शान्ता जी को प्रतिक्षण कोयलों के टाल की याद दिलाते। उनका पति जब उन्हें इस प्रकार खीजते झल्लाते देखता तो सदा ताना देता कि यदि वह उनके अनवरत अनुरोध से इस 'पचड़े' में न पड़ता तो उस समय तक

गोपाल नगर में चार लकड़ी के टाल उसके होते और वह चार मकान खरीद लेता। न उसे इस प्रकार भाग-दौड़ करनी पड़ती, न उन को इस तरह क्लर्कों की भांति काम करना पड़ता। चार नौकर वह घर में रख देता और वे रानी बनी बैठतीं।

शान्ता जी प्रसन्न होतीं तो सदैव उस समय का चित्र खींचतीं जब उनके विद्यालय में मिडिल की पढ़ाई के बदले बी० ए० तक की शिक्षा होगी और वे 'शान्ता विद्यालय' का स्तर 'लाहौर कालेज फ़ार विमेन' जितना ऊँचा कर देंगी, और उनकी आय पचास गुना बढ़ जायगी और.........और जब वे झल्लायी हुई होतीं तो चुप रहतीं पर अपने इस या उस बच्चे को दो चार थप्पड़ रसीद करके पति के तानों का उत्तर दे देतीं।

शान्ता जी के पति श्री भगत राम उस समय खासे झल्लाये हुए बैठे थे। प्रकट था कि कुछ ही क्षण पहले पति-पत्नी में 'विचार-विनिमय' हो चुका है, जिसके फलस्वरूप एक बच्चा उनके हाथ से प्रसाद भी पा चुका है। परन्तु जब शान्ता जी के कहने पर कवि चातक ने अन्दर प्रवेश किया तो श्री भगतराम ने खीसें निपोर दीं जिस से उनके परदान्त पूर्ण रूप से दृष्टि-गोचर हो उठे।

"आइए, आइए!" उन्हों ने 'हिं हिं'...'हिं हिं' करते हुए कहा, "आपके तो दर्शन ही दुर्लभ हो गये।" और पुनः 'हिं' हिं' करते हुए उन्होंने अपना हाथ चातक जी के हाथ पर (मिलाने के अन्दाज़ में) ज़ोर से मारा।

यदि कवि समय पर अपना हाथ न खींच लेते तो रात भर उनको नमक और हल्दी का सेंक देना पड़ता। उनके हाथ की दो अंगुलियाँ ही श्री भगतराम के हाथ को छू पायीं, पर इतने ही से उनकी पोरें

पूर्व टाज़ वाले और उसके परक्रान्तों को देख और उसकी निरर्थक 'हिं...हिं' सुनकर कवि चातक को बड़ी कोफ़्त* होती थी। अपनी सोसाइटी में भगत राम का व्यक्तित्व उन्हें मक्खन में रेत के कण ऐसा चुभता था। यथा-सम्भव वे सदैव उससे कन्नी काट जाते। दूसरा अवसर होता तो वे तत्काल बहाना बना कर चले जाते, पर उन्हें सत्या जी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी थी और वे शान्ता जी पर भी यह बात प्रकट न करना चाहते थे, इस लिए क्षण भर अपनी अंगुलियों को पोरों को मलते हुए, बिना कुर्सी पर बैठे, उन्होंने स्वयं ही अपना बेजान माँस-पिंड सा लिजलिजा हाथ भगत राम के अनगढ़ पत्थर जैसे खुरदरे हाथ में देते हुए पूछा, "कहिए विद्यालय की कैसी गति-विधि है? एफ० ए०, बी० ए० की क्लासें आरम्भ की हैं या नहीं? सुनते हैं गोपाल नगर में कोई दूसरा भी विद्यालय खुल गया है।"

"विद्यालय!" भगत राम ने बेतुका ठहाका मारा, "विद्याली कहिए विद्याली! बन्दा बैरागी स्ट्रीट में एक छोटा सा कमरा है, जिस में यह विद्यालय लगता है। दो घण्टे सुबह और दो घण्टे शाम!"

"किसने खोला है?"

"अरे वह एक लड़की है सत्या। हमारे ही विद्यालय से उसने प्रभाकर पास किया है। जो लड़कियाँ हमने अपने विद्यालय में नहीं लीं उन्हीं को पढ़ा रही है। चार तो मैं ने तोड़ ली हैं। शेष भी दस-बीस दिनों में आ जायँगी।"

और इस ब्योरे के विरोधाभास को जाने बिना अपनी प्रसन्नता में श्री भगतराम ने यह कहते हुए परदाँत दिखा दिये। उनके दाँतों में न जाने पीला-पीला सा क्या फँसा था जो न चाहने पर भी कवि

---

*कोफ़्त = मानसिक कष्ट

चातक के ध्यान को अपनी ओर खींचता था, पर साथ ही उन के सौन्दर्योपासिक-कवि-हृदय को आघात भी पहुँचाता था।

"बन्दा बैरागी स्ट्रीट कहाँ है ?" चलने को उद्यत होते हुए कवि चातक ने कहा।

"अजी वहीं जहाँ गवर्नमेंट कालेज के प्रोफ़ेसर श्री जटाशंकर का घर है।" और वही निरर्थक... 'हिं... हिं।'

"अच्छा तो चल दिये!" कवि ने दोनों हाथ मस्तक पर ले जाते हुए कहा। उन को अब क्षण भर भी वहाँ ठहरना दुष्कर लग रहा था। विशेष कर सत्या जी के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद।

तभी शान्ता जी हाथ-वाथ धोकर, कदाचित मुँह पर भी हाथ फेर कर कमरे में आयीं। पर चातक जी का मन बैठने को न हुआ। क्योंकि यद्यपि शान्ता जी की आकृति पर मुस्कान झलक आयी थी, पर वहाँ कोई ऐसी चीज़ न थी जिस पर कवि का मन टिके।

"बैठिए, बैठिए, चल क्यों दिये ?" शान्ता जी ने आते आते कहा।

"इधर शुक्ल जी की ओर आया था," कवि बोले, "सोचा आपके भी दर्शन करता चलूँ। देर हो गयी है। श्रीमती जी बैठी मेरी जान को दुआएँ दे रही होंगी।"

"क्या करूँ," शान्ता जी उन के साथ चलते हुए बोलीं, "महरी दो दिन से बीमार है और यह सब काम भी मुझे ही करना पड़ता है।"

"फिर हाज़िर हूंगा।"

और 'नमस्कार' कर कवि चातक सीढ़ियाँ उतर गये। नीचे खुले में पहुँच कर उन्हों ने सुख की एक बहुत लम्बी साँस ली।

शुक्ल-पक्ष का चाँद साँझ ही से आकाश में खिल आया था। वसन्त के आरम्भ की साँझ थी। सोने में जैसे सुगंधि। अनायास ही वायु का परस रोमावलि को पुलकित कर रहा था। 'शान्ता-विद्यालय' से निकल कर कवि चातक पैदल ही घर की ओर चल दिये। मेन रोड पर, मोरी दरवाजे की ओर को जाते हुए, एक तांगे वाले ने हांक लगायी, पर कवि ने उधर ध्यान न दिया। मौन रूप से चलते हुए वे लोयर माल तक आ गये। वहाँ क्षण भर रुक कर जैसे स्वच्छ, निर्मल समीर को अपने अणु अणु में भरते रहे; बड़े से चाँद को तकते रहे; चांदनी में भीगी सड़क और उसके पेड़-पौधों को निरखते रहे और जब उनका तन-मन उस कलुष से पवित्र हो गया, जिसने 'शान्ता-विद्यालय' में उन्हें जकड़ लिया था तो वे मस्ती से झूमते हुए चल पड़े। अनायास ही, किसी एकाकी भौंरे की गुंजार सा उनका स्वर धीरे-धीरे गुनगुना उठा :

चित्र तुम्हारा देखा सुन्दर, देखा नहीं तुम्हें अनजानी।
पर लगता है जैसे तुम हो, युग युग की मेरी पहचानी॥

धीरे-धीरे मानो अनजाने, मानो किसी प्रत्यक्ष प्रयास के बिना समीर बह रही थी। कवि चातक की भाव-धारा भी कुछ उसी प्रकार अज्ञात रूप से, अनायास, अप्रयास प्रवहमान थी। भावनाएँ शब्दों, पंक्तियों का रूप धारण कर चली आ रही थीं। उन्हें मालूम भी न

हुआ कि कब वे गोपाल नगर से पैदल चलते हुए अमृत धारा फ़ार्मेसी के निकट अपने मकान के पास पहुँच गये। तंग ज़ीना चढ़ते और गुनगुनाते हुए जब वे ऊपर पहुँचे तो उनके कानों में उनकी संगिनी का कर्कश और सानुनासिक स्वर पहुँचा—"किंस मंरे कें यहाँ चंलें गंयें थें जों इंतनी देंर में लौटें। खांना कंब कां पंड़ां ठंडा हों रहां है।"

कवि चातक की सारी मस्ती भंग हो गयी और उनकी कविता सहसा उन के मस्तिष्क से उड़ कर विस्मृति के गर्त्त में चली गयी।

उस पुराने मकान के उस हिस्से में, जो कवि चातक के पास था; चार कमरे थे। तीन दूसरी मंज़िल में और एक तीसरी पर। दूसरी मंज़िल के ये तीन कमरे इस प्रकार बने थे कि तीसरे को जाना होता तो पहले और दूसरे से गुज़रना पड़ता। तीसरा कमरा क्योंकि कमरा न हो कर केवल कोठरी थी और यह कोठरी रसोई के काम आती थी, इस लिए वह धुएँ का कुछ प्रसाद उन दोनों संगियों को भी दे देती थी।

कमरे मैले, गंदे, और जैसे वर्षों से सफ़ेदी को तरसे हुए थे। पुस्तकों से लेकर खिलौनों तक, हर प्रकार की वस्तुओं से ऐसे अटे पड़े थे कि उन वस्तुओं के बाहुल्य, अव्यवस्था और अस्त-व्यस्तता में उनका विस्तार खो गया था और वे कोठरियों ऐसे दिखायी देते थे। एक ओर कवि चातक की पाँच वर्ष की दूध सी गोरी लड़की, कीचड़ सी मैली एक कमीज़ पहने, अध-नङ्गी बैठी थी। कमरे के मध्य उनका अढ़ाई वर्ष का काला-कलूटा बच्चा (जो प्रकट ही माँ पर था) चौड़ा मुख, मोटे-मोटे ओठ और मोटे नितम्ब लिये बैठा हुआ एक फटी पुस्तक से खेल रहा था। पुस्तक उस के पिता की कविताओं का नवीन-संग्रह थी और वह अभी से उस का परिचय पा लेना चाहता था। नाक उस की निरन्तर बह रही थी और वह बार बार उसे सुड़क रहा था। एक ओर फ़र्श पर कवि का एक-वर्षीय बच्चा पड़ा रिरिया रहा था।

कवि चातक का सौन्दर्य-प्रिय-मन इस समस्त अपरूपता को देख कर

बड़ा खिन्न हुआ। अपनी पत्नी की किसी बात का उत्तर दिये बिना उन्हों ने उस से खाना पुरसने को कहा और भोजन की थाली और पानी का गिलास लेकर ऊपर चौबारे की ओर भागे—जहाँ अव्यवस्था चाहे हो, पर वह अपरूपता न थी। बाहर छत पर चाँदनी खिली हुई थी, जिसकी किरणें चौबारे को भासमान कर रही थी। वहाँ पत्नी की कुरूपता और कर्कशता से दूर वे बड़े मज़े से अपनी नयी प्रेयसी की कल्पना कर सकते थे, स्वप्नों के संसार बसा कर उन में खो सकते थे; गुंनगुना सकते थे; गा सकते थे।

घाम में तपता व्यक्ति जैसे नदी की ओर लपकता है, वैसे ही कवि चातक छत की ओर लपके। चौबारे में प्रवेश करते ही उन्हों ने देखा—चारपाई पर औंधा लेटा जगमोहन पुस्तक पढ़ रहा है। उन्हें आते देख कर वह उठा। बोला, "कहाँ गये थे आप ? मैं दो घंटे से आप की राह देख रहा हूं। भाभी बहुत नाराज़ हो रही थीं।"

कवि चातक ने उस की बात का उत्तर नहीं दिया। बोले, "मैं आज सांझ ही से तुम्हारी बात सोच रहा था। मैं ने तुम से एक बार जो 'संस्कृति समाज' का ज़िक्र किया था, अब उसे मूर्त-रूप देने का समय आ गया है। आज मैं ने सारी स्कीम सोच ली है। तुम्हें उस का मन्त्री बनना होगा।"

"लेकिन मैं........"

"तुम्हें यहां के साहित्य-जगत में अपना स्थान बनाना है और इस से अच्छा अवसर तुम्हें कभी न मिलेगा।

"पर साहित्य जगत में मुझे कौन जानता है ?"

"नहीं जानता तो अब जान जायगा," कवि चातक ने कहा, "तुम में प्रतिभा है, स्फूर्ति है, आकांक्षा और लगन है। 'संस्कृति समाज' इन सब के लिए उपयुक्त क्षेत्र रहेगा। मैं यहां के हिन्दी-साहित्यिकों को तुम्हारा परिचय दूँगा। और चन्द दिन में सभी तुम्हें जान जायँगे।"

और उन्हों ने जगमोहन को सभी ब्योरा दिया कि कौन प्रधान मंत्री होगा, कौन प्रधान, कौन कोषाध्यक्ष, कौन कार्य्यकारिणी के सदस्य और समाज कहाँ और कैसे काम करेगा आदि आदि ! अन्त में उन्हों ने कहा, "फिर समाज एकाँगी न होगा, महिलाओं का पूरा सहयोग उसे प्राप्त होगा। हमारा सामाजिक जीवन जितना संकीर्ण और कुण्ठित है, इसका कारण वे झूठी वर्जनाएँ हैं, जो यहाँ स्त्री-पुरुष के मध्य खड़ी हैं। हमें उनको ढाना होगा। तभी हमारे देश की नारी अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व का पूर्ण-विकास कर अपनी शक्ति देश के उद्धार हेतु लगा सकेगी और सच्चे अर्थ में हमारी संस्कृति का पुनरुत्थान होगा।"

कवि चातक महिलाओं द्वारा देश की संस्कृति के पुनरुत्थान की बात अभी इतनी ही कह पाये थे कि नीचे से उनकी पत्नी नाक में चिल्लायीं,

"खांनां खां लिंया हों तों बंर्तन दें जांओं। बंहस फिंर कंर लेंना।"

चौंक कर कवि ने एक बड़ा सा कौर मुँह में रखा। कुछ क्षण वे चुपचाप भोजन करते रहे फिर बोले, "मैं ने फैसला किया है कि हमारे 'संस्कृति-समाज' में स्त्री बराबर का भाग लेगी। एक मंत्री के साथ एक मन्त्रिणी भी होगी। हम केवल पुरुषों ही में नहीं, स्त्रियों में भी साहित्यिक-अभिरुचि उत्पन्न करेंगे।" और स्वर को तनिक धीमा कर उन्हों ने कहा—"मैं चाहता हूं कि महिला-मन्त्री का भार किसी ऐसी स्त्री को दिया जाय जो स्वयं भी लेखिका हो। 'मालती' में आज मैंने कुमारी सत्या सलूजा का लेख देखा है। लड़की में प्रतिभा की चिनगारी और सेवा की लगन है। मैंने उसका पता लगा लिया है। 'संस्कृति समाज' के निमन्त्रण-पत्र छप जायँ तो उस के यहाँ तुम जाना। यदि कुमारी सत्या महिला-मन्त्री का भार अपने कंधों पर ले लें तो हमारा 'संस्कृति-समाज' महिलाओं में भी लोक-प्रिय हो जायगा।"

कवि चातक 'संस्कृति समाज' के भविष्य में इतना उलझ गये कि खाना खाना भूल गये। वे अभी यहाँ तक ही पहुँचे थे कि सीढ़ियों पर

उनकी पत्नी की सानुनासिक डाँट सुनायी दी, "किंस मेरे समांज कें चंक्कर में पंड़े हों। खांनां खंतम कंरों किं मैं बंर्तन मंलूँ। बंच्चे सोंने कों चिंल्ला रहें हैं।"

अपना भाषण एक दम बन्द कर श्री चातक ने फिर एक बड़ा सा कौर मुँह में रखा। फिर चुप हो जल्दी-जल्दी खाना खाने लगे। वे अभी मुश्किल से खाना समाप्त कर पाये थे कि उनकी पत्नी दनदनाती ऊपर आ पहुँची। यद्यपि कवि को एक आध रोटी और खानी थी, पर उन्हों ने उस का मोह छोड़, थाली उस की ओर बढ़ा दी। दो घूँट पानी पी कर कुल्ले के लिए मुँह में भर लिया और गिलास थाली पर टिका दिया।

"तुम्हें और कोंई कांम नहीं जंगमोंहन?" श्रीमती चातक ने जाते जाते जगमोहन की ओर देख कर कहा, जो फिर चारपाई पर लेट गया था और 'संस्कृति-समाज' के संबंध में श्री चातक की योजना ध्यान-पूर्वक सुन रहा था।

कवि-पत्नी की उस दृष्टि में जैसे बिजली का करेण्ट हो, वह उठ कर बैठ गया।

"अभी जाता हूं भाभी!" उस ने धीरे से कहा।

कवि चातक भीगी बिल्ली बने बैठे रहे। जब उनकी पत्नी बड़-बड़ाती चली गयी तो उन्हों ने जगमोहन से कहा, "यहीं सो जाओ जी, इस समय कहां जाओगे।"

"सोने को तो तत्काल सो जाता, पर कह कर नहीं आया।" और यह कहते हुए वह उठा।

"कल बारह बजे 'मालती' के दफ्तर में मिलना", कवि चातक ने उस के साथ सीढ़ियों तक आते हुए कहा, "मैं इस बीच में सरक्यूलर आदि तैयार कर लूँगा।"

६

'संस्कृति समाज' के आमन्त्रण-पत्र बाँटता बाँटता जगमोहन जब गोपाल नगर पहुँचा तो साढे दस बजने वाले थे। वह दस ही बजे वहाँ पहुँच जाना चाहता था, पर उसे कवि चातक से निमन्त्रण-पत्र लेने में देर हो गयी थी। बात यह हुई कि जब उन्होंने सारे निमंत्रण-पत्र उसे दे दिये तो सत्या जी का पता देते हुए कहा कि उन को निमंत्रण-पत्र अवश्य पहुँचाये। वे विद्यालय में न हों तो उन के घर पर दे आये। धीमे स्वर में उन्हों ने यह भी बताया कि वे सत्या जी ही को समाज की महिला-मन्त्री बनाना चाहते हैं। जब वह चलने लगा तो जाने कवि चातक को क्या विचार आया कि उन्हों ने सत्या जी का निमंत्रण-पत्र लेकर उस पर—'अवश्य पधारिएगा'—लिख, नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिये। फिर, जगमोहन के मन में किसी प्रकार का भ्रम न उत्पन्न हो, इस विचार से सारे निमंत्रण-पत्रों पर वे ही दो शब्द लिख कर नीचे अपने हस्ताक्षर किये।

वह चलने लगा तो उन्हों ने फिर टोका, "तुम गोपाल नगर कब तक पहुँचोगे?"

"ये सब बाँटते बाँटते दो एक घंटे तो लग ही जायँगे!" उस ने उत्तर दिया, दस साढ़े दस तक पहुँच जाऊँगा।"

"मैं भी उधर शुक्ल जी की ओर जाने वाला हूं," चातक जी बोले,

"जब सत्या जी की ओर जाओ तो मुझे वहां से ले लेना। हो सकता है वे आने से इनकार कर दें। मैं उपस्थित रहूंगा तो वे ऐसा न कर सकेंगी।"

और इस सब हस्ताक्षरबाज़ी और बात चीत में उसे पौन एक घंटा लग गया था।

१९२१ के भयानक साम्प्रदायिक दंगे के बाद (जो मोपला-आन्दोलन के कारण लाहौर में अचानक फूट पड़ा था और जिस में हिन्दुओं की भारी क्षति हुई थी) जो शुद्ध हिन्दू बस्तियाँ लाहौर में उभर आयी थीं, उन में गोपाल नगर सब से बड़ी थी।

घोड़ा अस्पताल से लेकर मुलतान रोड के सरकारी क्वार्टरों तक मीलों के फैलाव में जो चार छै बस्तियाँ बसी थीं उन में भी गोपाल नगर ही सब से बड़ी और विस्तृत थी। ऋषि नगर, सन्त नगर, राम नगर और फिर गोपाल नगर! कहां ऋषि नगर समाप्त होता है और सन्त नगर आरम्भ होता है, कहाँ सन्त नगर खत्म होता है और राम नगर शुरू होता है? किसी अपरिचित के लिए यह जानना कठिन था। परन्तु यद्यपि राम नगर और गोपाल नगर की सीमाएँ भी मिली हुई थीं, गोपाल नगर में पहुँचते ही मालूम हो जाता था कि हम गोपाल नगर में पहुँच गये हैं। यह इस लिए नहीं कि वहाँ बाल गोपाल भगवान कृष्ण की मूर्ति स्थापित थी अथवा गलियां वृन्दावन की कुंज गलियों सी थीं या फिर वहाँ रास लीला का आयोजन रहता था। ऐसी कोई बात न थी। ये चारों बस्तियाँ निम्न और मध्य-वर्ग के कारोबारी लोगों की बचत का परिणाम थीं, जिन में अधिकतर रूढ़िवादी हिन्दू थे। गोपाल नगर की विशेषता यह थी कि उस में शेष बस्तियों की तुलना में सड़कें, बाज़ार और गलियाँ बड़ी खुली थीं, मकान दो मंज़िले-तिमंज़िले थे और

यह बस्ती मीलों के घेरे में फैली हुई थी। अपनी संस्कृति पर गर्व करने वाले हिन्दुओं ने महाभारत के सभी बड़े बड़े नाम इसकी सड़कों बाज़ारों और गलियों पर खत्म कर दिये थे। बड़ा बाज़ार तो खैर गोपाल रोड था ही, पाँचों पांडवों के नाम से पाँच बाज़ार भी थे। फिर भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, अश्वथामा, कर्ण और धृतराष्ट्र के नाम से भी सड़कें थीं। आबादी में सिक्खों के भी मकान थे। यों भी हिन्दू लोग सिक्ख गुरुओं में श्रद्धा रखते हैं, इस लिए गुरू नानक, गुरू तेग़ बहादुर, गुरु गोबिन्दसिंह तथा बन्दा बैरागी के नाम से भी सड़कें थीं। आर्य समाजी रामायण महाभारत में उतनी आस्था नहीं रखते। उन्होंने दयानन्द, लेख राम, मुन्शी राम तथा 'जात-पात-तोड़क' गलियाँ बना रखी थीं और इस प्रकार 'गोपाल नगर' महाभारत के बाद की हिन्दू-संस्कृति का इंडेक्स था। उसकी गलियों के नाम देख कर ही सारे इतिहास की याद ताज़ा हो जाती थी। इस बस्ती पर हिन्दुओं को मान था, और बस्ती के विस्तार के साथ उस मान में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी।

जगमोहन गोपाल रोड पर धीरे धीरे चला जा रहा था। वह दो तीन घंटे से निरन्तर साइकिल चला रहा था। हरकुलीज़ का साइकिल और वर्षों पुरानी सूखी-सिकुड़ी गद्दी! उसके चूतड़ों की हड्डियाँ और जंघापिंड दुखने लगे थे और वह कुछ क्षण के लिए पैदल चलने लगा था।

यद्यपि गोपाल नगर की नींव रखे वर्षों बीत गये थे और उसका विस्तार दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा था तो भी उसकी सड़कों को अभी कोलतार नसीब न हुआ था। लोअर माल से गोपाल रोड तक आने वाला रास्ता ताँगों, बैल गाड़ियों, छकड़ों आदि के आने जाने से बहुत ऊबड़-खाबड़ हो गया था। गोपाल रोड अपेक्षाकृत पक्की थी, पर

क्योंकि गोपाल नगर में नालियाँ न बनी थीं, इस लिए पानी हौदियों में पड़ा सड़ता रहता था और प्रायः सड़क पर फैल जाता था। गोपाल रोड बड़ी चौड़ी थी, बस्ती के क्रय-विक्रय का भी यही केन्द्र थी, पर दुकानों और भीड़ की यहाँ इतनी कमी थी कि यह वास्तव में अधिक खुली लगती थी। न जाने क्यों, जगमोहन जब भी यहाँ पहुँचता था, साइकिल से उतर आता। लाहौर की उस निबड़ता, चहल-पहल भीड़-भाड़ से गोपाल नगर पहुँच कर उसे कुछ विचित्र सी विश्रान्ति का आभास मिलता था। गोपाल रोड की विशालता के मुकाबिले में दोनों ओर मकानों की मंज़िलें छोटी दिखायी देती थीं। आकाश का विस्तार जैसे सड़क की चौड़ाई ही की दूसरी सीमा थी।

ताँगों के अड्डे तक पैदल चल कर, जैसे इतना चलने से नव-स्फूर्ति पा, जगमोहन ने उचक कर पैडल पर पांव रखा और जा 'शुक्ल-साहित्य-सदन' उतरा। बाहर ही से उस ने पूछा, "चातक जी आये हैं ?"

अन्दर से शुक्ल जी ने कदाचित खैनी का रस पपोलते हुए उत्तर दिया कि अभी नहीं आये। कल्पना ही में चेतन ने उनकी ठोड़ी को आगे उभरे और निचले ओठ को खैनी के रस से भरे देखा !"

"आयें तो उन्हें रोकिएगा," उस ने कहा, "मैं इतने में एक दो जगह निमंत्रण-पत्र बाँट आता हूं।"

और वह मुड़ा। तभी सामने से कवि चातक आते दिखायी दिये।

वे अपने नाटे से क़द पर दूध सी श्वेत खादी का कुर्ता और धोती पहने थे। कुर्ते पर उन्होंने रेशमी चादर ओढ़ रखी थी। पांवों में नये चप्पल थे। डाढी सयत्न साफ़ की थी और बाल बड़े ढंग के सँवार रखे थे। आंखों में काजल की हल्की सी लकीर थी और उनके गोल गोल गोरे मुख में पान-रंगे ओठ ऐसे लग रहे थे जैसे किसी छोटे श्वेत तरबूज़ में से किसी ने एक लाल लाल फाँक काट रखी हो।

"मैं तो जा रहा था," जगमोहन ने कहा, "और तो सब निमंत्रण-

पत्र बांट आया हूं, केवल गोपाल नगर के रह गये हैं। मैंने सोचा विद्यालय बन्द न हो जाय, इस लिए पहले इधर आया।"

"ठीक ही किया," कवि चातक आत्म-तुष्टि से मुस्कराये, "मुझे कपड़े बदलते ज़रा देर हो गयी। चलो सत्या जी की ओर हो आते हैं, फिर तुम शेष निमन्त्रण-पत्र बाँट आना।"

और जगमोहन फिर मुड़ा। चौड़ी चौड़ी गलियों में से होते हुए दोनों 'बन्दा-बैरागी-स्ट्रीट' में पहुँचे। अभी गलियाँ पूरी न बनी थीं और कहीं कहीं मकानों की जगहें मुँह बाये खाली पड़ी थीं। वहाँ इर्द गिर्द के निवासी सारा कूड़ा-कर्कट फेंक देते थे। ऐसी जगहों में रेशमी चादर का कोना अचानक कवि चातक की नाक पर चला जाता था। बंदा-बैरागी-स्ट्रीट की भी यही दशा थी और कवि चातक कूड़े के ऐसे गोदामों और हौदियों के बिखरे पानी पर नाक भौं चढ़ाते सतर्क हो बचते, इधर उधर देखते चले जा रहे थे ?

जब आधी गली समाप्त हो गयी और कहीं 'सत्या विद्यालय' का बोर्ड दिखायी न दिया तो कवि चातक ने जगमोहन से कहा, "तुम ज़रा किसी से पूछो कि 'सत्या विद्यालय' कहाँ है ?

जगमोहन ने सामने से आते हुए एक व्यक्ति से पूछा। मालूम हुआ कि आगे है। दोनों फिर चल पड़े, परन्तु पूरी गली का चक्कर लगाने पर भी कहीं 'सत्या विद्यालय' का बोर्ड न दिखायी दिया।

दोनों फिर मुड़े। गली में बायीं ओर को एक बंद उपगली थी, जिस में दो गायें और एक भैंस बंधी थी और एक बुढ़िया बैठी चर्खा कात रही थी। इस गली में एक कमरा था जिस की खिड़कियाँ 'बंदा-बैरागी-स्ट्रीट' में थीं और दरवाज़ा बंद गली में खुलता था। जगमोहन ने कहा, "इस में कुछ लड़कियाँ पढ़ रही हैं, शायद यहीं 'सत्या-विद्यालय' है।"

उस ने यह बात कुछ इतने ऊँचे स्वर में कही कि बुढ़िया ने कदाचित्

सुन लिया। चर्खा चलाते चलाते कुछ ऐसी टेढ़ी-दृष्टि से उस ने उन की ओर देखा जैसे उस की आँख बचते ही वे उस के सूत की टोकरी उठाने आये थे। कवि चातक का माथा ठनका। तभी उस भैंस ने मक्खियों को हटाने के लिए गोबर से लिथड़ी दुम जो घुमायी तो कवि उस की लपेट में आते आते बचे।

उछल कर वे चार छै कदम पीछे हट गये। वहीं से उन्हों ने जगमोहन से कहा, "तुम ज़रा जाकर पता करो।"

जगमोहन ने आगे बढ़ कर पंजाबी भाषा में उस बुढ़िया से पूछा, "क्यों दादी सत्या विद्यालय कित्थे ऐ?"[1]

"केहड़ा विद्यलय?"[2]

"सत्या विद्यालय?"

"की जानां?" बुढ़िया ने कहा, "इह इक कुड़ियाँ दा स्कूल ऐ। पर तूं की लैणां ऐं कुड़ियाँ दे स्कूल तों?"[3]

"ज़रा प्रिंसिपल नू मिलना ऐं!"

"भरिंसीपल?"

पर जगमोहन ने बुढ़िया के साथ माथा-पच्ची करना निरर्थक समझ, भैंस की दुम से दामन बचाते हुए, आगे बढ़ कर, कमरे के अन्दर बैठी हुई एक लड़की से पूछा, "क्यों भैण सत्या विद्यालय एही ऐ?"[4]

"जी!"

"ज़रा सत्या जी से मिलना है।"

तब वह लड़की उठ कर कमरे के मध्य खड़ी एक और लड़की को बुला लायी। उस लड़की ने छपी हुई खादी की मोटी साड़ी पहन रखी थी। उस के आँचल को अपने सिर के गिर्द और भी अच्छी तरह

---

१. क्यों दादी सत्या विद्यालय कहां है? (२) कौन सा विद्यालय? (३) क्या मालूम, यह एक लड़कियों का स्कूल है, पर तुझे क्या लेना है लड़कियों के स्कूल से? (४) क्यों बहन सत्या विद्यालय यही है?

लपेटते हुए, माथे पर कई तेवर डाले, वह कमरे की सीढ़ी उतर आयी और उसने पूछा।

"कहिए ?"

"जी मैं सत्या जी से मिलना चाहता हूं।"

"कहिए ?"

उसका स्वर इतना रूखा था और वह 'कहिए' उसने कुछ इस प्रकार उसकी ओर फेंका कि जगमोहन को लगा जैसे उसने तेज़ चाकू उठा कर उसकी ओर फेंक दिया है। वह उसकी आकृति पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालना चाहता था, पर लड़की की आँखें फ़र्श पर गड़ी थीं और साड़ी से लिपटे हुए उसके मुख पर केवल मस्तक के तेवर ही उसे दिखायी दे रहे थे। फिर वह बुढ़िया चर्खा कातना छोड़ कर उसे बेतरह घूर रही थी और भैंस उन निर्लज्ज मक्खियों को अपने पुट्ठे पर से हटाने के लिए बार बार दुम घुमाने की धमकी देती थी। जगमोहन ने संक्षिप्त-तम शब्दों में 'संस्कृति समाज' के संस्थापन की बात कही। बताया कि कल शाम साढे चार बजे शीश महल रोड पर श्री धर्मदेव वेदालंकार के यहाँ उसकी प्रथम इन्फार्मल बैठक होगी; कि श्रीमती शान्ता जी प्रिंसिपल शान्ता विद्यालय गोपाल नगर भी पधारने की कृपा कर रही हैं; कि कवि चातक ने सत्या जी से पधारने का विशेष-अनुरोध किया है; कि वे स्वयं भी आये हैं.........यहाँ निमिष भर को रुक कर जगमोहन ने चातक जी की ओर संकेत किया। पर जब लड़की ने उस ओर दृष्टि उठा कर भी न देखा तो उसने निमन्त्रण-पत्र उसके हाथ में देते हुए कहा कि इस निमंत्रण-पत्र में समाज के उद्देश्यों का सविस्तार ब्योरा है। शान्ता बहन आ रही हैं। आप भी पधारने की कृपा कीजिए। आप जगह न जानती हों तो मैं लेने आ जाऊँ, नहीं शान्ता बहन के साथ आजाइएगा।

उसे यह मालूम न था कि यह लड़की सत्या जी है, उनकी बहन है,

अथवा कोई अध्यापिका, पर निमंत्रण-पत्र देने में उसे कोई बुराई न दिखायी दी। सत्या हुई तो अच्छी। कोई दूसरी हुई तो भी कोई हानि नहीं। सत्या जी से कह देगी।

"जी बहुत अच्छा!" लड़की ने निमन्त्रण-पत्र लेकर वैसे ही फ़र्श पर दृष्टि जमाये हुए कहा।

अब जगमोहन क्या कहे? नमस्कार करने का उपक्रम सा करता हुआ वह लौटा। तभी भैंस ने दुम घुमा कर अपने पुट्ठे पर मारी। जगमोहन उछल कर दूर न जा खड़ा होता तो उस के कान से कंठ तक भैंस सहर्ष उस भेंट की स्मृति का चिन्ह अंकित कर देती।

कवि चातक इस प्रतीक्षा में खड़े थे कि अभी उन्हें बुलाया जायगा। जगमोहन के संकेत की बाट वे बड़ी व्यग्रता से जोह रहे थे। बार बार बालों पर हाथ फेर रहे थे, और ओठों के कोने पर उभर आने वाली लाली को रूमाल से पोंछ रहे थे। उसे उछल कर लौटते देख, उन्हों ने बेसब्री से पूछा।

"क्यों भेंट हुई?"

"एक लड़की दहलीज़ तक आयी," जगमोहन ने बेज़ारी से कहा, "जाने वह सत्या है या कोई और। मैंने उसे सब कुछ समझा दिया है। समझ कर उसने 'जी बहुत अच्छा' भी कहा है। अब आना न आना उसकी इच्छा पर है।"

"तुम ने हमारा नाम नहीं लिया?"

"लिया था।"

"फिर?"

"उसने कोई उत्तर नहीं दिया।"

यह लड़की सत्या नहीं हो सकती, कवि ने मन ही मन सोचा। निश्चय

ही यह कोई अध्यापिका होगी। फिर वे जगमोहन से बोले, "तुम को पक्का पता कर के केवल सत्या जी से बात करनी थी। खैर आओ, मैं अभी शान्ता बहन के यहाँ जाता हूं। उससे कहूंगा कि वह अपने साथ सत्या जी को भी लेती आये। शान्ता वाला निमन्त्रण-पत्र तुम मुझे दे दो। शेष सब शीघ्रातिशीघ्र बाँट कर घर जाओ। मुझे यदि खाने के समय पहुँचने में देर हो जाय तो अपनी भाभी को समझा देना।"

७

जगमोहन निमन्त्रण-पत्र बाँटता हुआ घर पहुँचा तो एक बजा था। यद्यपि अभी कुछ लिफ़ाफ़े बाक़ी रह गये थे, पर खाने का समय हो चुका था और यह सोच कर कि भाभी प्रतीक्षा में बैठी होंगी, शेष को संध्या के लिए उठा कर वह घर की ओर मुड़ा था।

जब भी वह चातक जी के यहाँ सोता अथवा खाना खाता, उसे सदैव इस बात का ध्यान रहता कि उस के कारण भाभी को किसी प्रकार की असुविधा न हो। यद्यपि वह पंजाबी था और भाभी यू० पी० की रहने वाली थीं, पर न केवल वे उस से पर्दा न करती थीं, वरन् उसे देवर समान समझती थीं। कदाचित् इस लिए कि उन के अपने कोई देवर न था अथवा इस लिए कि जगमोहन उनकी सुविधा-असुविधा का इतना ध्यान रखता था कि उनका अपना देवर होता तो कदाचित् उतना न करता।

"बड़ी देर कर दी!" भाभी ने उसे आते देख कर कहा।

जगमोहन ने लिफ़ाफ़े एक ताक में रखे। पानी का गिलास लेकर मुँह पर छींटे मारे। बताया कि लाहौर के तूल-अर्ज़* में लिफ़ाफ़े बाँटता फिरा है। थक भी गया है। अभी कुछ लिफ़ाफे बाक़ी रह गये हैं,

---

*तूल-अर्ज़=लम्बाई चौड़ाई

पर भाभी की असुविधा के ख्याल से चला आया है।

"कांहें धूप में इंतना हैरांन होंते हों", भाभी ने स्नेह से कहा, जिससे उनके स्वर की सानुनासिकता बढ़ गयी, थाली परोस कर उस के आगे रख दी और पूछा, "वें नहीं आंयें ?"

"गोपाल नगर में थे, संस्कृति समाज के काम में लगे हुए हैं, शायद उन्हें आने में कुछ देर हो जाय।"

"कोंई न कोंई मंरीं संभां सोंसांइंटी इंनकें पींछें लंगीं हीं रंहतीं हैं।" भाभी ने खीज कर कहा, "खांनां बॅंखत पर खांयें फिंर मेंरीं ओंर सें चांहे जहाँ जायँ।"

जगमोहन ने कौर मुँह में रखते हुए भाभी की ओर देखा—लम्बा क़द; सीधा-साधा, रेखा-विहीन, चतुर्भुजाकार सा शरीर; चौड़ा सा मुख; मोटे मोटे ओठ; रूखे बाल और सानुनासिक स्वर—भाभी सुन्दर न थीं। चातक जी से उनका कोई मेल न था। पर अपनी समस्त कर्कशता, सानुनासिकता, अपरूपता के होते भी जगमोहन को वे सुन्दर लगती थीं और वह उनका बड़ा आदर करता था।

कवि चातक को मित्रों की आव-भगत करने का, उनको खिलाने पिलाने का बड़ा शौक था। 'मंजरी' के सम्पादक थे तो इस काम के लिए उन्हों ने एक रकम मासिक रूप से लगा रखी थी। साहित्यिकों को चाय पिला कर, चाय के साथ गर्मा गर्म पकौड़े अथवा चाट खिला कर वे उन से लेख लिया करते थे। 'मंजरी' बन्द हो गयी तो पत्नी के गहने बेच, तथा अपने साले से साढे छै हज़ार रुपया कर्ज लेकर उन्होंने एक प्रेस लगा लिया। कई दिन तक प्रेस के खाते में मित्रों की आव-भगत की। पर प्रेस चलाना उन के बस का रोग न था। उस में काफी घाटा रहा। हाल भी पतला हो गया; पर मित्रों को तो चाट पड़ गयी थी, इस लिए न्यूनाधिक मात्रा में वह प्रथा चली आ रही थी। भाभी को चातक जी के ये मित्र एक आँख न भाते। "मंरें खांने कें लिंए आं जांते हैं," पकौड़े हीं

अथवा पूरियाँ, भाभी पकाती भी जातीं और कोसती भी जातीं, पर जगमोहन को खिलाते समय, (और कभी जब वह अचानक चला जाता या देर से जाता) उसके लिए विशेष-रूप से खाना तैयार करते समय भाभी को तनिक भी असुविधा न होती और वे समय पर खाना न खाने के लिए उसे स्नेह भरे उलाहने देते हुए, सदा खाना गर्म कर देतीं।

जगमोहन को भी भाभी में वे सब गुण दिखायी देते जो उसकी अपनी भाभी में न थे। उसके भाई लाहौर ही में बीमा एजेण्ट थे। ऋषि नगर ही में एक मकान का छोटा सा भाग उन्हों ने किराये पर ले रक्खा था। एक कमरा ऊपर की मंज़िल में था और एक कोठरी सी दो मंजिलों के मध्य थी। पंजाबियों ने बड़ा विचित्र सा नाम इस कोठरी को दे रखा था—'म्यानी'! ऋषिनगर के सभी मकानों में एक न एक म्यानी अवश्य थी। सीढ़ियों के घेरे में जो छोटी सी जगह बच जाती, उस में यह म्यानी बना दी जाती। इसी छोटी सी म्यानी में, जिसकी छत छै साढे छै फुट से ऊँची न थी। जगमोहन ने एक पुरानी सी मेज़, तिपाई और कुर्सी लगा रखी थी जब वह घर में होता तो इसी में पढ़ता और सोता और इसकी छोटी सी बालकोनी पर आराम कुर्सी डाल कर बैठा नीचे गली में ताका करता। गली प्राय: सूनी रहती थी, पर कभी-कभार कोई खोंचे वाला कंठ के किसी न किसी नये कोण से सर्वथा मौलिक आवाज़ निकालता हुआ गुज़र जाता और कभी-कभार कुछ नयी साड़ियाँ लहरा जातीं। या फिर कभी कभी गली के मोड़ पर, निकट की मुसलमान बस्ती का बसैया, कोई गधों का जोड़ा भटक कर आ निकलता और अपनी प्रणय-जनित 'ढींचू' 'ढींचू' से गली की निस्तब्धता को गुँजा देता।

सर्दियों में जगमोहन म्यानी ही में सो जाता था, परन्तु गर्मी में बाहर गली में चारपाई लगानी पड़ती थी, क्योंकि ऊपर कमरे के सामने जो जगह थी, उसमें उसके ।ई, भाभी और बच्चे सोते थे। यही कारण

था कि चातक जी से परिचय होने के बाद वह प्राय: रात को उन्हीं के यहाँ पड़ रहता था और पहले पहल श्री चातक तथा भाभी के अनुरोध से और फिर स्वभावत: वह खाना भी वहीं खा लेता था। कभी जब चन्द दिन निरन्तर खाना खाने के बाद उसे ख्याल आता कि कहीं वह उन पर भार-स्वरूप तो नहीं, तो वह हठ करके घर वापस आ जाता, परन्तु तीन चार दिन से अधिक अपने घर में रह पाना उसके लिए कठिन हो जाता।

रात वह गली में सोता। हवा बन्द होती। नालियों और हौदियों की सड़ान्ध निरन्तर उठकर दिमाग़ को परेशान करती। मच्छरों की भिनभिनाहट क्षण भर को भी बन्द न होती। और जब प्रात: कुछ ठंडक होने से, उसकी थकी हुई नसें निश्चल हो सो जातीं तो पड़ोस की मुसलमान बस्ती के मुर्गों में गलेबाजी का मुकाबिला होने लगता, अथवा उसके मालिक-मकान प्रातः अपने सामने दूध दुहाने गूजरों के बाड़े की ओर चल देते, अथवा पड़ोस का कोई गधा जिसे कदाचित् उसका प्रतिद्वन्द्वी उसके बाड़े से खदेड़ देता, गली में निकल आता और रात्रि की निस्तब्धता को अचानक भंग करती हुई उसकी 'ढींचू' 'ढींचू' जगमोहन की नींद को भगा देती और उसकी चिर-संगनि जाग्रति उसका दामन आ पकड़ती और लाख प्रयत्नों पर भी न छोड़ती। कुछ और न होता तो सुबह सवेरे ऊपर की छत से निरन्तर आवाज़ें देकर भाभी उसे जगा देती कि ज़रा बाज़ार से जाकर दूध या तरकारी या अपने भाई के लिए दो पूरियाँ और लस्सी का गिलास या अपनी भतीजियों के लिए थोड़ा सा हलुवा ले आये।

उसकी भाभी की फ़रमाइशों का कोई अन्त न था। वह जब घर में होता वह उसे चैन न लेने देती। ज़रा ज़रा सी बात के लिए उसे बाज़ार दौड़ाती। दोपहर को वह पढ़ने बैठता तो दोनों बच्चियों को उसके पास भेज देती कि अपने चाचा से पढ़ना सीखें। या फिर

स्वयं मेज़पोश या पेटीकोट का कपड़ा लेकर आ बैठती कि उन पर बेल बूटे डाल दिये जायँ।

वह सुन्दर थी, किन्तु जहाँ तक जगमोहन का सम्बन्ध है, अपनी भाभी की यह सुन्दरता गुण के बदले उसे अवगुण ही लगती। एक तो यह कि उसे अपने सौंदर्य्य का भान, यों कहिए कि मान था, फिर वह चाहती थी उसका देवर कमाये तो अपनी सुन्दर भाभी के लिए कुछ न कुछ उपहार लाये, उसे सिनेमा दिखाये और कुछ नहीं तो एक आध दिन रसोई-घर के चक्कर से उसे मुक्ति दिला कर कहीं पिकनिक पर ले जाये अथवा 'क्रिस्टल' या 'सागर' पर उसे और अपनी भतीजियों को सोडा-बर्फ ही पिलाये और जगमोहन बेचारा इतना कमाने की स्थिति में न था। 'प्रभाकर' पास करके पहले केवल अँग्रेज़ी और फिर शेष दो विषय लेकर उसने बी० ए० पास किया था। पर केवल बी० ए० की डिग्री तो नौकरी के बराबर नहीं। वह कवि चातक की सिफ़ारिश से एक पत्रिका में आधे वक्त काम करता था। कभी-कभार अनुवाद के लिए कुछ मिल जाता। पर इतने से क्या होता। उस मन्दी के ज़माने में भी बड़ी कठिनाई से उसका अपना खर्च चलता।

रहीं ये भाभी तो इनके यहाँ उसे स्नेह ही स्नेह मिलता। बच्चों को वह यहाँ भी पढ़ा देता। समय पड़ने पर नहला देता, कपड़े पहना देता, खाना खिला देता। फिर भाभी जब किसी तरह की मुश्किल में पड़तीं तो भाग कर बाज़ार से जरूरी चीज़ें भी ला देता। परन्तु यह सब वह अपने मन से करता। भाभी तो बल्कि, सदैव उससे आराम करने के लिए अनुरोध किया करतीं। उससे कहतीं कि वह कहीं अच्छी नौकरी करे, सुन्दर सी बहू लाये और ढंग से रहे।

परन्तु इतने पर भी चातक जी के घर में कभी कभी उसकी स्थिति बड़ी संकट-मय हो जाती। जब जब वे समय पर घर न आते अथवा 'बायरन' बने घूमते और भाभी झींकतीं तो यद्यपि उसकी सहानुभूति भाभी के

साथ होती, पर वह चातक जी के विरुद्ध भी कुछ न कह पाता। दो विरोधियों के मित्र की भाँति वह या चुप ही जाता या एक को दूसरे का पक्ष समझाने का प्रयास करता। और कभी जब दोनों उसके सामने ही किसी बात पर झगड़ पड़ते तो वह सदैव दोनों का मन रखने का प्रयास करता। परन्तु कभी कभी वह इस प्रयास में असफल रहता और उसे समझ न आती कि वह क्या करे। खिजलाहट के मारे वह कई कई दिन चातक जी के यहाँ न जाता, पर चातक जी सदा उसे आ पकड़ते और अपने यहाँ ले जाते। भाभी भी बड़े स्नेह से उसका स्वागत करतीं।

खाना खाते खाते उसका मन भाभी के दुख से द्रवित सा हो गया।

"मैंने गहने बेचे थे कि प्रेस चल जायगा और बच्चों के भविष्य की चिन्ता मिटेगी", भाभी ने जैसे अतीत की गहराई में झाँकते हुए और भी सानुनासिक स्वर में कहा, पर ये लच्छन प्रेस चलने के हैं। कल कह रहे थे कि दो हज़ार का प्रबन्ध हो जाय तो बचते हैं नहीं कुर्की हो जायगी। ऐसे ही डरा डरा कर तो इतना रुपया ले लिया। बेचारे जगन्नाथ का भी साढ़े छै हज़ार डुबो दिया (जगन्नाथ उनका भाई था) अब मैं कहाँ से लाऊँ। मैंने कहा, हो जाय कुर्की। जो हमें मिलेगा वह किसी और को देकर रुपया ले लो। लोहे की मशीन से गहने बनें कि कपड़े।"

जगमोहन चुप सुनता रहा और खाना खाता रहा।

"अरे भैय्ये छै हज़ार जगन्नाथ का, पाँच हज़ार अपना, चार हज़ार दीपक जी का—पन्द्रह हज़ार रुपया तो इस मुए प्रेस को खिला दिया। रुपये भय्ये, किसी पेड़ को लगते हैं कि हिलायें और गिर पड़ें। मैं तो जब भी कहती थी कि यह प्रेस-व्रेस तुम्हारे बस का रोग नहीं। पर

इनने देखा महाशय चन्द्रभान को। अब तुम्हीं कहो, महाशय चन्द्रभान की सी ठगी इनसे हो सकती है। न ये उतने चालाक न मेहनती। चार लौंडे लौंडियों को इकट्ठा करके कविताएँ पढ़ देने से तो प्रेस नहीं चलते। वे दूसरों की जेबें काटकर घर में डाल लें। ये अपनी काट कर दूसरों के घर डाल आयें।"

अब जगमोहन को कुछ कहने के लिए शब्द मिले, "भाभी वास्तव में वे कवि हैं," उसने कहा "उन को प्रेस खोलना न चाहिए था। मैंने तो एक बार तब भी कहा था। पर नयी नयी मित्रता थी, ज़ोर न दे सकता था।"

"मैं भी तो कहती थी", भाभी बोलीं, "उस समय तो इन्हें बड़े सब्ज़ बाग दिखायी दे रहे थे। माडल टाउन में कोठी बनाने के सपने देखा करते थे। अब नौबत इस मकान में रहने की आ गयी है। यह भी जाने रहता है कि नहीं।"

और यह कहते कहते भाभी की आँखें भर आयीं। आँसू की एक बूँद को उन्हों ने धोती के आँचल से। पोंछ लिया। और बोलीं:

"मेरे बाप का इतना बड़ा घर था। पाँच छ: हज़ार का गहना दहेज में उनने दिया था। दो हज़ार का गौने पर दिया। हर बच्चे के जन्म पर पाँच सौ से कम नहीं दिया। अब वे रहे नहीं, भाई का रुपया इन ने प्रेस में डुबो दिया। मैं तो कहीं की भी न रही और इनके लच्छन तुम देख ही रहे हो।"

जगमोहन ने खाना खत्म करके पानी पिया तो भाभी चौंकी, "अरे तुम उठ गये। ज़रा चावल और लो न।"

"नहीं भाभी।"

"नहीं एक रोटी लो!"

औरउसके 'न' 'न' करने पर भी उन्हों ने रोटी और थोड़ा साग थाली में डाल दिया। तब न जाने जगमोहन के मन में क्या आयी,

सहसा उसने पूछा, "भाभी कब हुई थी आपकी शादी ? क्या करते थे चातक जी उन दिनों ?"

"अरे भय्ये पढ़ते थे। १३ बरस की तो उम्र थी मेरी। इनके पिता कहते थे बेटे को विलायत भेजेंगे। पर ये विलायत जाते जाते इक्कीस के आन्दोलन में जेल चले गये। पढ़ाई चौपट हो गयी। पिता इसी दुख में मर गये। हमारा भाग था जो जेल से ये कविता-फविता सीख आये। सो और भी किसी काम के न रहे। मेरे आगे चार बच्चे। इनका सोचती हूं तो जी दुखता है।"

और भाभी ने फिर अपनी आँखों को पोंछ लिया, तभी सीढ़ियों में चातक जी के चप्पल की फटफटाहट और कविता की गुनगुनाहट सुनायी दी।

खाने के चार कौर किसी न किसी तरह कंठ के नीचे उतार कर श्री चातक ने जगमोहन को चौबारे में जा पकड़ा। "सुनो, आज एक कविता हुई है," कह कर उन्हों ने सावधानी से मोड़ा हुआ कागज़ जेब से निकाला और चारपाई पर बैठ गये। जगमोहन पांयते की ओर हो लिया।

"शीर्षक है—'अनजानी'— कवि ने परिचय दिया और कविता सुनाने लगे। वही थी जिसे वे उसी दिन से गुनगुना रहे थे जिस दिन उन्हों ने सत्या जी का चित्र देखा था।

चित्र तुम्हारा देखा सुन्दर, देखा नहीं तुम्हें अनजानी,
पर लगता है जैसे तुम हो, युग युग की मेरी पहचानी!
कोई भूली बिसरी मेरे गत जीवन की कथा पुरानी,
मेरी आँखों में बन आयी जैसे होकर नयी कहानी!

प्राण तुम्हारी इन आँखों में
झाँक रहा है जीवन मेरा।
था अतीत में लुटा कभी जो
मुझे मिलेगा क्या धन मेरा?

और उस चित्र को देख कर कवि चातक के भावुक-अतृप्त-मन ने आगत के जो प्रेम-स्वप्न देखे थे, वे सब उन्हों ने उस कविता में चित्रित

कर दिये थे। कविता सुनाकर कवि ने पूछा, "क्यों ?"

"बहुत सुन्दर है," जगमोहन ने कहा। और फिर कुछ रुक कर तनिक संकोच से उसने पूछा, "पर चातक जी, चित्र देख कर ही कैसे प्रेम की भावना मन में उत्पन्न हो जाती है ? फिर अनजाना चित्र ! मेरे तो मन में साक्षात् चित्र वाली को देख कर भी प्रेम उत्पन्न नहीं होता।

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"अब यही देखिए न, जैसे मेरे कई मित्र हैं, उमाशशि, देविका रानी, कज्जन, दुर्गा खोटे* का चित्र देख कर दिल पर हाथ रख लेते हैं। रास्ते में चलते चलते किसी सुन्दर सूरत को देख कर उनके पाँव अनायास वहीं रुक जाते हैं। सीने से आहें निकलने लगतीं हैं। मुझे तो कभी ऐसा नहीं हुआ। विशेष कर अब ! कभी जब नवीं दसवीं में पढ़ते थे तो सुलोचना* और जुबैदा* की तसवीरें अच्छी लगा करती थीं, पर अब तो मुझे कुछ नहीं होता। जब सामने किसी सुन्दरी को देखकर मन निर्विकार रहता है तो केवल चित्र देख कर क्या होगा ?"

कवि चातक कुछ क्षण चुप रहे, फिर बोले, "सौन्दर्य की सराहना के लिए अनुभूति-प्रवण और सौन्दर्य-प्रेमी-हृदय चाहिए। तुम्हारे हृदय में या तो अनुभूतिशीलता की कमी है अथवा तुम्हारे वर्तमान-संघर्ष में वह अपनी सौन्दर्योपासिक-वृत्ति खो बैठा है। गर्म राख में सोयी हुई चिनगारी की तरह वह अनायास चमक उठेगा।" कुछ क्षण कवि मौन रहे। फिर बोले, "या फिर शायद तुम्हारा हृदय कवि की अपेक्षा आलोचक का हृदय है। सौन्दर्य तुम्हें प्रेरणा नहीं देता। मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ, सौन्दर्य तो जैसा किसी ने कहा है—सत्य है, चिर-आनन्द की वस्तु है......"

"सौन्दर्य सत्य नहीं अथवा चिर-आनन्द की वस्तु नहीं, यह मैं

---

*सवाक् तथा मूक चित्रपटों की प्रसिद्ध अभिनेत्रियां

नहीं कहता। मैं तो अपनी बात कहता हूं," जगमोहन ने आलोचक की बात सुनी अनसुनी कर कहा। "मुझे सौन्दर्य अच्छा लगता है, परन्तु प्रत्येक सुन्दर वस्तु से मुझे प्रेम हो जाय, ऐसी बात नहीं। इतनी सुन्दर युवतियाँ प्रतिदिन चिर-चंचल लाहौर के इन बाजारों में मिलती हैं, पत्रों में उनके सुन्दर चित्र प्रकाशित होते हैं, सभी से प्रेम कैसे हो सकता है!"

कवि चातक कुछ खिन्न से हुए, कुछ हँसे, उनसे कुछ उत्तर न बन पड़ा। कुछ रुक कर उन्होंने कहा, "साधारण मानव की अपेक्षा कवि का हृदय अधिक अनुभूति-प्रवण, सचेत और भावुक होता है। प्रेम करने की उसकी शक्ति भी साधारण मानव से अधिक होती है, वह प्राणीमात्र से प्रेम कर सकता है।"

"परन्तु प्रेम और आसक्ति में तो आप अन्तर मानते हैं न?"

"क्यों नहीं!"

"और कविता के लिए क्या मस्तिष्क की जरूरत नहीं?"

"जरूर है, पर वहीं तक, जहाँ उस की कला का संबंध है। प्रेरणा और भावनाएँ तो हृदय की चीज़ हैं, मुझ से पूछो तो मैं कविता को हृदय की ही चीज़ मानता हूं। जिसके जीवन में अनुभूति ने कभी चोट नहीं पहुँचायी, जिसने कभी प्यार नहीं किया, वह कविता नहीं कर सकता।

जगमोहन चुप हो गया और मन ही मन सोचने लगा।

कवि चातक ने तब बात का रुख बदल दिया। बोले, "मैं चाहता हूं, 'संस्कृति-समाज' की प्रथम बैठक में यह कविता पढ़ूँ।

"अवश्य पढ़िए।"

"पर बात यह है," कवि चातक ने कुछ भेद भरे-स्वर में कहा, "मैं ऐसे ही तो नहीं पढ़ सकता। पहली बैठक में कविताएँ तो होंगी नहीं। समाज के उद्देश्य आदि के संबंध में कुछ विचार-विनिमय होगा।

ने कहना चाहा।

"तुम पहन कर तो देखो।"

कुछ क्षण जगमोहन दुविधा में खड़ा रहा। फिर अचानक उस ने कहा, "नहीं नहीं आप कष्ट न करें। मेरे पास एक बहुत अच्छा कुर्ता-धोती है। मैं अभी घर जा, उसे धोकर लोहा करा लूंगा।" और बिना उत्तर सुने वह सीढ़ियों की ओर चल दिया।

अमृत धारा रोड पर उसे एक चंचल चपल लड़की आती दिखायी दी। जगमोहन ने साधारण सी दृष्टि से उस की ओर देखा। लड़की सुन्दर थी, पर उसे देख कर जगमोहन को वह कुछ भी न हुआ जिसका जिक्र उस ने चातक जी की कविता में सुना था। उसे ख्याल आया कि लड़की की आँखें नीची हैं। आँख से आँख मिलने पर कदाचित् कुछ हो, पर तभी लड़की ने एक उड़ती सी दृष्टि उस पर डाली। कुछ भी तो न हुआ। वह अपनी राह चली गयी और जगमोहन अपनी।

वह साधारणतः बाज़ार चलती लड़कियों को कम ही देखता था। "दीदार बाज़ी ते रब्ब राज़ी,"[1] लोफ़रों की इस पंजाबी लोकोक्ति में उस का विश्वास न था। कदाचित् इस कहावत की अपेक्षा बचपन से युवावस्था तक निरन्तर घर में सुनी जाने वाली कहावत "जिस पिंड नहीं जाना, ओहदा राह काहनू पुछना"[2] का उस पर अधिक प्रभाव था। उसके पास किसी राह चलती युवती के पीछे जाने का; उसे अपनी ओर आकर्षित करने का; उस आकर्षण को स्थायी बनाने का न समय था न साधन। तो फिर वह नाहक क्यों आँखें या फलस्वरूप दिल जलाता? कई बार ऐसा होता कि कि सामने दूर जाती, किसी युवती

१. दीदार बाज़ी (सौन्दर्य-दर्शन) से भगवान प्रसन्न रहता है। २. जिस गाँव को जाना नहीं, उस का मार्ग काहे पूछना।

की पीठ पर लहराती हुई बेणी, उस की कमर का लोच, उस के कूल्हों की मटक अथवा उस की गति के चांचल्य को देख कर वह उस के मुख का सौन्दर्य देखने को लालायित हो उठता। तेज़-तेज़ चलता, पर उसके आगे निकल, पीछे मुड़ कर उसे देखना उसके लिए असंभव हो जाता। उस लड़की को यह जताना कि वह आगे बढ़ कर उसे ही देखने आया है, उसे कुछ बड़ा ओछा सा लगता। फिर उसका मस्तिष्क, उसके तेज़-तेज़ चलने के बावजूद, उसे सुझाता कि आकृति-मात्र देखने से लाभ ? उसे इस गाँव जाना ही नहीं......और उसकी चाल कई बार धीमी हो जाती और वह बिना उस लड़की को देखे उसे आगे निकल जाने देता या फिर जिस तरह तेज़-तेज़ चलता आया था उसी तरह चलता हुआ बहुत आगे निकल जाता।

मेट्रिक के बाद ही से संघर्ष ने उसके जीवन में सपनों के लिए, विशेषकर प्रेम-भरे सपनों के लिए बहुत कम समय रहने दिया था। मन में आगे शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा थी और माता-पिता की मृत्यु के कारण साधनों का सर्वथा अभाव, उसके भाई लाहौर में बीमा एजेण्ट न होते तो शायद वह लुधियाने की किसी दुकान में दस पन्द्रह रुपये का नौकर या किसी प्राइमरी स्कूल का टीचर होता। उसके कई सहपाठी तो अब भी लुधियाने में आलू-चने अथवा सोडा-वाटर आदि बेच कर जीवन-निर्वाह करते थे। भाई से उसे कुछ अधिक सहायता मिलती हो, यह बात नहीं, पर लाहौर में रहने का एक सहारा तो था। फ़ीस का प्रबन्ध करने, पुस्तकों, कापियों और प्रायः अपने खाने आदि का प्रबन्ध करने और परीक्षाओं को सफलतापूर्वक पास करने के हेतु परिश्रम करने में उसे उतना समय ही न मिलता था कि वह प्रेम के स्वप्न देख सके। जाने सचमुच उसका दिल ही मर गया था या जीवन के प्रतिक्षण प्रबल होते संघर्ष ने मस्तिष्क नाम की चीज़ को ऐसा सजग कर दिया था कि वह उसके दिल पर अंकुश जमाये रखती थी। जो भी हो, उसके सपने

जीवन की प्रतिक्षण की समस्याओं से उलझे रहते। किसी तन्वी का चित्र, या सुन्दर मुखड़ा, या सुगठित देह देख कर सपनों की दुनिया बसा लेना और कविता की निर्झरनी को कागज़ पर बहा देना उसके बस की बात न थी। इसीलिए कभी कभी उसे चातक जी की प्रतिभा से बड़ी ईर्ष्या होती। चातक जी से उसकी भेंट 'मंजरी' के दफ़्तर में हुई थी। 'मंजरी' नयी नयी निकली थी। बी० ए० की डिग्री लेने में वह सफल हो गया था। और वह चाहता था कहीं नौकरी मिल जाय तो एम० ए० करने का डौल हो। नौकरी तो वहाँ थी नहीं। वहाँ जितने भी पद थे, उन पर महाशय चन्द्रभान के भानजे-भतीजे आसीन थे, पर कवि चातक ने उसमें एक ऐसा व्यक्ति देखा जिसके द्वारा वे उस अहिन्दी प्रान्त में अपना प्रचार कर सकते थे। उन्हों ने उसे अश्वासन दिया कि उनके बस में जो कुछ होगा, वे करेंगे और उसे अपने घर पर बुलाया, उसे लिखने को उकसाया और उस में वह प्रतिभा देखी जिस से वह स्वयं अनभिज्ञ था।

एक और लड़की गुज़री। जगमोहन ने उसे देखा। पर वह लड़की गुज़र गयी, उसने जगमोहन की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखा।

तभी वह अनारकली पहुँच गया। 'भल्ला' की दुकान से उसे एक लम्बे कद की अतीव सुन्दर युवती उतरती दिखायी दी। जगमोहन क्षण भर रुक कर उसे देखता रहा। सीढ़ी पर रुक कर वह अपने साथ आने वाली सहेली से बात करने लगी—इतनी सुन्दर लड़की जगमोहन ने कभी न देखी थी। लम्बा कद; तीखी नाक; आयताकार मुख; छोटे पतले गुलाबी ओठ; सुनहरे बाल जिन पर शान्त नदी की उर्म्मियों सी लहरें—परियाँ उससे क्या सुन्दर होंगी? महीन टिश्शु की साड़ी और आर्गण्डी का ब्लाउज़ अपने साँचे में ढले हुए शरीर पर पहने, हाथ में छोटा सा पैरासोल लिये, लगता था जैसे वह उसी छाते के सहारे आकाश से उतर आयी है। जगमोहन वहीं रुका रहा। तन्वी चली

गयी। जगमोहन ने उसकी चाल भी देखी। उसके हृदय की गहराई से एक लम्बी साँस निकल गयी—इतने राशि-राशि सौन्दर्य को देखने की सुखानुभूति के कारण या अपनी विफलता के कारण अथवा इतनी देर अपनी दृष्टि सुन्दरता की उस प्रतिमा पर केन्द्रित रखे रहने के कारण! पर फिर दूसरे क्षण वह मुस्कराया। उसने सिर को झटका दिया और वह चल पड़ा।

सिर के उस झटके ही से वह चित्र जैसे उस की आँखों से निकल गया और वह सोचने लगा कि कैसे एम० ए० में दाखिल हो पाये? कविचातक से रुपया माँगना अथवा लेना उस के बस की बात न थी। उन की दशा से वह भली-भाँति परिचित था। और यद्यपि उन्हों ने उसे हर तरह से आश्वासन दे रखा था, पर वे कैसे सब आयोजन करेंगे, यह बात उसकी समझ में न आती थी। और अपनी इस समस्या को सुलझाता-उलझाता, बाज़ार की रौनक को देखते हुए भी जैसे न देखता हुआ, वह कचहरी रोड से होता अपने घर पहुँच गया।

उस छोटी म्यानी में, जो उस के लिए सुरक्षित थी, उस ने बड़ी सम्हाल से एक सिल्क का कुर्ता और एक छोटे किनारे की पतली धोती रख छोड़ी थी। एक बार पैसे जोड़ कर तेरह आने गज़ जापानी सिल्क लेकर उस ने वह कुर्ता बनवा लिया था। वह उसे विशेष अवसरों पर पहनता था और उन के बाद फिर सम्हाल कर रख देता था। एक पाँच आने का लक्स का डिब्बा भी उस ने ले रक्खा था, जिस में से आठ दस बार धोने के बाद भी साबुन के छिलके बच रहे थे। जग मोहन ने तीनों चीज़ें उठायीं और नल के नीचे चला गया।

तब उस की भाभी ने अपना एक ब्लाउज़, बच्चियों के दो फराक और जार्जेट का एक अपना दुपट्टा भी उस के आगे ला रखा कि इन को भी ज़रा लक्स के पानी में डुबकी दे दे।

६

दूसरे दिन दाढी बना, नहा-धो, जब उसने धोती-कुर्ता पहन कर अपने लम्बे लम्बे बालों को सँवारते हुए आइने में अपनी सूरत देखी तो उसे वह बड़ी अच्छी लगी। अपनी भाभी से ज़रा सी वेनिशिङ्ग क्रीम (Vanishing Cream) लेकर उसने अपने मुँह पर मली तो उसका गेहुँआ रंग गोरा गोरा लगने लगा और उसके ओंठ आत्मतुष्टि के आभास से मुस्करा उठे।

वह अभी डी० ए० वी० कालेज होस्टल के पास पहुँचा था कि उसे संभवत: गोपाल नगर की ओर से आती हुई शान्ता बहन और सत्या जी मिलीं। शिष्टाचार-वश उसने दोनों को 'नमस्कार' किया।

"आप मीटिंग ही में जा रहे हैं न।" सहसा सत्या जी ने पूछा।

"जी!" जगमोहन ने उत्तर दिया।

"कहाँ हो रही है मीटिंग? कितनी दूर है यहाँ से?"

"जी शीशमहल रोड पर है। ब्रेडला हाल वाली सड़क सीधी वहाँ जाती है। चलिए मैं उधर ही जा रहा हूं।"

जगमोहन ने आँखें भर कर सत्या जी की ओर देखा। मँझला क़द छरहरा शरीर, खादी की मोटी छपी साड़ी को बड़े यत्न से अपने शरीर के गिर्द लपेटे हुए वे मौन रूप से चली जा रही थीं। यद्यपि उन्हों ने स्वयं जगमोहन से बात चलायी थी, पर उन की आकृति पर जो कर्कशता

उस ने पहले दिन देखी थी, उस में तनिक भी कमी न आयी थी। आँखें थीं कि जैसे म्यान से निकली दो तलवारें थीं। रंग उन का गोरा था और नक्श तीखे थे, पर कुछ ऐसी रुखाई, कड़ाई, मृदुलता का कुछ ऐसा अभाव उसे वहाँ दिखायी दिया कि फिर लगभग आध मील चलने पर भी उसने स्वयं बात न चलायी। न ही वे बोलीं। शान्ता बहन ने जब धीरे से पूछा कि ये कौन हैं तो उन्हों ने बता दिया कि यही निमंत्रण-पत्र लाये थे। इससे अधिक मैं नहीं जानती। और यह कह कर वही सुता हुआ मुँह लिये हुए वे सड़क पर लगी दृष्टि से निरन्तर ७५ का कोण बनाती हुई चलने लगीं।

लेकिन शान्ता बहन चहक उठीं—'संस्कृति-समाज' क्या है? किस ने आरम्भ किया है? क्या उद्देश्य हैं? कहाँ उसकी बैठकें होंगी? कौन कौन लोग उस में दिलचस्पी ले रहे हैं? आदि आदि प्रश्न बड़ी उत्सुकता से उन्हों ने पूछे और फिर क्योंकि जगमोहन से उन का अधिक परिचय न था, इसलिए वे अपने विद्यालय के सम्बन्ध में बताने लगीं और उसके गुण तथा महत्व उन्हों ने गिना डाले।

जगमोहन बड़ी सभ्यता के साथ, बिना कुछ अधिक उत्सुकता अथवा चंचलता प्रकट किये, बिना उन दोनों की ओर देखे, चुपचाप उन के साथ चलता उन की बातों का उत्तर देता गया। स्त्रियों तथा युवतियों का सामीप्य साधारण युवकों में जो चंचलता, वाचालता अथवा उद्दंडता भर देता है, उस का लेश भी जगमोहन के यहां न था। एक बार उस ने दृष्टि भर कर उन दोनों को देखा और फिर जैसे अपने ही उस सिल्क के कुर्ते और बारीक किनारे की पतली धोती में मस्त वह चलता गया।

कवि चातक से उसे मालूम हो गया था कि सत्या जी कुछ लेख अथवा कहानी-उहानी लिखती हैं। एक बार उस के मन में भी आयी कि उन से प्रश्न पूछे, पर फिर यह देखकर कि वे चुप अपनी दृष्टि सड़क

पर ७५ के कोण से गड़ाये चली जा रही हैं, उस ने मौन रहना ही उचित समझा। उसे स्वयं समाज के सम्बन्ध में जो ज्ञात था, वह उस ने शान्ता जी को बता दिया और जब शान्ता बहन ने पूछा कि कोई स्त्री भी कार्यकारिणी में होगी अथवा नहीं ? तो उस ने कहा कि उसे कुछ अधिक ज्ञात नहीं, कदाचित् एक महिला-मंत्री भी होगी, पर इस का चुनाव तो साधारण बैठक में होगा। शायद आज ही हो जाय।

यह सुनकर शान्ता बहन ने अपनी सामाजिक-सरगर्मियों का उल्लेख करना आरम्भ किया। वे अभी पूरे तौर पर जगमोहन को संस्कृति के संबंध में अपनी 'महान सेवाओं' से परिचित न कर पायी थीं कि श्री धर्मदेव वेदालंकार का मकान आ गया। नीचे ही उन्हें शुक्ला जी चातक जी से बातें करते हुए मिले। एक दृष्टि उन्हों ने सत्या जी पर और एक जगमोहन के रेशमी कुर्ते, धोती और सँवरे हुए बालों पर डाली और मूँछों में मुस्कराते हुए एक अर्थभरी 'नमस्कार' की और बोले, "क्या कहने हैं !"

जगमोहन चुप रहा। न जाने क्यों उसे शुक्ला जी की मूँछें और उन की वह मुस्कराहट अत्यन्त खलती थी। वह शान्ता बहन और सत्या जी को मार्ग दिखाता हुआ अन्दर ले चला।

श्री धर्मदेव के फ़्लैट तक पहुँचने के लिए मार्ग दिखाने की ज़रूरत थी भी और यदि कोई अपरिचित स्त्री हो तो उस के साथ एक पुरुष का होना भी आवश्यक था। उन के फ़्लैट को जाने वाली सीढ़ियों तक पहुँचने के लिए आँगन को पार करना पड़ता था और आँगन में पैर धरते ही मालिक मकान की कुतिया बड़े जोरों से नवागंतुक का अभिवादन करती थी और फिर उसी जोश से उस का हाल-चाल पूछती थी। वह सदैव एक ज़ंजीर से बँधी रहती। खुली होती तो वह गले मिलने से न हिचकचाती। परन्तु बँधे रहकर भी वह नवागंतुक के स्वागतार्थ कुछ ऐसी आतुरता प्रकट करती कि लगता, अभी ज़ंजीर तोड़कर गले आ मिलेगी। उस के तनिक आगे दायीं ओर के बरामदे में एक घोड़ी बँधी

रहती थी जो किसी के पास से गुज़रने पर ढीला सा मुँह छोड़ कर ज़ोर से एक वर्र्र्र् सी कर देती—ऐसे अचानक कि आगंतुक अपनी जगह से उछल पड़ता। तनिक और आगे आंगन के अन्त में, जहाँ से वेदालंकार जी के फ़्लैट को सीढ़ियाँ जाती थीं, मालिक मकान की भैंस बँधी रहती थी। मरकही थी, पर रस्सा छोटा होने से केवल धरती में सींग गड़ा कर रह जाती। डर उसकी दुम से रहता और उस की मार से बच कर सीढ़ियों में जा चढ़ना काफ़ी फुरती और सूझ बूझ की अपेक्षा रखता था।

जगमोहन एक दो बार चातक जी के साथ वहाँ पहले भी आ चुका था, इसलिए उस ने एक हाथ से धोती की कोर थामी, दूसरे में छड़ी उठा ली और अपने साथ आने वाली दोनों देवियों को उन विपत्तियों से बचाता हुआ फ़्लेट पर ले गया।

श्री धर्मदेव वेदालंकार का ड्राइङ्ग रूम जो साधारणतः फ़र्नीचर से भरा रहता था, उस समय ख़ाली था। दरी तो उस में सदा बिछी ही रहती थी, पर इस समय उस पर एक मोटा रग (Rug) भी बिछा था। अँगीठी पर श्री धर्मदेव वेदालंकार द्वारा खींचे और एनलार्ज किये हुए फ़ोटो लगे थे। एक में वे अपने दूसरे संगियों के साथ बर्फ पर मार्ग बनाते हुए चले जा रहे थे। दूसरे में दो युवतियाँ गाल से गाल मिलाये बैठी थीं। तीसरे में एक और युवती का क्लोज़-अप था जिस की सुराहीदार गर्दन और बड़ी-बड़ी आँखें अनायास देखने वाले को मंत्र-मुग्ध कर देती थीं। दीवारों में तीन चार आलमारियाँ थीं, जिन के शीशों में करीने से लगी हुई किताबें झाँक रही थीं। जगमोहन के आने से पहले काफ़ी लोग आ गये थे। शान्ता बहन और सत्या जी को उस ने यथास्थान बैठा दिया। यद्यपि पुरुष काफ़ी संख्या में आये

थे, परन्तु स्त्रियाँ अधिक न थीं। श्री धर्मदेव वेदालंकार ने अपने परिचितों की जो लम्बी लिस्ट बनायी थी, उस में महिलाओं की संख्या कम न थी, पर कवि चातक ने उन की पत्नी को छोड़ कर किसी और को निमंत्रित न किया था। उन्हें डर था—यदि अधिक महिलाओं को निमंत्रित करेंगे तो या मीटिङ्ग में कोई दूसरी महिला-मंत्री चुनी जायगी या कोई उन की परिचिता सत्या जी के चुने जाने पर नाराज़ हो जायगी। वे तो शान्ता जी को भी न बुलाते, यदि उन्हें सत्या जी के आने का निश्चय होता।

जगमोहन ने एक उड़ती दृष्टि दीवार के साथ आराम से बैठे हुए सज्जनों पर डाली। कुछ से वह परिचित था, उन को नमस्कार किया। कुछ अपरिचित थे, उन का परिचय प्राप्त किया। श्री धर्मदेव सिल्क का बढ़िया सूट पहने व्यस्त इधर उधर घूम रहे थे। उन को उस ने आँगन में जा पकड़ा। नमस्कार किया और पूछा कि भाभी नहीं दिखायी देतीं?

"वे पंजाब आर्टिस्ट्स' की मीटिंग में गयी हुई हैं।" धर्म जी ने कहा, "वे शो दे रहे हैं ना। निम्मो जी का वहाँ जाना बड़ा जरूरी था।"

जगमोहन ने पूछा कि उनकी क्या सहायता कर सकता है?

"बस जो लोग आ रहे हैं, उन को बैठाइए। शेष सब काम तो नौकर स्वयं कर लेंगे।"

जगमोहन कमरे की ओर मुड़ा। तभी उसकी दृष्टि 'नीरव' जी की ओर गयी। चालीस पैंतालीस की वयस, न बहुत ऊँचा न छोटा क़द, गौर-वर्ण, उन्नत-ललाट, पतले ओठों में पान, बायाँ कोना एक सदैवी मुस्कान में खुला हुआ—जगमोहन को देख कर उन की मुस्कान फैल कर दायें कोने तक आ गयी। जगमोहन ने बढ़ कर उन को 'प्रणाम' किया और उन का स्वास्थ्य-समाचार पूछ उन्हें अन्दर ले गया।

'नीरव' जी यू० पी० के निवासी थे। बीस वर्ष से पंजाब में रहने पर भी वे यू० पी० वाले बने हुए थे। सदा धोती कुर्ता पहनते, दिन भर पान चबाते और शुद्ध संस्कृत-निष्ठ हिन्दी बोलते। माडर्न स्कूल में हिन्दी संस्कृत के अध्यापक थे, कवि थे, नाटककार थे और अब उपन्यास लिखने को प्रस्तुत थे। चातक जी और उन में कुछ ऐसा नाता था जिसे न मित्रता कह सकते हैं न शत्रुता। हिन्दी-भाषा-भाषी होने के नाते उन में मैत्री थी, पर कवि होने के नाते स्पर्धा। शुक्ला जी प्रायः दोनों के इस संबंध से लाभ उठाया करते थे। चातक जी के मित्र और 'संस्कृति-समाज' के भावी मंत्री के नाते जगमोहन के सामने एक बड़ी समस्या यह थी कि 'संस्कृति समाज' में जहाँ चातक जी को यथेष्ट महत्व दिया जाय, वहाँ नीरव जी को भी रुष्ट होने का अवसर न दिया जाय। टैक्स्ट बुक कमेटी और लाहौर के हिन्दी-संस्कृत अध्यापकों में उन का बड़ा मान था। हिन्दी बोर्ड के प्रधान डाक्टर घनानन्द तो उन्हें बहुत मानते थे और चातक जी उन्हें नाराज़ न करना चाहते थे, इसलिए उन्हों ने जगमोहन को समझा दिया कि उन का यथाशक्ति मान रखे। जगमोहन उन के निकट ही बैठ गया और उस ने पूछा, "कहिए आजकल आप क्या लिख रहे हैं?"

"गीतिनाटिका लिख रहा हूं।"

"जयशंकर प्रसाद के बाद तो बस आप ही का दम है", जगमोहन ने कहा।

नीरव जी की मुस्कान इतनी फैली कि उन्हें ठोडी आगे करके पान की पीक को निकल पड़ने से बचाना पड़ा। तभी श्री चातक शुक्ला जी और चन्द दूसरे मित्रों को लिये हुए ऊपर आ गये। धर्म जी भी आ बैठे और उन्हों ने नौकर से चाय लाने को कहा। काग़ज़ की बनी बनी हुई ऐसी विलायती प्लेटों में जो मोटाई तथा रंग-ढंग में साधारण प्लेटों जैसी होने पर भी उन से सुन्दर तथा हल्की थीं, एक एक रसगुल्ला, बर्फ़ी, दो तीन पकौड़े सब के आगे रखे गये और चायदानियों

में चाय आ गयी। मिठाई खाकर सब ने प्लेटों को उठाउठाकर आगे पीछे से देखा। श्री धर्म देव ने बताया कि वे काफ़ी सस्ती हैं और पत्तलों अथवा दौनों की अपेक्षा वे उन्हें अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि जहाँ उन में तश्तरियों की तरह नाश्ता किया जा सकता है, वहाँ उन्हें पत्तलों की तरह बाहर भी फेंका जा सकता है।

"तो क्या आप इन्हें फेंक देंगे ?" शुक्ला जी ने कहा

"और क्या !"

आप इन्हें फेंकते क्यों हैं, हमीं ले जायँगे—उन के ओठों पर आया पर उस बात को ओठों के बाहर निकलने से उन्हों ने बचा लिया। शुक्ला जी की बात नहीं, यह भाव संस्कृति के उद्धार हेतु वहाँ एकत्र होने वाले सज्जनों में बहुतों के मन में उठा, पर मन के भाव को वे ओठों पर नहीं ला सके और उन हल्की फुल्की इन्द्र-धनुष के रंग की सात-सात लकीरों वाली प्लेटों को घुमा फिरा कर देखते-देखते उन्हों ने अनिच्छापूर्वक उन्हें नौकर के हाथ में दे दिया, जो चाय खत्म होने के बाद सामान बटोर रहा था।

चाय के बाद कार्य्य प्रारम्भ हुआ। सब से पहले श्री धर्मदेव वेदालंकार ने 'संस्कृति समाज' की परम आवश्यकता पर अपने अनमोल विचार प्रकट किये। इंग्लिस्तान, अमेरिका, फ्रांस आदि की 'कलचरल'* सरगर्मियों का विशद-वर्णन करने के पश्चात् उन्हों ने अपने लाहौर में 'लिट्रेरीलीग' के काम की सराहना की। "लाहौर में लिट्रेरी लीग ने जितना 'कलचरल' काम किया है, उस की प्रशंसा नहीं की जा सकती," धर्म जी ने कहा, "हम ने (यहां उन्हों ने सफ़ाई दी कि वे उस की कार्य्य-कारिणी

*Cultural=सांस्कृतिक

रुके बिना बढ़ी चले जाने वाली रन थरू (Run Through) गाड़ी की भांति निरन्तर भागती रही। उन्हों ने देश की तीन सौ वर्ष से चली आने वाली भयंकर दासता तथा उस के फलस्वरूप देश के साहित्य तथा संस्कृति की दुर्दशा का बड़ा करुणाजनक चित्रण करते हुए श्रोताओं को उन के कर्त्तव्य से परिचित कराया। और कहा कि राजनीतिक जाग्रति के साथ साथ यदि सांस्कृतिक जाग्रति न हुई तो दासता की कड़ियाँ कटने के बदले और भी दृढ़ हो जायँगी। उन्हों ने बङ्ग-साहित्य के उत्थान का विषद वर्णन किया। महाकवि टैगोर की एक कविता शुद्ध बङ्गाली उच्चारण के साथ पढ़ी।

पूर्णिमा निशीथे जबे दश दिके परिपूर्ण हांसि
दूरस्मृति कोथा होते बाजाय व्याकुल करा बाँशि
झरे अश्रु राशि*

और कहा कि राजनीतिक पुनरुत्थान की पूर्णमासी में सांस्कृतिक अतीत की बांसुरी का स्वर यदि हमारी आँखों में आँसू नहीं लाता और हम पुनः अपने सांस्कृतिक-वैभव को पाने के लिए लालायित नहीं होते तो हमारी यह राजनीतिक चेतना वृथा है।

यह कहने के बाद उन्हों ने 'संस्कृति-समाज' के संस्थापन का समर्थन करते हुए अपनी तथा अपनी टोली (उन्हों ने शब्द सहयोगी-मित्रों प्रयोग किया) की सेवाएँ समाज के हितार्थ प्रस्तुत कर दीं और इतना सब मानों एक ही साँस में कहने के बाद हाथ की मुट्ठी में बन्द खैनी को, जिसे फटक कर मुँह में रखने के पहले ही वे बोलने लगे थे, एक बार फिर मल, फटक कर अपने निचले ओठ में रख लिया।

---

*पूर्णिमा की रात जब दशों दिशाओं में पूर्ण प्रसन्नता व्याप्त रहती है, तब व्याकुल बांसुरी के स्वर में पुरानी स्मृति का संगीत सिहर उठता है और आँखों से राशि-राशि आँसू झर उठते हैं।

इस के बाद पाँच दस मिनट तक उपस्थित सज्जनों को ये तीनों भाषण पचाने का अवसर दिया गया। कुछ खसर-फसर होती रही और डकार के रूप में एक आध रिमार्क भी कसा गया। इस के बाद श्री धर्मदेव ने कहा कि अभी एक अस्थायी कार्य्यकारिणी का चुनाव हो जाना चाहिए। इस बात का सभी ने समर्थन किया। तब शुक्ल जी ने जो इस बीच में खैनी के रस का समुचित उपभोग कर चुके थे, धर्म जी की साहित्यिक और सांस्कृतिक सरगर्मियों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए प्रधान मंत्री के लिए उन का नाम प्रस्तावित किया। श्री चातक ने इस का समर्थन करते हुए हँस कर कहा कि दूसरी बातों के अतिरिक्त कार्य्य-कारिणी को अपनी हर बैठक में चाय-पान की ओर से निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

इस पर उपस्थित सज्जनों ने सर्व-सम्मति से इस चुनाव का समर्थन किया और चाय-पान की संभावित दावतों पर प्रसन्नता प्रकट की। तब श्री चातक फिर खड़े हुए, उन्हों ने जगमोहन का विस्तृत परिचय कराया—किस प्रकार वह उदीयमान कवि है, पत्रकार है, साहित्य और संस्कृति की सेवा के लिए उस के हृदय में अपूर्व लगन है आदि आदि ......और साधारण मन्त्री के लिए उस का नाम पेश किया। शुक्ला जी ने इस का समर्थन करते हुए कहा कि उन्हें ऐसे ही मन्त्री की आवश्यकता है, जिसमें सांस्कृतिक व साहित्यिक अभिरुचि के साथ-साथ अपूर्व सेवा-भाव हो और जो मन्त्री से लेकर चपरासी तक—सब काम निस्संकोच कर लें।

तब श्री चातक ने महिला मन्त्री चुनने की बात कही और जगमोहन ने सत्या जी का नाम प्रस्तुत किया और कहा कि वे 'मालती' की प्रमुख लेखिका हैं, गोपालनगर में उन का विद्यालय है और यदि वे इस काम को सम्हालेंगी तो 'संस्कृति समाज' को महिलाओं में यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त हो जायगी।

यद्यपि शान्ता बहन को इस चुनाव का समर्थन करना चाहिए था,

पर वे तो स्वयं इस पद की अभिलाषा रखती थीं इसलिए चाहने पर भी उन के मुँह से एक शब्द तक न निकला। परन्तु इस चुनाव का समर्थन सारी उपस्थित मंडली ने प्रसन्नता से किया।

सत्या जी इस बीच में चुप बनी रहीं। न उन्हों ने उसे स्वीकार किया न अस्वीकार। तब पूर्व-निश्चय के अनुसार कोषाध्यक्ष के पद पर शुक्ला जी और प्रधान के पद पर नीरव जी का चुनाव हुआ। जग मोहन यह देख कर चकित रह गया कि चातक जी ने स्वयं प्रधान बनने के बदले नीरव जी को चुना। इस के बाद अस्थायी कार्य्य कारिणी के सदस्य चुने गये, जिन में शान्ता बहन ही नहीं, लगभग सभी के सभी शेष सज्जनों को ले लिया गया। और चुनाव समाप्त हुआ।

इस सब भाषण बाजी में जगमोहन कविता वाली बात भूल ही गया था कि श्री चातक खाँसे। जगमोहन से उनकी आँखें चार हुईं और उसे कविता वाली बात याद हो आयी और उस ने कहा कि यदि एक आध कविता भी इस अवसर पर हो जाय तो क्या हर्ज है और उस ने 'नीरव' जी से प्रार्थना की कि वे अपनी कोई नयी कविता सुनायें। जग मोहन को विश्वास था कि नीरव जी तैयार न होंगे, परन्तु प्रधान चुने जाने की प्रसन्नता में उन्हों ने जगमोहन को निराश करना उचित न समझा और जेब से एक लम्बा कागज़ निकाल कर अपनी नवीन रचना 'महाप्रस्थान' पढ़नी आरम्भ कर दी।

चातक जी ने कविता की बात सुन कर अपनी रचना निकाली थी पर उन्हें विवश हो 'महाप्रस्थान' सुनना पड़ा। और जब वह कविता समाप्त हुई तो यद्यपि उपस्थित सज्जनों पर काल कराल का कुछ ऐसा आतंक छा गया था कि उस में कवि चातक की रुचि कविता सुनाने की न रही थी, पर जगमोहन को तो अपना कर्तव्य पूरा करना था, इस लिए

उस ने उन से प्रार्थना की और अनिच्छापूर्वक उन्हें कविता सुनानी पड़ी। परन्तु पहला चरण समाप्त करते करते वे अपने मूड में आ गये। और जब उन्हों ने उस की पुनरावृत्ति की तो एक अर्थभरी दृष्टि से सत्या जी की ओर देखा। पर सत्या जी चुपचाप दृष्टि ग़ालीचे में गड़ाये बैठी रहीं। चातक जी ने कविता पढ़ते हुए कई पंक्तियाँ दो बार पढ़ीं; कई पंक्तियों पर उपस्थित सज्जनों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया; जब जब "चित्र तुम्हारा देखा सुन्दर" की पुनारावृत्ति की, सत्या जी की ओर विशेष रूप से देखा; पर सत्या जी मौन रूप से बैठी रहीं। एक बार जब जगमोहन अलमारी में रखी पुस्तकों के नाम पढ़ने का प्रयास कर रहा था और वे एक घुटने पर टिके हुए सिर को दूसरे घुटने पर रखने के लिए पहलू बदल रही थीं तो उन की निगाहें उस से चार हुईं। उन्हों ने दूसरे घुटने पर सिर रख लिया और जगमोहन निरन्तर पुस्तकों के नाम पढ़ता रहा।

कवि चातक ने कविता समाप्त कर दी। मीटिंग भी खत्म हुई और लोग उठ खड़े हुए। तब श्री चातक बायें हाथ से बालों की लटों को हटाते हुए, मुस्कराते और अदा से चलते शान्ता बहन के पास आये और सत्या जी को सुना कर उन्हों ने कहा कि अब 'संस्कृति-समाज' को लोकप्रिय बनाना आप ही का काम है। इस बात पर उन्हों ने प्रसन्नता प्रकट की कि गोपालनगर में समाज को विशेष लोकप्रियता प्राप्त होगी। सत्या जी मंत्री हैं और शान्ता जी कार्य्यकारिणी में और दोनों न केवल गोपालनगर की रहने वाली हैं, वरन् सहेलियाँ भी हैं। इस के बाद उन्हों ने सत्या जी से कहा कि वे जगमोहन को उन के घर भेजेंगे। प्रत्येक मीटिंग का कार्य्य-क्रम वे अपने प्रेस में छाप कर जगमोहन के हाथ उनके पास भिजवा देंगे। यदि संभव हो तो वे उसको घर दिखा दें ताकि विद्यालय में उनको परेशान न किया जाय, "आज मुझ से अधिक प्रसन्नता किसी को नहीं", अन्त में उन्हों ने कहा, "आज मेरा चिर-दिन का

स्वप्न पूरा हुआ है।" और यह कहते हुए उन्हों ने यह जता दिया कि 'संस्कृति-समाज' उन्हीं के मस्तिष्क की उपज है और यद्यपि वे उस के पदाधिकारी नहीं, पर वे ही उस के कर्ता-धर्ता होंगे।

कवि चातक उन दोनों को वहीं कुछ और समय तक रोक कर संस्कृति के प्रचार तथा उस की अभिवृद्धि के संबंध में अपने विचार प्रकट करते, पर कमरा लगभग खाली हो गया था, सत्या जी ने कहा, "आप जगमोहन जी को हमारे संग भेज दीजिए। रास्ते में मुसलमानों की बस्ती है, हमें तनिक उस के पार भी कर देंगे और मैं उन्हें अपना पता भी बता दूँगी।"

"चलिए मैं भी चलता हूं", चातक जी ने कहना चाहा।

"नहीं आप क्यों कष्ट करें। आप को बड़ा चक्कर पड़ जायगा। आप उन्हीं को भेज दीजिए। उन का घर तो कदाचित् उधर ही है।"

और यह कह वे बढ़ीं। उन की आकृति पर कुछ ऐसी कड़ाई थी कि कवि को कुछ और कहने का साहस न हुआ। उन्हों ने आंगन में खड़े जगमोहन को बुलाया और अलग ले जाकर उस के कान में इतना कहा कि उन्हों ने श्री धर्मदेव और शुक्ला जी दोनों से उस के संबंध में बातचीत की है और दोनों ने एम० ए० करने में उस की सहायता करने का वचन दिया है। धर्म जी तो शीघ्र ही उसे कुछ काम भी देंगे। और यह कहते हुए वे फिर उसे वापस वहीं ले आये, जहां दोनों देवियां खड़ी थीं और उन की ओर संकेत करके उन्हों ने कहा, "अब तुम ज़रा इन को घर तक पहुँचा आओ, सत्या जी का घर देख आना ताकि समाज की बैठकों की विज्ञप्ति आदि इन को पहुँचाने में तुम्हें कठिनाई न हो।

"जी चलिए।" जगमोहन ने हाथ के इशारे से सत्या और शान्ता जी को आगे बढ़ने का संकेत करते हुए कहा।

जब वह उन के साथ सीढ़ियों के नीचे उतरा तो सीढ़ियों के पास

श्री धर्मदेव के साथ खड़े शुक्ला जी ने उसे देख कर मुस्कराते हुए आंख मारी और बोले, "मज़े है ना।"

उन की यह अनुचित भंगिमा जगमोहन को बड़ी बुरी लगी और क्रोध तथा संकोच से उस का मुँह लाल हो गया।

१०

"जगमोहन, जगमोहन।"

जगमोहन सीढ़ियाँ उतर कर, भैंस की झूलती हुई दुम के आगे छड़ी करके शान्ता और सत्या जी को तत्काल निकल जाने के लिए कह रहा था कि अपना नाम सुन कर उस ने सिर उठाया।

पिछले कमरे में पंडित दाताराम अपने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए उसे बुला रहे थे। 'अभी तो ये ऊपर थे,' जगमोहन ने मन ही मन सोचा, 'अब यहाँ काम पर ऐसी मुस्तैदी से जमे हुए हैं कि जैसे यहाँ से कभी उठे ही न थे।' उस ने शान्ता और सत्या जी से क्षमा माँगी और छड़ी को भैंस की दुम की दूसरी ओर करके पंडित जी की ओर बढ़ा। वे दोनों दो सीढ़ियाँ पीछे हो कर भैंस की दुम के प्रहार से परे चली गयीं।

"कहिए क्या आज्ञा है?" जगमोहन ने पंडित जी के समीप पहुँच कर कहा।

परन्तु पंडित जी अपने सिर पर हाथ फेरते हुए अपनी जगह से उठ आये थे।

"वह जो सत्या है," पंडित जी ने सीढ़ियों की ओर संकेत करते हुए कहा, "उस ने नौकरी के लिए हमारे कालेज में आवेदन-पत्र दिया है, "ज़रा मैं उस से बात कर लूँ। लड़की तो गंभीर और समझदार मालूम होती है। ठीक हो तो उसे ही रख लें।"

"मैं उन से पूछ कर बताता हूँ।"

और जगमोहन वापस पलटा। सत्या जी को उस ने दो सीढ़ी नीचे बुला कर पूछा, "आपने देवचन्द कालेज में नौकरी के लिए आवेदन-पत्र दिया है।"

"क्यों", उन्हों ने सिर उठा कर सीधी दृष्टि से जगमोहन को देखते हुए पूछा।

"पंडित दाताराम उस के प्रिंसिपल हैं। लुधियाने में गवर्नमेंट कालेज में पढ़ाते थे। मैं उन्हें जानता हूँ। उन्हों ने कहा है कि यदि आप उन से भेंट कर लें तो नौकरी तय हो सकती है।"

"कितने रुपये वे देंगे।"

"यह तो मैंने पूछा नहीं। आप चाहें तो मैं पूछ आता हूं या टाइम ले आता हूँ, आप मिलना चाहें तो मेरे साथ आ जाइएगा।"

"बहुत अच्छा।"

जगमोहन वापस मुड़ा। पंडित जी फिर जा कर काम में रत हो गये थे। जगमोहन की बात के उत्तर में उन्हों ने कहा कि वे अभी वेतन के संबंध में तो नहीं कह सकते। एक बार मिल कर बात कर लें तो फिर कह सकेंगे और उन्हों ने दूसरे दिन सुबह का समय दिया। "आवेदन-पत्र तो कई दूसरी लड़कियों के भी आये हैं," वे बोले, "पर यह लड़की योग्य और गंभीर है। चंचल और उच्छृङ्खल नहीं, जैसा कि आजकल लाहौर में अधिकांश पढ़ी लिखी लड़कियां होती हैं।"

"तो ठीक है, मैं सत्या जी से कल आने के लिए कहूंगा।" और जगमोहन उन्हें लम्बा नमस्कार करके वापस फिरा।

भैंस इस बीच में बैठ गयी थी और सत्या जी सीढ़ियाँ उतर आयी थीं। जगमोहन उन के पास से निकला तो सत्या जी ने केवल आँखें तनिक उठा कर, बिना बोले पूछा कि क्या कहा पंडित जी ने?

"चलिए बताता हूं।"

रोड तक, हिन्दू आबादी चली गयी थी। 'लाहौर में शत प्रतिशत हिन्दुओं और शत प्रतिशत मुसलमानों की आबादियों का बसना और लाहौर की आबादी का धीरे धीरे हिन्दू-मुस्लिम मुहल्लों, पार्कों अथवा आबादियों में बँटना, एक दिन जरूर रंग लायेगा'—जगमोहन ने सोचा। तभी शान्ता जी ने उसके निकट हो कर फिर उसका परिचय जानना चाहा।

"आप क्या करते हैं लाहौर में ?" उन्हों ने पूछा

जगमोहन ने संक्षिप्त में अपना परिचय दिया और अन्त में कहा कि वह एम० ए० करने की फ़िक्र में है। 'संस्कृति-समाज' के मंत्रित्व का भार तो उस ने श्री चातक के अनुरोध पर ले लिया है, नहीं उसे पढ़ने-पढ़ाने से ही अवकाश नहीं मिलता। परन्तु अब जब उसके सिर यह भार आ पड़ा है तो वह उसे भली-भाँति निबाहने का प्रयत्न करेगा। किसी काम को हाथ में लेकर छोड़ देना उस ने नहीं सीखा।

वे ब्रेडला हाल के सामने पहुँच गये थे और जगमोहन का ख्याल था कि उन्हें ट्रेनिङ्ग कालेज के इस किनारे छोड़ कर वह चातक जी की ओर चला जायेगा, पर तभी सत्या जी ने सहसा पूछा आप तो ऋषि-नगर रहते हैं न ?"

"जी हाँ !"

"तो फिर इधर टैप रोड की ओर से क्यों नहीं चलते ?"

"घर तो मेरा यहीं है, पर मैं अधिकतर चातक जी के यहाँ सोता हूँ।"

"तो कल सुबह आप यहाँ मिलेंगे या वहीं ?"

"जैसे आप को सुविधा हो। आप चाहें तो मैं आप को घर से भी ले सकता हूँ, यदि आप मुझे अपना पता दे दें।"

"नहीं आप इतना कष्ट क्यों करें। मेरा घर बड़ी दूर है। गोपाल नगर में तेग़ बहादुर रोड से भी परे। आप को फिर चातक जी के यहाँ भी जाना होगा। आप मुझे अपना घर दिखा दीजिए। यहीं से मैं आप

को ले लूँगी ।"

और तीनों टैंप रोड की ओर को हो लिये। सत्या जी फिर घोंघे की भांति अपने खोल में समा गयीं और शान्ता जी फिर चहकने लगीं।

होतू सिंह रोड के कोने से, धोबियों की बस्ती में से होता हुआ जगमोहन उन्हें अपने घर की बालकनी के नीचे ले गया। "यहां मेरे भाई रहते हैं।" उस ने अपने मकान की ओर संकेत करके कहा, "मैं यहीं प्रातः आठ बजे आप की प्रतीक्षा करूँगा।"

वह उन्हें 'नमस्कार' कर घर के अन्दर जाने लगा था कि सहसा मुड़ कर उस ने कहा, "चलिए, मैं आप को अपने मुहल्ले की हद तो पार करा आऊँ।"

"कि हम कहीं फिर न आ जायँ।" सत्या जी ने सहसा मुस्कराकर कहा, "परन्तु मैं तो कल ही आ रही हूँ।"

"नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं।" जगमोहन खिन्नता से मुस्करा कर रह गया।

सत्या जी की वह मुस्कान उसे बड़ी विचित्र लगी। उन के चेहरे की रुखाई निमिष भर के लिए पिघल कर मृदुल बन गयी। परन्तु दूसरे क्षण फिर अपनी वास्तविक दशा में आ गयी। वह उन्हें सन्त नगर के बाज़ार तक पहुँचा कर लौटा तो उन की वह घनी घटाओं में से झांकने वाले चौथ के शशि की सी मुस्कान जैसे उसके अपने अन्तर से निकल कर उसके सामने आ गयी।

११

रात जगमोहन चातक जी के यहाँ ही सोया था। चातक जी के मकान में चौबारे के दोनों ओर यथेष्ट स्थान था। एक ओर वह सो जाया करता था और दूसरी ओर वे तथा उनके बीवी बच्चे। सत्या जी तथा शान्ता बहन को ऋषिनगर के हद के पार छोड़ कर वह वापस घर आया था। कुर्ते धोती को उतार उसने सयत्न उनकी तह लगायी और उन्हें ट्रङ्क में रख दिया कि फिर पहने जा सकें। इस के बाद वह चातक जी के यहाँ चला गया था। दो दिन की दौड़ धूप से वह काफ़ी थक गया था। रात गर्मी भी थी और बहुत देर तक बातें भी होती रही थीं। चातक जी अगली मीटिंग का कार्य्य-क्रम बनाते रहे थे। अन्त को जब बारह एक बजे वह सोया तो बहुत देर तक उसकी आँख न लगी थी। सवेरे उसकी आँख खुली तो वह अकेला छत पर सोया पड़ा था और धूप उसके मुँह तक आ गयी थी। हड़बड़ाकर वह उठा था और अमृतधारा रोड से ऋषिनगर तक लगभग दो मील भागता हुआ चला आया था।

"भाभी कोई मुझे पूछने तो नहीं आया ?" आते ही उसने पूछा था।

"नहीं कोई भी तो नहीं।"

जगमोहन की सांस फूल रही थी। पसीने से कमीज़ ग़च थी। पंखे

से हवा करते हुए उसने पूछा। "टाइम क्या होगा ?"

"साढ़े छः बजे हैं !" उसके भाई ने कहा।

"कितनी धूप चढ़ आती है आजकल सुबह सुबह ही।" वह बोला और कुछ आश्वस्त होकर नित्यकर्म से निवृत्त हो, शेव करके, नहाने चला गया। भाभी ने सुना बाथ रूम में वह गा रहा था :—

है ख़बर गर्म उनके आने की
आज ही घर में बोरिया न हुआ।

बाथ रूम से निकल कर अभी उसने बाल भी न सँवारे थे कि भाभी का आदेश मिला, "जगमोहन ज़रा बाज़ार से एक पाव दही ला दो।"

जगमोहन चाहता था कि नहा धो, वही सिल्क का कुर्ता और धोती पहन, सत्या जी के आने से पहले पहले तैयार हो जाय, परन्तु भाभी के आदेश की पूर्ति के लिए वह तहमद और बनियान पहने ही पैसे लेकर बाज़ार की ओर चल पड़ा। वह चाहता तो धोती कुर्ता पहन सकता था। परन्तु धोती बाँधना, वह भी यू० पी० वालों की तरह, उसके लिए कठिन था। उसने उन्हीं दिनों चातक जी से धोती बाँधना सीखा था। जल्दी में उससे ठीक न बँधती और उसे ऐसी बँधी धोती नापसन्द थी जिस से चलते समय आधी टाँगें नंगी हो जायँ। वह चाहता था, धोती बाँधे तो कोर उस के पाँवों पर बड़ी नफ़ासत से लटकती रहे और यह काम उससे जल्दी में न हो सकता था। फिर न ऋषिनगर में नालियाँ बनी थीं, न सन्तनगर में, और हौदियों के गन्दे पानी से गलियाँ भरी रहती थीं, पाँवों पर लटकती हुई धोती को रास्ते के कीचड़ से बचाना दुष्कर था। वह तहमद पहने ही चल पड़ा।

ऋषिनगर में तो गलियाँ ही गलियाँ थीं। बाज़ार अभी पूर्ण रूप से न बना था। दही लेने के लिए उसे सन्त नगर के बाज़ार अथवा होतूसिंह रोड पर जाना पड़ता था। वह डाकखाने के पास पहुँचा था

कि आगे से उसे सत्या जी आती हुई मिल गयीं। जगमोहन को अपनी इस भूल पर तनिक झेंप हुई, परन्तु बिना उसे प्रकट किये बेपरवाही से उस ने कहा, "मैं तो आप की ही राह देख रहा था। आप चल कर बैठिए, मैं भाभी से कह आया हूँ। मैं अभी दो मिनट में दही लेकर लौटता हूँ।"

बिना कुछ उत्तर दिये सत्या जी चल पड़ीं और जगमोहन दही लेने को भागा।

वापस आया तो उसने देखा कि सत्या जी म्यानी के बदले किचन में उस की भाभी के साथ बैठी हैं और मटर निकाल रही हैं और दोनों इस प्रकार बातों में निमग्न हैं जैसे आदि काल से एक दूसरे को जानती हों। क्षण भर के लिए वह चकित सा खड़ा रहा। पाव के बदले वह आध सेर दही लाया था। पाव भर भाभी के लिए और पाव भर अपने लिए, उसका ख्याल था कि सत्या जी म्यानी में बैठी होंगी। वह ऊपर जायगा और भाभी से कह कर उन के और अपने लिए एक एक गिलास लस्सी बनवा लायगा। परन्तु उन्हें रसोई घर ही में बैठे देख उसे कुछ असमंजस हुआ। पर अपनी उसी बेपरवाही से उसने आगे बढ़ कर कहा, "भाभी मैं आध सेर दही लाया हूँ। दो गिलास हम लोगों के लिए भी बनवा देना।"

"लस्सी हम आकर पी लेंगे।" सत्या जी ने सहसा कहा, "आप जल्दी तैयार हो जाइए, पंडित जी चले न जायँ।" और वे उठ खड़ी हुईं।

"उन के स्वर में कुछ ऐसा अपनापा था, कि अचानक उस की निगाहें उन की ओर उठ गयीं। परन्तु सत्या जी पूर्ववत् धरती की ओर देख रही थीं और उन की आकृति की रुखाई में कोई विशेष परिवर्तन न

आया था।

कुछ व्यस्त सा होकर जगमोहन कपड़े बदलने के लिए म्यानी की ओर भागा।

भाभी ने दही लोटे में डालते हुए कहा, "बैठिए अब लस्सी पीकर ही जाइए।"

"हमारे हिस्से का दही सम्हाल रखिए। अभी आकर पीते हैं।" सत्या जी ने कहा। "यह पंडित का झगड़ा निबटा आयें। चला जायगा तो फिर गुमटी बाज़ार जाना पड़ेगा।" और यह कह कर 'नमस्कार' कर वे सीढ़ियां उतरीं। म्यानी के बाहर से जगमोहन को सुना कर उन्हों ने कहा, "मैं नीचे खड़ी हूँ, आप जल्दी आइए।"

जगमोहन इस बीच दूसरी बार धोती बाँध रहा था और यद्यपि धोती उस की इच्छानुसार न बँध रही थी तो भी उस ने कहा, "चलिए मैं अभी आता हूँ।" और जैसे तैसे धोती लपेट, एक हिस्सा पीछे और एक आगे खोंस, उड़ती हुई दृष्टि दर्पण में डाल, बालों को एक बार फिर सँवार कर वह नीचे की ओर लपका। उस का विचार था कि भाभी से एक रुमाल ले लेगा। पर समय न होने से उस ने यह मोह छोड़ दिया।

"क्षमा कीजिए, देर हो गयी।" उस ने नीचे पहुँचते ही कहा।

सत्या जी कुछ न बोलीं। चुपचाप चल पड़ीं। जगमोहन धोती के छोर से मुँह पोंछता उन के पीछे चला।

१२

गवर्नमेंट हाई स्कूल लुधियाना के अवकाश-प्राप्त पंडित दाताराम शास्त्री उन बुज़ुर्गों में से थे जो कर्मठ कहलाते हैं। कुछ लोग ऐसे महात्माओं को कंजूस, मक्खीचूस, कृपण, 'चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय' आदि नामों से पुकारते हैं। ये सब साधारण-जन निश्चय ही ईर्ष्या-वश ऐसा करते हैं। वे इन महान-आत्माओं के निष्काम-कर्म करने वाले उस स्वभाव को नहीं जानते, जिस के लिए यह जीवन कर्म-स्थली के सिवा कुछ नहीं, अकर्मण्यता जिस के निकट मृत्यु ही का दूसरा नाम है। इस कर्म-क्षेत्र में यदि धन अथवा सन्तति नाम की चीज़ इन महानुभावों के पास आ जाती है तो उस का महत्व उस राजपाट से अधिक नहीं जो निष्काम लड़ते-लड़ते पांडवों के अधिकार में आ गया था।

पंडित दाताराम शास्त्री ने अपना जीवन गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों में आठ रुपये मासिक के एक प्रायमरी पंडित की हैसियत से आरम्भ किया था। उस समय वे मात्र 'प्राज्ञ' थे। फिर अध्यापन के साथ-साथ उन्हों ने 'विशारद' और 'शास्त्री' की परीक्षाएँ पास कीं। १९२९ में जब जगमोहन मैट्रिक में बैठा तो पंडित दाताराम भी तीसरी बार मैट्रिक की परीक्षा में बैठे थे। उस समय महामना मालवीय जैसी उन की वेश-भूषा को देख कर लड़के बड़े आवाज़ें कसते थे, पर पंडित

दाताराम किसी की बात का बुरा न मानते थे। धुन के वे पक्के थे। उस साल परीक्षा में पास हो गये थे। फिर जगमोहन कालेज में चला गया और पंडित जी की गति-विधि का उसे ज्ञान न रहा। इतना उसे मालूम था कि प्रायमरी स्कूल की अध्यापकी से उन्नति कर वे गवर्नमेंट इन्टरमीडिएट कालेज के अध्यापक हो गये थे। कामना-रहित हो कर, फलाफल की इच्छा से मुक्त रह कर, क्योंकि उन्हों ने कर्म-रत रहना सीखा था, इसलिए यदि पद और धन के साथ-साथ उन्हें संतति भी पर्याप्त संख्या में मिली तो उसे भी उन्हों ने निरपेक्ष रूप से स्वीकार किया। कलम घिसते-घिसते, ट्यूशन पढ़ाते-पढ़ाते, गयी रात तक परीक्षाओं के पेपर बनाते तथा देखते और फिर इस सब के ऊपर अपने समृद्ध यजमानों के यहां सेवा करते-करते उन्हें कभी पल भर का अवकाश न मिला था और उन का मस्तक जैसे बढ़कर उन के सारे सिर पर छा गया था। परन्तु पंडित जी ने कभी अपने उस गंजे होते सिर की चिन्ता न की थी।

कुछ ऐसी निष्ठा, उन में थी जिस का बुद्धि से कोई संबंध नहीं। एक बार अपने काम में असफल होने पर वे फिर उसी निष्ठा व तत्परता से उस में रत हो जाते थे।—उस चींटी की तरह जो अपने से कहीं बड़ी मरी मक्खी को दीवार के ऊपर चढ़ा ले जाना चाहती है, बार-बार असफल होती है, पर अपना श्रम नहीं छोड़ती! पंडित जी के घर पै-दर-पै तीन लड़कियाँ हुईं तो उन के मित्रों ने समझाया कि भाई अब इस लाटरी डालने से हाथ खींचो, परन्तु कर्मशील पंडित दाताराम को लाटरी डालने से मतलब था उस के फलाफल से नहीं। आखिर उन के इसी कर्म-रत रहने का सुफल भी उन्हें मिला। सात लड़कियों के बाद अंततोगत्वा उन्हों ने पुत्र-रत्न का मुँह भी देखा। इतने बड़े कुटुम्ब का पेट पालने के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहते थे। तामिल भाषा के ऋषि व्य. 'तिरुवल्लुवर) के इस उपदेश को अनजाने ही उन्हों ने अपना

लिया था कि अपने कुटुम्ब की उन्नति के लिए जो सतत प्रयास करता है, भगवान भी उस की सहायता के लिए कमर कस लेते हैं। कि अपने कुटुम्ब के लिए अनवरत प्रयास करने से बड़ा और कोई कर्म नहीं।

पंडित जी में एक और गुण था जो उन की कर्मठता, निष्ठा और प्रतिनिर्बंधता के साथ निरन्तर उन की सहायता करता आया था। वह थी उन की चाटुकारिता। उत्कोच-देवता जो धन-धान्य से भी अधिक मिष्ट-भाषण और प्रशंसा से प्रसन्न होता है, उनसे सदैव खुश रहता था। उसी का यह फल था कि ज्योंही उन्हों ने अपनी सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया, उन्हें देवचन्द कालेज की सिटी-ब्रांच की अध्यक्षता मिल गयी। कालेज की वह शाखा उन्हीं को काम देने के लिए खोली गयी थी और उस की स्थापना, व्यवस्था और उसे डिग्री कालेज तक ले जाने का भार उन्हीं को सौंपा गया था।

पिछली शाम पंडित जी की आँखों में उस ने विचित्र सी लालसा की जो झलक देखी थी, उसे देख कर जगमोहन को पूरा निश्चय हो गया था कि वे सत्या जी को अपने कालेज में ले लेंगे।

जगमोहन ने पहले भी कुछ बुजुर्गों की आँखों में वासना-जनित-लालसा की यह झलक देखी थी। उस का एक मित्र था कुलवंत, उस के पिता अवकाश-प्राप्त कानूनगो थे, पचपन साठ वर्ष की उन की उम्र थी। पर खाते पीते अच्छा थे, इसलिए खूब मोटे ताज़े आदमी थे। बच्चे जब खेलते-खेलते उन के यहाँ जाते तो एकाध को पकड़कर वे अपनी बगल में भींच लेते। उस के गालों को चूम लेते और तब उन के अपने गाल सुर्ख हो जाते। उन की आँखों में कुछ वैसी ही वासना-जनित-लालसा तमतमा उठती। 'सत्या इस बुड्ढे को खूब उल्लू बनायेगी।' उस ने मन ही मन सोचा, और अपने साथ चली जाने वाली, लड़की से एकदम अध्यापिका बनकर 'सत्या जी' कहलाने वाली, उस युवती की

ओर देखा।

सत्या जी की निगाहें उस समय सड़क पर ७५ का कोण न बना रही थीं, बल्कि सीधी पड़ रही थीं।

दोनों मौन रूप से चलते हुए 'घोड़ा अस्पताल' तक आ पहुँचे थे। न जगमोहन ने कोई बात की थी न सत्या जी ने। दोनों के मध्य अन्तर भी काफी था। ऐसा लगता था जैसे दोनों एक ही साथ एक काम पर नहीं, बल्कि भिन्न कामों पर भिन्न रूप से चले जा रहें हैं। जगमोहन एकाध बार उन के निकट भी हुआ था, परन्तु वे बिना उस पर प्रकट किये, जैसे अनजाने ही में, कुछ दूर हो गयी थीं।

घोड़ा अस्पताल के पास से गुज़र कर जब वे बायीं ओर की अपेक्षाकृत सूनी सड़क पर हुए (जो सीधी 'टैप रोड' को छूती हुई दातागंज बख्श से राजपूत होस्टल को जाने वाली सड़क में मिल जाती थी) तो जैसे आप से आप दोनों के मध्य फासला कम हो गया। अनजाने ही में चलती हुई जैसे सत्या जी उस के निकट आ गयीं। जगमोहन फिर भी कुछ नहीं बोला। वह अपने विचारों में मग्न था, जो पंडित दाता-राम के गत जीवन से लेकर उस के अपने आगत तक नवजात मृगछौने की भाँति अनायास कुलांचें भर रहे थे। तभी सहसा सत्या जी ने कहा, "क्या पंडित जी ने आप से कुछ और भी बात कही थी?" परन्तु यह कहते हुए उन्हों ने उस की ओर देखा नहीं, केवल उन के निकट आने से जगमोहन ने समझा कि प्रश्न उस से किया गया है।

"क्या?" जगमोहन ने अपने विचारों का क्रम टूटने से पूछा।

"आपने पंडित जी से और कुछ नहीं पूछा?" सत्या जी ने प्रश्न दोहराया।

"किस बारे में?" जगमोहन बोला।

"यही वेतन-ऊतन के बारे में। क्या कहते थे?"

"नहीं मुझ से तो बात नहीं की," जगमोहन ने उत्तर दिया, पर

अभी चल कर बात कर लेंगे।" फिर कुछ क्षण बाद वह बोला, "आप को इस नौकरी का कैसे पता चला था ? आप ने समाचार-पत्र में विज्ञापन देखा होगा। वहाँ वेतन दर्ज न था ?"

"नहीं मैंने समाचार-पत्र में तो नहीं देखा।" सत्या जी ने कहा। "देवचन्द कालेज के एक ट्रस्टी मेरे पिता जी के मित्र हैं। उन के यहाँ इस कालेज के खुलने की कुछ बात हुई थी, उन्हीं के कहने पर मैंने अर्ज़ी दे दी थी।"

और धीरे धीरे सत्या जी ने जगमोहन को बताया कि वे लोग अमृतसर के रहने वाले हैं, उन के पिता वहाँ वैद्य हैं। बोरियों वाली गली में उन का एक घर भी है। उन के पिता का स्वभाव बड़ा विचित्र है। जमकर किसी जगह बैठना उन्हों ने नहीं सीखा। वे कर्लक भी रहे हैं और बीमा एजेण्ट भी। १६२१ और ३१ के काँग्रेस आन्दोलनों में जेल भी हो आये हैं और अब वैदिक भी करते हैं। अमृतसर में उनका (सत्या जी का) मन न लगता था, इसलिए वे अपने पिता के चचेरे भाई के पास गोपाल नगर आ गयी हैं। यहीं उन्हों ने शिक्षा प्राप्त की है और यहीं गोपाल नगर में विद्यालय खोल दिया है।

कुछ दूर तक दोनों फिर चुपचाप चलते गये। फिर सत्या जी ने जैसे अपने ही से बात करते हुए बताया कि उन का विद्यालय कुछ चल नहीं रहा। शान्ता बहन को उन का वहाँ विद्यालय खोलना एक आँख नहीं भाया। जब से उन्हों ने 'बन्दा बैरागी स्ट्रीट' में वह कमरा किराये पर लेकर लड़कियों को पढ़ाना आरम्भ किया है, श्री भगतराम सहगल जले पैर की बिल्ली बने हुए हैं। यदि यह नौकरी न मिली तो वे वापस अमृतसर चली जायेंगी।

दोनों साथ साथ चले जा रहे थे। यद्यपि ये बातें करते हुए उन्हों ने एक बार भी जगमोहन की ओर न देखा था तो भी जगमोहन को ऐसा लगा जैसे अपने भेद का साझीदार बना कर वे उसके निकट आ गयीं।

हैं और उसे उन की तसल्ली के लिए कुछ न कुछ कहना चाहिए। उन के अमृतसर जाने के निश्चय को बदलने के लिए अपनी ओर से भी कुछ प्रयास करना चाहिए। शान्ता बहन के पति भगतराम को वह जानता न था। जानता तो एक बार जाकर उस से पूछता कि वह क्यों ख्वाह-म-ख्वाह एक भली लड़की को तंग कर रहा है। कल्पना ही कल्पना में उस ने भगतराम नाम के व्यक्ति की कनपटी में बायें हाथ से घूँसा भी दे मारा।

तभी सत्या जी ने पूछा, "आप पंडित जी को जानते हैं?"

जगमोहन तो भगतराम से द्वन्द्व में रत था। "किन पंडित जी को?" चौंक कर उस ने पूछा।

"इन्हीं पंडित दाताराम को।"

"जी हाँ मैंने आप से कहा था न, मेरे मुहल्ले में एक लड़के को पढाते थे और मेरे दादा से इन की बड़ी घुटती थी।"

"जब तो वे आप को अच्छी तरह जानते होंगे।"

"जी हाँ, जी हाँ... !"

और उस ने अपनी ओर से इतना और कहा, "आप चिन्ता न कीजिए, अव्वल तो मेरा ख्याल है कि पंडित जी आप के व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए हैं। यह नौकरी आप को अवश्य मिल जायगी। कुछ रुकावट भी हुई तो मैं उसे दूर करने का प्रयास करूँगा।"

"आपकी बड़ी कृपा होगी।"

जगमोहन को उन के स्वर में अनायास कुछ ऐसी मृदुलता, करुणा और स्निग्धता का आभास मिला कि उस ने सहसा उन की ओर देखा। उन की निगाह सामने न थी। सड़क पर झुकी थी। वहीं से उन्हों ने कनखियों से उस की ओर देखा।

"नहीं इस में कृपा की क्या बात है", जगमोहन ने कहा।

सत्या जी ने कोई उत्तर न दिया। वे उसी प्रकार उसे देखती रहीं।

उन की समस्त कर्कशता जाने कैसे हवा हो गयी थी। चट्टान की रुक्षता के बदले बहते पानी का तारल्य उन की आकृति पर आ गया था। उस क्षण जगमोहन को वे बड़ी सुन्दर लगीं।

"आप लोगों ने बड़ी देर कर दी!"

जगमोहन ने चौंक कर देखा— सामने अपने घर के बाहर पंडित दाताराम नख से शिख तक पंडित मदनमोहन मालवीय बने खड़े थे। अन्तर केवल इतना था कि सिर पर उन के पगड़ी मालवीय जी से तनिक बड़ी थी और रंग अपेक्षाकृत काला था। कपड़े उन के गत दिन की अपेक्षा साफ़ और धुले हुए थे। निकट जाने पर जगमोहन ने देखा कि उन की आँखों में काजल की एक हल्की सी लकीर भी है।

"मैं कालेज जाने के लिए कब से तैयार बैठा हूँ।" उन्हों ने कहा।

"ये तो समय पर ही आ गयी थीं, मुझे ही देर हो गयी।" जगमोहन बोला, "दो तीन दिन से 'संस्कृति-समाज' के चक्कर में दिन रात घूमता रहा हूँ। थक गया था, समय पर जग नहीं सका।"

"यहाँ तो बैठने के लिए भी कोई जगह नहीं।" पंडित जी ने पहले अपने दायें और फिर बायें कन्धे पर दृष्टि डालते हुए कहा। "ख़ैर आओ!"

और पंडित जी के पीछे पीछे दोनों वही आँगन पार कर, पंडित जी के कमरे में गये। कमरा काफ़ी खुला था, परन्तु किसी ओर कोई खिड़की व रौशनदान न होने के कारण काफ़ी अन्धकारमय था। एक साधारण सी चारपाई और एक ट्रंक के अतिरिक्त एक चटाई फ़र्श पर बिछी थी।

पंडित जी ने सत्या जी को चारपाई पर बैठने के लिए कहा, पर उन के कहने से पहले ही वे चटाई पर बैठ गयी थीं। उन की आकृति पर

वह विचित्र सी रुक्षता-मिली-गम्भीरता पूर्ववत् आ गयी थी। "आप इधर बैठ जाइए," चटाई के कोने की ओर संकेत करते हुए तनिक सिमट कर उन्हों ने जगमोहन से कहा। परन्तु जगमोहन पहले ही ट्रङ्क पर बैठ गया था।

"यह रौशनदान और खिड़कियों के पीछे दीवार क्यों है ?" सहसा जगमोहन ने पूछा।

"पीछे जिन का तबेला है," पंडित जी ने कहा, "उन्हों ने उधर खिड़कियाँ निकालने पर आपत्ति की, इसलिए दीवार चुना दी गयी है।"

"मकान की आधी क़ीमत कम हो गयी।" जगमोहन ने कहा।

पंडित जी ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

सत्या जी पर एक स्नेहभरी दृष्टि डालते हुए और अपने कृत्रिम-दाँत निपोरते हुए, जो उन के श्याम-रंग के कारण मोतियों से चमकते थे, पंडित जी ने कहा, "मैंने आप का आवेदन-पत्र पढ़ा है। शिक्षा संबंधी आप को क्या अनुभव है ?"

"गोपाल नगर में इन का अपना विद्यालय है, अभी उसे खुले छः महीने भी नहीं हुए, पर गोपाल नगर में उस की धाक जम गयी है।" उत्तर जगमोहन ने दिया।

"तो फिर नौकरी से शायद इन्हें उतना लाभ न हो।" पंडित जी ने उसी प्रकार बेमतलब दाँत निकालते हुए कहा

"बात यह है कि सत्या जी 'शान्ता विद्यालय' की पढ़ी हैं; इन में उन में बहुत अच्छे संबंध भी हैं; इन्हों ने विद्यालय खोला है तो उन की बहुत सी लड़कियाँ इधर आ रही हैं और व्यर्थ का मनमुटाव हो रहा है। ये नहीं चाहतीं कि इन के कारण शान्ता जी को क्लेश हो।" जगमोहन ने सफ़ाई दी।

"हूँ !" पंडित जी ने कुछ सोचते हुए कहा। "आवेदन-पत्र तो मेरे पास बड़े आये हैं, पर मैं ऐसी अध्यापिका चाहता हूँ, जिसे न केवल

पठन-पाठन का अनुभव हो, बल्कि जो 'कालेज' को अपना ही समझे।
अभी हमने 'रत्न' और 'भूषण' की पढ़ाई आरम्भ की है, पर आगामी वर्ष हम 'प्रभाकर' और मैट्रिक की क्लासें आरम्भ कर देना चाहते हैं। मैं ऐसी अध्यापिका चाहता हूँ, जो न केवल अपनी छात्राओं को पढ़ाये, बल्कि आस-पास के गली मुहल्ले से भी छात्राएँ लाये।"

"इस काम में," जगमोहन ने पंडित जी से कहा, "सत्या जी आप की बड़ी सहायता करेंगी। इन के विद्यालय की छात्राएँ तो आप के यहाँ आ ही जायेंगी, लेकिन 'सूत्र मंडी' से 'वच्छोवाली' तक की छात्राएँ भी ये आप के यहां ले आयेंगी।"

"बस तो आप अपने आप को नियुक्त ही समझिए। पंडित जी ने कहा। "मैं आज ट्रस्ट के प्रधान से मिलूँगा। एक दो और आवेदन-पत्र ऐसे हैं, ट्रस्टी जिन के पक्ष में हैं, पर मैं वह सब देख लूँगा।"

"वेतन कितना होगा?" जगमोहन ने पूछा।

"प्रभाकर पास के लिए ट्रस्ट ने ३० रु० वेतन रक्खा है। पर ये मैट्रिक भी हैं, इसलिए मैं पैंतिस दिलाने का प्रयास करूँगा।"

"पर यह तो विशारद भी हैं।"

"हमारे कालेज में संस्कृत की पढ़ायी तो न होगी!"

"लेकिन यह क्वालीफ़िकेशन तो है" जगमोहन बोला, "सत्या जी को भी पढ़ाने का बड़ा शौक है। कालेज की व्यवस्था में आप को तनिक भी कष्ट न होगा।"

"अच्छा मैं भरसक प्रयत्न करूँगा," उन्हों ने उठते हुए कहा, "तुम लोग दो तीन दिन में मुझे वहीं कालेज में मिलना। ट्रस्टियों से तो मैं आज ही मिलूँगा, पर इस बात का निर्णय होने में दो तीन दिन लग सकते हैं।"

सत्या जी भी उठीं। पंडित जी ने उन के कन्धे को तनिक छू कर उन की ओर देखते हुए कहा, "तुम अपनी नियुक्ति पक्की ही समझो।

बस ऐसा चलाकर दिखाओ कालेज कि शहर भर की लड़कियाँ वहीं आने लगें। शहर के अन्दर कई स्कूल हैं, जिन में रत्न, भूषण की पढ़ाई होती है, परन्तु निस्बत रोड पर जैसा कालेज है, वैसा एक भी नहीं। मैं चाहता हूँ कि देवचन्द कालेज की यह शाखा सब को पीछे छोड़ जाय।"

बातें करते हुए वे सब बाहर आ गये थे। दोनों ने पंडित जी को 'नमस्कार' किया। दो दिन बाद पता करने की बात कही और वापस लौटे।

कुछ दूर चल कर जगमोहन ने मुड़ कर देखा पंडित जी अभी उधर ही देख रहे थे। उस के देखते ही वे अचकचाकर मुड़े और मोहिनी रोड की ओर चल दिये।

१३

घोड़ा अस्पताल के पास दोराहे पहुँचकर जगमोहन ने कहा, "कौन सा रास्ता आप को निकट पड़ेगा। इधर से जायेंगी या इधर से?"

पहले 'इधर से' का मतलब था बायें हाथ से होकर डी० ए० वी० कालेज की ओर से और दूसरे 'इधर से' का मतलब था ऋषिनगर, सन्तनगर और रामनगर को पार करते हुए।

"मैं तो तेग़बहादुर रोड पर रहती हूँ।" सत्या जी ने कहा, "इधर ही से मुझे निकट पड़ता है।"

"तो आइए।"

और दोनों ऋषिनगर की ओर चले। होतूसिंह रोड के कोने पर पहुँच कर जगमोहन ने कहा, "अच्छा मैं तो इधर से चला जाता हूँ। इन धोबियों के घरों के पास से होकर। परसों आप चाहेंगी तो मैं आप के साथ चला जाऊँगा।"

"चलिए मैं भी इधर से चलती हूं। डाकखाने के सामने से निकल जाऊँगी।"

"हाँ आप तो आ भी उधर से रही थीं, पर उधर से गोपाल नगर को कौन सा रास्ता जाता है?"

"डाकखाने के सामने जो गली है, उस में से होकर दायें हाथ की नयी आबादी में से चलें तो आगे खेत हैं, उन के पार शिवाजी रोड है,

वहाँ से हमारे घर को सीधी सड़क जाती है ! आप कभी उधर से नहीं गये ?" सत्या जी ने पगडंडी पर होते हुए कहा ।

"नहीं हम तो नये नये ऋषिनगर में आये हैं । पहले रेलवे रोड पर कृष्ण गली में रहते थे ।"

•

होतूसिंह रोड के इस कोने से होकर गोविन्द गली तक दो तीन बीघे तिकोनी धरती अभी खाली पड़ी थी, उस के ऊपर की तिकोनों में अभी तक खेती होती थी और इधर की तिकोन में धोबियों ने छप्पर डाल लिये थे । इस सिरे से उस सिरे तक बाँसों के सहारे रस्सियाँ टँगी रहती थीं जिन पर दिन रात कपड़े लटका करते थे । यद्यपि होतूसिंह रोड पर ज़रा आगे जा कर, हलवाई की दुकान के पास से जगमोहन के घर को सीधा रास्ता जाता था, पर जगमोहन को धोबियों की इस पगडंडी से जाना बड़ा भाता था । पके हुए गेहूँ की पृष्ठ-भूमि में दूर तक रस्सियों से बँधे, उलटे, लटके, फरफराते अथवा हवा से फूले हुए गुब्बारों ऐसे पायजामे, शलवारें, कमीज़ें, दुपट्टे, उसे बहुत अच्छे लगते थे । पगडंडी से जाओ तो इन रस्सियों के नीचे से जाना पड़ता था । कभी कोई फर-फराता हुआ दुपट्टा उस के सिर से लिपट जाता । कभी किसी उड़ती कमीज़ के नीचे से निकलना पड़ता । यह आँख मिचौनी जगमोहन को बड़ी भली लगती । उन दिनों तो बालियाँ पक गयी थीं, परन्तु जब कच्ची थीं तो एकाध बाली तोड़ कर कच्चे दूधिया दानों को चबाने में उसे बड़ा आनन्द आता था । कभी कभी कोई बाली तोड़ कर वह, चुपके से उस के बाल भाभी की गर्दन के पीछे छुआ देता और जब वे तड़प कर उठतीं तो घंटों ठहाके लगाता । परन्तु सत्या जी को साथ देख कर उसे झिझक हुई । "आप को तो इधर से कष्ट होगा ।" उस ने रुक कर कहा, चलिए सड़क पर से चलते हैं ।"

"नहीं नहीं कोई कष्ट नहीं," सत्या जी बढ़ते हुए बोलीं और कपड़ों के उस सागर में डूबती उतराती चल दीं। पगडंडी जगमोहन के घर के नीचे जा निकलती थी। वहाँ पहुँच कर उस ने स्वभावानुसार कहा, "चलिए आप को अपनी हद पार करा आऊँ।"

"पर मैं तो परसों फिर आ रही हूँ," सत्या जी ने जैसे गली के फर्श को सुना कर कहा। "लस्सी आप मेरी सुरक्षित रखिएगा, परसों आकर पियेंगे!"

जगमोहन खिसियाना सा होकर हँसा, "माफ़ कीजिए, मैं तो भूल ही गया, इतनी गर्मी पड़ रही है, लस्सी पीकर जाइए। आप चलिए मैं भाग कर बरफ ले आऊँ।"

बिना कोई उत्तर दिये सत्या जी मकान की सीढ़ियाँ चढ़ गयीं।

जगमोहन बर्फ लेने के लिए भागा।

वापस आया तो वह पसीना पसीना हो रहा था। उस ने देखा सत्या जी भाभी के पास बैठी हुई हैं। भाई साहब भी आ गये हैं और बीमा कराने के लाभ पर अपने विचार उन को सविस्तार बता रहे हैं। जगमोहन के आने पर उन्हों ने कहा, "मैं सत्या जी से कह रहा था कि इन को बीमे का काम हाथ में लेना चाहिए। काँग्रेस-सेवा से यह सेवा किसी प्रकार कम नहीं। एक व्यक्ति को बीमे के लिए तैयार करना एक बार जेल जाने के बराबर पुण्य देता है।"

और अपनी इस बात पर वे स्वयं हँसे। जगमोहन ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस का गला सूख रहा था। धोती के छोर से मुँह का पसीना पोंछते और हवा करते हुए उस ने कहा। "भाभी लस्सी बनाओ गला सूख रहा है।"

"एजेंटी-वेजेंटी नहीं" जगमोहन के बदले सत्या जी भाई साहब

की बात का उत्तर देते हुए बोलीं, "पर बीमा कराने वाले मैं आप को कई दे दूँगी।"

"लस्सी क्या पीते हो," भाई साहब ने कहा, "अब तो खाने का समय है। खाना खाकर ही लस्सी पियो।" और उन्हों ने सत्या जी से कहा, "आप भी इधर ही खाना खाइए। एक डेढ़ बजने को हो गया है।"

"नहीं अब मैं चलूँगी। परसों फिर आ रही हूँ। आज घर पर कहा नहीं।"

"भाभी तुम लस्सी बनाओ मैं ज़रा ये कपड़े बदल आऊँ, यह सिल्क का कुर्ता तो जान निकाले दे रहा है।" वह नीचे म्यानी की ओर भागा। धोती कुर्ता बड़ी सावधानी से उस ने सूखने को खूँटी पर टाँग दिया और तहमद लगा कर ऊपर आया। भाभी ने लस्सी के गिलास बना कर एक सत्या जी को और एक उसे दिया। "मैं तो कहती थी खाना यहीं खा लेतीं," भाभी ने कहा, "इस धूप में कहाँ जायेंगी। पर ये मानती नहीं।"

"परसों जो आ रही हूँ!" सत्या जी ने लस्सी का गिलास मुँह से लगाते हुए कहा।

गिलास को एक ही घूँट में कंठ के नीचे उतार कर जगमोहन ने पंखा उठाया और जोर से झलने लगा।

"आप इतनी मोटी खद्दर की धोती कैसे पहन लेती हैं। मेरा तो इस डोरिया के जम्पर में दम निकला जा रहा है।" भाभी बोलीं।

"खादी का यही तो लाभ है," सत्या जी ने उठते हुए कहा। "पसीना सोख लेती है। नहीं इस गर्मी के मौसम में चलना-फिरना कठिन हो जाय।" और गिलास रसोई-घर में रख कर वे सीढ़ियाँ उतरीं।

"परसों खाना फिर इधर ही खाइएगा," भाभी ने सीढ़ियों पर खड़े खड़े कहा।

"देखिए परसों आने तो दीजिए।" सत्या जी मुड़ कर बोलीं। उन्हों ने भाई साहब तथा भाभी को 'नमस्कार' किया और खट-खट सीढ़ियाँ उतर गयीं। जगमोहन पीछे पीछे उतरा। म्यानी के पास रुक कर सत्या जी ने अन्दर झाँका, "यहाँ आप रहते हैं," उन्हों ने कहा और अन्दर कदम रक्खा।

"काम काज यहीं करता हूँ, सोने को चातक जी के यहाँ चला जाता हूँ।"

"क्यों?"

"इस घर में गर्मियों में सोने की जगह कम है।"

"आप की भाभी कहती थीं दूसरा कमरा खाली है, उस के सामने सोने की भी जगह है, वह आप क्यों नहीं ले लेते।"

"अभी उतने पैसे नहीं हैं।"

"यह म्यानी तो बहुत छोटी है।"

जगमोहन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"पर आप ने बहुत अच्छी सजा रक्खी है।" और वह बालकनी में चली गयीं।

जगमोहन उन के पीछे पीछे गया।

यह बालकनी न हो तो इस में रहना मुश्किल हो जाय।" उस ने कहा "मुझे कुछ काम करना होता है तो यहीं कुर्सी-मेज़ रख लेता हूँ।"

सत्या जी चुपचाप बालकनी से गली का नज़ारा करने लगीं।

जगमोहन को सहसा लगा कि उसे भूख लगी है।

"मैं तो यही चाहता था कि आप यहीं दुपहर काट कर जातीं," उस ने कहा। "पर चलना है तो चलिए, देर हो रही है।"

सत्या जी जाने क्या सोच रही थीं। चौंक कर मुड़ीं और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गयीं। दो तीन सीढ़ी उतर कर उन्हों ने जगमहोन को 'नमस्कार' किया। पर जगमोहन तो उन के पीछे ही उतर रहा था।

"आप कहाँ चले ?"

"चलिए आप को अपनी हद पार करा आऊँ !"

"बैठिए, बैठिए इस धूप में कहाँ जायँगे !" उन्हों ने 'नमस्कार' किया और सीढ़ियाँ उतर गयीं।

"तो परसों मैं आप की प्रतीक्षा करूँ ?" जगमोहन ने वहीं खड़े-खड़े पूछा।

"हाँ परसों मैं आऊँगी। देर न कर दीजिएगा।" और फिर एक बार 'नमस्कार' कर वे नीचे सीढ़ियों में ओझल हो गयीं।

१४

"आज तो जान निकल गयी !" सत्या जी ने म्यानी में प्रवेश करते हुए जैसे अपार थकान और बेबसी से दरी पर बैठते और फिर दीवार का सहारा लेकर लेटते हुए कहा।

"चलिए काम तो हो गया।" जगमोहन बोला, "आप बैठिए मैं खाने आदि का प्रबन्ध करता हूँ।"

"एक पानी का गिलास यदि पिलायें.........ठहरिए मैं स्वयं ले लेती हूँ !" और उन्हों ने स्वयं उठने का उपक्रम किया।

"नहीं नहीं आप बैठिए !" और जगमोहन ऊपर को भाग गया।

बर्फ के लिए वह भाभी को पैसे दे गया था और इतने दे गया था कि वह अपने लिए भी मँगा ले। इसलिए भाभी ने बर्फ मँगा रखी थी। भाई साहब खाना खा गये थे और भाभी स्वयं भी खा चुकी थी। जगमोहन पहुँचा तो भाभी ने पूछा, "बड़ी देर कर दी। तुम्हारे भाई साहब कब का खाना खा चुके। मैं कब से तुम्हारी बाट देख रही हूँ।"

"बड़ी देर हो गयी वहाँ, पहले मोहिनी रोड और फिर वहाँ से गुमटी बाजार जाना पड़ा। वहाँ देवचन्द कालेज की एक हिन्दी शाखा खुली है, उसी में सत्या जी अध्यापिका नियुक्त हुई हैं। मैं तो चाहता था कि वे कल से वहाँ जायँ, पर पंडित दाताराम अपने उस कालेज

को, जो क़ैदखाना मालूम होता है और इसीलिए कदाचित् लड़कियों के लिए चुना भी गया है, दिखाने पर तुले हुए थे। कहाँ शीशमहल रोड और कहाँ सूत्र-मंडी और गुमटी-बाजार। खैर, सत्या जी का काम हो गया। ज़रा पानी का एक एक गिलास पियें, फिर खाना खाते हैं। भूख तो सारी सूख गयी इस धूप में।"

भाभी ने गिलासों में थोड़ी बर्फ डाली और खाना परोसने का आयोजन करने लगीं।

जगमोहन ने एक गिलास तो वहीं पीकर खाली कर दिया। दूसरा लेकर वह नीचे गया। सत्या जी वैसे ही दीवार के सहारे आधी बैठी थीं। पानी का गिलास उस ने उन्हें दिया और स्वयं कुर्सी पर बैठ गया।

म्यानी में उस ने एक छोटी-सी मेज़-कुर्सी लगा रक्खी थी और एक ओर फ़र्श पर दरी बिछा कर धरती पर बैठने अथवा लेटने की व्यवस्था कर रखी थी। पुस्तकें एक ओर रैक में रखी थीं और एक छोटी सी तिपाई पर किसी फटे हुए पलंगपोश का एक टुकड़ा बिछा कर उसे एक कोने में लगा रखा था। शाम को जब वह बालकनी में बैठता तो यही तिपाई और कुर्सी बालकनी में रख लेता। मेज़ कुर्सी रैक, किताबें, तिपाई, दरी सब साफ़-सुथरी, झड़ी-पुँछी थीं और मध्य की मंज़िल पर होने से म्यानी ऊपर की अपेक्षा ठंडी थी।

पानी पीकर सत्या जी ने गिलास एक ओर रख दिया और फिर दीवार से पीठ लगा कर बैठ गयीं। जगमोहन ने अपनी तहमद उठायी और सीढ़ियों में जाकर कपड़े बदल डाले। सिल्क के कुर्ते और धोती को उस ने खूँटी पर टाँग दिया और स्वयं खाने का प्रबन्ध करने चला गया।

जब वह खाने की थाली लेकर आया तो उस ने देखा—सत्या जी वहीं आधी लेटी ऊँघ गयी थी। ऊँघ गयी थीं, पर ऊँघने में भी उन का

शरीर उस मोटी खादी की साड़ी में बेतरह लिपटा था। माथे पर पसीने की बूंदें आ गयी थीं और आकृति पर थकान। उन के चेहरे की नसें, जो उसे कर्कश बना देती थीं, उस समय ढीली हो गयी थीं और उस मोटी खादी की साड़ी में उन का छोटा सा गोरा-गोरा मुख उस फूल सा लगता था जो हरे-हरे पत्तों के बदले मरु की रूखी-सूखी धरती पर पड़ा हो। जगमोहन के हृदय में हल्की सी करुणा जगी। उस ने उन्हें जगाना उचित न समझा। बड़े धीरे से, किसी प्रकार की आवाज़ किये बिना, उस ने दोनों थालियाँ तिपाई पर रख दीं और उसी तरह पंजों के बल चलता बाहर निकल आया। उस ने सोचा इस बीच में लस्सी बना ले। उस की इच्छा के अनुसार उस की भाभी ने डेढ़ पाव दही भी मँगा रखा था। यद्यपि उस ने कहा था कि पाव भर दही उन के लिए रख लिया जाय और कमीशन के रूप में आध पाव दही की लस्सी उस ने भाभी को बच्चों के लिए बनाने को कह दिया था, पर भाभी अपना कमीशन भी लेना न भूली थीं। दही उसे पाव से एक चौथाई कम लगा पर बिना कुछ कहे उस ने दही को बड़ी अच्छी तरह मथा। फिर जब बालाई मर गयी तो उस ने बर्फ छोड़ी और पतली लस्सी के दो बड़े गिलास बनाये। बर्फ उस ने उन में और भी छोड़ दी ताकि यदि सत्या जी को उठने में कुछ विलंब हो तो लस्सी गर्म न हो जाय।

नीचे पहुँचा तो सत्या जी अभी पूर्ववत सो रही थीं। केवल उन का दायाँ हाथ जो साड़ी के छोर को पकड़े सीने पर पड़ा था, फिसल कर नीचे आ गया था। उस कारण साड़ी का छोर भी ढलक गया था और कंठ का दायाँ भाग ब्लाउज़ की कोण तक नंगा हो गया था। दायें कान से लेकर गोरा-गोरा कंठ-भाग, साड़ी के हट जाने से खादी के मोटे ब्लाउज़ में दबी घुटी, दायें उरोज की गोलाई और दायें घुटने के तनिक पसर जाने से कमर का दायाँ खम उन के साधारणतः दबे घुटे अंगों को तनिक स्वतंत्रता दे रहा था। रेखाओं को उन के शरीर की

यह भंगिमा कुछ ऐसे उभार रही थी कि उस में वे अपेक्षाकृत सुन्दर लग रही थीं। क्षण भर जगमोहन उन्हें सोये देखता रहा। उस की दृष्टि कंठ और वक्ष से होती हुई कमर के खम पर भी रुकी। फिर उस ने चुप-चाप बिना आवाज़ किये गिलास रख दिये। वह चाहता था कि उन से कह दे कि खुल कर सो जायें पर इतना कहने से उन का जग जाना निश्चित था। वह चुपचाप कुर्सी पर एक ओर बैठ गया।

बाहर जून की गर्म दुपहर आग बरसा रही थी। सामने के मकान की दीवार पर आँखें न टिकती थीं। शून्य में धूप की तीव्रता लहरिये सी बना रही थी। जगमोहन ने बाहर से आँखें हटा लीं। अन्दर उसे अँधेरा-अँधेरा सा लगा। कुछ क्षण बाद उस अँधेरे में सोयी युवती का कंठ, वक्ष, तथा कटि भाग उभर आया। फिर उस युवती के माथे पर झलकी हुई बूंदें। उस के मन में आयी, वह पंखा ले आये। उन के पास बैठ कर उन्हें धीरे-धीरे पंखा कर दे। फिर उस की दृष्टि कंठ भाग से फिस-लती हुई साँस की गति से, समुद्र की लहरों में धीरे-धीरे डूबते उतराते, माहीगीर के जाल की भाँति ऊपर-नीचे उठते हुए वक्ष पर जा टिकी। उस का कंठ सूखने लगा। म्यानी में उसे अपना दम घुटता हुआ सा प्रतीत हुआ। उस के मस्तिष्क ने अचानक कहा—जिस गाँव जाना नहीं, उस की राह काहे पूछना। तभी वह जल्दी से उठा और तेजी से बाहर की ओर भागा। उस का पाँव तिपाई से छू गया। थालियाँ एक दूसरे से टकरा कर धीरे से खनक गयीं। युवती जैसे अचकचा कर उठ बैठी। साड़ी का छोर उस के हाथ में आ गया। उस से माथे का पसीना पोंछते हुए उस ने पुनः वक्ष को ढक लिया। ओठों में शायद यह कहा कि मैं थक गयी हूँ।

जगमोहन मुड़ा, "आप हाथ धोयेंगी ?" उस ने पूछा, और फिर बिना उन का उत्तर सुने ऊपर रसोईघर से जाकर पानी का लोटा और खादी का एक साफा, जो तौलिये का काम देता था, ले आया, बालकनी

के बाहर उस ने उन के हाथ धुलाये, मुह पर भी उन्हों ने दो एक छींटे मारे। उस ने अंगोछा पेश किया पर उस से पहले ही उन्हों ने धोती के छोर से हाथ और मुँह पोंछ लिया। उन की आकृति की रुखाई फिर वहाँ आ गयी और प्रकृतिस्थ होकर वे कुर्सी पर आ बैठीं।

"कुर्सी तो एक ही है," जगमोहन ने कहा। "यहीं दरी पर बैठ कर खा लें।" और सत्या जी बिना उत्तर दिये तत्काल दरी पर जा बैठीं।

जगमोहन ने दोनों थालियाँ रख दीं और वे खाने लगे।

"मैं आप को जगाना न चाहता था," जगमोहन ने कहा। "मैं तो जा रहा था कि आप कुछ देर और सो लें।"

"नहीं आप को जगा देना चाहिए था।" सत्या जी तनिक लजा कर बोलीं, "पहले ही खाने को बड़ी देर हो गयी है।"

"मैं देर सबेर से खाने का आदी हूँ," जगमोहन ने कहा। "कई बार जब भूख लगती है, मित्रों में बड़े ज़ोरों की बहस चल रही होती है, जब बहस खत्म होती है, तो खाने का टाइम बीते दो घंटे हो चुके होते हैं। फिर कई बार घूमते-फिरते और कभी पढ़ते-पढ़ाते खाने की सुधि ही भूल जाती है। आप सो रही थीं, ये कम्बख्त थालियाँ न खनक उठतीं तो मैं आप को जी भर सोने देता।"

"भूख तो मुझे भी लगी थी।"

"पर थकन ज्यादा थी। यदि आप को आपत्ति न हो तो खाना खाकर यहीं कुछ देर आराम कर लें। धूप भी कड़ी है। साँझ हो जाय तब चली जाइएगा।"

सत्या जी ने इस का उत्तर नहीं दिया। पूर्ववत् दृष्टि झुकाये वे अपनी बात सुनाने लगीं कि स्वयं उन को कभी ही समय पर खाना नसीब होता है। काँग्रेस के काम में दिलचस्पी होने के कारण कई बार घूमते-घूमते खाने का टाइम गुज़र जाता है। और उन्हों ने १९३१ के आन्दोलन का जिक्र किया जब एक दिन महिलाओं ने बीच अनारकली

धरना दे दिया था और शाम होने पर भी वे न उठी थीं तो पहले दिन की और फिर रात की रोटियाँ उन के लिए पकाते और पहुँचाते उन्हें न दिन को खाने का टाइम मिला, न रात को। बारह बजे रात तक महिलाएँ अनारकली में धरना दिये बैठी रहीं, फिर उन को पुलिस बन्द गाड़ियों में लेकर शहर से दस मील दूर छोड़ आयी। उन्हों ने नेताओं के साथ दूसरी मोटर में उन का पीछा किया और शेष रात उन को वापस नगर में लाते बीती।

और सत्या जी राजनीतिक आन्दोलन की दिलचस्प कहानियाँ सुनाती गयीं। खाना खत्म हो गया तो जगमोहन ने बालकनी में उन के हाथ धुलाये। बर्तन, वे चाहती थीं कि उस के साथ ऊपर ले जायँ, पर जगमोहन स्वयं उन्हें ऊपर छोड़ने गया। फिर वह भाभी से तकिया माँग लाया, वह उस ने दरी पर रख दिया। सत्या जी से कहा कि वे डेढ़-दो घंटे आराम कर लें फिर जायँ। उस जलती दोपहर में जाने से क्या लाभ? और उन का उत्तर सुने बिना वह म्यानी के किवाड़ लगा-कर ऊपर चला गया।

सत्या जी चुपचाप दरी पर लेट गयीं। पर उन्हें नींद न आयी। वे निरन्तर करवटें बदलती रहीं। छत की ओर देखती रहीं। एक दो बार उन्हों ने लम्बी साँस भी ली। पर जब एक घंटे बाद ऊपर की सीढ़ियों में जगमोहन के कदमों की चाप सुनायी दी तो उन की आँखें बन्द हो गयीं।

जगमोहन ने धीरे से किवाड़ खोल कर उन्हें सोते देखा। फिर उसी प्रकार किवाड़ बन्द कर चला गया।

उस के चले जाने के पश्चात् सत्या जी ने फिर आँखें खोल लीं और वे निश्चेष्ट पड़ी छत की ओर तकती रहीं।

की कर्कशता जो भाभी की उपस्थिति में पिघल गयी थी, फिर ज॰
वहीं आ गयी थी। गंभीर बनी, चेहरे को लगभग धोती के आँचल से
छिपाये, वे तेज़-तेज़ चली जा रही थीं। जाने वे क्या सोच रही थीं,
जाने कुछ सोच भी रही थीं या नहीं? पर जगमोहन का दिमाग़ अनवरत
कुछ न कुछ सोच रहा था। जब वह घर से निकला तो म्यानी को ताला
लगाते हुए उसे ध्यान आया कि यह छोटी सी जगह भी कोई रहने की
जगह है। यह अजीब बात है कि पहले उसे कभी इस बात का ध्यान न
आया था, पर आज जब उसे सत्या जी को उस दड़बे में सुलाना और
स्वयं ऊपर जाकर नंगे फ़र्श पर लेटना पड़ा तो पहली बार उस दड़बे
की तंगी का आभास उसे मिला। म्यानी की बात सोचते-सोचते उस के
सामने अपने वर्तमान और भविष्य की समस्या आ गयी। एक समय
था जब बी० ए० होते ही नौकरियों के दरवाज़े छात्रों के स्वागत में
खुल जाते थे, एक यह समय है कि बी० ए० की वकअत* मैट्रिक
से भी अधिक नहीं। जगमोहन निम्न-मध्य-वर्ग के उन लाखों युवकों में
से एक था जो बचपन में 'बच्चे' और जवानी में 'युवक' नहीं होते,
बचपन ही से जिन पर प्रौढ़ता का रंग चढ़ जाता है। जो एक कदम
आगे रखते हैं तो दो बार सोचते हैं, फिर पीछे रख लेते हैं। और कई
बार इसी आगे-पीछे में जिन्दगी के दिन पूरे कर देते हैं। जिन के
बचपन में न खिलंडरापन होता है न जवानी में अल्हड़पन। बचपन में
सब कुछ भूल कर खेलना और जवानी में सब कुछ भूल कर प्रेम करना
जो नहीं जान पाते।

जगमोहन चला जा रहा था और सोच रहा था कि यदि किसी
प्रकार एम० ए० कर ले तो कहीं न कहीं लेक्चरर हो सकता है। बी०
टी० कर ले तो मास्टर हो सकता है। परन्तु छोकरों को पढ़ाने से उसे

---

*महत्व

और कहा, "आप यदि भाभी को ले आयेंगे तो एक दो लड्डू आप को भी मिल जायँगे।" और यह कहते हुए वे मुस्करायीं। यह अजीब बात थी कि जब वे भाभी के निकट होती थीं, उन के चेहरे की नसें एक दम ढीली हो जाती थीं और उन की मुस्कान भी जैसे मुक्त होकर खुल पड़ती थी। वहाँ से हटीं कि आप से आप उन की आकृति पर वही कर्कशता आ जाती थी। जगमोहन भी उस मुस्कान के उत्तर में मुस्करा दिया। सत्या जी उठीं। "बड़ी देर हो गयी है।" उन्हों ने कहा, "ऐसी सोयी कि होश न रहा। अब चलूँ!"

और नमस्कार कर वे मुड़ीं।

जगमोहन उन के पीछे-पीछे सीढ़ियाँ उतर गया।

"किधर से चलेंगे?" बाहर निकल कर उस ने पूछा।

"हरिनिवास के आगे से।"

"हरिनिवास कहाँ है?"

"आप नहीं जानते?"

"रास्ते तो सब देखे हैं, पर नाम मालूम नहीं। हम तो कृष्ण गली रेलवे रोड पर रहते थे ना।"

"बस यही रामलाल स्ट्रीट से चल कर होतूसिंह रोड को पार करते हुए सीधे चले जायँ, वहीं से गोपालनगर को मार्ग निकलता है।

"रामनगर और गोपालनगर पर वह जो बड़ी सी कोठी है, वही हरिनिवास है शायद।"

"जी।"

और दोनों चुपचाप चलने लगे।

जगमोहन जिस मकान में रहता था, वह गली के सिरे पर था। गली के सिरे पर कहने के बदले उसे गली के चौरस्ते पर कहना ठीक

होगा। क्योंकि उन की गली जो पूरी की पूरी बनी हुई थी, एक दूसरी गली के कारण कट जाती थी। हालांकि इस दूसरी गली का अस्तित्व न था। इस सिरे पर, अर्थात जगमोहन के घर के उलटे कोने पर, एक इंजीनियर का बड़ा मकान था और आगे मैदान, जो यदि बिक जाता तो यह गली पूरी तरह अस्तित्व पाती, पर मैदान किसी मुसलमान गूजर का था जो इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि दाम और भी चढ़ जायँ तो बेचे। इस मैदान के परे एक और मकान बना हुआ था जिस पर रामलाल स्ट्रीट लिखा था। बस यही दो मकान इस बात का प्रमाण थे कि यह गली है। नहीं वह मैदान मुँह फाड़े खड़ा था और लगता था जैसे इन दोनों मकानों को निगल कर अपने पेट को और बढ़ा लेगा। इस मैदान के ऐन बीच एक बड़ा चहबच्चा बना हुआ था। रामलाल स्ट्रीट के सामने बनी मकानों की एक कतार का पानी अस्थायी नालियों के द्वारा इस में आता था। जब शाम को चहबच्चे का मुँह खुल जाता था और म्यूनिसपैलिटी की मोटर गलियों की तमाम ग़लाज़त चूसने लगती तब वायु मंडल में एक दुर्गन्ध भरी घुटन फैल जाती थी। मोटर इस समय भी फटफटा रही थी। दोनों धोती के छोर नाक पर रखे, उस की बगल से निकल गये। गली के सिरे पर बाज़ार था। उस के इधर ऋषिनगर खत्म और उधर संतनगर आरम्भ हो जाता था। संतनगर के मकान और गलियाँ आपस में सिमटे हुए दिखायी देते थे। शायद ही कहीं किसी मकान की जगह खाली दिखायी देती थी। मकान, दुकानें, गलियाँ, बाज़ार, यद्यपि बने हुए थे, पर नालियाँ न होने और चहबच्चों के भर जाने के कारण कहीं-कहीं कीचड़ हो रहा था। कहीं चप्पल की फटफटाहट से कीचड़ के छींटे धोतियों को अपना स्मृति-चिह्न न दे दें, इस विचार से धोती के किनारों को बचाते हुए दोनों धीरे-धीरे वहाँ से गुज़रते गये।

सत्या जी सिर नीचा किये चली जा रही थीं। उन की आकृति

की कर्कशता जो भाभी की उपस्थिति में पिघल गयी थी, फिर ज. वहीं आ गयी थी। गंभीर बनी, चेहरे को लगभग धोती के आँचल से छिपाये, वे तेज़-तेज़ चली जा रही थीं। जाने वे क्या सोच रही थीं, जाने कुछ सोच भी रही थीं या नहीं? पर जगमोहन का दिमाग़ अनवरत कुछ न कुछ सोच रहा था। जब वह घर से निकला तो म्यानी को ताला लगाते हुए उसे ध्यान आया कि यह छोटी सी जगह भी कोई रहने की जगह है। यह अजीब बात है कि पहले उसे कभी इस बात का ध्यान न आया था, पर आज जब उसे सत्या जी को उस दड़बे में सुलाना और स्वयं ऊपर जाकर नंगे फ़र्श पर लेटना पड़ा तो पहली बार उस दड़बे की तंगी का आभास उसे मिला। म्यानी की बात सोचते-सोचते उस के सामने अपने वर्तमान और भविष्य की समस्या आ गयी। एक समय था जब बी० ए० होते ही नौकरियों के दरवाज़े छात्रों के स्वागत में खुल जाते थे, एक यह समय है कि बी० ए० की वकअत* मैट्रिक से भी अधिक नहीं। जगमोहन निम्न-मध्य-वर्ग के उन लाखों युवकों में से एक था जो बचपन में 'बच्चे' और जवानी में 'युवक' नहीं होते, बचपन ही से जिन पर प्रौढ़ता का रंग चढ़ जाता है। जो एक कदम आगे रखते हैं तो दो बार सोचते हैं, फिर पीछे रख लेते हैं। और कई बार इसी आगे-पीछे में जिन्दगी के दिन पूरे कर देते हैं। जिन के बचपन में न खिलंडरापन होता है न जवानी में अल्हड़पन। बचपन में सब कुछ भूल कर खेलना और जवानी में सब कुछ भूल कर प्रेम करना जो नहीं जान पाते।

जगमोहन चला जा रहा था और सोच रहा था कि यदि किसी प्रकार एम० ए० कर ले तो कहीं न कहीं लेक्चरर हो सकता है। बी० टी० कर ले तो मास्टर हो सकता है। परन्तु छोकरों को पढ़ाने से उसे

---

*महत्व

होगा। क्योंकि उन की गली जो पूरी की पूरी बनी हुई थी, एक दूसरी गली के कारण कट जाती थी। हालांकि इस दूसरी गली का अस्तित्व न था। इस सिरे पर, अर्थात जगमोहन के घर के उजड़े कोने पर, एक इंजीनियर का बड़ा मकान था और आगे मैदान, जो यदि बिक जाता तो यह गली पूरी तरह अस्तित्व पाती, पर मैदान किसी मुसलमान गूजर का था जो इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि दाम और भी चढ़ जायँ तो बेचे। इस मैदान के परे एक और मकान बना हुआ था जिस पर रामलाल स्ट्रीट लिखा था। बस यही दो मकान इस बात का प्रमाण थे कि यह गली है। नहीं वह मैदान मुँह फाड़े खड़ा था और लगता था जैसे इन दोनों मकानों को निगल कर अपने पेट को और बढ़ा लेगा। इस मैदान के ऐन बीच एक बड़ा चहबच्चा बना हुआ था। रामलाल स्ट्रीट के सामने बनी मकानों की एक कतार का पानी अस्थायी नालियों के द्वारा इस में आता था। जब शाम को चहबच्चे का मुँह खुल जाता था और म्यूनिसपैलिटी की मोटर गलियों की तमाम ग़लाज़त चूसने लगती तब वायु मंडल में एक दुर्गन्ध भरी घुटन फैल जाती थी। मोटर इस समय भी फटफटा रही थी। दोनों धोती के छोर नाक पर रखे, उस की बगल से निकल गये। गली के सिरे पर बाज़ार था। उस के इधर ऋषिनगर खत्म और उधर संतनगर आरम्भ हो जाता था। संतनगर के मकान और गलियाँ आपस में सिमटे हुए दिखायी देते थे। शायद ही कहीं किसी मकान की जगह खाली दिखायी देती थी। मकान, दुकानें, गलियाँ, बाज़ार, यद्यपि बने हुए थे, पर नालियाँ न होने और चहबच्चों के भर जाने के कारण कहीं-कहीं कीचड़ हो रहा था। कहीं चप्पल की फटफटाहट से कीचड़ के छींटे धोतियों को अपना स्मृति-चिह्न न दे दें, इस विचार से धोती के किनारों को बचाते हुए दोनों धीरे-धीरे वहाँ से गुज़रते गये।

सत्या जी सिर नीचा किये चली जा रही थीं। उन की आकृति

कालेज के लड़कों को पढ़ाना अच्छा लगता था और उस की साध थी कि वह एम० ए० कर ले ! पर कैसे ? अभी इस का कुछ भी भरोसा न था।

"क्यों जगमोहन किधर ?"

अपने ध्यान में मग्न जगमोहन सत्या जी के साथ चला आया था। संतनगर कब का पीछे रह गया था। हरिनिवास के समीप ही गली में श्री चातक और शुक्ला जी ने उस का मार्ग रोक लिया।

सत्या जी तनिक आगे रुक कर दूसरी ओर मुँह कर के खड़ी हो गयीं।

"क्यों भाई बड़े मज़े हैं !" शुक्ला जी ने मूँछों में मुस्करा कर आँख दबायी।

"किधर जा रहे हो ?" चातक जी ने पूछा

"पंडित दाताराम से मिलने गये थे। इन को कुछ काम था। इन्हें यहीं गोपालनगर तक छोड़ने जा रहा हूँ।"

"इन का घर जानते हो ?"

"नहीं !"

"तो आज इन का घर देख आओ। इस इतवार को मीटिंग है। एजेंडा बन गया है। कल छप जायगा। एक प्रति इन को दे देना। पहली मीटिंग है, कुछ रौनक होनी चाहिए।"

"आप इन से कह दीजिए। मैं दे आऊँगा।"

तब चातक जी अपने बालों की लट को पीछे की ओर करते हुए सत्या जी के पास गये। उन्हों ने एक बार खाँस कर उन्हें 'नमस्कार' किया।

बिना सिर उठाये 'नमस्कार' कर सत्या जी वैसे ही खड़ी रहीं।

"हम तो आज आप की ओर गये थे।"

सत्या जी चुप खड़ी रहीं।

चातक जी फिर खाँसे और बालों की लटों को उन्हों ने फिर पीछे

किया।

"इतवार को 'संस्कृति-समाज' की पहली बैठक रख रहे हैं। एजेंडा बनाने में आप की सहायता दरकार थी, पर मालूम हुआ कि आप आज विद्यालय में नहीं आयीं।

सत्या जी वैसे ही चुप खड़ी रहीं।

चातक जी ने लट को एक बार फिर पीछे किया। एक बार फिर खाँसे और एक पैर से दूसरे पैर की पिंडली पर होने वाली खुजली को शान्त किया और बोले, "हम चाहते थे कि पहली मीटिंग में आप भी कोई लेख अथवा कहानी पढ़ें।

इस बार सत्या जी बोलीं, "मेरे पास कोई नयी चीज़ नहीं और फिर मुझे पढ़ने का अभ्यास नहीं।"

"मालती में आप का लेख छपा है, वही पढ़ दीजिए।"

"इस बार यदि मुझे क्षमा करते......" सत्या जी ने कहना चाहा।

"आप महिला-मन्त्री हैं।" चातक जी ने बात काट कर कहा, "आप न पढेंगी तो कैसे चलेगा। एक बार आप लेख पढ़ दीजिए, फिर दूसरी लड़कियाँ तैयार हो जायँगी।"

सत्या जी चुप रहीं।

"आप मेरी ख़ातिर इस बार इतना कष्ट कीजिए।"

"बहुत अच्छा।"

"मैं जगमोहन के हाथ एजेंडा भेज दूँगा। आप आइएगा। अपनी सहेलियों को भी साथ लाइएगा।"

"जी बहुत अच्छा।"

अब चातक जी क्या कहें ? 'नमस्कार' करके वे मुड़े। जगमोहन से उन्हों ने कहा कि वह भी कुछ पढ़े। वे उस का नाम लिख रहे हैं। चलते चलते रुक कर उन्हों ने इतना और कहा, "फिर एक काम भी है तुम्हारे लिए। सौ दो-सौ तुम्हें मिल जायँगे। शाम को आना तो बात

करेंगे।"

और वे शुक्ला जी को लेकर चल दिये। शुक्ला जी ने चलते चलते जगमोहन के कँधे पर हाथ मारा।

"भई हमारा हिस्सा भी रखना।" और सत्या जी की ओर देख कर उन्हों ने आँख दबादी।

जगमोहन का मुख लाल हो गया। उस के मन में क्रोध भी आया, उस व्यक्ति के प्रति घृणा भी हुई, पर बिना कुछ कहे वह चल दिया।

गोपाल रोड के अन्तिम सिरे पर तेग़बहादुर रोड थी। और तेग़बहादुर रोड के लगभग अन्तिम सिरे पर सत्या जी के चचा जी का मकान था। सड़क से बायें हाथ को कुछ जगह खाली थी, उस से परे जो मकान थे, उन में पहला उन के चचा का था। दरवाज़े के एक ओर 'बावा सुन्दर लाल बेदी' की प्लेट लगी थी, जिस पर गाय की गोबर सनी दुम का निशान था। गाय कदाचित् अभी बाहर से चर के न आयी थी। नांद खाली पड़ी थी।

सत्या जी ने दरवाज़ा खटखटाया।

दरवाज़ा खुला तो जगमोहन का मन धक से रह गया। कोई अतीव लावण्यमयी सौंदर्य की देवी सामने न खड़ी थी, पर किवाड़ों को खोलते हुए पूरे दरवाज़े पर दोनों हाथ फैलाये, जैसे अन्दर जाती हुई सत्या जी को रोकती हुई सी, जो लड़की खड़ी थी, उस की छवि ने जगमोहन के हृदय की गति को तीव्र कर दिया।—मँझला कद, छरहरा शरीर, कमर और वक्ष की रेखाएँ सुनिश्चित, गोरा रंग, खुले लम्बे केश जो दायीं ओर बाजू पर गिर रहे थे— साधारण-दृष्टि से देखने पर सत्या जी और उस लड़की में कुछ बहुत अन्तर न था, लेकिन हरे किनारे की महीन धोती और पापलिन के ब्लाउज़ में वह इतनी भली मालूम होती

करेंगे।"

और वे शुक्ला जी को लेकर चल दिये। शुक्ला जी ने चलते चलते जगमोहन के कँधे पर हाथ मारा।

"भई हमारा हिस्सा भी रखना।" और सत्या जी की ओर देख कर उन्हों ने आँख दबादी।

जगमोहन का मुख लाल हो गया। उस के मन में क्रोध भी आया, उस व्यक्ति के प्रति घृणा भी हुई, पर बिना कुछ कहे वह चल दिया।

गोपाल रोड के अन्तिम सिरे पर तेग़बहादुर रोड थी। और तेग़बहादुर रोड के लगभग अन्तिम सिरे पर सत्या जी के चचा जी का मकान था। सड़क से बायें हाथ को कुछ जगह खाली थी, उस से परे जो मकान थे, उन में पहला उन के चचा का था। दरवाज़े के एक ओर 'बावा सुन्दर लाल बेदी' की प्लेट लगी थी, जिस पर गाय की गोबर सनी दुम का निशान था। गाय कदाचित् अभी बाहर से चर के न आयी थी। नांद खाली पड़ी थी।

सत्या जी ने दरवाज़ा खटखटाया।

दरवाज़ा खुला तो जगमोहन का मन धक से रह गया। कोई अतीव लावण्यमयी सौंदर्य की देवी सामने न खड़ी थी, पर किवाड़ों को खोलते हुए पूरे दरवाज़े पर दोनों हाथ फैलाये, जैसे अन्दर जाती हुई सत्या जी को रोकती हुई सी, जो लड़की खड़ी थी, उस की छवि ने जगमोहन के हृदय की गति को तीव्र कर दिया।—मँझला कद, छरहरा शरीर, कमर और वक्ष की रेखाएँ सुनिश्चित, गोरा रंग, खुले लम्बे केश जो दायीं ओर बाजू पर गिर रहे थे— साधारण-दृष्टि से देखने पर सत्या जी और उस लड़की में कुछ बहुत अन्तर न था, लेकिन हरे किनारे की महीन धोती और पापलिन के ब्लाउज़ में वह इतनी भली मालूम होती

थी—पंख फैलाये उड़ने को प्रस्तुत श्वेत कबूतरी की भाँति—कि जगमोहन उसे देखता रह गया।

"कहिए क्या कर आयीं।" उस ने सत्या जी से पूछा।

दूसरे क्षण उस लड़की ने जगमोहन को देखा और यद्यपि उस के हाथ आप से आप नीचे आ गये, पर बालों को पीछे हटा कर साड़ी सिर पर करने में उस ने किसी तरह की घबराहट से काम नहीं लिया। आँचल को इतमीनान से सिर पर करते हुए उस ने दोनों के गुज़रने को जगह कर दी।

जगमोहन सोचता आया था कि वह बाहर से मकान देख कर ही चला आयेगा, परन्तु जब 'सब ठीक हो गया, चलो बताती हूँ," कहती हुई सत्या जी ड्योढ़ी में बढ़ीं तो वह चुपचाप उन के पीछे हो लिया। लड़की उन को जगह देने के लिए दीवार से सट गयी थी। जगमोहन के कुर्ते की बाँह उस के वक्ष को छूती हुई चली गयी। अनायास वह सिकुड़ गया। उस के माथे पर इस कल्पित अर्ध-स्पर्श ही से पसीना आ गया और चेहरे पर हल्की सी लाली दौड़ गयी।

ऊपर जाकर सत्या जी ने जगमोहन के लिए आराम कुर्सी बिछा दी और उस लड़की से कहा, "दुरो, ज़रा लस्सी का गिलास तो बना।"

"मैं तो अब चलूँगा जी"

और वह उठा।

"ज़रा बैठिए, लस्सी का एक गिलास पीते जाइए।" और वे बिना उत्तर सुने अन्दर चली गयीं।

जगमोहन फिर बैठ गया।

यह कमरा निम्न-मध्य-वर्ग के घर का ऐसा कमरा था जिस में पलंग भी बिछा रहता है और कुर्सियाँ भी। एक ओर बैठने के लिए एक दो मूढ़े और पटड़े पड़े थे। इधर उधर बच्चों के सस्ते खिलौने बिखरे

थे। दीवारों पर सस्ती तस्वीरें लगी थीं— कमल पर खड़ी लक्ष्मी जी, शेषनाग पर सोये विष्णु भगवान, शंकर-पार्वती, पहाड़ उठाये हनुमान तथा ऐसे ही चित्र। जगमोहन के पीछे एक सिंगर मशीन पड़ी थी। अँगीठी पर पुराने चौखटों में जड़े हुए दो चित्र थे। जिन में से एक में बड़ी-बड़ी मूँछों वाला एक व्यक्ति बेतरह अकड़ा बैठा था। घुटनों पर उस के एक पिल्ले ऐसा बच्चा था। साथ उस के बड़े बेढंगे तरीके पर साड़ी पहने उस की बीवी बैठी थी, जिस की गोद में एक और बड़ा पिल्ला था। जगमोहन वह फोटो देख ही रहा था कि सत्या जी चित्र कि उस महिला को लेकर आ गयीं। "यह मेरी चाची जी हैं," उन्हों ने कहा।

जगमोहन ने नमस्ते की। चित्र की अपेक्षा वे यद्यपि आयु में बड़ी थीं, पर रंग गोरा था और वे सुन्दर लगती थीं।

वे उस के सामने आकर बैठ गयीं। जगमोहन क्या बात करे, उस की समझ में न आया। पर सत्या जी ने उस की मुश्किल हल कर दी और वे उन्हें अपनी नौकरी लगने का किस्सा सुनाने लगीं।

तभी वह लड़की लस्सी का गिलास ले आयी।

"लस्सी तो मैं पीकर चला था।" जगमोहन ने कहा, पर उस ने गिलास थाम लिया।

गिलास लेते समय एक बार उस की दृष्टि फिर लड़की से मिली और फिर उस का दिल धड़क उठा।

"दुरो चाची जी की भानजी है, देवचन्द कालेज में पढ़ती है।" सत्या जी ने परिचय दिया।

जगमोहन ने गिलास हाथ में लिये ही नमस्कार के हेतु सिर झुका दिया।

"दुरो नाम प्यारा है, उस ने कहा, "पर पूरा नाम क्या है?"

"द्रौपदी!"

"किस क्लास में पढ़ती हैं ?" उस ने पूछा। जिस गाँव जाना नहीं, उस की राह काहे पूछना, यह बात वह भूल गया।

"बी० ए० में !" दुरो ने कुर्सी पर बैठते हुए उत्तर दिया। जगमोहन की निगाहें फिर उस से चार हुईं। उसे लगा कि उन निगाहों में असाधारण निर्भीकता है और जैसे वे उसे भेद कर उस के अणु-अणु की जानकारी पा रही हैं। उस का मुख लाल हो गया और उस की निगाहें झुक गयीं। लस्सी का गिलास आधा पीकर उस ने रख दिया और उठा।

"अच्छा जी मैं अब चलता हूँ।"

तीनों उठ खड़ी हुईं। जगमोहन ने बिना किसी ओर देखे तीनों को 'नमस्कार' किया और चल दिया। सत्या जी उस के पीछे पीछे आयीं। वह अंतिम सीढ़ी पर पहुँचा तो आगे से ज़ोरों की 'शूं' सुनायी दी। गाय इस बीच में आ गयी थी और रास्ता रोके खड़ी थी।

"ठहरिए, मैं हटाती हूँ।"

जल्दी में उतरती हुई सत्या जी जैसे उस की पीठ के साथ सट गयीं। उन के वक्ष का भार उसे अपनी पीठ पर लगा। वह सिकुड़ कर एक ओर हो गया। सीढ़ी तंग थी। सत्या जी उस के कंधे से छिछलती हुईं नीचे उतरीं, गाय को कान से पकड़ कर उस का मुँह दूसरी ओर किया और जगमोहन से कहा कि गुज़र जाय।

जगमोहन गुज़र गया तो दरवाजे में आकर उन्हों ने उसे नमस्कार किया और कहा कि चातक जी से मीटिंग की विज्ञप्ति मिले तो वह दे जाये, वे कोशिश करेंगी कि कुछ छात्राएँ भी समाज के अधिवेशन में आ जायँ।

"जी बहुत अच्छा।" कह कर वह चल दिया। उस की गर्दन के पीछे पीठ पर जो भाग सत्या जी के वक्ष से छू गया था, जैसे अभी तक जल रहा था और उस की आँखों में दुरो की वह सुन्दर आकृति घूम रही थी।

प्रातः के साढ़े चार बजे थे। रात गम और अंधेरी थी। उस के तिमिर जैकोसे दोनों हाथों से पीछे हटा कर ठंडा, शीतल, उजला-उजला कुहासा (जिस में गत-दिवस की धूल अभी तक मिली थी) प्राची के प्राँगण में उभर आया था। हल्की-हल्की बयार बहने लगी थी। दूर कहीं मुर्ग ने प्रातः की अज़ान दी। दुरो की नींद उचटी। उस ने एक बार अधखुली आँखों से उस शीतल कुहासे को देखा और नींद ने जैसे दुगने भार से उस की पलकों को बन्द कर दिया। चादर को पाँवों की उलझन से निकाल उस ने सिर तक ले लिया। करवट बदली और सो गयी।

रात बहुत गर्मी पड़ी थी। सोने में अपने आप को सर्वथा असफल पा, गयी रात तक वह फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का इतिहास पढ़ती रही थी और जब एक डेढ़ बजे सोयी थी तो उस की नींद बड़ी गड़बड़ रही थी। बैस्तील पर पैरिस की जनता का आक्रमण, बन्दियों की निष्कृति और मेरी अन्त्वानेत की हत्या के दृश्य उस के मस्तिष्क में घूमते रहे थे। प्रातः की ठंडी समीर ने जैसे उस के दिमाग के तूफान को शान्त कर उसे गहरी नींद सुला दिया था।

रवि का दिन था और घर के समस्त प्राणी बड़ी बेफ़िक्री से सो रहे थे। न बावा जी*को दफ़्तर जाना था, न सत्या जी तथा बच्चों को स्कूल।

---

* बावा=बावा पंजाबी भाषा में साधु को कहते है : बावा जाति के पूर्वज शायद किसी मठ या मन्दिर से संबंधित रहे होंगे।

गृहणी भी कद्रे निश्चिंत थी, दूध पीता बच्चा प्रातः उठा था तो स्तन उस के मुँह में देकर उन्हों ने उसे चुप करा दिया था। दो-तीन बार जल्दी जल्दी मुँह मार कर बच्चा स्तन मुँह में लिये ही सो गया था। गृहणी अपने तन-बदन की सुधि खोकर सोयी हुई थी। पर गर्मियों की सुबह थी। चार बजे ही से गली जग उठी थी। प्रातः उठ कर चार मील नियमित रूप से सैर करने वाले महाशयगण अपने-अपने स्नेहियों को जगाने लगे थे; साथ के घर दही मथा जाने लगा था; सामने के घर से पम्प के चलने और कदाचित् उस के नीचे रखी बाल्टी के भरने की ध्वनि आ रही थी। तभी उन की अपनी गाय ज़ोर से रंभा उठी। गृहणी ने करवट ली। स्तन बच्चे के मुँह से निकल गया पर वह रोया नहीं। उस की नींद पूरी हो चुकी थी। बिना रोये उस ने आँखें खोल दीं और जैसे चकित सा वह उस उजियाले को मुटर-मुटर तकने लगा। फिर आप से आप उस ने किलकारी भरी। पहली रात की गर्मी में जब लोग-बाग चारपाइयों पर पड़े तड़प रहे थे, उस की माँ उसे पंखा करती रही थी और वह बेसुध सोया रहा था। पूरी नींद ले चुकने पर प्राची की सेज पर जग उठने वाली ऊषा की भाँति उस ने आँखें खोल दी थीं। लगता था जैसे वह कभी सोया ही न था।

कुछ क्षण वह चारपाई के अपने भाग में खेलता रहा। फिर धीरे-धीरे वह अपनी माँ की छाती पर चढ़ने लगा। गृहणी ने स्वप्न ही में देखा कि एक बिल्ली धीरे धीरे उस की छाती पर चढ़ी आ रही है। स्वप्न ही में एक चीख मार कर उस ने करवट बदली। उस के कपड़ों से उलझा बच्चा करवट के साथ ही उस के ऊपर से होता हुआ फर्श पर जा गिरा और प्रातः के मधुर सन्नाटे को अपने रुदन से मुखरित करने लगा।

गृहणी की वह चीख जागृतावस्था की चीख से एकदम भिन्न थी। नींद के उस अपेक्षाकृत बढ़े हुए डर ने उसे कुछ विचित्र सानुनासिक

तीखापन प्रदान कर दिया था। वह तीखापन नींद में भी, पास ही लेटी दुरो के कानों द्वारा प्रवेश कर उस के सोये मस्तिष्क को झकझोर गया और फिर वह बच्चे का अनवरत रुदन। गृहणी ही उछल कर न उठी, वरन् दुरो भी उछली और धीरे धीरे सभी घर जाग उठा। गृहणी ने बच्चे को छाती से लगा कर झुलाते हुए, अपने स्वप्न की बात बतायी तो बावा सुन्दर लाल दरयाई घोड़े की सी अपनी मूँछों पर हाथ फेरते हुए ज़ोर ज़ोर से हँसने लगे। उन की हँसी हिचकियों जैसी रुक रुक कर आती थी। कनस्तर के छोटे गोल छेद से जैसे पिघला घी रुक रुक कर बाहर उछलता है। ऊपर के दो दाँत उन के टूटे हुए थे। एक हिचकी के बाद जब वे दूसरी हिचकी लेते हुए मुँह खोलते तो उन का वह हँसना और भी हास्यास्पद रूप से दिलचस्प लगता।

परन्तु द्रौपदी को इस समय अपने मौसा की हास्यास्पद हँसी को देखने का समय न था। रात सोते समय उस ने सोचा था कि वह प्रातः चार बजे उठेगी, गाय की सानी-पानी और घर की सफ़ाई आदि खत्म कर छै बजे घर से निकल जायगी और बारह बजते बजते महिला महाविद्यालय, देवचन्द कालेज और लाहौर कालेज फॉर विमेन के होस्टलों तक हो आयेगी। हरीश ने उस के ज़िम्मे पचास रुपये की पुस्तकें लगायी थीं और वह अभी तक एक भी पुस्तक न बेच पायी थी।

वह बारह वर्ष की थी जब उस के माता पिता की मृत्यु हो गयी थी। उस की मौसी ने अपनी मरती बहन के हाथ से दुरो को यह कह कर ले लिया था कि उसे वह अपनी बच्ची की भाँति पालेगी। परन्तु अपनी बहन की बच्ची को अपनी बच्ची कहना और बात है और समझना और। फिर दूसरे बच्चों के प्रति संतति-विहीन माँ की ममता में सन्तति पाते ही जो अन्तर आ जाता है, उसे वह नहीं जानती। द्रौपदी से उस की मौसी उस समय तक बड़ा प्यार करती रही, जब तक उस के बच्चा नहीं हुआ। फिर धीरे धीरे उस की स्थिति घर में क्रीतदासी की

सी हो गयी। बच्चों को खेलाना, झाड़ू-बुहारी देना, बर्तन मलना और जब गाय आ गयी तो उस की सानी-पानी का प्रबन्ध करना, सब उसी के ज़िम्मे हो गया। पिता बीमे के रूप में ५००० रुपया छोड़ गये थे जो दुरो के वयस्क होने पर उसे मिलना था और उस की माँ अपनी बहन से मरते समय यह कह गयी कि वह उसे कम से कम बी० ए० तक पढ़ा दे, पाँच हजार में से तीन हज़ार इस संबंध में खर्च कर दे और दो हज़ार उस की शादी पर दे दे। उस की मौसी ने उस की माँ से कहा था कि वह उसे अपनी बेटी की भाँति पढ़ायेगी, पर जब उस के अपने बेटे-बेटियाँ हो गये तो दुरो की पढ़ाई उसे खटकने लगी। दुरो मिडल में छात्रवृत्ति पा गयी। फिर मैट्रिक में भी। तब मौसी से उस ने कह दिया कि बीमे का रुपया मिलेगा तो सब का सब वह उस के हाथ में रख देगी। इस प्रकार अपनी पढ़ाई के संबंध में उस ने मौसी की सहानुभूति प्राप्त कर ली, पर जो आश्रय उस 'अबला' को उस घर में प्राप्त था, उस का बदला उसे घर का काम-काज करने, मौसी, के बच्चों को लिखा-पढ़ा कर अदा करना पड़ता था।

इस सारे वातारण में उस के मौसा का स्नेह उस का एक मात्र सम्बल था। अपनी ऊबड़-खाबड़ सी आकृति और दरियाई घोड़े की-सी मूँछों के बावजूद हृदय बावा जी ने बड़ा सरल, सदय और स्नेहशील पाया था। उन के अपने बच्चे पढ़ने-लिखने के मामले में एक दम कोरे थे, अनाथ दुरो जब अपनी कक्षा में सर्व-प्रथम रहती तो बावा जी उस की पीठ ठोंकते, और अपने बच्चों को फटकारते हुए उस की प्रशंसा करते। दुरो की प्रगति पर उन्हें बड़ा गर्व होता। समय निकाल कर वे उसे पढ़ाते और मित्रों और पड़ोसियों में उस की प्रशंसा करते न थकते। पर इधर जब से दुरो युवा हुई थी, बावा जी की यह सरल प्रशंसा भी उस के हक़ में बुरी साबत हो रही थी। मौसी को अपने पति पर सन्देह होने लगा था। जब कभी मौसा अपनी पत्नी की उपस्थिति में

दुरो की प्रशंसा करते तो मौसी ईर्षा-वश चार जली-कटी सुना कर उस के अवगुण गिनाने बैठ जातीं। दुरा का मन बड़ा खिन्न होता। उस का जी चाहता कि उस का वश हो तो मौसी के इस अहसान के बोझ से सदा के लिए निष्कृति पा ले। पर वह कुछ न कर पाती। अपनी बिसात से भी अधिक काम कर मौसी को प्रसन्न करने का प्रयास करती और यथा-सम्भव अकेले मौसा के सामने पड़ने से बचती।

अमृतसर से सत्या जी के लाहौर आने से उस की मुश्किल कुछ आसान हो गयी थी। सत्या जी से उस का सहेलपना सा हो गया था और उन के कारण वह घर के बाहर की सरगर्मियों में भाग ले, अपने मन के बोझ को हल्का करने लगी थी। घर के झगड़ों से उसे सत्या जी के पास त्राण भी मिलता था और नैतिक बल भी। किन्तु उन के आने के बाद भी घर का काम वह पूर्व-वत करती थी और मौसी को प्रसन्न रखने में कोर-कसर न उठा रखती थी।

छै बजते-बजते उस ने घर की झाड़ू-बहारी, गाय की सानी-पानी निपटा कर दही मथ डाला और स्नानादि से निवृत्त हो कर बासी रोटी के साथ छाछ का एक कटोरा पी, पुस्तकों का बंडल बग़ल में दबाया और चल दी।

बड़े कमरे की खिड़की में सत्या जी अन्यमनस्क सी खड़ी बाहर तक रही थीं। दुरो को इतनी सुबह तैयार हो कर जाते देख उन्हों ने मुड़ कर पूछा, "किधर?"

"ज़रा महिला विद्यालय तक जा रही हूँ।"

"कैसे?"

"कुछ पुस्तकें वहाँ मिसेज़ भाटिया को दिखानी हैं और भी एक दो जगह जाना है।"

"समय पर आ जाना। 'संस्कृति समाज' के संबंध में भी दो-चार जगह जाना है। वे दस बजे तक प्रोग्राम और निमंत्रण देने को

कह गये हैं। शाम को मीटिंग है लाजपत राय हाल में। तुम्हारी सहेलियों से भी मिलना है।"

"मैं उन्हें अपनी ओर से निमंत्रण दे आऊँगी। सब न सही तो कुछ अवश्य आ जायँगी।"

"नहीं, तुम आ जाना दस बजे तक। गोपालनगर ही में दो एक जगह हो आयेंगी।"

"दस तो नहीं, बारह एक तक आ सकूँगी।"

और यह कह कर वह सीढ़ियाँ उतर गयी।

१७

ग्यारह बज चुके थे, जब दुरो कालेज फॉर विमैन के होस्टल से निकली। यद्यपि वह महिला-महा-विद्यालय और देवचन्द कालेज के होस्टलों से होती आयी थी, थक भी गयी थी, पर वह बड़ी प्रसन्न थी। धूप की तीव्रता से, उस का रंग लाल हो गया था। बाल जो प्रातः उस ने सँवारे थे, जूड़े से स्वतन्त्र होकर इधर उधर उड़ रहे थे, पसीना कनपटियों से चू रहा था, ओठ सूख रहे थे, पर उस के पैरों में थकन न थी। वह इन चार घंटों के अन्दर अन्दर तीस रुपये की पुस्तकें बेच आयी थी। सब से बड़ी बात यह थी कि पच्चीस रुपये वह नक़द ले आयी थी और फिर उस को आशा थी कि जहाँ-जहाँ वह हो आयी है, वहाँ धीरे-धीरे क्षेत्र फैलता जायगा।

यद्यपि देर हो रही थी और उस ने सत्या जी को शीघ्र ही पहुँचने का वचन दिया था, पर अपनी इस सफलता की बात कामरेड हरीश तक पहुँचाने का मोह वह छोड़ न सकी थी और काम निपटा कर वापस गोपालनगर चलने के बदले ग्वाल मंडी की ओर चल दी थी, जहाँ श्याम गली के एक मकान में काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का दफ़्तर था। दफ़्तर क्या, कामरेड हरीश वहाँ रहते थे। विचारों से वे साम्यवादी थे, पर उस समय सोशलिस्ट क्या और कम्यूनिस्ट क्या, सभी पार्टियाँ काँग्रेस के अंतर्गत काम करती थीं। कामरेड हरीश का घर, घर क्या कमरा ही

पार्टी का दफ़्तर था। चौबारे में वे रहते थे और नीचे कमरे में पार्टी का सारा काम होता था। स्टडी सरकल था, पुस्तकालय था और पार्टी की बैठकें होती थीं। उन को अपनी इस सफलता की बात बता कर और फिर आगे के लिए आदेश लेकर ही वह वापस जाना चाहती थी। 'संस्कृति समाज' के संबंध में उन्हें भी बुलाना चाहती थी। कम से कम 'संस्कृति समाज' की बात वह उन के कानों में डाल देना चाहती थी। 'संस्कृति समाज' के सदस्यों में प्रचार कैसे किया जाय, यह वह उन से पूछना चाहती थी।

हाल रोड को पार कर वह मेक्लोड पर आ गयी। उसे पार कर सीधी ट्रिब्यून आफ़िस की ओर जाना चाहती थी कि उस के मन में आयी, नाहक वह हरीश को परेशान करने जा रही है। इस समय उन्हें यह सब ब्योरा देना क्या ज़रूरी है। 'स्टडी सरकल' की बैठक में वह सब बता देगी। हृदय ने उसे धिक्कारा कि वह केवल हरीश से मिलने का बहाना ढूँढ रही है और मन की इस धिक्कार से जैसे प्रताड़ित हो वह सीधी जाने के बदले माल रोड की ओर वापस फिरी कि वहाँ से सीधी गोपाल नगर चली जाय।

परन्तु चन्द ही क़दम चलने पर उसे अपनी इस भावुकता पर फिर हँसी आयी। 'स्टडी सरकल' वह आज कैसे जायगी? साँझ को तो 'संस्कृति समाज' की मीटिंग है। कब तक चलेगी, क्या कहा जा सकता है। अभी उन से मिल लेना ठीक होगा। दो मिनट में सब कह और पूछ कर वह चली आयेगी। वह फिर मुड़ी। अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के आगे उसे यह भावुकता निरर्थक लगी।

परन्तु ज्यों ही वह श्याम गली की ओर जाने के विचार से पटियाला हाउस के उस गेट से मुड़ी जो कभी वहाँ प्रदर्शनी के सिलसिले में बनाया गया था और अब कई वर्षों से वैसे ही खड़ा था कि कर्तव्य की बात सहसा उस के मस्तिष्क से उतर गयी और वहाँ माथी

हरीश का चाय, काम और अध्ययन के आधिक्य से पीला-दुबला मुख आ गया।

हरीश कौन थे, उन का अतीत कैसा था, यह सब वह कुछ भी न जानती थी। एक दिन सत्या जी और अपनी सहेली चम्पा के साथ वह स्टूडेंट फेड्रेशन की सभा में गयी थी और उस ने पहली बार उन्हें वहाँ देखा था। फॉर्मेन क्रिश्चियन कालेज के एक प्रोफ़ेसर को उन की राजनीतिक अभिरुचि के कारण अलग कर दिया गया था। लड़कों ने हड़ताल कर दी थी। इसी बात को लेकर विरोध-स्वरूप फेड्रेशन की सभा हुई थी। राजनीति में छात्रों और अध्यापकों के भाग लेने के प्रश्न को लेकर, कालेज के अधिकारियों के विरुद्ध बड़े ज़ोरदार भाषण हो रहे थे। कुछ युवक नेताओं के भाषण पतली-पतली-सूखी शाखाओं की भड़भड़ा कर जल उठने वाली आग की भाँति थे। उन की ज्वालाओं में ताव न था, भड़भड़ाहट और चमक अधिक थी— क्षण भर मन की आँखों को चुँधिया कर बुझ जाने वाले; दूसरों के भाषण देवदार की ज्वाला थे— मशाल की भाँति जलने वाले पर सेंक कम; कुछ के गीली लकड़ी की भाँति तिमक-तिमक जलने वाले थे—धुँधुआ आने और ऊबा देने वाले; परन्तु हरीश की वक्तृता निरन्तर जलने वाली इमली की आग थी, आँखों को रौशन और हृदय को गर्म करने वाली। न वे हाथ से हवा को चीरते थे, न मेज़ पर मुक्के जमाते थे; उन के भाषण की ज्वाला बिना लपलपाये अनवरत जल रही थी। दुरो उस दिन स्वप्न में चलती हुई सी घर आयी थी और उस आग की ऊष्णता और प्रकाश अपने साथ लायी थी। रात सोयी तो हरीश का भाषण, उन का गम्भीर स्वर, उन की पीली-पीली आकृति उस की आँखों में घूमती रही थी।

चम्पा के साथ वह पार्टी के स्टडी सरकल में गयी थी और जब नयी कताबें आयीं और सतीश ने सरकल के सदस्यों से अधिक से अधिक कीमत की पुस्तकें बेचने को और इस प्रकार पार्टी के हमदर्द बनाने के

लिए कहा तो जहाँ किसी ने दस और किसी ने बीस की पुस्तकें बेचने का ज़िम्मा लिया, वहाँ वह पचास रुपये की पुस्तकें ले आयी थी।

पटियाला हाउस की लम्बी फ़सील दुरो को आकर्षित किये बिना पीछे रह गयी। फ़सील के चौकोर वर्गों में सफ़ेदी और स्याही की सहायता से दुनिया जहान के विज्ञापन अंकित थे—बाल घुट्टी से लेकर उपदंश, प्रमेह और मधुमेह तक के, हीर राँझा और देवदास से लेकर सती सावित्री और सीता आदि प्रसिद्ध फिल्मों के, फिर पानी के हैंड पम्पों, बिजली के पंखों, कामिल हकीम चिश्ती, वैद्यराज इन्द्रजीत तथा बिजली का इलाज करने वाले डाक्टर महेन्द्र सिंह की योग्यता के— इन विज्ञापनों में, विशेषकर जो नये आने वाले फिल्मों से संबंध रखते थे, बड़े सुन्दर और चित्ताकर्षक चित्र भी थे जो अनायास ही दृष्टि को अपनी ओर खींच लेते थे और उन के कारण वह सूना सा रास्ता जिस के एक ओर मेडिकल कालेज-होस्टल की दीवार थी और दूसरी ओर यह सूनी फ़सील, दिल बहलाने का सामान जुटा देता था। पर दुरो का ध्यान एक भी विज्ञापन की ओर न गया। बगल में शेष पुस्तकों का बंडल लिये, धरती में निगाहें जमाये, वह चुपचाप चली गयी। उस ने तब तक आँख ऊपर न उठायी जब तक वह मैक्लेगन और निस्बत रोड को पार कर श्याम गली में पार्टी के दफ़्तर नहीं पहुँच गयी।

कामरेड हरीश उस समय अपने एक साथी श्यामलाल के साथ तीन चार दूसरे अनगढ़ व्यक्तियों से ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। दुरो को आया जान हरीश ने हाथ का पंखा उस की ओर बढ़ा कर कोने की ओर संकेत कर दिया। बिना कुछ कहे दुरो कोने में ढेर हो गयी। पहले उस ने अपने पैर पसार लिये। दीवार से पीठ लगायी और ज़ोर-ज़ोर से पंखा करने लगी। फिर कुछ क्षण बाद उस ने टाँगें समेट लीं। पैरों को अपनी साड़ी के छोर से दबा लिया और आँचल से मुँह का

पसीना पोंछ धीरे-धीरे हवा करने लगी।

"सवाल यह नहीं कि नूरा शराबी है"—हरीश कह रहे थे, सवाल यह है कि उस को सस्पेंड[1] करना कहाँ तक उचित है। मालिकों को उसे सस्पेंड करने का, या इंस्पेक्टर के बदले उस को कंडक्टर बनाने का क्या अधिकार है।"

"हाँ जी वो माई...कौन होते हैं मेरे निजी मामलों में दखल देने वाले।" नूरदीन ने बिना इस बात का ख़याल किये कि कमरे में एक सम्भ्रान्त लड़की बैठी है, एक बड़ी सी वज़नी पंजाबी गाली हवा में फेंक दी और बोला कि उसकी बीवी तो साली छिनाल है और वह एक दिन उस माई...का गला काट देगा।"

दुरो ने देखा—वह छोटे कद का पतला दुबला व्यक्ति है। बड़ी बड़ी उस की मूँछें हैं, कल्ले धँसे और डाढ़ी बढ़ी है। और लगता है जैसे उस ने पी रखी है। उस का साथी क़द्दे थल-थल पिल-पिल व्यक्ति था। दोनों ने तहमद और कुर्ते पहन रखे थे।

"लेकिन उस ने जाकर मालिक से कहा तभी तो उस ने तुम्हें हटाया।" थल-थल पिल-पिल व्यक्ति ने ताना दिया।"

"यह किसी दूसरी औरत के साथ रहता है, यह बात अच्छी नहीं" हरीश बोले, "बुरी है, लेकिन इस बात से इस की नौकरी का कोई संबंध नहीं। क्या उस औरत के कारण इस ने नौकरी से ग़फ़लत की? क्या यह ड्यूटी पर हाजिर नहीं हुआ? क्या यह ड्यूटी छोड़ कर चला गया? अगर नहीं तो सिर्फ़ इस लिए कि यह शराब पीता है या बीवी को तंग करता है, या इस की बीवी ने इस के मालिक से जाकर शिकायत की है, इस को डीमोट[2] नहीं किया जा सकता।"

---

१ सस्पेंड करना=अस्थायी रूप से नौकरी से हटाना।

२ डीमोट करना=पद घटाना।

"हाँ जी," नूरदीन ने हाथ से हवा को चीरते हुए कहा, "वो कौन होते हैं भैय्यी...मेरे मामलों में दखल देने वाले।"

"आज इस की बीवी ने कहा, कल मेरा भाई कह देगा। परसों किसी की अम्मां शिकायत कर देगी। मालिक को नौकरी से मतलब है कि हमारे घर वालों से?" तीसरे आदमी ने कहा।

"मैं ने आप लोगों से पहले भी कहा है," हरीश बड़े सब्र से बोले, "कि सब का इलाज यूनियन है। यह बात उचित भी हो सकती है। मालिक कह सकता है कि हम ने तो तुम्हारे फ़ायदे के लिए ही यह सब किया। सारा रुपया उस औरत को खिला देते हो।

"तो उस माई...का खिलाते हैं? जान मारते हैं। बारह बारह घंटे ड्यूटी देते हैं, चाहे किसी को खिलायें......"

"हाँ हाँ, यही मैं कह रहा हूँ," हरीश ने सब्र से कहा। "मालिक रोज़ कितनी अनुचित बातों पर नौकरों को तंग नहीं करते? सवाल ज़ोर और बेज़ोर का है। नूरदीन अकेला मालिक के सामने तिनके से ज़्यादा हैसियत नहीं रखता। वह उस को निकाल देगा तो यह चूँ नहीं कर सकता, पर यदि आप सब मिल जायँ तो मालिक की हैसियत तिनके से ज़्यादा नहीं रहती। सच जानिए, यह मुबालिग़ा[1] नहीं।"

"हाँ जी," नूरदीन ने हवा में घूँसा जमाते हुए कहा, "इन सालों का दिमाग़ दुरुस्त करने के लिए यूनियन ज़रूरी है। आप आज से हमें मेम्बर समझिए। प्रताप रोड में लायन[2] प्रेस के पीछे जो तबेला है, वहीं मेरे पास एक कोठरी है। उस पर हम यूनियन का बोर्ड लगा देते हैं। आज शाम को अगर आप आ जायँ तो मैं आदमी बुला रक्खूँगा।"

"मुझे ज़रा जगह दिखा दीजिए," हरीश ने कहा।

---

१ मुबालिग़ा = अत्युक्ति

२ Lion

"अभी चलिए।" और वे सब उठे। बातों की रौ में हरीश दुरो के आगमन की बात बिलकुल भूल गये थे। उन्हें उठते देख कर दुरो चौंक कर उठी।

श्यामलाल ने हरीश का ध्यान उधर आकर्षित किया। हरीश उस के पास आये, "मैं अरसे से यहाँ ट्रांसपोर्ट यूनियन खोलने की फ़िक्र में हूँ।" उन्हों ने दुरो से कहा, "आज अवसर उपस्थित हुआ है, मैं ज़रा जल्दी में हूँ। कहिए!"

दुरो का मुँह लाल हो गया। आवाज़ उसे गले में अटकती सी लगी। किसी तरह सचेत हो कर, पूर्ववत् फ़र्श में निगाहें गाड़े उस ने कहा, "मैं तीस रुपये की किताबें बेच आयी हूँ।" और ब्लाउज़ के अन्दर से रूमाल में बँधे रुपये निकाल उस ने हरीश के हाथ में रख दिये।

"दैट इज़ इक्सलेंट कामरेड," हरीश ने उस की पीठ को थपथपा दिया। "चार छः ऐसे उत्साही साथी मिल जायँ तो क्या बात है।"

"आज 'संस्कृति समाज' की मीटिंग है।"

"संस्कृति समाज ?"

"यहाँ के लेखकों और कवियों ने एक समाज स्थापित किया है। आज उस की बैठक है। मैं आप को निमंत्रण देने आयी थी।"

"मैं तो इधर व्यस्त हूँ!"

"तो मैं आज वहाँ जाऊँ? वहाँ काँटेक्ट (Contact) बनाना चाहती हूँ। स्टडी सरकल की मीटिंग में न आ सकूँगी।"

"गुड!" और हरीश उस की पीठ को थपथपा कर उन लोगों के पीछे उतर गये।

दुरो क्षण भर विमुग्धा सी खड़ी रही फिर तेज़ तेज़ निकल गयी।

१८

यह तुम बारह बजे आयी हो, प्रतीक्षा करते करते आँखें पक गयीं।"

घर में प्रवेश करते ही दुरो को सत्या जी के शब्द और हँसी सुनायी दी।

साड़ी के छोर से मुँह का पसीना पोंछते और पुस्तकों का बंडल एक ओर रखते हुए द्रौपदी थकी सी चारपाई की पट्टी पर बैठ गयी। "चार छै जगह गयी बहन जी, देर हो गयी। मोहनलाल रोड से ताँगे पर आयी हूँ नहीं डेढ़ बज जाता।"

"मोहन जी दो घंटे से आये बैठे हैं। तुम्हारी खातिर मैंने इन्हें रोक रखा है। चार बार उठ चुके हैं, पाँचवी बार उठा चाहते हैं।" और सत्या जी फिर हँसीं।

"आज समाज की पहली बैठक है, मुझे वहाँ कुछ देर तो पहले जाना ही चाहिए।" जगमोहन कुछ खिन्नता से हँस कर बोला।

"अभी तो एक बजा है।" दुरो ने कहा।

जगमोहन ने दृष्टि उठा कर देखा। पर दुरो की निगाह उस की ओर न थी। अँगीठी पर पड़ा पंखा उठा कर वह हवा करने लगी। जगमोहन ने फिर हँसने का उपक्रम किया। "जी एक तो बजा है, पर मैंने तो अभी खाना भी नहीं खाया और मुझे 'नीरव' जी को सूचित

करना है। उन के घर गया तो वे मिले नहीं। प्रोग्राम तो छोड़ आया हूँ, पर पहली बैठक है। मैं चाहता हूँ सब आ जायँ!"

"तभी तो मैंने कहा था कि आप यहीं खाना खा लीजिए। कब घर जायेंगे, कब खाना खायेंगे, कब 'नीरव' जी से मिलेंगे। यहाँ खाना खा लीजिए दस बीस मिनट आराम कीजिए फिर सीधे नीरव जी के घर चले जाइए।

जगमोहन चुप रहा। एक दो बार सत्या जी ने पहले भी खाना वहीं खाने के लिए कहा था, पर उस ने इनकार कर दिया था, इस बार वह चुप रह गया। दुरो के आ जाने से उस का मन वहाँ कुछ और देर बैठने को हो रहा था। उस की 'चुप' को 'आधी-हाँ' समझकर सत्या जी उठीं और उन्हों ने दुरो से कहा, "तुम ज़रा पानी लाकर मोहन जी के हाथ धुलाओ, मैं खाना लाती हूँ।"

"अभी लायी!" और यह कहते हुए पुस्तकें उठा कर दुरो कमरे से से निकल गयी।

जगमोहन ग्यारह बजे के लगभग सत्या जी के घर पहुँचा था। चातक जी से छपे हुए प्रोग्राम लेते और बाँटते-बँटाते उसे देर हो गयी थी। सब ओर से निश्चिन्त होकर वह सत्या जी के घर की ओर मुड़ा था। तैयार होकर आया था कि यदि कुछ देर बैठने का अवसर मिला तो बैठ भी जायगा। परन्तु जब सत्या जी ने डेवढ़ी का दरवाज़ा खोला, उसे ऊपर ले जाकर बड़े कमरे में बैठाया और बातों-बातो में उसे मालूम हुआ कि दुरो तो सुबह छै बजे ही घर से निकल गयी है तो उस का उत्साह ठंडा हो गया। उस ने शाम की बैठक का छपा प्रोग्राम जेब से निकाल कर सत्या जी की ओर बढ़ा दिया। लिफ़ाफ़ा खोल सत्या जी ने देखा। नीचे चातक जी के हाथ से लिखा हुआ था—"अवश्य

पधारिएगा, अपनी रचना साथ लाइएगा। कुछ खाली लिफ़ाफ़े भेज रहा हूँ। नाम स्वयं लिख कर अपनी ओर से अपनी सहेलियों को आमंत्रित कीजिएगा।"

"कुछ खाली लिफ़ाफ़े भी लाये हैं आप ?"

"जी।"

और उस ने खाली लिफ़ाफ़े उन की ओर बढ़ा दिये। सत्या जी ने उन्हें लेकर एक ओर रख दिया। तब जगमोहन उठा। "अच्छा तो मैं चलता हूँ। आप दुरो जी तथा अपनी सहेलियों को लेकर अवश्य पहुँचिएगा। अपनी रचना लाना न भूलिएगा।"

सत्या जी ने इस का कुछ उत्तर नहीं दिया। "आप भी कुछ पढ़ रहे हैं कि नहीं ?" उन्हों ने पूछा।

जगमोहन रुका। "जी हाँ, मैं भी एक कविता पढूँगा। नाम तो मेरा आप ने प्रोग्राम में देखा ही होगा।"

"जभी तो पूछा। आप कविता भी लिखते हैं, यह आज मालूम हुआ।"

"जी योंही कुछ लिख लेता हूँ। कवि तो चातक जी हैं, नीरव जी हैं, में तो........"

"यह नीरव और चातक जी में कुछ लगती है ?"

"आप से किस ने कहा ?" और जगमोहन स्वयं ही बैठ गया।

"पंडित दाताराम जी कह रहे थे कि वे जिन प्रोफेसर साहब के मकान में रहते हैं, वे बोर्ड के सदस्य हैं। दोनों को अच्छी तरह जानते हैं। उन्हीं ने हमारे पंडित जी को बताया होगा।"

"दोनों कवि हैं," जगमोहन ने कहा, "दोनों बाहर से आये हैं। एक यू० पी० से दूसरे सी० पी० से। पंजाब में आर्य-समाज ने भजनीक चाहे कितने पैदा किये हों, कवि ढङ्ग का एक भी पैदा नहीं किया। सो अंधों में काने राजा। एक होता तो चला जाता। यहाँ दो हैं और पंजाब का एक-मात्र कवि कहलाने का मोह दोनों को है।"

"आप ने भजनीकों की बात चलायी तो मुझे एक भजनीक की याद आ गयी। हमारे पिता जी कांग्रेसी भी हैं और आर्य-समाजी भी। मैं भी आर्य-समाज के लेक्चर सुनने जाया करती थी। एक बार गये तो एक भजनीक महोदय गा रहे थे।

ईश्वर नाम बिन जीवन अपना सारे भाई खोते हैं।
हाँ सारे भाई खोते हैं।
हाँ हाँ सब बहनें खोती हैं।

'खोते' का मतलब पंजाबी भाषा में होता है 'गधे' और 'खोती' का 'गधी'। जब सत्या जी ने भजनीक की नकल उतारते हुए हाथों से हारमोनियम सा बजाते हुए "हाँ हाँ सब भाई खोते हैं.........हाँ हाँ सब बहनें......' कहते हुए शब्द 'खोते' और 'खोती' पर ज़ोर दिया तो जगमोहन अनायास ठहाका मार कर हँस दिया।

इस के बाद सत्या जी आर्य-समाजी भजनीकों और सुधारकों के किस्से सुनाती गयीं। यह अजीब बात है कि उन्हों ने एक बार भी जगमोहन की ओर नहीं देखा। फ़र्श में, दीवार में, खिड़की के बाहर देखते हुए वे बात पर बात सुनाती चली गयीं। तभी जगमोहन के सिर के ऊपर, दीवार में टँगे क्लाक ने बारह की टन टन आरम्भ की और वह हड़बड़ा कर उठा।

"अच्छा अब मैं चलता हूँ।" उस ने कहा।

"मैं ने अपनी तीन सहेलियों को 'संस्कृति-समाज' का सदस्य बनाया है। उन का चन्दा लेते जाइए।"

और उठ कर सत्या जी अन्दर गयीं। कुछ क्षण बाद आकर उन्हों ने कहा, "चाबियाँ नहीं मिल रहीं।" और अँगीठी पर, पलंग पर, तकिये के नीचे और इधर उधर देखती हुई वे फिर अन्दर चली गयीं। फिर कुछ क्षण बाद आकर पलंग पर बैठते हुए उन्हों ने कहा, "शायद दुरो ले गयी

हो। आप ज़रा बैठिए, सुबह छै बजे की गयी हुई है, अब आतीही होगी।"

जगमोहन फिर बैठ गया। और उन्हों ने अपने कालेज की बात चला दी। कि पंडित दाताराम ने सब काम उन्हीं को सौंप दिया है और वे अपनी सहायता के लिए पंडित रघुनाथ को ले आयी हैं। पंडित रघुनाथ उन के पुराने परिचित हैं। अमृतसर में पढ़ाते थे, अब यहाँ आ गये हैं। बेकार थे। जब उन्हें पता चला कि सत्या जी देवचन्द कालेज की गुमटी बाजार वाली शाखा में आ गयी हैं तो उन के पास पहुँचे। एक जगह खाली थी, पंडित दाताराम से कह कर सत्या जी ने पंडित रघुनाथ को वहाँ रखवा दिया। और उन्हों ने बताया कि इन तीन दिनों के अंदर अंदर दस नयी लड़कियाँ केवल उन की अपनी कोशिश से कालेज में दाखिल हुई हैं। फिर वे पंडित दाताराम की बातें करने लगीं कि कैसे वे सभी कुछ उन पर छोड़े हुए हैं और उन्हें बेटी कह कर पुकारते हैं और कैसे जब वे पगड़ी उतार कर अपने गंजे सिर पर हाथ फेरते हैं तो अपनी समस्त गम्भीरता के बावजूद उन का जी उन की चांद पर एक चपत जड़ देने को होता है।

और घंटे भर तक सत्या जी अनवरत कालेज की लड़कियों, अध्यापक-अध्यापिकाओं और गली मुहल्ले की बातें सुनाती गयीं। जगमोहन एक दो बार फिर उठा, पर बातों की बहाव में उन्हों ने उसे फिर बैठा दिया। आखिर एक बजे के लगभग दुरो पुस्तकों को बग़ल में दबाये पसीने से नहाई हुई आ पहूँची।

"आइए हाथ धो लीजिए!" दुरो पानी का लोटा और तौलिया ले आयी।

जगमोहन उठा। दुरो के पीछे पीछे वह सीढ़ी की दूसरी ओर छत

पर गया, जहाँ इधर कोने में एक नाली और छोटा सा खुरा बना था और उधर चारपाइयाँ अपने मैले कुचेले बिस्तरों के साथ पंक्ति-बद्ध पड़ी सूख रही थीं। गृहणी के बिस्तर की चादर पर बड़े बड़े गोल दाग पड़े थे जो दूध पीते बच्चे का चमत्कार थे। सब बिस्तरों के तकिये तेल से सने थे, परन्तु इस तीक्ष्ण धूप में सूखने के बाद उन में बीमारी के कोई कीटाणु रह जाते होंगे, इसकी संभावना नहीं थी। हाँ आँखों को अच्छे न लगें, यह और बात है। पर निम्न-मध्य-वर्ग की आँखें इतनी नाज़ुक नहीं कि ये गन्दी चादरें या तकिये उन में खटकें। उनकी 'खटक' का स्तर भिन्न है। धुली धलायी चादरें बिस्तरों पर बिछी हों और घर में कोई बच्चा न हो तो उन को वह सब सफाई बड़ी कष्ट-प्रद लगेगी और यदि घर में अधनंगे, नंगे, दुखती आँखें और बहती नाक लिये हुए बच्चे रिरिया और किलबिला रहे हों तो फिर चादरों के गोल दाग़ और तकियों की मैल भी उन्हें भली मालूम होगी।

जगमोहन की दृष्टि उस ओर नहीं गयी। वह श्वेत पैंट और धारीदार कमीज़ पहने था, जिस के कालर और कफ़ को कल्फ़ लगा था। उसे इस बात का डर था कि पानी के छींटे छत के गंदे फर्श से उछलें तो उस की पैंट न खराब हो जाय, इसलिए वह नाली पर उकड़ूँ बैठ गया दुरो उस के हाथ धुलाने को झुकी तो उस की एक चोटी कंधे से फिसल कर जगमोहन की अंजली पर आ गिरी। दुरो ने तत्काल बायें हाथ से फिर उसे पीछे फेंक दिया। परन्तु उन नर्म नर्म बालों के उस क्षणिक स्पर्श से जगमोहन को रोमांच हो आया। उस तपती धूप में भी जैसे निमिष भर को हवा का ठंडा झोंका बह गया। उस ने दुरो की ओर देखा। केशों की इस उद्दंडता से उस के मुख पर लाली दौड़ गयी. पर वह लाली लज्जा की थी अथवा धूप की, इसे जगमोहन न जान सका, क्योंकि दुरो की आँखें उस की ओर न थीं। हाँ उस का अपना मुख लज्जारुण हो गया, क्योंकि उस ने अनजाने ही में उन बालों को अंगुली और

अँगूठे से छू लिया था। हाथ धो कर वह कमरे में वापस आया तो सत्या जी ने खाना लाकर छोटी सी तिपाई पर रख दिया था।

"आप ने खाना नहीं खाया?" जगमोहन ने पूछा।

"आप खा लीजिए, हम भी खाते हैं।"

"बड़ी देर हो गयी है। आप भी खा लीजिए।"

"नहीं आप खाइए!" सत्या जी ने कहा। फिर उन्हों ने दुरो को आवाज़ दी कि वह खाना खा ले। छै बजे की गयी हुई है, भूख लग आयी होगी उसे।

"आप खाइए तो खायें!" दुरो ने किचन से आवाज़ दी।

"नहीं नहीं तुम खा लो।"

थाली में उड़द की दाल और चावल थे। जगमोहन को न चावल पसन्द थे न उड़द। उड़द की दाल यदि खुले घी और प्याज़ से छौंकी गयी होती और सत्या जी के साथ दुरो भी यदि उस के सामने कुर्सी पर आकर बैठ जाती तो जगमोहन को न उड़द की दाल अखरती न चावल परन्तु अब.........पर थाली में आम के अचार की एक फाँक और भुने हुए पापड़ का एक टुकड़ा रखा था और फिर किसी ने न कहा है कि :

भूख हो तेज़ तो लेटी* भी मज़ा देती है
कंठ से नीचे उतर जाती है हलुवा होकर।

इसलिए जगमोहन ने चावलों में दाल मिलाकर जरा सा अचार और पापड़ ले, पहला कौर मुँह में डाला तो उसे बड़ा स्वादिष्ट लगा।

सत्या जी ने उस समय अपनी 'चाची' के व्रत-नियम की बात छेड़ दी कि एकादशी होने से 'चाची' व्रत से हैं और घर में चावल और उड़द पके हैं और किस प्रकार वे ग्यारह एकादशियों का व्रत रखे हुए हैं। और

---

*शीरे का पतला हलुवा सा।

किस प्रकार ग्यारह एकादशियों का व्रत पूरा करने के बाद ग्यारह पूर्णमासियों का व्रत लेंगी आदि आदि ।

पर जगमोहन वह सब न सुन रहा था । उस के श्रवण उस की कल्पना में थे और उसकी कल्पना में वह क्षण मूर्तिमान हो रहा था जब वह हाथ धोने के बदले खुरे पर उकड़ूँ बैठा था और जल की शीतल धार सी दुरो की चोटी उस की अंजली में आ गिरी थी । वह परस, उस परस का वह पुलक खाना खाते समय कल्पना ही कल्पना में उस के अणु अणु में भर गया । तब सत्या जी बता रही थीं कि किस प्रकार जन्माष्टमी के दिन उन के घर उड़द चावल और हलुवा पकता है और कंजका (कुमारी कन्याएँ) जीमने को आती हैं और दक्षिणा के साथ उन्हें एक एक बसन्ती दुपट्टा भी दिया जाता है ।

उस ने खाना खा लिया तो इस बार सत्या जी ने उस के हाथ धुलवाये ।

"आप स्वयं ही पहुँच जायँगी न ? लाजपत राय हाल का कमेटी रूम तो आप ने देखा ही होगा । वहीं मीटिंग होगी ।"

"जी हाँ, हम पहुँच जायँगे, आप चिन्ता न कीजिए । अभी खाना-वाना खाकर हम दोनों अपनी सहेलियों के यहाँ जायँगी और उन को लेते हुए समय पर लाजपत राय हाल पहुँच जायँगी ।"

हाथ धोकर जगमोहन वापस कमरे में आया, उस ने अपना हैट उठाया और बोला, "लीजिए आप अब खाना खाइए, बड़ी देर हो गयी है ।

"एक मिनट बैठिए", सत्या जी ने कहा । वे जैसे उसे जाने ही न देना चाहती थीं । उन्हें अपनी तीन सहेलियों के चन्दे की बात याद आ गयी । "मैं दुरो से चाबी लेकर आप को चन्दा दे दूँ ।"

"साथ लेते आइएगा," अब काहे कष्ट करती हैं ।"

"नहीं कष्ट क्या । अभी लाती हूँ ।"

और वे चली गयीं। जगमोहन का विचार था शायद दुरो आये! वह सोच रहा था कि कैसे वह उसे 'नमस्कार' करेगा और कैसे वह उत्तर देगी। पर दुरो का खाना ही कदाचित् समाप्त न हुआ था। वह नहीं आयी। सत्या जी चाबी लेकर आयीं और चाबी आलमारी के ताले में घुमाते-घुमाते उन्हों ने चाबियों के गुम होने का किस्सा सुनाना आरम्भ कर दिया कि उन की एक सहेली को ताले लगाने की आदत न थी, हर चीज खुली रखती थीं। एक बार उन के पड़ोस में एक ऐसी स्त्री आ बसी जो हर ट्रंक, आलमारी और हर चीज़ को ताला लगाती थी। नौकर को कोयले देते समय गिन लेती थी और लकड़ी नाप देती थीं। कुछ उन की देखा देखी और कुछ उन के शुभ-परामर्श पर सत्या जी की सहेली ने भी एक दिन अपने पति पर जोर देकर ताले मँगाये और हर आलमारी और ट्रंक को लगा दिये। छुट्टी का दिन था। दोनों कहीं बाहर गये। थक हार के आये तो पति ने कहा कि गर्म-गर्म चाय बनाओ। नौकर ने गोदाम की चाबी माँगी तो मालूम हुआ कि चाबी कहीं रखी गयी है। ख़ैर पति ने कहा कि पड़ोस से थोड़े कोयले लाकर आग जला दो। नौकर ने वैसा ही किया। पानी उबलने लगा। परन्तु देवी जी ने चाय, चीनी, दूध सब कुछ ताले में रख दिया था। पति-पत्नी इतने झुँझलाये कि एक एक पत्थर दोनों ने पकड़ा और जितने उत्साह से सुबह ताले लगाये थे, उसी जोश से तोड़ने लगे। वह दिन और आज का दिन जो फिर उन्हों ने कभी किसी चीज़ को ताला लगाया हो।

यह कहानी सुनाते और उसे चन्दे के रुपये देते देते और बीस मिनट सत्या जी ने लगा दिये। दुरो अब भी नहीं आयी। आखिर जगमोहन ने लम्बी साँस ली और सत्या जी जो नमस्कार किया।

"चलिए मैं आप को नीचे तक छोड़ आती हूँ।"

और वे उस के पीछे पीछे उतरीं।

"चलते चलते उस ने कहा, "अपनी बहन और अपनी सहेलियों को अवश्य लाइएगा।"

"निशाखातिर रहिए!" सत्या जी ने कहा और जब तक वह नज़रों से ओझल नहीं हो गया, वे चौखट में खड़ी रहीं और फिर लम्बी साँस लेकर ऊपर चली गयीं।

१६

लाजपतराय हाल के दो गेट थे। एक सनातन धर्म हाई स्कूल के सामने का, जो सीधा हाल के बरामदे में खुलता था और दूसरा डी० ए० वी० कालेज होस्टल के सामने का, जो उस अहाते में से होकर हाल को जाता था, जहां 'पीपल्ज़ सोसाइटी' के सदस्य रहते थे। दुरो, सत्या जी और दूसरी सहेलियों के साथ इसी अहाते की ओर से आयी। ऊपर होस्टल की दूसरी मंज़िल के कमरे में इतनी सारी लड़कियों को देख कर किसी दिल जले ने नारा लगाया :

या इलाही मिट न जाये दर्दे दिल
मिटने वालों को मिटाये दर्दे दिल।

लेकिन लड़कियों ने उस दिलजले को नहीं देखा, लड़कियों की निगाहें और भी नीचे झुक गयीं। केवल दुरो ने एक क्रोध भरी दृष्टि उस बदतमीज़ की ओर डाली, पर वे महाशय टट्टी की ओट से शिकार खेलने वालों में से थे, खिड़की पर जाली लगी थी। उस के पीछे खड़े वे आने-जाने वालों (वालियों) को अपने दर्दे दिल का हाल सुना रहे थे। दुरो की उस क्रोध भरी दृष्टि से जैसे बिंध कर उन्हों ने सीने पर हाथ रखा और ज़ोर से एक 'हाय' की। पर दुरो तब तक अहाते में दाखिल हो चुकी थी।

अहाते को पार कर वे लाजपतराय हाल के बरामदे में दाखिल हुईं और कोने में लाइब्रेरी को जाने वाले जीने की ओर बढ़ीं, क्योंकि उधर ही से ऊपर कमेटी रूम को रास्ता जाता था।

"आप लोग आ गये।" सहसा उन के कानों में आवाज़ पड़ी। हुरो ने देखा हाल के सामने वाले दरवाज़े की ओर से सिल्क का कुर्ता और पतली महीन धोती पहने जगमोहन उन की ओर आ रहा है।

"आइए, आइए, मैं आप ही लोगों की प्रतीक्षा कर रहा था।" यह कहते हुए वह उन के आगे आगे सीढ़ियों पर हो लिया, "आप लोग कदाचित् देव-समाज की ओर से आयी हैं।"

सत्या जी ने पूछा कि वे लोग देर से तो नहीं पहुँचीं?

"नहीं नहीं, आप बिलकुल समय पर आयी हैं। कार्यक्रम आरम्भ होने में अभी देर है।"

कमेटी रूम के बाहर बरामदे में बहुत से जूते पड़े थे। एक ओर सब ने जूते उतारे और जगमोहन के पीछे पीछे जाकर दरी पर बैठ गयीं।

लाजपतराय हाल का कमेटी रूम काफ़ी बड़ा कमरा था। छत तनिक नीची थी, पर खुला यथेष्ट था। छत में पंखा घरघरा रहा था, नीचे दरी बिछी हुई थी। काफी लोग आ गये थे। शान्ता बहन वहाँ अपने विद्यालय की छात्राओं के साथ पहले से बैठी थीं। उन के पति श्री भगत राम दूसरी ओर पुरुषों में विराजमान थे। जगमोहन के साथ सत्या जी को आते देख कर वे तनिक खांसे और उन्हों ने अपने परदांत दिखा दिये। तभी सत्या जी की दृष्टि दरी के एक सिरे पर महामना मालवीय जी बने बैठे पंडित दाताराम की ओर गयी और उन्हों ने दोनों हाथ माथे पर ले जाकर 'नमस्कार' किया।

जगमोहन उन को बैठा कर और लोगों के स्वागतार्थ वापस चला गया। तब कवि चातक अपनी जगह से उठ कर दायें हाथ से अपने बालों को पीछे हटाते हुए उन की ओर आये। हाथ में उन के एक

कागज था, "कहिए आप लोग आ गये ?" उन्हों ने हँसते हुए कहा।

दुरो के जी में आयी, कहे—आप देख तो रहे हैं। पर वह चुप रही। प्रकट है कि सत्या जी ने भी इस का उत्तर देना जरूरी नहीं समझा। तब स्वयं ही कवि चातक ने कहा, "हम तो डर रहे थे कि आप धोखा दे गयीं।

सत्या जी अब भी चुप रहीं।

"कहिए कुछ लायीं।"

"मालती वाला लेख लायी हूँ।" उन्हों ने वैसे ही दरी की ओर देखते हुए कहा, "नया कुछ लिखने का तो समय नहीं पा सकी। और फिर सभा में पढ़ने-पढ़ाने का मुझे अभ्यास नहीं।

"ठीक है, ठीक है," चातक जी ने कहा, "पढ़ती रहोगी तो अभ्यास भी हो जायगा। इसीलिए तो समाज की स्थापना की है।" और कागज पर उन का नाम लिखते हुए बोले, "आप की सहेलियों में से कोई कुछ पढ़ेगा ?" और उन्हों ने एक दृष्टि उन सब की ओर डाली। लड़कियों की निगाहें दरी पर जम गयीं। केवल दुरो ने दृष्टि भर कर कवि की ओर देखा। उस दृष्टि की तेज़ी और निस्संकोचता से कवि कुछ सकपका गये। उन का हाथ अनायास अपने बालों पर चला गया। फिर कुछ सम्हल कर तनिक मुस्कराते हुए कवि ने कहा, "कहिए आप कुछ सुनायँगी।"

"यदि हम सब सुनाने लगीं तो आप लोगों को कौन सुनेगा।" सहसा दुरो ने कहा।

चम्पा ने उसे ठहोका दिया और दोनों अपनी अपनी साड़ी के छोर में मुँह देकर हँस पड़ीं। कवि इस परिहास का उत्तर न दे पाये। पर उन का मन हरा हो गया और उन्हों ने अपनी नयी कविता इसी मृगनयनी पर लिखने का संकल्प कर लिया।

तभी 'नीरव' जी अपने चदरे को सम्हालते, पान चबाते और ओठों के बायें कोने से मुस्कराते हुए आ गये और कमरे में 'नमस्कार'

जाय तो क्या स्टडी सरकल भी चलोगी।"

"समय रहा तो चले चलेंगे।"

तभी बैठक का कार्यक्रम आरम्भ हो गया।

सब से पहले श्री धर्म देव वेदालंकार ने 'संस्कृति समाज' की स्थापना के संबंध में अपने विचार उपस्थित महानुभावों के समक्ष रखे और इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि उस का आरम्भ डा० घनादन्द जैसे प्रकांड पंडित और विद्वान के हाथों हो रहा है। अपने भाषण में उन्हों ने सभापति की बड़ी प्रशंसा की और बोर्ड के दूसरे उपस्थित सदस्यों के आगमन पर उल्लास दर्शाते और बड़ी कुशलता से उन का नाम गिनाते हुए उन के गुणों का बखान किया।

श्री धर्म देव के बाद कवि चातक ने अपने उद्गार प्रकट किये कि किस प्रकार वे 'संस्कृति समाज' के संस्थापन का स्वप्न देखा करते थे और आज उस स्वप्न के सत्य होने में जितनी प्रसन्नता उन्हें है, उतनी किसी को नहीं। समाज के पहले अधिवेशन में यथेष्ठ संख्या में कोमल वर्ग की उपस्थिति निश्चय ही समाज के उज्ज्वल भविष्य की परिचायक है। भारत की संस्कृति में आदि काल में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ योग देती रही हैं। उन्हों ने लीलावती की मिसाल दी जो बड़ी भारी गणितज्ञ थी, दुर्गावाई तथा लक्ष्मीबाई का उल्लेख किया जिनकी वीरता की चर्चा आज भी घर घर है और कहा कि पीछे भारत की नारी ने जो पुरुष का साथ देना छोड़ दिया—कई कारणों से जिसे छोड़ने पर वह विवश हुई, उस से भारत को कम क्षति नहीं उठानी पड़ी...अब नारी घर की चारदीवारी से निकल कर राजनीतिक और सांस्कृतिक मोरचों पर पुरुषों के कंधे से कंधा मिला कर योग दे रही है, यह भारत की उन्नति का बड़ा शुभ-लक्षण है और इसे देख कर कवि चातक का हृदय हर्ष से ओत-प्रोत

हुआ जा रहा है।

कवि चातक के बाद शुक्ला जी समाज को अपनी शुभाकांक्षाएँ प्रदान करने के लिए खड़े हुए। पर वे क्या कह गये, दुरो ने वह सब नहीं सुना। वह सत्या जी के पीछे बैठी 'यूरोप की स्वतन्त्र नारी' पढ़ने में व्यस्त रही। कल्पना ही कल्पना में वे दिन वह देखती रही जब भारत में स्त्री को सचमुच पुरुष के बराबर का अधिकार प्राप्त होगा। कवि चातक 'संस्कृति समाज' में कोमल वर्ग की उपस्थिति पर हर्षातिरेक से मरे जा रहे थे, किन्तु दुरो जानती थी कि उन की पत्नी घर के कुएँ में बन्द सब तरह से विवश पड़ी है। चातक जी ही क्या, दुरो जानती थी कि शुक्ला जी, नीरव जी, डाक्टर घनानन्द, प्रोफेसर स्वरूप और अन्य लगभग सभी महानुभावों की पत्नियाँ घर की चक्की में पिसी जा रही हैं और वह उन दिनों के स्वप्न देख रही थी, जब जीवन के हर मार्ग पर नारी पुरुष के कंधे से कंधा और पग से पग मिला कर चलेगी और पुरुष उसे सीता, सावित्री के आदर्श से बहकायेंगे नहीं, सचमुच जीवन संगिनी, सहचरी और मंत्रिणी बनायेंगे।

तभी शुक्ला जी बैठ गये। श्री धर्म देव ने चातक जी से लिखा हुआ प्रोग्राम लेकर नीरव जी के सामने बढ़ाया। नीरव जी ने एक नज़र देख कर प्रधान की ओर बढ़ाया और प्रधान ने श्री कंटक से अपनी कविता पढ़ने की प्रार्थना की।

उन दिनों हिन्दी कविता के युवक प्रेमियों के हृदयों पर श्री 'बच्चन' का राज्य था। कंटक जी युवक भी थे और उनके हृदय का काँटा गोपाल नगर ही के एक सुन्दर फूल से बिंध भी चुका था। इसलिए 'बच्चन' की तर्ज़ पर उन्हों ने एक गीत सुनाना आरम्भ किया। आवाज़ तो बच्चन की सी वे कहाँ से लाते, पर हाँ भावनाओं की नकल करने का भरसक प्रयास उन्हों ने किया।

तुम सोती हो मैं जगता हूँ
गिनता हूँ नभ के तारों को
गिनता हूँ अपनी हारों को
करके निद्रा का आवाहन मैं फिर फिर उसको ठगता हूँ
तुम सोती हो मैं जगता हूँ

कंटक जी के बाद एक दूसरे स्थानीय कवि श्री 'अवसाद' जी ने श्रीमती महादेवी की शैली में एक व्यथा-गान पढ़ा।

देव इस अवसाद का सुख कौन जाने।

इन दो कविताओं के बाद प्रधान ने श्री धर्म देव वेदालंकार से अपनी कहानी पढ़ने की प्रार्थना की। टाई की गिरह और पतलून की क्रीज़ को दुरुस्त करते हुए धर्म जी अपनी कहानी सुनाने लगे।

श्री धर्म देव वेदालंकार ने बहुत कुछ न लिखा था। उन की कुछ कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं। जिन में से अधिकांश उन्हों ने कोर्स की पुस्तकों में शामिल कर ली थीं। उन का बड़ा कारनामा यह था कि उन्हों ने हिन्दी में विदेशी कहानियों के अनुवाद किये थे अथवा दूसरों से करा के छपवाये थे। उन का दावा था कि कथा की (कथा ही क्यों, उपन्यास, नाटक और कविता की भी) कला को जितना वे समझते हैं उतना कोई नहीं समझता। लिखा उन्हों ने चाहे अधिक न था, परन्तु लिखने के प्लान उन्हों ने बहुत बना रखे थे और कदाचित् इसी कारण वे अपने आप को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कलाकार समझते थे।

कहानी उन की रूमानी थी। एक निर्धन कवि और सम्पन्न वर्ग की एक लड़की में प्रेम है। परन्तु वर्ग-विषमता के कारण दोनों में विवाह नहीं हो पाता। प्रेयसी किसी धनाधीश की पत्नी बनती है और कवि अपनी अतृप्ति को काव्य-प्रेम में भुलाने का प्रयास करता है। कालान्तर

में उस की प्रेयसी एक लड़की की माँ बन जाती है और कवि भारत भर में प्रसिद्ध हो, उसी के नगर में आता है। वहाँ उस का भारी स्वागत होता है। उसकी प्रेयसी भी अपनी बच्ची के साथ उस के स्वागत समारोह में शामिल होती है। अपनी बच्ची को वह कवि का परिचय देती है और कहती है—'जाकर कवि को प्रणाम करो और आशीर्वाद लो'। जब बच्ची प्रणाम को झुकती है तो कवि की आँखें अपनी भूतपूर्व प्रेयसी से चार होती हैं। बच्ची को आशीर्वाद देता हुआ वह उसे चूम लेता है। उस की प्रेयसी के अणु-अणु में एक पुलक दौड़ जाता है और उस के गाल गुलाब बन जाते हैं।

इस कहानी की कला पर धर्म जी को बेहद नाज़ था। यद्यपि हिन्दी के किसी कवि का वैसा सम्मान उस ज़माने में असम्भव सा ही लगता था (आज भी असम्भव लगता है) और भारत में थिएटर की अनुपस्थिति के बावजूद प्रत्येक भारतीय फिल्म में थीएटर के जो दृश्य दिखाये जाते हैं, कुछ वैसा ही अयथार्थ दिखायी देता था, पर हिन्दी में कहानी के स्तर को देखते हुए वह सुन्दर थी। किन्तु कहानी कविता तो है नहीं। जब कविताओं को श्रोताओं के लिए प्रिय बनाने के हेतु कंठ में लोच की आवश्यकता है तो फिर बेचारी कहानी की बात तो दूर रही। धर्म जी बड़े ज़ोरों से कहानी पढ़ते रहे और श्रोतागण अपने विचारों में मस्त सुनते रहे। इसी बीच में श्री चातक ने जगमोहन से प्रोफेसर स्वरूप का परिचय कराया और प्रोफेसर स्वरूप ने उस से वादा किया कि वे शीघ्र ही उसे काम देंगे। दुरो ने अपने पास बैठी हुई कुछ महिलाओं को पुस्तकें दिखायीं और उन के घरों के पते नोट किये। शुक्ला जी ने बायें हाथ की हथेली पर सुपारी, तम्बाकू और चूना मिल कर खैनी बनायी। बिना आवाज़ किये फटकी और निचले ओठ और दान्त के मध्य रख कर बड़े इतमीनान से उस का रस पपोलने लगे। कवि चातक ने दो एक बार दुरो से आँख मिलाने का प्रयास

किया और अपनी नयी कविता की पहली पंक्ति बना डाली। 'नीरव' जी ने वहीं अपने प्रधानासन पर बैठे बैठे अपनी कविता की रिहर्सल कर ली। शेष श्रोताओं में भी शायद ही किसी ने ध्यान से पूरी कहानी सुनी। परन्तु जब धर्म जी अपनी कहानी समाप्त कर के बैठे तो सब ने बड़े जोरों से ताली बजायी।

धर्म जी के बाद प्रधान ने नाम पुकारा, "जीवन लाल वसंत"।

एक अनघड़ सा युवक जिस के कपड़े अपेक्षाकृत मैले थे, दाढ़ी बढ़ी थी और आकृति पर वसंत के बदले पतझड़ की छाया थी, कविता पढ़ने खड़ा हुआ। उस के 'बड़े' नाम के मुकाबिले में उस के 'छोटे' दर्शन कर के श्रोताओं में एक दबी सी हँसी फूटी, पर उस हँसी की अवहेलना कर वह युवक कविता पढ़ने लगा।

प्रेम से इनकार कब है।

जगमोहन ने देखा कि बड़ी दाढ़ी, रूखे बालों और कृश-देह के बावजूद वसंत की बड़ी बड़ी आँखों में कुछ विचित्र सी चमक थी। वह गा कर कविता न पढ़ रहा था, पर उस की आवाज़ में लोच के बिना भी आकर्षण था और ओठों पर एक दर्द भरी विशाक्त मुस्कान।

कविता प्रेम ही के संबंध में थी। कवि को प्रेम से इनकार न था, वह अपनी प्रेयसी को विश्वास दिलाना चाहता था कि उसकी उदासीनता का कारण प्रेम की गहराई का अभाव नहीं। उस के सुन्दर शशि मुख और उस के लहराते घन-कुन्तलों को देख कर उस का हृदय भी हिलोर लेता है, पर वह हिलोर धरती से उस के पांव नहीं उखेड़ती। अपनी निर्धनता ही नहीं, बल्कि अपने वातावरण की निर्धनता, संकुलता अपरूपता उस के पाँव पकड़े रहती है। प्रेम से उसे इनकार नहीं. पर प्रेम के सिवा दुनिया में और भी दुख हैं और वह प्रेयसी से कहता है कि प्यार का विलास इस निर्धनता में सुखद नहीं। प्रेम यदि कुछ क्षणों

के लिए उन्हें अपने वातावरण की अपरूपता भुला देगा तो उस की परिणति के पश्चात् उस वातावरण की भयंकरता और भी द्विगुन हो कर उनकी समस्त सुन्दर भावनाओं का गला घोंट देगी।

और कवि बैठ गया। जगमोहन दत्तचित्त होकर कविता सुनता रहा था। कई श्रोता जो धर्म जी की कहानी से ऊब कर बातें करने लगे थे बसंत की वाणी के जादू से बँध गये थे। यद्यपि जगमोहन ने धर्म देव जी चातक जी और नीरव जी के चेहरों पर वितृष्णा की भावना भी देखी; डाक्टर घनानन्द ने कविता के मध्य में अपने टूटे दांत दिखाते हुए एक जमाही भी ली; एक आध उपेक्षापूर्ण रिमार्क भी उस ने सुना; पर जगमोहन को उस कविता में अपनी ही भावनाओं की प्रतिध्वनि मिली। कविता के अन्त पर सहसा उस की दृष्टि दुरो की ओर गयी। वह भी एकाग्र-चित्त होकर कविता सुन रही थी।

तभी डाक्टर घनानन्द ने उस का नाम लिया।

जगमोहन ने कविता लिखी थी। कवि चातक ही के अनुकरण में उस ने दुरो के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया था। कविता उस ने चातक जी को दिखा भी ली थी। उन्हों ने उसे पसन्द भी किया था और एक दो जगह संशोधन भी कर दिया था। उस की कविता कुछ यों थी:

ऐ प्रिय तेरे प्रेम का कुसुम
मेरे सूने उर की डाली पर खिल उठा है
खिल उठा है और मुरझा भी जायगा
धीरे धीरे, चुप चाप
निष्ठुर समय के घड़ियाँ पल
इस के दल कुम्हला देंगे
और स्नेह-हीन हिम-आतप
इस के दल मुरझा देंगे।

किसी के उर की डाल पर
तुम्हारे प्रेम का कुसुम खिला है
तुम यह न जान पाओगी
पर प्रेम का यह कुसुम मिट कर भी
मेरे सूने हृदय को महकाता रहेगा ।

किन्तु वसंत जी के 'इनकार' के बाद उसे यह अपना 'इक़रार' पढ़ना स्वीकार न हुआ और उस ने कह दिया कि उस ने कविता लिखी तो थी, पर जल्दी में वह लाना भूल गया। कवि चातक ने जो उस की कविता की प्रशंशा कर स्वयं दाद पाना चाहते थे, उसे बहुतेरा कहा, पर जगमोहन टस से मस न हुआ। तब डाक्टर घनानन्द के कहने पर वे स्वयं उठे।

कवि चातक की कविता वही थी जो उन्हों ने समाज की अनौपचारिक बैठक में पढ़ी थी। अन्तर केवल यह था कि उन्हों ने इस बार सत्या जी की ओर न देख कर दुरो की ओर देखा।. (सत्या जी ने उन्हें ज़रा भी प्रोत्साहन न दिया था और कवि की कल्पना ने उन में जो गुण देखे थे, वे अब उन्हं सत्या जी में दिखायी न दे रहे थे।) दुरो से ही एक बार उन की दृष्टि चार भी हुई और इसलिए उन्हों ने कविता काफ़ी जोश से पढ़ी। यहां तक कि अन्त को पहुँचते पहुँचते उन का गला भर आया। किन्तु जगमोहन को वह एकदम निरर्थक लगी। निरर्थक, भावुक और असंभावना की हद तक अत्युक्तिपूर्ण! वह वसंत की कविता के संबंध में निरन्तर सोचता रहा— ठीक तो है। प्रेम के लिए कहां सहूलत है इस वातावरण में? अव्वल तो इस वर्ग-विषमता और जाति-पांति के बन्धनों में प्रेम प्रायः एकांगी ही रहता है। दिल की जलन केवल एक ओर ही होती है। दूसरे को पता भी नहीं चलता। फिर यदि **'दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई'** की सी दशा

हो भी जाय तो विवाह के मार्ग में बीस अड़चनें। बीस अड़चनें पार हों, प्रेम की उस परिणति के फलस्वरूप विवाह हो भी जाय तो बच्चों का होना आवश्यक—बस अपनी सब योजनायें, आकांक्षाएँ, अरमान गरीब गृहस्थी के कोल्हू को चलाने में लगा दो। जहां अपना पेट पालना कठिन है वहां बीवी बच्चों का बोझ लादने से लाभ? जिस समाज में काम के लिए उपयुक्त अवसर नहीं, जीवनयापन के लिए सुविधा नहीं, वहां प्रेम और विवाह विलासता नहीं तो क्या है? और उस अनघड़ कवि के लिए जगमोहन के हृदय में सहानुभूति, समवेदना और प्यार सा उमड़ आया। कवि चातक की कविता को बिना सुने जगमोहन यह सब सोचता रहा और जब वह चौंका तो सत्या जी हाथ में कुछ कागज लिए खड़ी थीं और कवि चातक उन का परिचय करा रहे थे।

सत्या जी ने अपना लेख ऐसे पढ़ा, जैसे वह उन का नहीं किसी दूसरे का लेख था। जिस प्रकार मशीन घास काटती चली जाती है उस प्रकार सत्या जी पड़ पड़ लेख पढ़ कर अपनी जगह जा बैठीं और डाक्टर घनानन्द ने 'नीरव' जी को एक कविता सुनाने का कष्ट दिया। उन्हों ने भी कदाचित् कवि चातक के अनुकरण में अथवा इसलिए कि वह कविता उन्हों ने नयी-नयी लिखी थी, समाज के अनौपचारिक अधिवेशन वाली अपनी कविता 'महाप्रस्थान' ही पढ़ी।

सत्या जी के संबंध में कुछ भी कहना कठिन है, क्योंकि उन की दृष्टि निरन्तर दरी पर जमी रही, पर जगमोहन अथवा दुरो ने कविता बिलकुल नहीं सुनी। दूसरे श्रोताओं का हाल भी कुछ वैसा ही था। हाँ जब उन्हों ने कविता समाप्त की तो तालियाँ कुछ अधिक समय तक पीटी गयीं। और ऐसे सिर हिलाये गये जैसे भगवद् पाठ को सुन भक्तजन हिलाया करते हैं।

नीरव जी के 'महाप्रस्थान' के बाद डाक्टर घनानन्द ने प्रधान मन्त्री के रूप में श्री धर्म देव वेदालंकार को बधाई दी, फिर उन्हें पास बैठे

हुए नीरव जी का ध्यान आया। हकला कर उन्हों ने उन्हें भी बधाई दी, तब उन की निगाहें श्री चातक से चार हुईं और उन्हें याद आया कि समाज तो चातक जी का स्वप्न है। यह ध्यान आते ही उन की जीभ उन के तीनों टूटे हुए दाँतों में आ गयी और उन्हों ने चातक जी का नाम लेते हुए उन सब को बधाई दे डाली जिन्हों ने इतने सुन्दर समाज का आयोजन किया था।

और प्रधान के इस भाषण के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

२०

दूर किसी घड़ियाल ने बारह बजाये। दुरो ने करवट बदली। यद्यपि वह दिन में एक पल को भी न लेटी थी और सारी दोपहर उस ने घूम कर गुज़ार दी थी तो भी उस की आँखों में नींद का नाम न था।

घर के सभी लोग सो गये थे। उस की मौसी जो देर तक बच्चे को पंखा करती रहती थीं और प्रायः सब के बाद सोती थीं, पंखे को हाथ ही में लिये हुए अधलेटी-अधबैठी सो गयी थीं। सिर उन का सोये बच्चे के साथ जा लगा था और पंखे वाला हाथ चारपाई के नीचे ढलक आया था। पंखा फिसलता फिसलता धरती को छू कर वहीं रुका रह गया था। ऊपर कृष्ण-पक्ष का चाँद चमक रहा था। उस की मद्धम ज्योत्सना में अपनी मौसी की यह भंगिमा दुरो को किसी कलाकार के तैल-चित्र सी लगी—अस्पष्ट होते हुए भी स्पष्ट, रूखी रूखी और ऐसी टेढ़ी-बैंगी जो जगते में सम्भव नहीं। कितनी ही देर तक वह एक टक अपनी मौसी की वह भंगिमा देखती रही। तभी दूर कोने में लेटे उस के मौसा अपनी दरियाई घोड़े की सी मूँछों में उलझती हुई साँस से खुर्राटे लेने लगे। दुरो ने लम्बी साँस लेकर करवट बदली।

उस की यह लम्बी साँस दुख से नहीं वरन् सुख से जनित थी। जब से दुरो ने हरीश को देखा था, उन का भाषण सुना था, उन से बातें की थीं, वह कुछ अजीब सी खुशी का अभास अपने अणु-अणु में पाती थी।

दिन का श्रम, मौसी की खीझ, अपनी स्थिति की कटुता—कुछ भी उसे न खलता था। हल्की फुल्की नौका की भाँति वह दैनिक जीवन की ऊँची नीची लहरों पर तिरती सी चली जाती थी। उस के इस विचित्र पुलक का पारस उस के वैयक्तिक जीवन की सभी कटुता को जैसे छू कर सुखद और सह्य बना देता था।

दुरो ने लम्बी साँस ली। फिर करवट बदली। मौसी ने ऊँघते ऊँघते फिर पंखा घुमाया। इस बार वह उस के हाथ से छूट कर दूर जा गिरा और वह स्वयं चारपाई पर एक ओर को लुढ़क गयीं।

दुरो सीधी लेट गयी। ऊपर चाँद चमक रहा था, आकाश एकदम निर्मल था, नगर के ऊपर उन गर्म रातों में जो धुआँ और धूल छायी रहती थी, उस का लेश-मात्र भी आसमान में कहीं न था। दूर दिशाओं में कभी कभी बादल की गर्ज सुनायी दे जाती थी। दुरो को चाँद बड़ा भला लग रहा था। गर्म रात की उमस में उस की ठंडक कोई विशेष लाभ न पहुँचा रही थी, रात के बारह बज जाने पर भी ऊष्णता दम घोट रही थी और पसीने के मारे बुरा हाल था, पर इस नील निर्मल आकाश में चाँदी की वह फाँक शरीर को न सही, दिन भर की थकी तपी आँखों को अवश्य ठंडक पहुँचा रही थी। 'धरती की ही तरह का कदाचित् एक बेजान नक्षत्र'......दुरो सोच रही थी......'पर इस धरती के वासियों के दुख-सुख आशा-निराशा का साथी!'

'संस्कृति समाज' में जितने लोगों को उस ने देखा था, उन में उसे केवल वसंत ऐसा दिखायी दिया था जो कुछ जागरूक था। इसलिए जब समाज की बैठक खत्म हुई और अधिकांश लोग डा० घनानन्द को और शेष बोर्ड के इस अथवा उस सदस्य को घेरे बाहर निकले, और 'देवियाँ' इस बात की बाट जोहने लगीं कि 'देवता' लोग जूते पहन कर बाहर

निकलें तो वे भी हिलें तो दुरो बढ़ कर वसंत के पास पहुँची और उसकी कविता की प्रशंसा करते हुए उस ने उसे अपने स्टडी-सरकल में चलने का निमंत्रण दिया

"जी कविता तो क्या थी, कवियों सा छंद और अलंकार-ज्ञान या कल्पना की उड़ान हमारे पास कहाँ !" वसन्त ने उसी विषाक्त मुस्कान के साथ कहा था, "योंही दिल में जो उल्टी-सीधी आती है लिख देते हैं।"

"दिल में नहीं दिमाग में।" कवि चातक की आवाज़ आयी।

दुरो कहने वाली थी, "कल्पना की उड़ान के बदले आज इसी उल्टी-सीधी-सच्ची की आवश्यकता है...पर कवि चातक की आवाज़ सुनते ही उस ने पलट कर देखा। धोती सम्हालते और बालों की लट को माथे से हटाते हुए कवि उधर ही आ रहे थे।

वास्तव में डाक्टर घनानन्द और बोर्ड के दूसरे सदस्यों के साथ कवि चातक सीढ़ियों से आगे नहीं गये। सीढ़ियों के पास रुक कर उन्हों ने सब को विदा किया और महिलाओं की ओर पलटे। तभी उन्हों ने दुरो को वसंत की ओर जाते देखा। तब अपनी मुहार† भी उन्हों ने उधर ही को मोड़ दी।

कवि चातक के उत्तर में वसंत क्षण भर चुप रहा फिर उस ने कहा, "आप दिमाग कह लीजिए, मेरे निकट तो दिल-दिमाग एक ही चीज़ है।"

"एक ही चीज़ नहीं," कवि चातक ने मुस्कराते हुए कहा। दिल महसूस करता है और दिमाग़ सोचता है, 'खोपड़ी में अनुभूति है' ऐसा कोई नहीं कहता। अनुभूति हृदय की चीज़ है !" कवि आत्म-तुष्टि से हँसे, एक दृष्टि उन्हों ने सत्या और शान्ता जी पर डाली, जो कुछ दूर

---

† लगाम।

खड़ी थीं और बालों की लट को उन्हों ने फिर पीछे हटाया।

श्री भगतराम सहगल न जाने कब, उन के पास आ खड़े हुए थे। हिं हिं कर कवि के समर्थन में उन्हों ने अपने परदाँत दिखा दिये और बोले "क्या बात कही है, वाह, वा।"

दुरो उस ज़नाने से कवि को कभी पसंद न कर पायी थी। भगतराम तो उसे एकदम वज्र-मूर्ख दिखायी देता था। उत्तर में चिढ़ कर वह कुछ कहने ही वाली थी कि कवि बोले, "ख़ैर दिल-दिमाग़ की बात छोड़ो। तुम लिखते खूब हो। ज़रा गति-भंग और यति-भंग का ध्यान रखा करो। मात्राएँ भी एक आध जगह घट बढ़ गयी हैं। पढ़ने से पहले हमें दिखा लिया करो। दिनों ही में चमक जाओगे।"

"जी आप की बड़ी कृपा है।" उसी विषाक्त मुस्कान के साथ वसंत ने कहा। कवि ने उस मुस्कान के विष को नहीं देखा। वे उसी आत्म-तुष्टि से हँसे। अपनी उस दिन की कविता को लेकर कला में अनुभूति के विषय पर वे कुछ विचार प्रकट करने जा रहे थे कि सत्या जी ने आगे बढ़ कर दुरो से कहा।

"यदि तुम्हें ग्वालमंडी चलना है तो चलो। यहीं साढ़े छः बज गये हैं, क्या बारह बजे घर पहुँचोगी!"

"हाँ हाँ चलो!" दुरो ने कहा, "चलिए वसंत जी!"

"चलिए!"

"चलिए मोहन जी आप भी चलेंगे।" सत्या जी ने जैसे दरी से कहा।

जगमोहन स्वयं वसंत की प्रशंसा करने आया था और चुप चाप खड़ा यह सब सुन रहा था। सहसा चौंक कर बोला, "कहाँ?"

"यह दुरो किसी स्टडी-सरकल में ले जाना चाहती है। चलिए इस का भी स्टडी-सरकल जरा देख लें!" उनकी निगाहें दरी से नहीं उठीं।

"चलिए!"

"चलो हम भी चलते हैं, कुछ 'संस्कृति समाज' के ही सदस्य बना आयेंगे।" हँसते और कदम बढ़ाते हुए कवि ने कहा और बालों की लट को उन्हों ने पीछे को हटाया। फिर सत्या जी की ओर मुड़ कर बोले, "आप का लेख खूब था। पहले पढ़ चुका था, पर आप के मुँह से सुन कर और भी आनन्द आया।"

सत्या जी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। चुप चाप वे बढ़ चलीं। तब श्री भगतराम सहगल ने एक कदम बढ़ कर और अपने परदाँत दिखाते हुए पूछा, "किधर की तैयारी हो रही है?"

"ये स्टडी-सरकल में जा रही हैं।" चातक जी ने कहा।

"कामरेडों-फामरेडों का होगा;" भगतराम बड़े बेतुकेपन से हँसे। "हम भाई किसी राजनीतिक संस्था से मतलब नहीं रखते। आप समाज के मैम्बरशिप-फ़ार्म भिजवा दीजिएगा, हम अधिक से अधिक मेम्बर गोपाल नगर में बना देंगे।"

और वे अपनी पत्नी और विद्यालय की छात्राओं को लेकर चले। कवि चातक ने शान्ता जी का बड़ा धन्यवाद किया। सब लोग इकट्ठे नीचे उतरे। भगतराम और उन की पार्टी अहाते की ओर को चली गयी और दुरो सब को लेकर सनातन-धर्म-स्कूल वाले गेट से बाहर निकली।

वे तो कदाचित् जल्दी ग्वालमंडी पहुँच जाते पर कविचातक मटकते हुए चींटी की चाल चलते रहे, इस लिए उन्हें काफ़ी देर हो गयी। यह तो शुक्र है कि मज़दूरों की यूनियन के संबंध में उलझे रहने के कारण हरीश सरकल में देर से आये और मीटिंग अभी चल रही थी, नहीं उस समय तक तो वह समाप्त हो चुकी होती।

दुरो ने हरीश जी से सब का परिचय कराया और वसंत जी से

वही कविता पढ़ने का अनुरोध किया। •

उस छोटे कमरे में लगभग एक दूसरे से सटे बैठे दस पन्द्रह युवक युवतियों की आकृतियों में न जाने क्या बात थी कि वसंत को बड़ा अपनत्व का आभास मिला। 'संस्कृति समाज' में वह अपने आप को मक्खन के कटोरे में नन्हे से उपलखंड-सा महसूस करता था। यहाँ तो उसे लगा जैसे वह उन्हीं में से एक हो इसलिए जब उस ने कविता पढ़ी तो उस के स्वर में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आत्मविश्वास था। प्रशंसा भी उसे यहाँ 'संस्कृति समाज' की अपेक्षा कहीं अधिक मिली। लगभग सभी ने मुक्त-कंठ से उस को दाद दी।

जब वसंत कविता पढ़ रहा था। पार्टी के साथी उस की प्रशंसा कर रहे थे तो दुरो ने देखा कि कवि चातक के चेहरे पर एक रंग आता है और एक जाता है। कभी वे दायीं करवट बैठते हैं कभी बायीं। कभी दायें हाथ से बालों की लट को पीछे हटाते हैं कभी बायें हाथ से। और उस ने देखा कि जब वसंत ने कविता समाप्त की तो कवि चातक स्वयं कविता सुनाने को आतुर हो उठे।

तभी हरीश जी ने पूछा, "कोई इस कविता के बारे में कुछ कहना चाहता है?"

इस से पहले कोई कुछ कहता दुरो ने कहा, "अभी यह कविता 'संस्कृति-समाज' की बैठक में पढ़ी गयी थी। चातक जी ने इस के संबंध में कहा कि यह दिल की नहीं, दिमाग की कविता है। कविता क्या दिल से लिखी जाती है या दिमाग से? अनुभूति क्या दिल की चीज़ है या दिमाग की? यदि आप इस विषय पर प्रकाश डालें तो बहुत अच्छा हो।"

दुरो ने देखा कि कवि का रंग उतर गया है। उस के ओठ विद्रूप से तनिक फैल गये। कवि दस जमात से आगे न बढ़े थे। कविता के लिए वे पढ़ाई को इतना आवश्यक न समझते थे। "यदि कविता केवल पढ़ाई से ही होती," वे हँस कर कहा करते थे, "तो ये जो इतने बी० ए०,

एम० ए० मारे मारे फिर रहे हैं, सब कवि होते। कविता के लिए अनुभूति की आवश्यकता है। अनुभूति-प्रवण हृदय की आवश्यकता है।"
लेकिन काम और अध्ययन के आधिक्य से पीले और नुकीले चेहरों में उन्हें कुछ ऐसी चीज़ दिखायी देती थी जिन का उन के पास सर्वथा अभाव था और उन्हें लगता था कि जो सिक्का वे दूसरी जगह चलाते थे, वहाँ नहीं चल सकता।

"इस से पहले कि कोई कुछ कहे," उन्हों ने सहसा ओठों पर ज़बान फेरते हुए कहा, "मैं अपनी स्थिति साफ़ कर देना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि कविता के लिए दिमाग की कोई जरूरत नहीं। जहाँ तक काव्य-कला का संबंध है, कला के परिष्कार और परिमार्जन का संबंध है, निश्चय ही दिमाग की आवश्यकता है, किन्तु कविता में करुणा, समवेदना, मर्म पर चोट करने वाली, हृदय को हिला देने वाली चीज़ तो कवि के अनुभूतिशील, अत्यधिक भावुक हृदय ही की देन है।"

इस पर कई साथियों ने कुछ कहना चाहा पर हाथ के संकेत से हरीश ने सब को रोक दिया। घड़ी देखते हुए उन्हों ने कहा, "इस समय वक्त काफ़ी हो गया है। यह विषय यथेष्ट महत्व का है। मैं समझता हूँ इस पर पूरे एक दिन बहस रखी जाय!" फिर मुस्करा कर उन्हों ने कहा, "इस समय मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यह दिल और दिमाग़ का बँटवारा भी कवियों ने अपने आप कर लिया है। शारीरिक विज्ञान से इस का कोई संबंध नहीं। शरीर में तो हृदय केवल एक मांस पिंड है जिस का काम नसों में रक्त के प्रवाह को जारी रखना है। वह न सोच सकता है, न समझ सकता है, न महसूस कर सकता है। यह सब काम तो दिमाग ही करता है। एक छोटा दिल तो कछुवे के पहलू में भी धड़कता है, किन्तु वह अनुभूति से वंचित है। क्योंकि उस की खोपड़ी में न मस्तिष्क है न अनुभूति की क्षमता। पागल आदमी का दिल तो कायम रहता है, फिर वह क्यों नहीं सोच-समझ सकता? सौन्दर्य का

बोध उस का क्यों मर जाता है! इसी लिए ना कि उस का दिमाग खराब हो जाता है।"

"पर खोपड़ी महसूस करती है, यह तो कोई कभी नहीं कहता।" जगमोहन ने कवि की सहायता में कवि ही के शब्द दोहराये।

हरीश के ओठ विद्रूप से कुंचित हो गये। जगमोहन ने उस मुस्कान को देखा। हृदय में कसक हुई। पर कवि को पराजित होते देख, उन के मुख की पीलिमा से अभिभूत हो, मन ही मन हरीश से सहमत होते हुए भी, वह कवि की सहायता को आतुर हो उठा था।

हरीश हँसे, "कोई नहीं कहता, इस से वह बात सच तो नहीं हो जाती।" उन्हों ने कहा, "उर्दू शायरों ने कई जगह जिगर को दिल के अर्थों में प्रयोग किया है। 'जिगर' ही का शेर है—

क्या चीज़ थी, क्या चीज़ थी ज़ालिम की नज़र भी
उफ़ करके वहीं बैठ गया दर्दे-जिगर भी।

दर्दे-जिगर से कवि का मतलब दर्दे-दिल ही से है, तो क्या इस से दिल और जिगर एक हो जायँगे? हम ने काव्य और कल्पना का जादू जगाने के लिए दिल और दिमाग की बाँट का सुन्दर झूठ अपना लिया है। सोचने का काम मस्तिष्क को दे दिया है और अनुभूति का हृदय को। काव्य के सृजन और रसास्वादन के लिए इस की आवश्यकता भी है, पर इस बाँट को काव्य की नींव बना कर हम काव्य और कला की कसौटी तो तैयार नहीं कर सकते। आँख देखती है, दिमाग पर उसी समय उस का प्रभाव पड़ता है और दिल धड़कने लगता है। निमिष मात्र में यह सब हो जाता है। दिमाग़ की अत्यधिक-अनुभूति-प्रवण, सूक्ष्म नसों के कारण सब क्रियाएँ एक साथ हो जाती हैं। दिल धड़क रहा हो और दिमाग मज़े से सोया हुआ हो, ऐसा तो नहीं होता। सोचने, समझने, अनुभव करने और उस अनुभूत को काव्य का आवरण पहनाने के काम

दिमाग़ ही करता है, दिल नहीं।"

इतना कह कर हरीश क्षण भर के लिए रुके। कवि चातक को कोई उत्तर न बन आया। दुरो ने देखा कि उन का मुँह और उतर गया है और क़द एक दम छोटा सा हो गया है। दुरो के ओठों पर विद्रूप की मात्रा बढ़ गयी। उसे कवि चातक उस केकड़े से लगे जिस की रंगीन कलग़ी कट गयी हो और जो विवश सा रेत में दबा पड़ा हो।

तब हरीश ने कहा, "यह विषय बड़ा अहम* है और इस पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। इस पर फिर किसी दिन बहस करेंगे। आप लोगों को दूर दूर जाना है इसलिए आप लोग अब चलिए।" और वे उठे।

चलते समय उन्हों ने दुरो के कंधे को थपथपा कर वसंत आदि को लाने के लिए प्रशंसा की और कहा, "यदि चन्द ऐसे ही उत्साही कार्यकर्ता हमें मिल जायँ तो हम बड़ा काम कर ले जायँ।"

और वे उन्हें गली तक छोड़ने आये।

हरीश के हाथ का वह स्पर्श, उस हल्की सी प्रशंसा भरी थपथपाहट का वह पुलक दुरो को उस समय भी अपने अणु-अणु में प्रतीत हो रहा था। उस ने जैसे उसे धरती से ऊपर उठा दिया था। वह स्वप्न की सी दशा में घर आयी थी। श्याम गली से बहुत दूर आकर कवि मुखर हुए थे। तब जगमोहन और सत्या जी पर अपनी बुद्धि का प्रभाव डालने के लिए उन्हों ने क्या कहा और वसंत तथा चम्पा से उन की क्या बहस हुई, यह सब दुरो ने नहीं सुना। वह तो चुप चाप जैसे अन्तर के रस में शराबोर चली आयी। मोहन लाल रोड से वे लोग ताँगे पर बैठीं और घर के दरवाज़े पर आ कर उतर गयीं। सत्या जी साथ न होतीं तो मौसी अवश्य डाँटतीं। चुपचाप उस ने खाना खाया, बर्तन मले और

आकर लेट गयी। फिर एक एक करके सब सो गये और वह निरन्तर जागती रही। हरीश की बातें, उन की मुस्कान, उन की प्रशंसा भरी थपथपाहट बार बार उस की कल्पना में आकर उस के शरीर में पुलक भरती रही। कवि चातक की दशा पर वह कई बार मन ही मन हँसी। अपने और हरीश के सम्वाद उस के कानों में कई बार गूँजे। चाँद को देखते देखते दिन की सारी घटनाएँ कई बार उस के सम्मुख घूम गयीं। एक डेढ़ बजा होगा जब उस की आँखें झप गयीं और वह सो गयी।

सो गयी पर सुषुप्ति में भी उस के विचारों ने उस का साथ न छोड़ा। नींद में 'संस्कृति समाज' और स्टडी-सरकल कुछ विचित्र रसायनिक क्रिया से एक दूसरे में गडमड हो गये। उस ने देखा कि वह किसी दूर कस्बे में हेड मिस्ट्रेस है। उसी के घर गोष्ठी है। खूब वाद-विवाद चलता है। वह जाने कहाँ से आती है। गर्मी के मारे उस का बुरा हाल है। वह सीधी स्नान-गृह में चली जाती है। कपड़े उतार कर बाहर चार-पाई पर फेंक देती है और पानी का नल खोल उस के नीचे बैठ जाती है। एक अपूर्व शान्ति का आभास उसे मिलता है। वह खूब जी भर कर नहाती है। जब वह नहा चुकती है तो उसे ध्यान आता है कि तौलिया तो वह बाहर ही छोड़ आयी है। बाहर चारपाई पर हरीश बैठे हैं। वह वाद-विवाद वाला दृश्य न जाने इस में कैसे गडमड हो जाता है, वह इतना जानती है कि वह बाथरूम में नहा रही है और हरीश बाहर चारपाई पर आराम कर रहे हैं। वह स्नान-गृह में बैठी बैठी पुकारती है कि ज़रा तौलिया फेंक दो। बाथ रूम का किवाड़ ज़रा सा खुला है। हरीश तौलिया फेंक देते हैं, जो एक दम उस के सारे शरीर को ढक लेता है।

सहसा उस की नींद खुल जाती है। अपने इस स्वप्न के मारे वह लाज से पानी पानी हो जाती है। देखती है कि पसीने से उस के कपड़े तर-ब-तर हो रहे हैं। आँखें मल कर वह अपने इर्द-गिर्द निगाह दौड़ाती है।

उस के हृदय से सुख, पुलक और अरमान की एक लम्बी साँस निकल जाती है। मौसी के हाथ से गिरा पंखा वह उठा लेती है और बैठ कर पसीना सुखाने लगती है। दूर घड़ियाल दो का घंटा बजाता है... ......क्या उस ने हरीश को पति के रूप में देखा?......क्या ऐसा कभी हो सकता है? कैसी लज्जा की बात है? क्या उस ने हरीश को पति के रूप में देखा?.........क्या ऐसा कभी हो सकता है?...आह!

वह ज़ोर ज़ोर से पंखा करती है।

२१

सत्या जी, दुरो और उन की सहेली चम्पा को मोहन लाल रोड पर छोड़ कर वे मुड़े तो कवि चातक ने प्रस्ताव किया कि जगमोहन और वसंत उन के घर चलें, खाना वहीं खायँ और कुछ कविता-अविता सुनें-सुनायें, पर न वसंत की इच्छा हुई, न जगमोहन की। अनजाने ही में दोनों एक दूसरे के परिचय को घनिष्ट बनाना चाहते थे। अस्पताल रोड के सिरे पर दोनों ने कवि से छुट्टी ली। जगमोहन के पास कुछ पैसे थे, केसरी की दुकान में वे चले गये और जगमोहन ने एक-एक लैमोनेड का आर्डर दिया। पहले लैमोनेड की प्रतीक्षा में और फिर केसरी का 'अपना भरा हुआ' तीखा-मीठा सोडा नली के सहारे धीरे-धीरे चुसकते हुए, दोनों ने एक दूसरे को अपना परिचय दिया।

वसंत का संघर्ष जगमोहन की अपेक्षा और भी गहन था। बचपन में उस की माँ मर गयी थी, पिता क्लर्क थे। बड़े स्नेह से उन्हों ने उसे पाला। पचपन रुपये मासिक वे पाते थे। उन से ही किसी न किसी प्रकार उसे शिक्षा दिलायी। मैट्रिक में वह स्कॉलरशिप पा गया। एफ० ए० में दाखिल हुआ तो उस के पिता रिटायर्ड हो गये। उन की इच्छा थी कि उन का लड़का बी० ए० एल० एल० बी० करे, पी० सी० एस० अथवा

आई० सी० एस० के कम्पीटीशन में बैठे। यद्यपि उस की रुचि नौकरी की ओर न थी तो भी पिता की प्रसन्नता के लिए उस ने कम्पीटीशन में बैठना स्वीकार कर लिया। लेकिन वह अभी थर्ड ईयर ही में था कि उस के पिता का देहान्त हो गया और वह संसार में बे-आसरा रह गया। बी० ए० उस ने किसी न किसी तरह कर लिया, पर पोज़ीशन (Position) न पा सका और उस की पढ़ाई की प्रगति रुक गयी। पिता ने एक जगह उस की सगाई भी कर दी थी। उस के श्वसुर उस की सहायता भी करना चाहते थे—इस शर्त पर कि वह कम्पीटीशन में बैठे और वादा करे कि कम्पीटीशन में आने पर वह कहीं और शादी न करेगा।

"लड़की मुझे पसन्द थी," वसंत ने कहा, "लेकिन जाने क्यों मुझे यह स्थिति पसन्द न आयी। पिता जी जीवत रहते तो पी० सी० एस० छोड़ मैं आई० सी० एस० भी क्यों न बन जाता, मैं उसी लड़की से विवाह करता। पर तब मुझे लगा कि यह तो मैं अपने आप को बेच रहा हूँ और यह अपने साथ ही नहीं, वरन् उस लड़की के साथ भी अन्याय है और मैंने इनकार कर दिया।"

"और अब?" जगमोहन ने नली में एक लम्बी चुस्की लेकर पूछा।

"अब सर्दियों की बरसाती रात सी दुनिया है और भीगे से कम्बल सा यह जीवन!" वसंत एक विचित्र पीली सी हँसी हँसा। "न इस भीगे कम्बल को छोड़ते बनता है न रखते!"

"तुम ने मेरे दिल की बात कह दी।" जगमोहन बोला।

"लेकिन आशा यही है कि सुबह होगी, सूरज निकलेगा और यह कम्बल सूखेगा!"

जगमोहन ने कहा, "मैं स्वयं कभी कभी बड़ा निराश हो जाता हूँ, पर कोई चीज़ ऐसी है जो आगे धकेले जाती है :

इसी उम्मीद पर मीलों चले, जाते हैं दीवाने।
वो उट्ठा पर्दा-ए-महमल, वो निकला हाथ महमल से ॥"*

और दोनों ने एक ठहाका लगाया जिस में क्षण भर के लिए उन की चिन्ताएँ डूब गयीं। दोनों मित्र हाथ में हाथ दिये केसरी की दुकान से निकले। बाहर बाज़ार में कुछ दुकानें बन्द होने लगी थीं। पर भीड़ में ज़रा भी कमी न हुई थी। सात मिनट के ज़रा से समय में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पार किये जाने वाले उस बाज़ार में (जिसे जाने शाहज़ादा सलीम ने अपनी बर्बाद मुहब्बत की स्मृति में 'अनारकली' का नाम दे दिया था अथवा शाही-कोप का भाजन बन कर दीवार में जीवित चुनी जाने वाली उस तन्वी की याद में जनता उसे अनारकली कहने लगी थी) खूब रौनक थी। बिसातियों की दुकानों पर एक दूसरे के पीछे ग्राहक खड़े थे। दोनों सिक्ख हलवाई धड़ाधड़ लस्सी के गिलास बना रहे थे। हथ-गाड़ियों में बर्फ की सिलों पर लगी गँडेरियों के ढेर अथवा तरबूज़ की फाँकें बिक रही थीं। मोटरें, ताँगे और साइकिल; साड़ियाँ, सूट, पायजामे और तहमदें; हँसी क़हक़हे, आवाज़ें और फ़बतियाँ—दोनों मित्र हाथ में हाथ दिये इस भीड़ और कोलाहल से अनभिज्ञ, बातों में मस्त चले आये।

वसंत लोहारी दरवाज़े के अन्दर एक मन्दिर में कमरा लेकर रहता था। चौक अनारकली से आगे, फूलों की दुकानों के पास, म्युनिसिपल गार्डन्ज़ को जाने वाले मार्ग के मुहाने पर दोनों रुक गये। वहीं खड़े-खड़े बातें करते रहे। जगमोहन ने उस से कहा कि वह 'संस्कृति-समाज' की बैठकों में अवश्य आया करे। और तो कोई लाभ शायद इस 'संस्कृति-समाज' से न हो, पर पन्द्रह दिन में एक बार मिल बैठने का अवसर

---

*इसी उम्मीद पर दीवाने मीलों चले जाते हैं कि अभी महमल (ऊँट की पालकी) का पर्दा उठेगा और अभी लैला (प्रिय) के हाथ की झलक मिलेगी।

मिल जायगा। उस ने वसंत को बताया कि वह एम० ए० में दाखिल होने का प्रयास कर रहा है। और उस ने वसंत को भी यही परामर्श दिया कि वह भी एम० ए० में दाखिल होने का प्रयास करे।

"इच्छा तो मेरी भी यही है," वसंत ने कहा, "पर साधन मेरे पास नहीं। फिर कभी कभी यह भी खयाल आता है कि थर्ड-क्लास एम० ए० करके क्लर्की करने की अपेक्षा, बिना एम० ए० किये भी क्लर्की की जा सकती है।"

"क्लर्की ?"

"और क्या !" तिक्त सी मुस्कान वसंत के ओठों पर फैल गयी। फर्स्ट-क्लास एम० ए० हो, फिर बी० टी० हो। साथ में कोई सिफ़ारिश हो। तब कहीं जाकर किसी कालेज में अच्छी लेक्चररशिप मिल सकती है। बिना उस के यदि कहीं किसी प्राइवेट कालेज में नौकरी मिली तो वह क्लर्की से भी गयी गुज़री होती है।"

"लेकिन एम० ए० में फर्स्ट-डिवीयन......"

"उस के लिए साधन चाहिएँ। अध्ययन के लिए समय चाहिए।" वसंत ने बात काट कर कहा।

जगमोहन चुप रहा।

"बिना इस समाज का ढाँचा बदले हम जैसों के लिए कुछ नहीं हो सकता।"

दोनों मित्र क्षण भर चुप रहे। फिर जगमोहन बोला, "कभी कभी मैं भी ऐसे ही निराश हो जाता हूँ। पर चुप बैठने से भी तो काम नहीं चलता। इसलिए मैं चलते रहना चाहता हूँ। सोच रहा हूँ कहीं से एक मुश्त अस्सी-सौ रुपये आ जायँ तो दाखिल हो जाऊँ। आज प्रो० स्वरूप कह रहे थे कि कुछ काम देंगे। यदि वे कुछ काम दे दें और मैं इतना पा जाऊँ कि प्रवेश-शुल्क दे दूँ तो फिर कोई चिन्ता नहीं। शेष सब प्रबन्ध मैं किसी न किसी तरह कर लूँगा।

"प्रो० स्वरूप.....प्रो० ज्योतिस्वरूप ?"

"हाँ ! क्यों ?"

"काम तो उन से मिल जायगा, पर पैसे शायद ही मिलें ।"

"क्यों ?"

"पैसे कभी ही किसी को देते हैं। मेरे कई परिचितों को इस का अनुभव है। पैसों का तय कर लेना ।"

जगमोहन का दिल टूट सा गया। पर उस ने बेपरवाही से कहा, "मैं पेशगी ले लूँगा। यदि पारिश्रमिक ही न मिला तो फिर काम करने से लाभ !"

"मैं-ने तुम्हें चेतावनी दे दी है। अच्छा तो मैं चलूँ ।"

और हाथ मिला कर वसंत लोहारी दरवाज़े की ओर बढ़ा और जगमोहन आशा-निराशा में हिचकोले खाता, इतनी भीड़ में सर्वथा अकेला, शोर से बेखबर, धीरे धीरे अपने घर की ओर सरकने लगा।

२२

जगमोहन का स्वभाव था कि प्रातः पाँच साढ़े पाँच बजे उठता। ऋषिनगर में होता तो आर्य-समाज सन्तनगर की ग्राउंड में जाकर ठंडी ठंडी घास पर नंगे पाँव दो-चार चक्कर लगाता। कुछ कसरत करता, कुछ क्षण लेटता और फिर वहीं किनारे के नल पर दातुन करता और आते आते हलवाई की दुकान से लस्सी का बड़ा गिलास पीता। चातक जी के यहाँ होता तो लारेंस तक का चक्कर लगाता हुआ ऋषि-नगर वापस आता। हलवाई की दुकान से दही की लस्सी पीने का उस का नित्य का नियम था। आज पाव भर दही का जो गिलास आठ-नौ आने को आता है, तब केवल पाँच पैसे में आता था। कभी उस के पास जब पाँच से अधिक पैसे होते तो वह दही में दो पेड़े डलवा लेता। गिलास के ऊपर झाग पर मक्खन आ जाता। केवड़े में बसा हुआ वह मक्खन, बालाई और वह लस्सी जगमोहन की सब से बड़ी ऐय्याशी थी। लेकिन इतनी बड़ी सैर के बाद लस्सी का गिलास आँखों में ग़नोदगी सी भर देता और फिर लाहौर की गर्मी और उमस! वह प्रायः सैर से आकर तहमद लगाये, नंगे बदन फर्श पर चटाई बिछा कर लेट जाता। और आध एक घंटे के लिए सो जाता। अभी न कालेज का दाखिला शुरू हुआ था, न वह दाखिले का प्रबन्ध कर सका था। नौकरी उस की स्थायी कहीं लगी न थी, एक दैनिक में पार्ट टाइम के लिए जाता

था। कभी उसे कुछ अनुवाद का काम मिल जाता था, नहीं तो कुछ विचित्र प्रकार का आलस्य उस पर छाया रहता था।

सोम का दिन था। रात जगमोहन बहुत देर में सोया था। सत्या जी, दुरो, संस्कृति समाज, स्टडी सरकल, कामरेड हरीश और वसंत—उन सब के संबंध में सोचते सोचते उस की नींद उड़ गयी थी। परन्तु स्वभाव के अनुसार प्रातः उठ कर वह सैर और कसरत कर आया था। इसलिए जब वह लस्सी का बड़ा गिलास पीकर बालकनी में जा कर सोया तो उसे पड़ते ही नींद आ गयी।

नींद में भी दुरो और सत्या जी की स्मृति ने उस का पीछा नहीं छोड़ा। उस ने एक बड़ा विचित्र स्वप्न देखा......वह लुधियाने से लाहौर के लिए गाड़ी में सवार होता है। दुरो-सी कोई लड़की उस के साथ है। गाड़ी के डिब्बे में बड़ी भीड़ होती है। किसी न किसी तरह सामान रख कर वह दुरो के लिए जगह निकाल लेता है और स्वयं यात्रियों में फँस कर खड़ा हो जाता है। उमस-घुटन, धुएँ और धूल के मारे उन की बुरी दशा हो जाती है। एक स्टेशन पर, कदाचित वह कोई जंकशन है, दुरो पानी माँगती है। उन के पास न गिलास है, न सुराही। वह बैठे बैठे थक कर, उकता कर कुछ क्षण प्लेटफार्म पर टहलने और किसी नल आदि से पानी पीने के लिए व्यग्र हो जाती है। वह अपने साथी मुसाफ़िर से जगह और सामान का ध्यान रखने को कह कर, दुरो को साथ ले, प्लेटफार्म पर उतर जाता है। गाड़ी का इंजन पानी लेने के लिए कट कर चला जाता है। वे दोनों स्टेशन पर टहलने लगते हैं। एक हथगाड़ी वाला अपनी गाड़ी पर दही के कूंडे सजाये, बड़ा सा लोटा, मथनी और गिलास लिये लस्सी बेचता है। दोनों उस से मठे का एक एक गिलास बनाने को कहते हैं। उस गर्मी में केवड़े में बसी बर्फ़ से ठंडी

वह लस्सी मन का ताप हर लेती है। अभी जब वह लस्सी पी रहे होते हैं, उन्हें इंजन की सीटी सुनायी देती है। जगमोहन मुड़ कर देखता है—गाड़ी प्लेटफार्म के साथ की लाइन के बजाय दूसरी लाइन पर काफ़ी पीछे को खड़ी है। गार्ड दूर, अपनी वैन में बाहर को सिर निकाले, झंडी हिला रहा है और उन के अतिरिक्त प्लेटफार्म पर एक यात्री भी नहीं। लस्सी का गिलास रख कर वह हुरो का हाथ घसीटते हुए पीछे को मुड़ता है, पर उस के सामने गाड़ी चल पड़ती है। उस के जी में आता है, कूद कर इंजन के आगे जा खड़ा हो, फिर ध्यान आता है शायद उस का साथी मुसाफ़िर गाड़ी की ज़ंजीर खींच दे। पर कुछ नहीं होता। गाड़ी उस के सामने से निकलती और उस से तनिक आगे मुड़ कर प्लेटफार्म के साथ होती हुई चली जाती है।......

.... उसे अपने सामान का ध्यान आता है। भाग कर वह स्टेशन-मास्टर के कमरे में जाता है। उसे तार देने को कहता है कि दूसरे स्टेशन पर सामान रोक लिया जाय। उन के पास न बिस्तर है, न कपड़े और शाम का समय है। रात सिर पर है और उसे बच्ची की चिन्ता है जो उस के कंधे से लगी है। ....जाने कैसे कुछ क्षण पहले की हुरो तीन साढ़े तीन बरस की नन्ही बच्ची बन जाती है। वह स्टेशन-मास्टर से अनुनय करता है कि उन को रात बसर करने के लिए जगह दे दी जाय। स्टेशन मास्टर ज़ोर से मेज़ पर मुक्के मारता हुआ उसे बताता है कि उस का घर धर्म-शाला नहीं। बच्ची नींद से जग न जाय, इसलिए जगमोहन उसे थप-थपाता है और स्टेशन-मास्टर के सामने गिड़गिड़ाता है। तभी एक पुलिस इंस्पेक्टर, जिस की शक्ल कामरेड हरीश से मिलती है, उसे बाज़ों से पकड़ लेता है और उसे डाँटता है कि तुम इस लड़की को कहाँ से भगा कर लाये हो। बच्ची फिर युवती बन जाती है। वह गिड़गिड़ाता है कि यह तो मेरी बहन है। हम गाड़ी से रह गये हैं। हमारा सामान साथ ही चला गया है। पुलिस इंस्पेक्टर हुरो को बाज़ू से पकड़ कर

अलग कर देता है और सिपाही से कहता है कि इस आदमी को थाने में ले जाओ! वह गिड़गिड़ाता है, लेकिन सिपाही उसे बाजू से पकड़ कर झकझोरता है।

"उठो भी कैसे घोड़े बेच कर सोये हो।"

जगमोहन की नींद खुल जाती है। वह देखता है कि भाभी उसे बेतरह झकझोर रही हैं। उस का सारा शरीर पसीने से तर है और दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा है।

"तुम हो कि उठने को ही नहीं आते और नीचे दो भलेमानुस तुम से मिलने को आये हैं।"

जगमोहन ने जल्दी से तहमद के छोर से पसीना पोंछा, मेज़ पर पड़ा कुर्ता पहना और भाग कर नीचे गया। ड्योढ़ी में श्री धर्म देव वेदालंकार और प्रोफ़ेसर स्वरूप खड़े थे और दरवाज़े के बाहर उन की कार चमचमा रही थी।

"आइए आइए!" और वह उन्हें ले कर म्यानी में आया।

"जगह तो यहाँ आप लोगों के बैठने योग्य नहीं है।" उस ने कुर्सी प्रोफ़ेसर साहब की ओर बढ़ाते हुए कहा, पर आँखों में और दिल में जगह बहुत है।" और वह खिसयानी सी हँसी हँसा।

प्रोफ़ेसर साहब कुर्सी पर बैठे और श्री धर्म देव मेज़ के कोने पर और जगमोहन दीवार के साथ पीठ लगाये पंखा झलने लगा।

"चातक जी ने कहा था कि आप को आजकल कुछ अवकाश है, आप कुछ काम चाहते हैं और उर्दू आप अच्छी तरह जानते हैं।

"जी हाँ।"

"बात यह है श्री धर्म देव ने कहा, "प्रोफ़ेसर साहब ने एक इतिहास लिख रक्खा है जो मैट्रिक में लगा हुआ है। उस का एक अनुवाद ये हिन्दी में करना चाहते हैं।" और उन्हों ने बगल से एक पुस्तक निकाल कर जगमोहन के हाथ में दी। प्रोफ़ेसर ज्योति स्वरूप का

लिखा प्रसिद्ध इतिहास था। जगमोहन उसे स्वयं उर्दू में पढ़ चुका था। एक नज़र देख कर और एक-दो पृष्ठ उलट कर उस ने कहा, "हाँ कर दूँगा।"

"आठ-दस पृष्ठ आप करके दिखा दीजिएगा। यदि प्रोफ़ेसर साहब को पसन्द आया तो फिर काम आरम्भ कर दीजिएगा।"

"जी मैं आज या कल आप को कुछ पृष्ठ करके दिखा दूँगा।"

"आप क्या चाहेंगे।"

"जी मैं काम अच्छा करूँगा और परिश्रम से करूँगा।"

"एक बात है हम को यह सब पन्द्रह दिन में चाहिए।"

पन्द्रह दिन में......जगमोहन ने क्षण भर सोचा, "जी मैं दे दूँगा। चाहे मुझे रात-दिन काम करना पड़े...पर एक बात है...।"

"कहिए?"

"आप को मुझे कुछ रुपया पेशगी देना होगा।"

"ज्योंही आप अनुवाद देंगे, आप को मिल जायगा।"

"जी नहीं, मुझे रुपये की आज कल जरूरत है, मैं एम० ए० में दाखिल होना चाहता हूँ।"

"तो आप ज्यों ही खत्म करेंगे आप को रुपया मिल जायगा।"

"जी मैं आप को एक परिच्छेद करके दिखा दूँगा। आप को पसन्द आ गया तो मुझे कम से कम आधा पेशगी दे दीजिएगा।"

"कितना आप चाहेंगे?"

"साढ़े छः आना पृष्ठ अनुवाद का रेट है।"

"साढ़े छः आना तो बहुत है।"

"जी मैं ने झंडू-फ़ार्मेसी का सूची-पत्र उर्दू से हिन्दी में किया था। आठ आने पृष्ठ लिया था। आप से तो मैंने साढ़े छः आने कहा है। सूची-पत्र से तो अधिक परिश्रम करना है इस के लिए। फिर आप पन्द्रह दिन में चाहते हैं।"

"साढ़े पाँच आने लगाइए।" प्रोफ़ेसर साहब ने कहा, "साढ़े चार सौ पृष्ठ भी तो हैं। आप को एक साथ डेढ़ सौ रुपये का काम मिल जायगा।"

"जी बेहतर!"

और दोनों महाशय उठे। जगमोहन को तब उन की आवभगत की याद आयी।

"कुछ नींबू का शरबत आदि पीजिए।"

"अब यह तकल्लुफ़ रहने दीजिए।"

"आप ने बड़ा कष्ट किया यहाँ आने में," जगमोहन ने उन के साथ साथ सीढ़ियाँ उतरते हुए कहा। "मुझे वहीं बुलवा लिया होता।"

"हम इ धरसे जा रहे थे, धर्म जी ने बताया कि आप यहीं रहते। हैं यह पुस्तक हमें तत्काल चाहिए। चातक जी ने आप की सिफ़ारिश की थी, सो हम चले आये।"

मोटर में सवार होते हुए प्रोफ़ेसर साहब ने उसे एक बार फिर जल्दी करने के लिए कहा। जगमोहन ने वचन दिया कि वह उसी समय जा कर काम आरम्भ कर देगा। उस ने प्रोफ़ेसर साहब के घर का पता और उन का मिलने का वक्त पूछा। उन्हें 'नमस्कार' किया और कार के चले जाने पर वापस मुड़ा।

डेढ़ सौ रुपये का काम एक ही साथ मिल जाने से उस के पाँव को जैसे पंख लग गये। दो-दो सीढ़ियाँ एक साथ चढ़ता वह अपनी म्यानी में आया। कुर्ता उतार कर चटाई पर फेंका, तहमद की कोर कमर में खोंस कर, घुटनों तक टाँगों को कपड़े की क़ैद से आज़ाद किया और कुर्सी को मेज़ के पास घसीट, जम कर बैठ गया। तब उस ने प्रोफ़ेसर स्वरूप का इतिहास खोला और अनुवाद करने लगा।

२२

प्रो० ज्योति स्वरूप यद्यपि उस समय इन्श्योरेंस में काम करते थे तो भी उन के साथ प्रोफ़ेसर लगा हुआ था। दस बारह वर्ष पहले जब वे संस्कृत लेकर एम० ए० में सर्व-प्रथम रहे थे तो उन्हें ओरियेंटल कालेज ही में लैक्चररशिप मिल गयी थी। प्रिंसिपल वूलनर उन पर प्रसन्न थे और उन्हों ने प्रो० स्वरूप को आश्वासन दिया था कि यदि वे वहीं रहेंगे तो एक दिन उन की गद्दी पर जा बैठेंगे। परन्तु उन्हीं दिनों प्रोफ़ेसर साहब की शादी लाहौर हाईकोर्ट के एक बड़े पदाधिकारी की पुत्री से हो गयी और हाईकोर्ट की निकटता के कारण, प्रोफ़ेसरी के टिम-टिम करके जलने वाले जीवन से उन्हें वकालत का ज्योति-स्फुलिंग से ज्वाला सा बन जगमगा उठने वाला जीवन कहीं अधिक अच्छा लगा और उन्हों ने ओरियेंटल कालेज की नौकरी के साथ साथ कानून की पढ़ाई भी शुरू कर दी। उस में भी वे सर्व-प्रथम रहे। तब उन को (यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने ससुर के प्रभाव से) लॉ-कालेज ही में पार्ट-टाइम-लेक्चरर की जगह मिल गयी। परन्तु प्रोफ़ेसरी के डेढ़ दो सौ रुपये और वकालत के आरम्भिक दिनों के सौ पचास रुपये प्रो० स्वरूप की सी प्रतिभा, मेधा, बुद्धि और महत्वाकाँक्षा वाले आदमी के लिए नितान्त अपर्याप्त थे। उन्हों ने एक प्रेस खोला, लॉ रिपोर्टर प्रकाशित करने के लिए एक पत्रिका निकाली और क्योंकि संस्कृतज्ञ थे,

साहित्य में भी अभिरुचि थी, इसलिए उन्हों ने साथ में एक 'जग-साहित्य-माला' के प्रकाशन की भी योजना बनायी। यहीं धर्मदेव वेदालंकार से उन का सहयोग हुआ।

वेदालंकार जी नये नये स्नातक होकर आये थे। आर्य-समाज के साप्ताहिक-सम्मेलनों में उन का परिचय प्रोफ़ेसर स्वरूप से हुआ। उन के पिता कोट मौदू जिला लायलपुर में जमींदार थे। पाँच हज़ार उन से लेकर वे इस योजना में प्रो० स्वरूप के साझीदार हो गये। लेकिन एम० ए० अथवा लॉ० की परीक्षा में सर्व-प्रथम रहना और बात है और किसी व्यापारिक-योजना को सफल बनाना और बात! प्रोफ़ेसर साहब बुरी तरह असफल रहे। लॉ रिपोर्टर एक वर्ष ही में मौन हो गया और उन के सिर पर साठ सत्तर हजार का ऋण हो गया। उस समय उन के संबंधियों ने समझाया कि दीवाले की दरख्वास्त दे दो, परन्तु प्रोफ़ेसर साहब के अहं को यह स्वीकार न हुआ। उन्हों ने अपने ऋणदाताओं की मीटिंग बुलायी। उन को परिस्थित समझा दी। कहा कि यदि मैं दीवाले की दरख्वास्त दे दूँगा तो आप लोगों के पल्ले दस प्रतिशत से अधिक न पड़ेगा। यहि आप कुछ कम लेना पसन्द करें तो मैं वचन देता हूँ कि जो भी तय होगा, उस की पाई पाई चुका दूँगा। उस समय उन्हें साठ हज़ार रुपया देना था। प्रेस आदि बेचकर उन्होंने बीस सहस्र रुपया चुका दिया। बीस हजार उन के कर्ज़दारों ने छोड़ दिया और तीस हजार की पाई पाई चुकाने का वचन उन्हों ने ऋणदाताओं को दे दिया।

'लॉ रिपोर्टर' और प्रेस के बन्द हो जाने से 'जग-साहित्य-माला' की योजना भी संकट में पड़ गयी। फ्रांस, रूस, इंग्लिस्तान, जर्मनी तथा इटली की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ ही अभी तक छप पायी थीं और बिक्री तो दस प्रतिशत भी न थी। श्री धर्मदेव वेदालंकार को इस बीच में लाहौर की हवा लग चुकी थी। एक बड़ी प्रकाशन-संस्था के डायरेक्टर बनने

का गर्व वे अनुभव कर चुके थे। फिर प्रो० स्वरूप तो वकील थे, अपने ससुर की सहायता से वे एक बड़ी प्रसिद्ध बीमा कम्पनी के वैतनिक परामर्शदाता बन गये थे। उन की मोटर भी वही रही और रहन-सहन भी, किन्तु श्री धर्मदेव के लिए ऐसा करना कठिन हो गया। प्रो० स्वरूप की देखा देखी उन्होंने भी अपना आर्य-समाजी-स्वरूप बदल कर विदेशी रूप निखार लिया था। शीश-महल रोड पर बड़ा अच्छा फ़्लैट लेकर अप-टू-डेट फ़र्नीचर से उसे सजा लिया था। और प्रो० स्वरूप की भाँति बड़ी शान से रहने लगे थे। इस बीच में दस हजार रुपया वे अपने पिता से और ले चुके थे। और अपने इस सपूत को सफल बनाने के प्रयास में उन की छोटी सी ज़मींदारी का दीवाला पिटने को हो गया था। जब प्रो० साहब ने प्रेस बन्द किया तो श्री धर्मदेव के सामने समस्या उपस्थित हुई कि क्या करें। पहले सोचा कि अध्यापन-कार्य करें, पर गोसाईं तुलसीदास ने जो कहा है कि जिन्हों ने राम-नाम-रस चखा है, उन्हें सभी रस फीके लगते हैं। धर्मदेव जी को शान शौकत से रहने की आदत हो गयी थी और शान शौकत से रहने का मज़ा भी राम-नाम के मज़े से कम नहीं। उस के बाद अध्यापन में उन्हें क्या रस मिलता? अपने उस स्तर को नीचे लाना और पिता से और रुपया हथियाना दोनों बातें कठिन थीं। तब आर्य-समाज के मंत्री श्री नकुल सेन ने उन्हें सुझाया कि वे 'जग-साहित्य-माला' के पीछे लठ्ठ लेकर क्यों पड़े हैं, भारत के साहित्य की ओर क्यों नहीं देखते। उन्हों ने वेदालंकार जी को सुझाया कि पंजाब के स्कूलों और कालेजों के पाठ्य-क्रम के लिए उन्हें पुस्तकें तैयार करके अथवा करवा के छपवानी चाहिएँ। मैट्रिक, एफ़० ए०, रत्न, भूषण या प्रभाकर में यदि एक पुस्तक भी लग जाय तो हजारों का वारा न्यारा हो जाता है।

"लेकिन प्रेस तो हमने बेच दिया।" श्री धर्मदेव ने विवशता से कहा था।

"प्रेस मेरा जो है, आप जो चाहें छाप दूँ ! अरे भाई पहला संस्करण दो सौ का छपवाओ। पुस्तक लग गयी तो पाँच दस हज़ार छपवाओ। बेचने का झंझट न पालना चाहो तो मैं चालीस प्रतिशत कमीशन पर सारा अधिकार ले लूँगा। आप को नक़द दे दूँगा। आप मौज उड़ाइए।"

श्री धर्मदेव को यह अन्तिम बात बहुत भाई। पुस्तकें तैयार करना मुश्किल न था। वे स्वयं भी लिख सकते थे, मित्रों से भी लिखवा सकते थे। 'जग-साहित्य-माला' से जितनी पुस्तकें छपी थीं वे सब उन्हीं द्वारा अनूदित थीं। परन्तु पुस्तक छापना एक बात है और उसे कोर्स में लगवाना दूसरी। उसके लिए प्रभाव भी चाहिए और तिकड़मबाज़ी भी। बोर्ड के सात आठ मेम्बर थे। लगभग सब की किसी न किसी प्रकाशक से साँठ-गाँठ थी। किसी की पुतकें प्रकाशक मुफ़्त छापता था। किसी को पाँच से लेकर बीस प्रतिशत तक कमीशन देता था। किसी की अपनी पुस्तक दूसरे नाम से बोर्ड को भेजी जाती थी। यह सब वेदालंकार जी के बूते से बाहर था। परन्तु स्कीम बहुत अच्छी थी। 'हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा आये' की सी बात थी ! धर्म जी प्रो० स्वरूप के पास गये। उन से कहा कि वे चाहे लॉ रिपोर्टर को खत्म कर दें, परन्तु 'जग-साहित्य-प्रकाशन' को, चाहे नाम ही से सही, जारी रखें। पुस्तकें लिखने-लिखाने छपने-छपाने का काम वे स्वयं करेंगे। प्रोफेसर साहब केवल लगवाने में सहायता करें। बोर्ड की मीटिंग के दिनों में दो चार दिन उन्हें गँवाने पड़ेंगे। पर इतने से ही हज़ारों का काम हो जायेगा। उन के पास कार है। बोर्ड के सदस्य उन्हें जानते हैं। समाचार-पत्रों में उन का रुसूख है, पुस्तकें लगवाने में किसी प्रकार की कठिनाई न होगी। लाभ जो भी होगा, आधा आधा बाँट लेंगे।

प्रोफ़ेसर स्वरूप को यह स्कीम पसन्द आयी। इन्श्योरेन्स कम्पनी से उन्हें अढ़ाई सौ रुपया वेतन मिलता था। सस्ती का ज़माना ही सही,

उतने से घर का खर्च भी कठिनाई से चलता था। ऋण का रुपया उतारने के संबंध में वे चिन्चित रहते थे। यह स्कीम उन के मन लगी और उन्हों ने अपनी अनुमति दे दी।

जब तक 'जग-साहित्य-माला' की पुस्तकें रहीं और धर्म जी कुँवारे रहे, उन्हों ने पुस्तकें छापने और वितरित करने का काम भी अपने ही पास रक्खा। लाभ भी काफी हुआ। प्रोफ़ेसर साहब के प्रभाव से उन की आठ आठ पुस्तकें पाठ्य-क्रम में लग जाती थीं, पर इधर उन्हों ने शादी कर ली थी और उन का खर्च, व्यस्तता और जीवन-स्तर कुछ और बढ़ गया था। गर्मियों में पहाड़ जाना अनिवार्य हो गया था। पुस्तकें तो किसी न किसी प्रकार तैयार कर देते थे, पर दुकान और वितरण का काम उन्हें बड़ा जंजाल मालूम होता था। जो किताब आज लगती तीसरे वर्ष बिकनी शुरू होती और तीन चार वर्षों में उस का संस्करण समाप्त होता। थोड़ी थोड़ी रकम मासिक अथवा वार्षिक आने से प्रोफ़ेसर साहब का भी कुछ न बनता। वह सब रुपया उन के घरेलू खर्च के अर्पित हो जाता। कर्ज़दारों को वे कुछ न दे पाते। तब दोनों ने परामर्श करके श्री नकुल सेन प्रधान मंत्री आर्य समाज की ही बात मानना श्रेयस्कर समझा। श्री धर्मदेव पुस्तकें लिखवाते और सदा इस बात का प्रयास करते कि लेखकों की अधिक से अधिक रायल्टी उन्हीं की जेब में जाय। प्रोफ़ेसर साहब उन्हें लगवाते और श्री नकुल सेन वितरित करते। जो पुस्तकें श्री धर्मदेव बोर्ड के विचारार्थ तैयार करते, उन की सौ सौ प्रतियाँ श्री नकुल से उधार-खाते छाप कर उन्हें दे देते। प्रो० स्वरूप कोशिश करके उन में से अधिकांश लगवा लेते। तब उन्हें छापने और वितरण करने का ज़िम्मा श्रीनकुल सेन अपने सिर ले लेते। सम्भावित संस्करण की आय जोड़ कर वे २० प्रतिशत पुस्तक लिखने अथवा लिखवाने के लिए धर्म जी के

नाम लिख लेते (यह कहने की जरूरत नहीं कि श्री धर्मदेव किसी दूसरे लेखक को कभी कुछ ज्यादा न देते) २० प्रतिशत पुस्तक लगवाने के लिए प्रोफ़ेसर साहब के खाते लिख लिया जाता। रुपया लगाने और वितरण करने के लिए श्री नकुल सेन ६० प्रतिशत स्वयं लेते जिस में से पुस्तकें छापने का खर्च (जो उन्हीं के प्रेस में छपतीं) और विक्रेताओं का दस, पन्द्रह प्रतिशत कमीशन निकाल कर वे पच्चीस तीस प्रतिशत स्वयं बचा लेते।

धर्म जी तथा प्रोफ़ेसर साहब को वे उन की आधी रायल्टी सीज़न शुरू होते ही तत्काल पेश्गी दे देते। श्री धर्मदेव पैसा लेते ही पहाड़ चले जाते। प्रोफ़ेसर साहब आधा तत्काल ऋणदाताओं को दे देते और आधा अपने लिए रख लेते और श्री नकुल सेन (जब पुस्तकें बिकने पर रुपया आता) उसे बैंक में भेज देते। उन की आकृति दिन-ब-दिन और भी विनम्र होती जाती और वेश-भूषा की सादगी और भी बढ़ती जाती।

कहने में उसे संकोच हुआ था और न वह किसी हीन-भाव से आक्रान्त हुआ था। प्रो० साहब और श्री धर्म देव की बात दूसरी थी। उन का स्तर उस से कहीं ऊँचा था। 'यदि उसे प्रो० साहब पचास रुपये पेशगी दे दें तो वह अवश्य अपने भाई से कह कर मालिक मकान से वह कमरा ले ले जो ऊपर की छत पर खाली पड़ा रहता है'......उस ने सोचा...और उस के सामने प्रोफेसर साहब से सम्भावित भेंट का चित्र घूम गया।

उस ने देखा कि प्रोफेसर साहब ने उस का अनुवाद बड़ा पसन्द किया है। देर तक वह अपने कानों से उन के साथ होने वाले अपने सम्वाद सुनता रहा। बार बार वे ही सम्वाद! फिर उस ने देखा कि प्रो० साहब ने उसे पचास रुपये पेशगी दे दिये हैं। वह भागा भागा आया और उस ने कमरा ले लिया। सामान खरीद कर उसे सजा लिया। तब वह पार्टी के दफ्तर से आते समय दुरो को अपने साथ ले आया। वह उसे चाय पिला रहा था कि सत्या जी आ गयीं। वह ऐसे झेंप गया जैसे उन्हों ने उसे चोरी करते देख लिया हो......

जगमोहन ने आँखें खोल दीं। उस के माथे पर पसीना आ गया था। पास पड़े हुए कुर्ते के दामन से पसीना पोंछ कर उस ने करवट बदली। वह सोया न था। केवल आँखें बन्द किये हुए अर्ध-जागृतावस्था में यह सब देख रहा था। पर खुली आखों भी वही दृश्य उस के सामने आने लगा। उस ने फिर करवट बदल ली।

गर्मी भयानक थी। छत के ऊपर शायद कहीं हवा चलती होगी। गली में तो भट्टी तप रही थी। मच्छर निरन्तर भिनभिना रहे थे। जगमोहन की खोपड़ी जैसे विशाल रेगिस्तान थी। उस में कभी इधर और कभी उधर उड़ने वाले वातचक्रों-से विचार चले आ रहे थे—उच्छृङ्खल, विशृङ्खल, अव्यवस्थित और क्रम-रहित! सत्या जी से उस की पहली भेंट...सीढ़ियों पर अपने कंधे पर उन के वक्ष का दबाव ..

म्यानी में उन की वह सुप्तावस्था की भंगिमा .....उस के स्नायु तन गये। सिर को झटका देकर उस ने फिर करवट बदली। सामने दुरो आ गयी। वह स्फूर्तिमय, चपल, पर गम्भीर लड़की। उस के हृदय में एक टीस सी उठी। 'आखिर उस लड़की में क्या है ? 'वह सोचने लगा, 'बीसियों उस से कहीं अधिक सुन्दर होंगी, पर जाने क्यों, वह उसे अच्छी लगती है। जाने क्यों, उसी का प्रेम वह पाना चाहता है ? क्या वह उस से प्रेम कर सकती है ? उसकी आँखों में तो उसे इस का आभास नहीं मिला। फिर वह क्यों बार-बार उसकी आँखों में आती है ? वह उस से प्यार भी करने लगे तो क्या ? क्या वह उस से विवाह कर सकता है ? उस के पास तो अपना पेट भरने की भी सुविधा नहीं और वह प्रेम के पीछे लट्ठ लिये फिरता है'..... और वह अचानक हँस दिया। रात के उस सन्नाटे में अपनी वह हँसी उसे बड़ी विचित्र लगी। ......वह पागल तो नहीं हो गया ?......सहसा वह उठ कर बैठ गया।

उस का एक मित्र समाचार-पत्र में उप-सम्पादक था। उप-सम्पादक क्या, अनुवादक था। पर दैनिक समाचार-पत्रों के अनुवादक क्योंकि अपने आपको उप-संपादक लिखते हैं सो वह भी उप-संपादक कहाता था। उस के भाग्य ने ज़ोर मारा तो वह इन्फर्मेशन-विभाग में ले लिया गया। समाचार-पत्र के दफ़्तर में था तो पतला दुबला था। सरकारी दफ़्तर में जाते ही वह मोटा होने लगा। एक दिन जगमोहन उस से मिलने गया। वह कौच के एक कोने पर पीछे को लेटा हुआ था। "क्या सोच रहे हो ?" जगमोहन ने पूछा। "कुछ भी न सोचने का प्रयास कर रहा हूँ !" उस के मित्र ने कहा। "क्या मतलब ?" चकित सा जगमोहन बोला। "तुम देख नहीं रहे हो मैं पहले से कितना स्वस्थ हूँ," मित्र ने कहा। "स्वस्थ। तुम गुब्बारे की तरह फूले जा रहे हो !" जगमोहन बोला। "वह इसी न सोचने का परिणाम है," मित्र हँसा, "मैंने रोज़ इसी तरह दिमाग़ को खाली रख कर बैठने का अभ्यास कर

लिया है। मैं घंटों बिना कुछ सोचे बैठ सकता हूँ। और मेरा स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है।......" और अपनी रौ में उस ने जगमोहन को 'चिन्ता छोड़ कर स्वस्थ रहने' पर एक छोटा मोटा भाषण दे डाला था।

गली के उस अँधेरे में, अपनी चारपाई पर बैठे, जगमोहन ने भी 'कुछ न सोचने का' प्रयास किया। क्षण भर आँखें माथे में टिका उस ने प्रत्येक घटना को अपने मस्तिष्क के दरवाज़ों से दूर भगा दिया। विचार आते, उस के मस्तिष्क के बन्द किवाड़ों से टकराते, पर उस का माथा सिकुड़ जाता, उस के सारे शरीर की नसें तन जातीं और उस की अपनी ही छाया मस्तिष्क के दरवाज़े पर बैठी, उन्हें परे हटा देती। फिर न जाने किस दिशा से वसंत अन्दर घुस आया। पतझड़ से पीले थोहर के पत्ते सरीखा उस का मुख, काँटों सी दाढ़ी, और बड़ी-बड़ी आँखें! वसंत कम बुद्धिमान न था। उस की कविता में आग थी। बातों में तथ्य था। दुरो ने उस की प्रशंसा भी कम न की थी, पर क्यों उसे उस से ईर्ष्या न हुई? हरीश ही से उसे क्यों ईर्षा हुई?...... वसंत आया तो फिर दुरो, सत्या जी और हरीश भी फ़सील टूट जाने पर धावा करते हुए सैनिकों-से उस के मस्तिष्क में आ गये। परास्त हो कर वह लेट गया। उस ने कमीज़ के दामन से मुँह और छाती का पसीना पोंछा और एक दो बार पंखा किया। दिमाग़ को स्वतन्त्र छोड़ दिया कि जा जो इच्छा हो सोच! लेकिन यह ढील देते ही कुछ देर बाद उसे नींद आ गयी।

सुबह अभी गली में उजियाला भी न हुआ था कि जगमोहन हड़बड़ा कर उठ बैठा।

उस के मालिक मकान बाबू मुकन्द लाल सुबह उठ कर नियमित रूप से सैर करने वालों में से थे। घर के पास ही मैदान में बकरवाल अपनी दो चार गाइयों और दस बीस बकरियों को लेकर आ जाते थे। बकर

वालों के बाड़े तो ऋषिनगर में दायें हाथ को उस जगह थे जो अभी मुसलमान गूजरों के पास थी, पर क्योंकि ऋषिनगर के बाबू लोग और महाशयगन उन का विश्वास न करते थे और अपने सामने, अपने बर्तनों में दूध दुहाना पसन्द करते थे, इसलिए वे अपना रेवड़ लिये इस मध्यवर्ती मैदान में आ इकट्ठे होते। बाबू मुकन्द लाल का यह नियम था कि सैर को जाने से पूर्व वे दूसरे बाबुओं के आने और भीड़ लगने से पहले, दूध दुहा कर घर रख जाते थे। इन बकरवालों के कुत्ते को न जाने उन की सूरत से क्या चिढ़ थी। वह उन को देखते ही भूंकने लगता। जब तक वे खड़े दूध दुहाते, वह निरन्तर भूंकता रहता। भेड़िए सा बड़ा कुत्ता था, बकरवाल बड़ी मुश्किल से उसे रोक रखते। एक दो बार बाबू जी ने ईंट भी दिखायी, तब से वह और भी उन से चिढ़ गया। वे घर से निकलते कि वह उनकी गंध पाकर भूँकने लगता। उस दिन बाबू मुकन्द लाल के सिर में दर्द था। रात नींद न आयी थी। वे चिढ़े हुए थे, पर कुत्ते को इस बात की क्या समझ? वह निरन्तर भूँकता रहा। बाबू मुकन्द लाल झल्ला गये। जब बकरवाल ने दूध दुह कर बर्तन उन्हें दिया और कुत्ता भूंकता भूँकता उन के निकट आया तो घुमा कर एक लीत उन्हों ने उस के दे मारी। कोई दूसरा कुत्ता होता तो भाग जाता, पर वह लपक कर उन की गर्दन तक आ चढ़ा। तब बाबू मुकन्द लाल के हाथ से दूध का बर्तन नीचे गिर गया। ऐसी अमानुषिक चीख उन के कंठ से निकली कि जगमोहन को नींद में सुनायी दी और वह हड़बड़ा कर उठ बैठा।

पहले तो उस ने समझा कि उस ने सपने में चीख सुनी है, पर कुत्ता ज़ोर से भूँक रहा था और शोर भी मच रहा था। वह भाग कर वहाँ गया। बकरवालों ने कुत्ते को दबोच लिया था। दो आदमी उसे पकड़े हुए थे, वह उछलने के प्रयास में बेतरह भूँक रहा था और बाबू मुकन्द लाल धमकियाँ दे रहे थे कि वे उसे गोली मरवा देंगे और यदि बकरवाल उस कुत्ते का कोई प्रबन्ध न करेंगे तो उन सब बकरवालों को

ऋषिनगर से निकलवा देंगे आदि......आदि......

बकरवालों ने लाला जी को और दूध दुह दिया। जगमोहन ने उन्हें शान्त किया और बाबू जी को लौटा लाया। बाबू जी दूध का 'दोहना' लेकर अन्दर गये तो उस ने बिस्तर गोल किया, शौचादि से निवृत्त हो, हाथ-पम्प से पानी की बाल्टी भर कर स्नान किया और कपड़े पहन अनूदित परिच्छेद बग़ल में दबा, वह प्रोफ़ेसर साहब के घर की ओर चल दिया।

प्रो० साहब जब प्रेस चलाते थे तो प्रेस के निकट ही चैम्बरलेन रोड पर रहते थे। जब से उन्हों ने प्रेस बन्द किया था और अलग-मकान और नौकरों का खर्च चलाना उन के लिए दुष्कर हो गया था, वे लारेंस रोड में अपने ससुर की कोठी में उठ गये थे।

लारेंस रोड जगमोहन के घर से दो अढ़ाई मील के अन्तर पर थी। लारेंस बाग़ जहाँ समाप्त होने लगता है और गवर्नर की कोठी शुरू होती है, वहीं बायें हाथ को गवर्नर की कोठी की दीवार के साथ साथ लारेंस रोड सीधी असेम्बली से शिमला पहाड़ी को जाने वाली सड़क से मिलने चली जाती है।

लारेंस रोड पर दायें हाथ को गवर्नर की कोठी की ऊँची दीवार है। और बायें हाथ को बंगले हैं। चार नम्बर के बंगले में प्रो० साहब के ससुर रहते थे और वहीं जगमोहन को उन्होंने बुलाया था।

हौदियों की दुर्गन्ध से आक्रान्त बाज़ारों और घुटी घुटी गलियों में से जल्दी जल्दी गुज़रता हुआ जगमोहन जब लोयर माल पहुँचा तो उस ने सुख की साँस ली। परन्तु यह सुख मानसिक ही था। माल पर यद्यपि उतनी घुटन न थी, पर वायुमंडल में उमस उतनी ही थी। पेड़ों के पत्ते तक निष्प्राण थे। हवा का हल्का सा स्पर्श भी कहीं न था। गर्मी के

कारण जी घुटा जा रहा था। फिर सरकारी भंगी जगह जगह सड़कों पर अपने झाड़ू का चमत्कार दिखा रहे थे और धूल वातावरण पर छाकर उसे और भी दम घोंटने वाला बना रही थी।

अपने विचारों में उलझा जगमोहन लम्बे लम्बे पग धरता चला जा रहा था। जहाँ कहीं भंगी धूल उड़ाता, वहाँ वह अपनी साँस रोक लेता और धूल का वह बादल पार कर, ताज़ा हवा से अपने फेफड़ों को भर लेता। उस के विचारों का क्रम भी साँस के साथ रुक जाता और फिर धूल को पार कर के आरम्भ हो जाता।

स्टडी-सरकल ही में उसे मालूम हो गया था कि दुरो के पीछे भागना मरीचिका को पाने का प्रयास करना है। हरीश और दुरो में अधिक बातें न हुई थीं, परन्तु हरीश को देखते ही उस के मुख पर जो लज्जा-मिश्रित-उल्लास बिखर जाता था, उस ने उसे तत्काल सारी स्थिति जना दी थी। प्रेमी का हृदय जो अपने प्रिय को देख कर अनायास धड़क उठता है, प्रतिद्वन्द्वी को लख, अपने आप सिकुड़ भी जाता है। साधारण लोगों को जब कुछ भी मालूम नहीं होता, तब प्रेमी की आँखें अपने प्रिय अथवा प्रतिद्वन्द्वी की आकृति के बदलते हुए हल्के गहरे रंगों, पलकों के कम्पन, मस्तक की सिकुड़न, पुतलियों की चमक और ओठों पर प्रकट न दिखायी देने वाली मुस्कान से अनजाने भाव ढूँढ़ निकालती हैं। प्रेम हृदय को विशाल भी कर देता है और संकुचित भी और आँखों को ऐसा पैनापन प्रदान कर देता है कि वे आँखों की भाषा पढ़ लेती हैं। सहज-ज्ञान ही से जगमोहन को पता चल गया था कि दुरो हरीश को चाहती है और उस के अन्तस्तल की गहराई से एक दीर्घ-निश्वास निकल गया था। परन्तु उस का विवेक, जो आसक्ति के प्रथम-आवेग में उड़ गया था, यथार्थता के पहले झटके ही से अपनी जगह आ लगा था। उस ने दुरो को अपने ही स्तर की समझा था—अपने ही स्तर की और प्राप्य! परन्तु हरीश की उपस्थिति ने उसे अप्राप्य बना दिया था। यह

उस का भाग्य !

'मुझे दुरो का ध्यान छोड़ देना चाहिए।' उस ने चलते चलते सोचा। 'इस में असफलता, निराशा और पीड़ा के अतिरिक्त कुछ हाथ न आयेगा।' और उस ने तय कर लिया कि वह अपने मन से दुरो का चित्र निकाल देगा। वह चित्र वहाँ आ ही क्यों गया ? इसी बात का उसे खेद हो रहा था। जब तक वह अपनी शिक्षा समाप्त नहीं कर लेता, प्रेम के चक्कर में न पड़ेगा।

अपने इन्हीं विचारों में मग्न वह अजायबघर, कमर्शल बिल्डिंग्ज़, बड़ा डाकखाना, दयालसिंह मेन्शन्ज़ पार कर गया। अँधेरा बिल्कुल छट गया था। लारेंस की सैर करने वाले निरन्तर आ जा रहे थे। जो लारेंस तक न जाते थे, वे सम्राज्ञी विक्टोरिया की मूर्ति के साथ बिछे घास के टुकड़े पर बैठे अथवा लेटे हुए थे। जगमोहन भी क्षण भर को वहीं रुक गया। फुट पाथ के साथ साथ चारों ओर लगी लोहे की उस मोटी ज़ंजीर पर उस ने सुस्ताने को पाँव रख लिया। तब उस के मन में अजीब सा ख्याल आया—सम्राज्ञी की यह प्रौढ़ावस्था की मूर्ति यहां क्यों स्थापित की गयी ? एक बार उस ने 'सम्राज्ञी विक्टोरिया' नाम से फिल्म देखा था। कितनी सुन्दर लगती थी युवा सम्राज्ञी ! किन्तु राजनीतिज्ञ कदाचित् सुन्दरता का ज्ञान खो देते हैं। राजनीति के षड़यंत्र उन की कोमल भावना को कुंठित कर देते हैं। जगमोहन के युवा हृदय को, जो इधर कुछ दिनों से सौंदर्य का पारखी हो गया था, मूर्ति की स्थापना करने वालों पर बड़ा क्रोध आया और जैसे इसी बात के विरोध में वहाँ बिना अधिक सुस्ताये वह आगे चल पड़ा।

कोठी का नम्बर पढ़ कर जब उस ने अन्दर प्रवेश किया तो कुछ ही कदम चल कर उस ने देखा कि बंगले के आगे लान में पलंग बिछाये, मसहरी लगाये, पंखा छोड़े प्रो० स्वरूप करवट के बल सोये हुए हैं। जगमोहन ठिठक गया। उस ने देखा कि उन के पलंग के साथ और भी

पलंग बिछे हैं। एक दो पर बच्चे सोये हैं और दो खाली हैं। कदाचित् उन के दूसरे घर वाले जग गये थे, केवल वे और उन के बच्चे बेसुध सोये थे।

'बड़े आदमी हैं !' जगमोहन ने मन ही मन सोचा, 'सारी दुनिया जाग पड़ी और ये सोये हुए हैं।' वह उलटे पाँव वापस फिरा। जाकर माल के किनारे घास पर बैठ गया। अनुवाद किया हुआ परिच्छेद उस ने फिर निकाल लिया और उसे एक नज़र देखने लगा। वहीं बैठे बैठे उस ने सारे का सारा अनुवाद एक बार देख डाला। एक दो जगह ठीक किया। फिर उस को निकट रख कर वहीं घास पर लेट गया और हरे हरे घास के लान में, मसहरी की छाया में, पंखे की हवा में लेटने वाले के भाग्य की तुलना, ऋषिनगर के उन दुमंजिले तिमंजिले मकानों से घुटी गली की उमस में, मच्छरों की भिनभिनाहट का वाद्य सुनते हुए लेटने वाले के भाग्य से करने लगा। अपनी उस गली की गंदगी और घुटन से निकल कर कभी वह भी किसी कोठी के आगे, घास के खुले लान में, पंखे की हवा लेते हुए सोने का अवसर पा सकेगा—वह सोचता रहा। बड़ी देर तक बैठने, लेटने और इधर उधर घूमने के बाद वह फिर कोठी में गया। प्रो० साहब उठ कर बैठ गये थे और मुँह पर हाथ फेर रहे थे। जगमोहन वहीं रुका रहा। वे अन्दर चले जायँ तो वह जाय, उस ने सोचा और लौट आया। पन्द्रह बीस मिनट इधर उधर घूम कर वह फिर गया। प्रो० साहब उठ कर अंदर चले गये थे। उस ने जाकर बरामदे में 'काल बैल' का बटन दबाया और नौकर को अपना नाम दिया। परन्तु प्रो० साहब की प्रतीक्षा में उसे आधा घंटा बैठना पड़ा। जब अन्ततोगत्वा वे ड्रेसिंग गाऊन पहने, चाय का प्याला हाथ ही में लिये, बाहर आये तो उस ने बढ़ कर उन्हें 'नमस्कार' किया और फिर अपने आने का मंतव्य प्रकट किया।

प्रो० साहब ने वह एक परिच्छेद सुना। पसन्द किया। कहा कि

बस एक बार बैठ कर वह सारे का सारा लिख डाले और वे वापस अन्दर को चले।

तब जगमोहन ने साहस कर पेशगी की बात कही। प्रो० साहब अन्दर गये। आकर तीस रुपये उन्हों ने उस के हाथ पर रख दिये। कहा, "पुस्तक तो 'जग-साहित्य-प्रकाशन' की है। दफ़्तर ही में आपको रुपया मिलना चाहिए, पर आप इतनी दूर से आये हैं, इसलिए अभी आप ये तीस रुपये रखिए। बीस रुपये मैं आप को धर्म जी के हाथ भेज दूँगा।"

"मुझे एम० ए० में दाखिल होना है," जगमोहन ने थूक निगल कर कहा। "रुपये की मुझे बड़ी आवश्यकता है।"

"मैं भिजवा दूँगा, आप चिन्ता न करें।"

और वे अन्दर चले गये।

उस ने 'नमस्कार' किया और मुड़ा।

यद्यपि तीस रुपये भी उस के लिए बड़ी बात थी, उसे तो इस बात का भी डर था कि यदि कहीं प्रो० साहब को अनुवाद पसन्द न आया तो ......पर न जाने क्यों उसे तीस रुपने पाकर प्रसन्नता न हुई। वसंत ने उस के मन में जो संदेह पैदा कर दिया था, इस पेशगी के बावजूद उस के मन में छिपा बैठा रहा।

साढ़े आठ बज गये थे, धूप में आँखें न टिकती थीं, जब वह प्रो० साहब की कोठी से निकला। कुछ क्षण तक वह धीरे धीरे चलता रहा। फिर सिर को झटका दे, उदास विचारों को मस्तिष्क से निकाल, जेब में पड़े तीस रुपये के नोटों को एक बार फिर हाथ से छू, पेड़ों वाली लस्सी की कल्पना में मस्त, वह तेज़ चलने लगा।

२५

"यह देखिए, यह बैठे हैं महात्मा जी"

जगमोहन ने सिर उठाया। वह जिसे कि पंजाबी में कहते हैं, लंगर-लंगोट-कसे प्रोफेसर स्वरूप की हिस्ट्री के पीछे पड़ा था। आँख उठा कर उस ने देखा—भाभी के साथ सत्या जी और दुरो खड़ी हैं।

"क्या हम आ सकते हैं?" दुरो ने कहा।

जगमोहन हड़बड़ा कर उठा। वह पूर्ववत् तहमद का लंगोट बनाये बैठा था। पास पड़ा कुर्ता पहन और तहमद की कोर पीछे कमर से निकालते हुए उस ने कहा, "आइए आइए!"

"मैं ने आते आते म्यानी को खाली देखा तो समझी कि आप ने मकान ही बदल लिया है," सत्या जी ने पलंग की पट्टी पर बैठते हुए कहा। और उन्हों ने कमरे में चारों ओर एक दृष्टि डाली।

प्रो० स्वरूप से तीस रुपये लेकर सब से पहला काम जगमोहन ने जो किया, वह मालिक मकान से वही ऊपर वाला खाली कमरा लेना था। कमरा तीसरी मंज़िल पर था। काफ़ी खुला और चौड़ा। ऊपर की मंज़िल पर होने से गर्मी तो थी, पर यदि हवा चले तो उस का पहला स्पर्श भी उसी को मिलता था। अपना मेज़, तिपाई, किताबें वह

ले आया था। चारपाई दिन को अन्दर और रात को बाहर कर लेता। कुर्सी और चारपाई के अतिरिक्त बैठने की कोई चीज़ न थी, इसलिए वह एक नयी चटाई और एक सस्ती सी साढ़े तीन रुपये की ईज़ी चेयर भी ले आया था। दुरो को खड़ी देख कर उस ने उस की ओर संकेत कर दिया।

"मैं तो लाडो को रोते छोड़ आयी हूँ," कहती हुई भाभी चली गयी।

"आप तो बड़े व्यस्त हैं," दुरो ने कहा, "हम ने आप को व्यर्थ ही डिस्टर्ब किया।"

जगमोहन के ओठों पर एक थकी हुई सी मुस्कान फैल गयी। "यह प्रोफेसर स्वरूप के इतिहास का अनुवाद करना है" उस ने कहा, "पन्द्रह दिन उन्होंने दिये हैं और तीन सौ पृष्ठ हैं। बीस पृष्ठ रोज करूँ तो समय पर दे सकता हूँ।"

"पन्द्रह दिन की क्या जल्दी है?"

"उन्हें कहीं कोर्स में सबमिट करना होगा। है तो चार सौ पृष्ठ का। पर १०० पृष्ठ उन्हों ने किसी और के अनुवाद किये हुए मुझे भिजवा दिये हैं। सो अब तीन सौ मुझे अनुवाद करने हैं। जी तो नहीं चाहता पर कर रहा हूँ।"

"नहीं जी चाहता तो क्यों कर रहे हैं?"

"कर रहा हूँ इस लिए कि इसे हाथ में ले लिया है। नहीं अब पैसे मिलने की उतनी आशा नहीं। एम० ए० में दाखिले के लिए रुपयों की ज़रूरत थी, सो यह काम लिया था। पचास रुपये पेशगी माँगे थे और साढ़े छै आने प्रति पृष्ठ पारिश्रमिक। पेशगी देना उन्हों ने स्वीकार कर लिया था, किन्तु पारिश्रमिक एक आना घटा दिया कि ४०० पृष्ठ का काम है, एक आना कम लीजिए। मैं भी मान गया। सोचा एक साथ डेढ़ सौ मिल जायँगे तो प्रवेश-शुल्क का प्रबन्ध हो जायगा। जब

एक परिच्छेद अनुवाद करके पास कराने और पेशगी लेने गया तो उन्हों ने केवल तीस रुपये दिये। और कहा कि शेष रुपये भिजवा दूँगा। दमड़ी उन्होंने अब तक नहीं भिजवायी। उलटे किसी दूसरे के अनुवाद किये हुए सौ पृष्ठ मेरे गले मढ़ दिये। एक आना पृष्ठ उन्होंने इस कारण कम किया कि चार सौ पृष्ठ का काम है। जब मैं पेशगी ले आया और मैं ने काम शुरू कर दिया तो तीसरे दिन श्री धर्मदेव आये, मैं समझा कि बीस पेशगी के लाये हैं, पर उन्होंने एक मसौदा मेरे आगे फेंक दिया। कहने लगे, इस में एक सौ पृष्ठ का अनुवाद है, देखिए यदि आप काम में ला सकें! मैं ने संकोचवश ले लिया। रुपयों की बात टाल गये। पूछा तो कहने लगे "बस आप करते जाइए। शीघ्र ही आप को पहुँचा दूँगा।" दूसरे दिन फिर आये। मैं ने समझा रुपये लाये हैं। वे फिर पचास पृष्ठ का एक मसौदा लाये। कहने लगे, "यह १५० से दो सौ तक का अनुवाद एक दूसरे व्यक्ति ने किया है। देखिए, यदि यह ठीक हो तो रख लीजिएगा। क्रोध के मारे मेरा खून खौल उठा। मैंने कहा, "आप चिन्ता न करें मैं आप को काम समय पर खत्म करके दे दूँगा। अनुवाद को खराब न कीजिए। यदि आप कर सकें तो मुझे कुछ रुपये दिलवा दीजिए। काम तो देखिए, मैंने आप का पूरे ज़ोर से आरम्भ कर दिया है। दूसरे का अनुवाद अब मैं और न लूँगा। इस से स्टाइल में अन्तर पड़ता है।"

"जाने ऐसे ही पचास पचास पृष्ठ भिन्न व्यक्तियों से करा के वे पुस्तक समाप्त करना चाहते हों।"

"हो सकता है। इन वेदालंकार जी का कोई भरोसा नहीं। मैंने तो सुना दिया कि यदि आप को थोड़े ही पृष्ठ कराने हों तो अभी बता दीजिए, मेरा परिश्रम बचे। मज़दूरी तब मैं साढ़े छः आना पृष्ठ ही लूँगा। जितने कर लिये उन का हिसाब हो जायगा। 'नहीं ऐसी बात नहीं,' उन्हों ने कहा, 'पृष्ठ तो और भी कराये हैं, पर अब आप ही

कीजिए। प्रोफ़ेसर साहब को आप का अनुवाद पसन्द है।' मैंने पूछा, 'पेशगी के बीस रुपये?' बोले, 'बस आप अनुवाद खत्म कर दीजिए, रुपये आपको तुरन्त मिल जायँगे।' मुझे आशा तो नहीं कि ये लोग रुपये जल्दी देंगे। पर काम उन को समय पर दे दूँगा, इस बात का मैंने फ़ैसला कर लिया है।"

"They are all bloody exploiters!"[1] दुरो ने कहा।

"पर धर्म देव जी तो आप के मित्र हैं," सत्या जी बोलीं।

"इसी संकोच में पड़ा हूँ। नहीं मैं काम उसी समय छोड़ देता। आधा तो मैंने खत्म कर दिया है। सात दिन जम कर और बैठूँगा सारा खत्म कर दूँगा। सोचता था यदि डेढ़ सौ रुपया एक साथ मिल जाय तो मैं प्रवेश-शुल्क दे दूँ। तीस में से आधे तो मैं ने खर्च भी कर दिये। १०० पृष्ठों के पैसे वैसे ही कम हो गये। अब शेष कितने रुपये मिलेंगे? मन बिल्कुल नहीं हो रहा। फिर भी काम हाथ में ले लिया है। इसलिए कर रहा हूँ।"

"यह कमरा आप ने अच्छा ले लिया।" सत्या जी ने इस बीच में कमरे का निरीक्षण करते हुए कहा।

"यही लाभ इस काम का समझिए!"

"तब तो हमें आप का अधिक समय नष्ट न करना चाहिए।" दुरो उठने का उपक्रम करते हुए बोली।

"नहीं बैठिए। नष्ट क्या, मैं तो प्रायः चार बजे से निरन्तर काम कर रहा हूँ। आप के आने से मुझे आराम ही मिलेगा और उस आराम से स्फूर्ति!" और वह हँसा।

दुरो उठने लगी थी कि बैठ गयी।

सुबह का अपना प्रण जगमोहन एक दम भूल गया।

---

१ ये सब दूसरों के श्रम का अनुचित लाभ उठाने वाले हैं।

"दुरो आप के पास कुछ पुस्तकें बेचने आयी है।" सत्या जी बोलीं।

"कौन सी पुस्तकें ?" जगमोहन ने पूछा।

"ऋषि नगर में मेरी एक दो सहेलियाँ हैं, मैं कुछ पुस्तकें उन्हें दिखाने लायी हूँ। हरीश जी ने मेरे ज़िम्मे पचास की पुस्तकें लगा दी हैं। तीस की तो मैं ने बेच भी दी हैं। बीस की रह गयी हैं। सत्या बहन ने कहा, आप को भी दिखाती चलूँ।"

"मैं तो अभी प्रवेश-शुल्क का भी प्रबन्ध नहीं कर सका, वह हो जाय तो कोर्स की पुस्तकें खरीदूँ। फिर कोई और," जगमोहन कुछ विवशता से हँसा। फिर उस ने कहा, "लाइए देखूँ कौन सी पुस्तकें हैं ?"

और दुरो ने पुस्तकों का बंडल उस की ओर बढ़ा दिया। जगमोहनने एक नज़र उन्हें देखा।

"मेरे लिए तो सब नयी है। मैं आज तक अपने व्यक्तिगत-जीवन की उलझनों में ऐसा उलझा रहा हूँ कि अपने से दूर मुझे कुछ सुझायी ही नहीं दिया। इन में से जो पुस्तकें आप समझती हैं कि मुझे पढ़नी चाहिएँ, दाम भी जिन के अधिक नहीं, वे आप मुझे दे दीजिए।"

और जब दुरो ने पुस्तकें छाँट कर जगमोहन को दीं, तो तीस में से जो पन्द्रह रुपये उस के पास बच गये थे, वह उस ने दुरो की भेंट कर दिये।

२६

शाम हो गयी थी। कमरे में अँधेरा हो चला था। परन्तु जगमोहन बिजली का बटन दबाये बिना, निरन्तर काम कर रहा था। सत्या जी तथा दुरो उसे जहाँ छोड़ कर गयी थीं, वहाँ से वह हिला तक न था। चलते समय सत्या जी ने उसे सुना कर दुरो से कहा था कि वह अपनी सहेलियों के हो आये, वे नीचे भाभी के पास बैठेंगी। जाते जाते वह उन्हें वहाँ से ले ले। एक आध बार जगमोहन के मन में आयी भी कि नीचे जाय और दो क्षण उन से बातें करे! कदाचित् दुरो ही आ गयी हो। फिर उस ने इस विचार को मन से भगा दिया था। कुर्ता जो उस ने पहन लिया था, उतार कर फिर एक ओर रख दिया था। तहमद की कोर फिर कमर में खोंस ली थी और पुनः अपने काम में रत हो गया था। पसीना उस के बालों से उस की कनपटियों पर और कनपटियों से उस की गर्दन पर अनायास बह रहा था। पर वह उस ओर से बेपरवाह निरन्तर कलम चलाये जा रहा था।

"अब तो अँधेरा हो गया है, अब बस कीजिए।"

जगमोहन ने सिर उठाया। सत्या जी हाथ में एक गिलास लिये उस की ओर आ रही थीं।

"अरे आप अभी गयी नहीं?" जगमोहन ने कुर्ते को उठा, उस की बाहों को अपनी गर्दन में लपेट कर शरीर को आधा ढकते

हुए कहा।

"दुरो की प्रतीक्षा में बैठी रही। अभी उस ने कहलवाया है कि वह जल्दी न आ पायेगी। आवश्यक काम से पार्टी के दफ़्तर जा रही है।"

"तो आप यह लस्सी काहे को लायीं ! भाभी क्या कर रही हैं ! मुझी को आवाज़ दे देतीं !"

"नन्हें को दूध पिला रही हैं। और मैंने सोचा आप को नमस्कार करती चलूँ।"

"तो क्या आप जा रही हैं ?"

"हाँ देर हो रही है। आज गर्मी बहुत पड़ी है। आकाश पीला पीला हो रहा है। आँधी पानी न आ जाय !

"तो आप अकेली कहाँ जायँगी ! मैं आप को छोड़ आऊँ।"

"नहीं आप क्या कष्ट करेंगे, पहले ही आप का काफ़ी समय नष्ट हुआ है।"

"मैं ने तो अपना काम कर लिया। पच्चीसवाँ पृष्ठ लिख रहा हूँ।" लस्सी का गिलास एक ही घूँट में समाप्त करते हुए जगमोहन ने कहा। "आप तनिक भाभी के पास बैठिए। मैं दो मिनट में कपड़े बदल कर आता हूँ।"

सत्या जी गिलास लेकर नीचे गयीं तो जगमोहन ने पुस्तक और अनूदित पृष्ठ सम्हाल कर मेज़ पर रखे। पास पड़ी सुराही से ठंडा ठंडा पानी लेकर मुँह धोया, पानी का हाथ बालों पर फेरा, कपड़े बदले और नीचे जा पहुँचा।

"चलिए !" जाते ही उसने कहा।

"मैंने भाभी को तैयार कर लिया है। ये कहती हैं जब आप ले

चलेंगे, ये आ जायँगी।" सत्या जी ने वहीं खड़े खड़े कहा, "अब कहिए कब आयेंगे?"

"काहे के लिए?"

"सत्या जी की और हमारी मिठाई है न," भाभी बोलीं।

"मैं तो तैयार हूँ। सब आप पर है," सत्या जी ने कहा।

"यदि आप केवल भाभी को चाहती हैं," जगमोहन ने उत्तर दिया, "तो मेरी ओर से कल रख दीजिए। इन्हें ले जाइए, खिला-पिला कर छोड़ जाइए। पर यदि आप हमारा भी मुँह मीठा कराना चाहती हैं तो फिर और सप्ताह भर ठहर जाइए। मैं यह काम खत्म कर लूँ। फिर भाभी को ले आऊँगा। और आप जो मिठाई लायेंगी उस के साथ, जैसा कि अँग्रेज़ी में कहते हैं, पूरा पूरा इंसाफ करूँगा।"

"तो सप्ताह भर बाद सही," भाभी ने कहा।

"हाँ, हाँ!"...सत्या जी ने नमस्कार के लिए हाथ माथे की ओर ले जाते हुए कहा और चल दीं।

बाहर दिये जल रहे थे। जगमोहन हरिनिवास वाले रास्ते की ओर चला तो सत्या जी ने कहा, "देर हो गयी है, इधर से आइए जल्दी पहुँच जायँगे।"

"इधर पोस्ट-आफिस की ओर से, इधर से कौनसा मार्ग है?"

"है! आप चले आइए!" सत्या जी पोस्ट-आफिस की ओर बढ़ती हुई बोलीं, "रामनगर और गोपालनगर के मध्य खाली मैदान है। उसी में से हो कर एक पगडंडी उस सड़क पर जा निकलती है जो सीधी हमारे घर को जाती है।"

जगमोहन सत्या जी के पीछे चल पड़ा। यह मार्ग सूना ही था। इस लिए सत्या जी की दृष्टि धरती पर न जमी थी और न ही वे

जगमोहन से दूर चल रही थीं। कुछ दूर तक दोनों मौन-रूप से चलते रहे। फिर जब पोस्ट-आफिस से आगे होतूसिंह रोड पार कर, वे सूनी अँधेरी सी गली में दाखिल हुए तो सत्या जी चलते चलते उस के साथ आ गयीं।

"आप ने उस दिन कविता क्यों न पढ़ी ?" सहसा उन्हों ने पूछा।

"योंही मन नहीं हुआ।"

"क्यों ऐसी क्या बात थी ? आप जब हमारे यहाँ आये थे तो आप ने कहा था कि मैं भी कविता पढ़ूँगा।"

"वसंत ने जो कविता पढ़ी। उस के बाद मन कुछ उदास हो गया।" जगमोहन ने कहा, "अपनी कविता पढ़ने को हुआ ही नहीं। वास्तव में समाज की वर्तमान-व्यवस्था में प्रेम करते हुए भी, उसे निबाहना बड़ा कठिन है। मानव की सब से पहली आवश्यकता पेट की भूख है। भरे-पेट और फ़ालतू समय वाला वह निडर और बेधड़क प्रेम अब कहाँ है ? हमारे निम्न-वर्ग में तो और भी नहीं—भूख के बाद प्रेम का नम्बर आता है। मेरी कविता भी कुछ प्रेम ही के संबंध में थी। वसंत की बात कुछ ऐसी मन को लगी कि उस कविता के बाद फिर कुछ पढ़ने को मन ही नहीं हुआ।"

कुछ क्षण दोनों मौन चलते रहे। फिर सत्या जी ने कहा, "पर वह कविता तो सुनाइए।"

"हटाइए जी उस में क्या रखा है ?"

"नहीं अवश्य सुनाइए !"

उन के स्वर में कुछ ऐसी तरलता, स्निग्धता और अनुरोध था कि जगमोहन ने कहा, "आप की इच्छा है तो सुन लीजिए। मैं कोई कवि तो हूँ नहीं। योंही चातक जी की संगति में रहने से तुक मिलाना सीख गया हूँ। केवल दस बारह पंक्तियों की कविता है।"

और उस ने धीरे धीरे मीठे स्वर में गा कर कविता पढ़ी :

गमे राख

यह प्रेम कुसुम सखि मेरे
सूने उर की डाली पर।
चुप चुप धीरे धीरे सखि
मुरझा जायगा खिल कर।

घड़ियाँ पल निठुर समय के
बिखरा देंगे इस के दल।
औ' स्नेह-हीन हिम-आतप
मुरझा देंगे इस के दल।

तुम पा न सकोगी इस की
जीवन भर गंध कुमारी।
पर मिट कर महकायेगा
यह मानस की फुलवारी।

साँझ का समय था। अकेला मार्ग। जगमोहन के स्वर में कुछ ऐसी करुणा-भरी-मिठास थी कि सत्या जी मुग्ध हो गयीं। यद्यपि उन की आकृति से उन के मन के भावों को जानना बड़ा कठिन था, विशेष कर साँझ के उस प्रतिक्षण गहन होते अंधकार में, पर जब उन्होंने कविता की प्रशंसा की तो उन के स्वर में विचित्र सी तरलता थी।

"आपने व्यर्थ ही पढ़ने से इनकार कर दिया।" उलाहना देते हुए उन्हों ने कहा, "आप कविता पढ़ते तो देखते कि वसंत की कविता से यह कितनी अधिक पसन्द की जाती।"

जगमोहन ने इसका उत्तर नहीं दिया। उस ने कदाचित् सत्या जी की बात भी नहीं सुनी। उस का ध्यान कहीं पार्टी के दफ्तर में बैठी दुरो की ओर चला गया और मन ही मन उस ने अपनी कविता का अन्तिम चरण दोहरा दिया :

तुम पा न सकोगी इस की
जीवन भर गंध कुमारी !
पर मिट कर महकायेगा
यह मानस की फुलवारी !

और उस के हृदय से अनायास एक लम्बी साँस निकल गयी। दुरो उस से बहुत दूर थी, पर सत्या जी नितान्त निकट थीं। और अपनी निकटता की याद वे उसे दिलाये रखना चाहती थीं। उस की लम्बी साँस को लक्ष्य करके उन्हों ने लगभग आर्द्र स्वर में कहा, "क्यों थक गये ! मैं तो अकेली ही आ जाती। आप योंही चले आये।"

"नहीं नहीं ऐसा कोई बात नहीं," जगमोहन ने उठती हुई साँस को फिर दबा कर कहा।

दोनों फिर मौन-रूप से चलने लगे। होतूसिंह रोड के पार वाली गली के बाद, दायें हाथ के खुले मैदान में से होते हुए (जिस में मकानों की सीमाएं खिंची हुई थीं, कुछ अधबने थे और कुछ की नीवें पड़ चुकी थीं) वे दोनों एक और बाज़ार में आये जिस में अभी केवल तीन चार ही दुकानें बनी थीं। उस की एक गली में, दूसरे मकान के पिछवाड़े से हो कर, वे एक रहट पर आ गये। जगमोहन बातें करता हुआ अपने ध्यान में मग्न चला आया था। गलियाँ और बाज़ार अभी बेनाम ही थे। वह चाहता भी तो उसे पता न चलता कि वह किस गली, अहाते अथवा बाज़ार से होकर आ रहा है। बढ़ती हुई साँझ के गहरे अँधेरे में उसे तो रहट की उपस्थिति का भी ज्ञान न होता, यदि सहसा बायीं ओर एक कुत्ता न भूंकता और सत्या जी उसे चौंकाते हुए न कहतीं :

"ध्यान से आइएगा। यहाँ पानी का बरहा टूटा हुआ है।"

जगमोहन चौंका। कब सत्या जी उस के आगे हो गयी थीं और

तुम पा न सकोगी इस की
जीवन भर गंध कुमारी !
पर मिट कर महकायेगा
यह मानस की फुलवारी !

और उस के हृदय से अनायास एक लम्बी साँस निकल गयी। दुरो उस से बहुत दूर थी, पर सत्या जी नितान्त निकट थीं। और अपनी निकटता की याद वे उसे दिलाये रखना चाहती थीं। उस की लम्बी साँस को लक्ष्य करके उन्हों ने लगभग आर्द्र स्वर में कहा, "क्यों थक गये ! मैं तो अकेली ही आ जाती। आप योंही चले आये।"

"नहीं नहीं ऐसा कोई बात नहीं," जगमोहन ने उठती हुई साँस को फिर दबा कर कहा।

दोनों फिर मौन-रूप से चलने लगे। होतूसिंह रोड के पार वाली गली के बाद, दायें हाथ के खुले मैदान में से होते हुए (जिस में मकानों की सीमाएं खिंची हुई थीं, कुछ अधबने थे और कुछ की नीवें पड़ चुकी थीं) वे दोनों एक और बाज़ार में आये जिस में अभी केवल तीन चार ही दुकानें बनी थीं। उस की एक गली में, दूसरे मकान के पिछवाड़े से हो कर, वे एक रहट पर आ गये। जगमोहन बातें करता हुआ अपने ध्यान में मग्न चला आया था। गलियाँ और बाज़ार अभी बेनाम ही थे। वह चाहता भी तो उसे पता न चलता कि वह किस गली, अहाते अथवा बाज़ार से होकर आ रहा है। बढ़ती हुई साँझ के गहरे अँधेरे में उसे तो रहट की उपस्थिति का भी ज्ञान न होता, यदि सहसा बायीं ओर एक कुत्ता न भूंकता और सत्या जी उसे चौंकाते हुए न कहतीं :

"ध्यान से आइएगा। यहाँ पानी का बरहा टूटा हुआ है।"

जगमोहन चौंका। कब सत्या जी उस के आगे हो गयी थीं और

कब वह पीछे, उसे पता न चला था। 'कदाचित् यह जगह रामनगर और गोपाल नगर के बीच की गैर-आबाद जगह है।' उस ने मन में सोचा। बायीं ओर उसे रहट की छाया सी भी दिखायी दी। उस की गाधी से बँधा एक भैंसा बैठा जुगाली कर रहा था। पीछे अँधेरे में बैठे हुए किसी अराईं* ने कुत्ते को बुला लिया। जगमोहन ने आगे देखने का प्रयास किया पर उसे एक बड़े से पानी भरे गड़े के अतिरिक्त कुछ दिखायी न दिया। सत्या जी उछल कर बरहे के दूसरे किनारे जा खड़ी हुईं। जगमोहन भी उछलने लगा।

"न न, उधर नहीं!" सत्या जी चिल्लायीं, "उधर पानी है, इधर ही आइए, जहाँ मैं खड़ी हूँ। बस यही जगह सूखी है। और उन्हों ने हाथ बढ़ाया।"

उन के हाथ का, हाथ का कहाँ, दो अंगुलियों का सहारा लेकर जगमोहन कूदा। कूदते ही हाथ उस ने छोड़ दिया। यदि वह हाथ न छोड़ता और वे ज़रा पीछे न हट जातीं तो वह उन के ऊपर जा गिरता।

"बड़ा वाहयात रास्ता है।" उस ने बरहे के दूसरे किनारे की धरती छूते ही कहा। पर तभी उसे कंठ के नीचे सत्या जी की गर्म साँस का अभास मिला। उस साँस में न जाने क्या बात थी कि उस के रोयें खड़े हो गये। उस के जी में आया कि सत्या जी को अपनी बाहों में बाँध ले। पर तब सत्या जी, उसे सकुशल उस किनारे पर आ गया जान, मुड़ीं और उस के आगे आगे चलते हुए बोलीं :

"ज़रा अँधेरा हो गया है, पर यह बड़े ही निकट का मार्ग है।"

जगमोहन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उस का तनाव अभी कम न हुआ था। वह चुपचाप उन के पीछे चलने लगा। अँधेरा काफ़ी गहरा हो गया था। वे कदाचित् किसी पगडंडी पर जा रहे थे। जाने यह किसी

---

*मुसलमान जाट

कटे खेत की पगडंडी थी, अथवा किसी खेल के मैदान की ? क्योंकि दोनों ओर कुछ भी दिखायी न देता था। तभी सत्या जी उस के निकट आ गयीं। वे धीरे चल रही थीं अथवा वह तेज़ चल रहा था। जो भी हो, उन की श्वेत धोती उसे बिलकुल अपने निकट दिखायी दी। उस का कंठ फिर सूख सा गया। दुरो का ध्यान बिलकुल उस के दिमाग से निकल गया। उस की चेतना पर पर्दा सा छा गया। उस ने एक पग ज़रा जल्दी लिया, पर सत्या जी ने और भी तेज़ी से पग उठाया। जगमोहन के ओठों से सहसा सुख की लम्बी साँस निकल गयी। यदि वे ज़रा दूर न हो जातीं तो वह उन्हें बाहों में भर लेता—इस सूने, अकेले, अँधेरे मार्ग पर—फिर न जाने क्या हो जाता। उस ने सिर को झटका दिया। वह चैतन्य हो गया। सत्या जी उसे फिर बिल्कुल निकट दिखायी दीं, पर जगमोहन ज़रा सा रुक गया और वे जरा सा आगे हो गयीं। 'यदि मैं बढ़ कर इन्हें आलिंगन में ले लूँ' ! उस ने सोचा, उस के दिमाग़ में एक बार फिर बातचक्र-सा घूम गया। पर उस ने सिर को और भी ज़ोर से झटका देकर उसे हटा दिया। सत्या जी फिर निकट आ गयीं। उस ने अनजाने ही फिर एक कदम बढ़ाया, पर न जाने आगे चलते हुए भी वे उस की प्रत्येक गति-विधि का ध्यान रखती थीं, वे भी तेज़ हो गयीं। 'जाने यदि वह एक कदम बढ़ाने के बदले दो चार कदम बढ़ा कर उन्हें पकड़ ले तो वे न भागें', उस ने सोचा, पर वह उसी प्रकार चलता गया कि मैदान खत्म हो गया और उस ने देखा कि वे तो 'शुक्ल-साहित्य-सदन' के निकट पहुँच गये हैं। उस एक फरलाङ्ग के अकेले सूने मार्ग पर सत्या जी भी चुप चली आयी थीं। एक भी शब्द उन के मुँह से न निकला था। पार पहुँच कर उन्हों ने कहा, "हम शुक्ला जी के मकान के निकट पहुँ गये। देखा कितने समीप का है यह मार्ग !"

उन के स्वर में ज़रा भी हकलाहट न थी। हाँ जगमोहन को उन का

स्वर कुछ घुटा, रुका सा अवश्य लगा। उस ने निष्कृति की लम्बी साँस ली और बोला, "वही मैं देख रहा हूँ, वह खिड़की शायद उन्हीं के मकान की है।"

"जी हाँ!" सत्या जी ने कहा और अचानक वे उसे अपने कालेज की बातें सुनाने लगीं कि कैसे एक और बी० ए० पास अध्यापिका आ गयी हैं। सोमवती नाम है! अट्ठाइस उनतीस वर्ष की हो गयी हैं, पर उन्होंने अभी विवाह नहीं किया। विवाह करने का उन का कोई विचार भी नहीं। उन का एक धर्म का भाई पी० सी० एस० में आ गया है। परीक्षा का परिणाम निकला तो वह आया था, उस ने उन के चरण छुए थे। एक और धर्म का भाई उन के साथ ही रहता है। वह तो लोफ़र मालूम होता है। दो एक बार कालिज में आया है, पर पंडित दाताराम ने उस के आने पर आपत्ति की है।

पर तभी मेन रोड आ गयी। दूर एक पनवाड़ी की दुकान पर शुक्ला जी खड़े दिखायी दिये। सत्या जी ने कदाचित् दूर ही से उन्हें देख लिया। वे ऐसे आगे बढ़ गयीं जैसे वे जगमोहन के साथ नहीं, स्वतंत्र-रूप से चली जा रही थीं। जगमोहन अपने ध्यान में मग्न पीछे रह गया।

"कहो भाई किधर?" बराबर आने पर शुक्ला जी ने उसे देखा और पुकारा।

जगमोहन चौंका। उस ने देखा सत्या जी आगे निकल गयी हैं। वह रुक गया।

मुँह में पान के बीड़े रखते हुए शुक्ल जी उस की ओर बढ़े, पर सत्या जी के पीछे जाने के बदले जगमोहन स्वयं उन की ओर बढ़ा। 'सत्या जी को छोड़ने आया था,' उत्तर में उस ने कहना चाहा, पर शब्द उस के ओठों पर आकर रुक गये। दो चार बार की भेंट ही से जगमोहन शुक्ला जी को समझ गया था। फिर भी एक दम झूठ बोलना उस के

लिए असंभव था। उसे इस का अभ्यास ही न था। इसलिए दूसरे क्षण उस ने कहा, "जरा सत्या जी की ओर जा रहा था।"

"ऐ-हुम !" शुक्ला जी अर्थ-भरे स्वर में खाँसे। "हमारा भी हिस्सा रहे मित्र।"

जगमोहन का खून खौल उठा। पर वह मौन बना रहा।

शुक्ला जी ने उस के मुँह की ओर देखा। कदाचित् उन्हें प्रतीत हुआ कि जगमोहन को उन की बात बुरी लगी है। बोले, "अच्छा भाई, चलो तुम्हें छोड़ आयें सत्या जी के घर तक !"

जगमोहन ने सोचने की मुद्रा बनाते हुए दूर सत्या जी के मकान की ओर देखा। वे नीचे दरवाज़े में खड़ी थीं। जगमोहन के देखते ही उन्हों ने दोनों हाथ माथे पर ले जाकर नमस्कार किया और मुड़ कर अन्दर चली गयीं। जगमोहन ने अपना विचार बदल दिया। इन महाशय को वहाँ ले जाना उसे अच्छा न लगा। "फिर चले जायँगे," उस ने बेपरवाही से कहा "नये सदस्य उन्हों ने कुछ बनाये थे, उन के फ़ार्म लेने थे, फिर ले लेंगे, कोई ऐसा ज़रूरी काम तो यह है नहीं ! चलिए आप किधर चल रहे थे ?"

"काम तो यह बड़ा जरूरी है।" उन्हों ने शरारत से उस की ओर कनखियों से देखा और आँख दबायी। पर तुम हमें नहीं ले जाना चाहते तो चलो हम तुम्हें शान्ता जी के पास ले चलते हैं ! वे भी हमारी कार्यकारिणी में हैं और कई बार शिकायत कर चुकी हैं कि जगमोहन जी कभी नहीं आते ! चलो वहीं ले चलें तुम्हें।"

शुक्ला जी की वह भंगिमा जगमोहन को अत्यन्त बुरी लगी। सहसा उसे इस सारे व्यापार पर ग्लानि हो आयी। क्षणिक आवेश में उस ने कहा, "मैं तो समाज के मंत्रीपद ही से त्याग-पत्र देने की सोच रहा हूँ। वे मुझसे मिल कर क्या करेंगी ?"

"क्यों क्यों ?" क्ला जी ने शान्ता-विद्यालय की ओर कदम

उठाते हुए चिन्तित स्वर में कहा।

जगमोहन ने मन की बात मन ही में दबा ली। संयत होकर वह बोला, "योंही ! मैं एम० ए० में दाखिल होने की सोच रहा हूँ। समय का मेरे पास अभाव है। मंत्री तो नाम ही का मंत्री है। वास्तव में तो वह चपरासी है।"

"अरे भाई जब दाखिल होना, जब अलग हो जाना। और फिर समाज को कुछ चल लेने दो, तुम्हें अलग से चपरासी भी दे देंगे। घबराते क्यों हो ?"

जगमोहन ने इस का उत्तर नहीं दिया। वह चुप-चाप उन के साथ चलता रहा।

कुमारी जी ?' मैं ने पुस्तकों को एक नज़र देख कर पूछा। तब पता चला कि द्रौपदी बहन से वह लायी है; कि 'संस्कृति-समाज' के मंत्री श्री जगमोहन ने भी पन्द्रह बीस की खरीदी हैं। मैंने कहा, 'कुमारी जी, बाहर चाहे साम्यवादी छोड़ बमवादी-साहित्य बाँटिए, पर हमारे विद्यालय को माफ़ ही रखिए इन समाजवादी साम्यवादियों से।"

"देश को जब भी आज़ादी मिली, दूसरे देशों से प्रेरणा लेने वाले ये साम्यवादी और समाजवादी जयचन्द साबित होंगे।" शुक्ला जी ने भविष्यद्-वक्ताओं की सी भंगिमा से कहा।

'जनता से द्रोह वे करेंगे अथवा भगतसिंह की लाश पर बैठ कर अंग्रेज़ से समझौता करने वाले, यह तो भविष्य ही बतायेगा।' जगमोहन ने कहना चाहा, पर वह मौन रहा। राजनीति का ज्ञान उस का नहीं के बराबर था। यह बात भी उस ने दुरो के मुँह से सुनी थी और उस के मन लगी थी।

"क्या सत्या जी भी साम्यवादी हैं ?" सहसा भगतराम ने पूछा।

अब जगमोहन के लिए अपने आप को रोकना कठिन हो गया, "मैं कोई उन का प्राइवेट-सेक्रेटरी हूँ ?" उस ने चिढ़ कर कटुता से कहा।

भगतराम ने पर-दाँत दिखा दिये। "वाह आप सूत्र-मंडी, गुमटी बाज़ार, गोपाल नगर में उन के साथ घूमते हैं। आप को इतनी सी बात का भी पता नहीं।"

"अच्छा यह बात है !" शुक्ला जी ने बायें हाथ पर खैनी मसलते हुए कहा।

जगमोहन ने इन में से किसी का उत्तर देना ठीक न समझा। वह सहसा उठ खड़ा हुआ। "अच्छा मैं चलता हूँ !" उस ने कहा।

"अरे आप शरबत तो पी कर जाइए।" पंखा शुक्ला जी की गोद में रख कर व्यस्त होती हुई शान्ता जी बोलीं।

"अजी बैठिए! दूसरों के साथ दो-दो घंटे सैर होती है,"

भगतराम ने जगमोहन के क्रोध को बिना देखे कहा, "हमारे यहाँ पाँच मिनट भी नहीं बैठ सकते।"

जगमोहन वहीं का वहीं खड़ा रह गया। इस व्यक्ति के प्रति असीम घृणा उस के हृदय में उमड़ आयी।

भगतराम ने तब अपना रुख शुक्ला जी की ओर किया। 'संस्कृति-समाज' के मंत्री के भी बड़े मेज़ हैं," उस ने हँसते हुए कहा, "हमें किसी ने मंत्री नहीं बनाया।"

शान्ता जी परे शरबत में नींबू निचोड़ते हुए हँस पड़ीं।

जगमोहन चुप न रह सका, "अब आप मज़े ले लीजिएगा," उस ने कटुता से कहा, "मैं तो अलग हो रहा हूँ।"

और यह कहते हुए उस ने 'नमस्कार' के लिए दोनों हाथ माथे पर रक्खे। तभी सीढ़ियों की चौखट में चातक जी नमूदार हुए।

"कहो भाई क्या हो रहा है?" उन्हों ने वहीं चौखट से, बालों की लट को माथे से हटाते हुए, पूछा।

श्री भगतराम उन के आलिंगन को बढ़े। शुक्ला जी ने खैनी फटक कर निचले ओठ में रक्खी और ठोड़ी को तनिक आगे बढ़ाते हुए और उठते हुए कहा, "आओ!" शान्ता जी ने तत्काल एक चौथा गिलास शरबत का बनाया। जगमोहन उन के लिए कुर्सी छोड़ कर एक ओर हो गया।

कहो भाई जगमोहन कई दिनों से दिखायी नहीं दिये तुम," कवि चातक ने निकट आते हुए कहा, "कहाँ रहते हो आज कल?"

"अजी साहब इन की मत पूछिए! ये बड़े व्यस्त रहते हैं।" भगतराम ने बड़े हल्केपन से जगमोहन की पीठ पर हाथ मारते और हँसते हुए कहा।

जगमोहन ने उस व्यंग्य की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। तनिक रुखाई से उस का हाथ परे हटाते हुए, चातक जी से कहा, "प्रो० स्वरूप

कुछ काम दे गये हैं। वही कर रहा हूँ। उन्हें जल्दी देना है। इसलिए दिन रात लगा रहता हूँ।"

"तो भी भाई, समाज की दूसरी बैठक का प्रबन्ध तो करना ही है।"

"कब रखना चाहते हो?" शुक्ला जी ने ठोड़ी आगे को करते हुए कहा।

"पखवाड़े में एक बार हो, ऐसा ही हम लोगों ने तय किया था," चातक जी ने कहा, "उस हिसाब से आगामी इतवार को होनी चाहिए।"

"मुझे तो इतवार तक उन को अनुवाद समाप्त करके देना है।" पूरे तीन सौ पृष्ठ हैं," जगमोहन बोला, "पाठ्य-क्रम के लिए वे पुस्तक बोर्ड को भेजना चाहते हैं। साथ साथ छप रही है। मैं तो इस बार निमंत्रण-पत्र न बाँट सकूँगा।"

"अरे भाई तुम सत्या जी और उन की महिला-मंडली को सम्हालना," शुक्ला जी ने ठोड़ी को और भी आगे करके, खैनी के रस को गिरने से बचाते हुए कहा, "दौड़ भाग कंटक जी कर लेंगे।"

"हाँ, हाँ, तुम सत्या जी को सम्हालो!" भगतराम ने उस के कंधे पर ज़ोर से हाथ मारते और ठहाका लगाते हुए कहा।

इस पर सब के सब हँस दिये। शान्ता जी शरबत के गिलास ले आयीं।

"मुझे तो इच्छा नहीं, मैं तो घर से लस्सी पी कर चला था।" जगमोहन ने इस ठहाके से एक दम अप्रतिभ हो कर कहा।

"लो लो!" चातक जी अपने गिलास से दो घूँट पीते हुए बोले। "आज कल गर्मी के दिनों में लस्सी के एक गिलास से क्या बनता है!"

तब गिलास लेकर, एक ही घूँट में उसे खत्म करके जगमोहन ने कहा, "अच्छा मुझे तो आज्ञा दीजिए!"

"बैठो बैठो, अगली बैठक का एजंडा तो बना लें।" चातक जी ने

कहा और उन्हों ने हाथ पकड़ कर उसे चारपाई पर बैठा लिया।

जगमोहन बैठ तो गया, पर मन उस का वहाँ नहीं रहा। भगतराम और शुक्ला जी के साथ कवि चातक भी उसे कैसे छेड़ते रहे, विनोदिनी जी के लेख और प्रकाशवती जी की कविता को अगली बैठक में रखने के संबंध में क्या मंत्रणा हुई, विनोदिनी जी और शुक्ला जी को लेकर कवि चातक ने और कंटक महोदय तथा प्रकाशवती को लेकर भगतराम ने क्या क्या मज़ाक किये—जगमोहन ने सुन कर भी वह सब नहीं सुना। भगतराम की निरर्थक 'हिं हिं' और बात बात पर उस के कंधे पर हाथ मारना उसे खलता रहा और वह प्रण करता रहा कि वह अब कभी वहाँ न जायेगा।

सवा डेढ़ घंटे बाद जब कवि चातक उठे, तो वह भी उठ खड़ा हुआ। इतना चिढ़ गया था वह कि जब श्री भगतराम और शान्ता जी ने 'नमस्कार' किया तो उस ने उन की ओर देखा तक नहीं।

लगभग रात के दस बजे, ज़िला कचहरी के पास चातक जी को छोड़ कर, जब वह अपने घर की ओर पलटा तो उस के मस्तिष्क की नसें बेहद तनी हुई थीं और मुँह का स्वाद ऐसे बिगड़ रहा था जैसे उस ने कोई बकबकी चीज़ चख ली हो। मन ही मन वह कभी अपने आप से, कभी सत्या जी से, कभी भगतराम, कभी शुक्ला जी और कभी चातक जी से उलझता चला जा रहा था।

उसे सत्या जी पर क्रोध था कि वे उसे ऐसे निर्जन से क्यों ले गयीं। वह युवा है, वे युवा हैं। बुज़ुर्ग तो युवा भाई-बहन तक को निर्जन में छोड़ने के पक्ष में नहीं थे। यदि उस अँधेरे, अकेले मार्ग में वह उन्हें पकड़

लेता......इस विचार के आते ही उस के कंठ में काँटे से उठ आते .....दूसरे क्षण वह सिर को झटका देता और उसको यह सब उन का नहीं, अपना दोष दिखायी देता।

......देर हो गयी थी इसलिए वे उसे उस मार्ग से ले गयीं...... वह सोचता ......यदि वे उसे असभ्य अथवा बर्बर समझतीं तो कभी ऐसा न करतीं.....यदि उस की अपनी भूख ने उस के दिमाग़ को फिरा दिया तो उन का दोष कैसा ?

लेकिन शुक्ला जी को देखते ही वे पीछे को देखे बिना, अपनी बात खत्म किये बिना भाग क्यों गयीं ? यदि उन के मन में चोर न था तो उन्हों ने क्यों ऐसा किया......

फिर स्वयं ही अपने इस संदेह पर वह अपने आप को कोसता...... भाग न जातीं तो क्या करतीं ? शुक्ला जी को जैसा उस ने समझा है, उन्हों ने उस से भिन्न न समझा होगा। उन के दबे-छिपे इशारों का शिकार होने के बदले, यदि वे चुपचाप कन्नी काट गयीं तो क्या बुरा किया !

......और जगमोहन का सब क्रोध शुक्ला जी पर निकल पड़ा। शुक्ला जी ही नहीं, भगतराम और कवि चातक—सब पर ! मन ही मन उस ने उन्हें 'भूखे' 'नदीदे,' 'असभ्य' और न जाने और किस किस-उपाधि से विभूषित किया। उन सब के प्रति उस के मन में प्रबल घृणा उमड़ आयी......क्या अपनी इसी वासना-जनित भूख की तृप्ति का साधन जुटाने के लिए इन लोगों ने 'संस्कृति-समाज' की स्थापना की है ? किसी अविवाहित कुमारी के संबंध में यों ही निराधार कलंक-कहानियाँ फैलाने में इन्हें शर्म नहीं आती ? ......सत्या जी की बदनामी हो सकती है, यदि उन की सगाई कहीं हो चुकी हो तो वह सगाई तक टूट सकती है......यदि अपने उदार विचारों के कारण वे 'संस्कृति-समाज' में आ गयी हैं तो क्या समाज के कर्णधारों को उन के विरुद्ध

ऐसा निराधार प्रचार करना चाहिए ? अच्छा ही हुआ जो शुक्ला जी ने उन्हें नहीं देखा, नहीं जाने वे क्या क्या बकते ? जो अकारण के इतनी बातें बना सकते हैं, वे कोई कारण होने से क्या नहीं कर सकते ?......और उस का घर आ गया। दरवाज़ा खुला था। उस ने अन्दर जाकर उसे धीरे से बन्द किया। दबे पाँव ऊपर गया। सब लोग सो रहे थे। वह अपने कमरे में गया। उस ने कपड़े उतारे, तहमद पहना और बिना आवाज़ किये रसोई-घर में चला गया। उस का खाना ढका पड़ा था। धीरे धीरे उस ने थाली उठायी और चुपचाप खाना खाने लगा। गर्मी के कारण उसे पहले स्नान करने की इच्छा हुई, लेकिन रसोई-घर में तनिक भी पानी न था और हैंड-पम्प से सब के जग जाने का भय था, इसलिए मन मार कर वह कौर पर कौर निगलने लगा।

जब देर से पड़ी ठंडी रोटी खा और गर्म पानी पी कर जगमोहन नीचे गली में, भिनभिनाते मच्छरों से घिरी, अपनी चारपाई पर आ लेटा तो शाम की घटनाएँ फिर उस के दिमाग़ में उथल-पुथल मचाने लगीं।

वह एक फर्लाङ्ग का सूना अकेला मार्ग फिर उस की कल्पना के सम्मुख आ गया। वह बार बार उस मार्ग पर सत्या जी के पीछे चला। कई बार वे उस के निकट आयीं और कई बार दूर हो गयीं। कई बार जब कल्पना ही कल्पना में उस ने उन्हें पकड़ लिया तो उस का कंठ सूख गया, शरीर में काँटे से उग आये और वह उठ कर बैठ गया।

जब कई बार ऐसा ही हुआ तो झुँझलाकर, उस कल्पना को अपने दिमाग़ से भगाने के लिए, वह उठ कर गली में घूमने लगा।

......भगतराम, शुक्ला जी, कवि चातक और उस में क्या अंतर है ?......उस ने सोचा...जैसे वे भूखे हैं, वैसा ही वह है। अन्तर केवल यह है कि वे उसे प्रकट कर देते हैं और वह नैतिकता का अवतार बना उन पर क्रोध करता है.........किन्तु वे तो विवाहित हैं !......इस में क्या ?.........इस देश में जब बरबस बच्चे बच्चियों को एक दूसरे के

गले बाँध दिया जाता है, विवाहित होकर भी कितने जोड़े विवाह के वास्तविक-आनन्द को समझ पाते हैं! कितने जीवन भर भूखे नहीं रहते! ......और वह, उस की दशा क्या उन से भिन्न है? नारी सदा उस के लिए दूर की चीज़ रही है। उसे देख कर भी उस ने अनदेखा कर दिया। पहले सामाजिक-वर्जनाओं और फिर अपने आर्थिक-संघर्ष के कारण! ......और अब पहली नारी ही के निकट-सम्पर्क ने उसे विचलित कर दिया।'

......क्या वह सत्या जी से प्रेम करता है? ......उस ने सहसा अपने आप से पूछा......कल यदि वे उस के वहाँ न आयें तो क्या उन की अनुपस्थिति उसे खलेगी? ..:दोनों प्रश्नों का उत्तर उसे 'नहीं' में मिला ......फिर इस मानसिक-व्यभिचार से लाभ? शुक्ला जी और कवि चातक यदि इस में सुख पाते हैं तो पायें, वह इस से हाथ खींच लेगा। वह त्याग-पत्र दे देगा। न वह 'संस्कृति-समाज' का मंत्री रहेगा, न उसे सत्या जी को मिलने का अवसर मिलेगा। न भगतराम, शुक्ला तथा चातक जी की ईर्षा-युक्त झूठी-सच्ची बातें सुननी पड़ेंगी और न वह व्यर्थ में अपने आप जलेगा।

इस निर्णय के बाद वह जा कर लेट गया। शान्त हो कर उस के पलक भारी होने लगे। सोने से पहले अपने विचारों को संतुलित करने के लिए उस ने एक कविता की चन्द पंक्तियाँ भी आरम्भ कीं। भूल न जायँ, इस विचार से उस ने उन्हें, चारपाई के नीचे कच्चे फ़र्श पर अँगुली से लिख भी दिया। फिर वह उन्हें गुनगुनाते गुनगुनाते, चित्त की वृत्तियों के एकाग्र हो जाने से गहरी नींद सो गया।

२८

जगमोहन अपने कमरे के सामने छत पर आराम-कुर्सी डाले बड़े इतमीनान से बैठा था। उस ने 'संस्कृति-समाज' के मंत्री-पद से त्याग-पत्र दे दिया था और जैसे एक बड़ा बोझ उस के सिर से उतर गया था।

त्याग-पत्र देने का निश्चय करके भी कदाचित् कवि चातक के कारण वह न दे पाता, पर तभी एक बात और हुई। वह आधे से अधिक काम समाप्त करके वेद्यालंकार जी को देने गया और उस ने उन से बीस रुपये माँगे तो उन्होंने फिर टाल दिया। जब आवेश में आकर उस ने कहा कि वह रुपये न पायेगा तो शेष काम न करेगा तो उन्हों ने धमकी दी कि यदि वह काम छोड़ेगा तो न केवल उसे एक कौड़ी न मिलेगी, वरन् उल्टा वे उस पर हर्जाने का दावा कर देंगे! जगमोहन निरीह आदमी था। कानून वह जानता न था। वह डर गया। काम तो उस ने फिर करना आरम्भ कर दिया, पर एक साहित्यक-सहयोगी से ऐसा व्यवहार पा कर, उस के हृदय को बड़ी ठेस लगी। उसे उस सारी की सारी साहित्यिक-टोली से चिढ़ हो गयी। पहले उस ने सोचा था कि वह कार्यकारिणी की बैठक में जायगा, अपने त्याग-पत्र का कारण देगा, उन से कहेगा कि अपने सदस्यों के संबंध में 'संस्कृति-समाज' के अधिकारियों को सतर्क रहना चाहिए, कोई ऐसा दबा-छिपा संकेत न करना चाहिए, जिस से किसी की निंदा हो। और उस ने सोचा था कि यदि वे मान

गये तो वह त्याग-पत्र नहीं देगा, पर श्री धर्मदेव वेदालंकार की उस धमकी के बाद, उसे कुछ ऐसा क्रोध आया कि उस ने आते ही त्याग-पत्र लिखा और प्रधान-मंत्री के नाते उन्हीं के पास भेज दिया। काम तो उस ने लगभग खत्म कर लिया था। वह आधा ले गया था, क्योंकि शेष उस ने साफ़ न किया था। दो तीन दिन जम कर वह बैठा। काम उस ने समाप्त कर दिया और श्री धर्मदेव को देने के बदले वह प्रातः उठ कर, अढ़ाई मील की मंज़िल मार कर, प्रो० स्वरूप की कोठी पर दे आया। यद्यपि उस समय रुपये तो उसे नहीं मिले (उसे मिलने की उतनी आशा भी न थी) पर प्रो० स्वरूप ने उस के साथ व्यवहार बड़ा अच्छा किया। उसे चाय पूछी और वचन दिया कि शीघ्रातिशीघ्र वे उस के रुपये भिजवा देंगे।

"मैं स्वयं आऊँगा। मुझे एम० ए० में दाखिल होना है, उस के लिए रुपये चाहिएँ।" उस ने कहा और उन से एक सप्ताह का वादा लेकर वह चला आया।

यद्यपि इतने सब परिश्रम के बाद (जिस से उस की आँखें तक ख़राब होने को आ गयीं) जगमोहन लगभग वहीं था, जहाँ से कि वह चला था—प्रवेश-शुल्क जुटाने की समस्या उस के सामने वैसी ही थी—पर जाने क्यों प्रो० स्वरूप को उन का काम सौंप कर वह अपने आप को बड़ा हल्का-हल्का सा पा रहा था। मस्तिष्क उस का चिन्ता-ग्रस्त था, पर शरीर कदाचित् काम का बोझ उतरने के बाद बड़ा हल्का-हल्का महसूस कर रहा था। आकर उस ने इतने दिनों से अस्त-व्यस्त पड़े अपने कमरे की सफ़ाई की। वहीं एक कागज़ पर उसे उस उनींदी रात में लिखी कविता की वे पंक्तियाँ दिखायी दीं, जो कदाचित् उस ने प्रातः उठ कर चारपाई के नीचे गली के फ़र्श से नक़ल कर ली थीं। कमरा साफ़ कर के, वहीं छत पर नहा कर, संध्या के ढलते सायों में भीगी छत पर कुर्सी डाल कर, वह बैठ गया और कविता लिखने लगा।

छिपकली-सी यह मुहब्बत
आज के युग की लजीली
भीरु,
अपने नाम ही के सहम से जो सिमट जाये !
तिमिर से आच्छन्न कोनों
और अतरों से सरक कर
झाँकती है !

जाने रात की अनिद्रावस्था में, जब उस ने ये पंक्तियाँ लिखी थीं, उस का संकेत, कवि चातक, शुक्ला जी तथा सत्या जी की ओर था, अथवा स्वयं दुरो के प्रति अपनी चोर-मुहब्बत की ओर, पर उस समय उतरती साँझ के उन बढ़ते सायों में, ईज़ी चेयर पर अध-लेटे अध-बैठे, आकाश में उड़ते रंग-बिरंगे पतंगों के पेचों को देखते हुए, उसे वे पंक्तियाँ बड़ी अच्छी लगीं। जिस प्रकार पतंग का पेच लड़ाते समय पतंगबाज़ का अधिकार उस पर रहता है, पर जब एक बार पेच लड़ा कि डोर अपने आप चरखी से खिसकती चली जाती है और पतंग बढ़ता चला जाता है, इसी प्रकार कविता को आरम्भ करने में तो उस ने सचेत प्रयास किया। फिर तो जाने प्रेरणा की किस चरखी से उस की डोर बढ़ती चली गयी, शब्द और पंक्तियाँ अपने आप आती गयीं और वह लिखता गया। रुकता, उठता, घूमता, गुनगुनाता और जैसे नशे में मस्त लिखे जाता :

छिपकली-सी यह मुहब्बत
आज के युग की लजीली
भीरु,
अपने नाम ही के सहम से जो सिमट जाये !

तिमिर से आच्छन्न कोनों और अतरों से सरक कर
झाँकती है !

बढ़ गयी दो पग
जमी-सी फिर वहाँ, जैसे
न अब आगे बढ़ेगी।
आँकती है—
एक भर कर जस्त*
निज आखेट पाये !
किन्तु फिर जब सरक कर दो पग बढ़ाये—
शलभ उड़ कर
और ही कोना बसाये !

है कहाँ वह प्रीति,
गह कर बाँह प्रिय की,
ले चले बरबस जो अपने साथ !
हाथ पर अपना लिये सिर
है कहाँ वह प्रेम उन्माद
चल पड़े जो
जीत लाने प्रियतमा का हाथ ?

है कहाँ वह प्रीति
चुन ले भर-सभा में
स्वयं मन का वर;

*जस्त=छलाँग

अनुसरन करती हुई उस की नज़र अपने नंगे-वक्ष पर आ गयी। छत ही पर नहा कर केवल तहमद लगाये वह आराम कुर्सी पर आ बैठा था। सत्या जी प्रायः बात करते समय दृष्टि फ़र्श पर रखती थीं अथवा शून्य में देखती रहती थीं। सहसा उन की दृष्टि अपने सीने पर जमी देख कर— न जाने उस दृष्टि में क्या था — जगमोहन सकपका सा गया। कविता की तख्ती को तिपाई पर उल्टी रख कर उस ने आराम कुर्सी की ओर संकेत करते हुए कहा, "बैठिए, बैठिए!" और स्वयं अन्दर चला गया। जब वह आया तो न तहमद पहने था, न उस ने गले में कुर्ता लपेट रखा था, बल्कि वह सूट डाँटे हुए था। सुबह जो सूट वह पहन कर प्रोफ़ेसर साहब के यहाँ गया था, उस घबराहट में वही पहन आया था।

यद्यपि जगमोहन तिपाई पर तख्ती उल्टी रख गया था, पर जब वह वापस आया तो सत्या जी बड़ी तन्मयता से कविता पढ़ रही थीं।

"अजी आप क्या पढ़ने लगीं, अभी तो यह पूरी नहीं हुई!" और उस ने तख्ती उन के हाथ से ले ली।

"तो बड़े ज़ोरों से कविता करने लगे हैं आप!" उन्हों ने जैसे छत के फ़र्श से पूछा।

"योंही थके दिमाग़ को आराम देने के ख्याल से ले बैठा था, पर कुछ बन नहीं रही।" वह कुछ रुका, फिर तनिक हँस कर उस ने कहा, "जिस प्रकार आदमी चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए नशा करने लगता है, मैं कविता ले बैठता हूँ। मस्तिष्क एकाग्र होकर चिन्ता-मुक्त हो जाता है।"

"संस्कृति-समाज से तो आप ने त्याग-पत्र दे दिया। अब आप को कौन सी चिन्ता है?"

"अब मैं आप को क्या बताऊँ?" जगमोहन ने कहा, "मैं एम० ए० में दाखिल होना चाहता था। इसीलिए मैंने प्रो० स्वरूप का काम लिया था। जैसे दिन रात मैं लगा रहा हूँ, वह आप देख ही चुकी हैं,

लेकिन जो तीस रुपये उन्हों ने दिये सो दिये—उन तीस रुपयों का भी हाल आप को मालूम ही है—अब और कौड़ी मिलने की आशा नहीं।"

और प्रो० स्वरूप और वेदालंकार का सारा किस्सा उस ने सत्या जी को सुना दिया।

"जो आदमी ऐसा नीच हो उस के साथ मंत्री के रूप में काम करना मेरे लिए यातना बन जाता," उस ने कहा, "वेदालंकार जी से मिलने के बाद पहला काम मैंने यह किया कि त्याग-पत्र दे दिया।"

"पर वहाँ दूसरे भी तो थे।" सत्या जी ने कहा, "आज चातक जी आये थे। शिकायत कर रहे थे कि उन्होंने 'संस्कृति-समाज' केवल आप के सहारे चलाया था। वेदालंकार जी तो आभूषण-मात्र थे। और अभी दो भी बैठकें नहीं हुईं कि आप ने छोड़ दिया......आप को अलग होना था तो आप ने मुझे मंत्री क्यों बनाया?"

"चातक जी का बड़ा अनुरोध था," जगमोहन ने कहा, "फिर जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं यह थोड़ी जानता था कि ये सब घटिया आदमी हैं। अब आप दो चार बार काम से मेरे यहाँ आयी हैं, मैं भी एक दो बार आप के यहाँ गया हूँ। इसी को लेकर उन लोगों ने जितनी बातें की हैं, अब मैं आप से क्या कहूँ! चातक जी से मैं ने कहा तो हँस दिये—'अरे भई पुरुष की तो इसी में आभा है'—उन्हों ने कहा। होगी। वे तो अपने आप को 'बायरन' समझते ही हैं। पर मेरे लिए ऐसा कठिन है। मुझे अपना उतना खयाल नहीं रहा जितना आप का। आप के सगे-संबंधियों के कान में ये बातें पड़ेंगी तो वे क्या कहेंगे।"

"हम काँग्रेस में काम करते रहे हैं और ऐसी बातों के अभ्यस्त हो गये हैं।"

जगमोहन ने सत्या जी की बात नहीं सुनी। वह अपनी रौ में कहता गया, "मैंने यही सोचा कि मैं त्याग-पत्र दे दूँ। न मैं समाज के काम से आप के यहाँ जाऊंगा, न आप मेरे यहाँ आयेंगी और न उन

को बातें करने का अवसर मिलेगा। उस दिन आप को बड़े सूने-मार्ग से जाना पड़ा। शुक्ला जी को देख कर आप भाग गयीं। मुझे बड़ा दुख हुआ। क्यों ऐसी स्थिति पैदा की जाय कि यह सब करना पड़े।"

"मैंने तो शुक्ला जी को देखा भी नहीं," सत्या जी ने कहा, "मैं बहुत आगे निकल गयी थी, जब मैं ने मुड़ कर आप को उन से बातें करते देखा। तब मेरा ख्याल था कि आप लोग उधर ही आयेंगे, पर आप आये ही नहीं। मैंने शुक्ला जी को 'नमस्ते' भी की थी। पर जाने उन्हों ने देखा ही नहीं।"

जगमोहन चुप सोचता रह गया।

"देखिए यदि आप चाहें तो मैं न आऊँगी, पर कल भाभी को लेकर आप अवश्य मेरे यहाँ आइएगा। मैं उन से वचन ले चुकी हूँ। अकेली शायद वे न आयँ! कल इतवार है। हमें छुट्टी है। आप ने कहा था— काम खत्म हो जाय तो चलेंगे।— इसी लिए हम सात दिन रुके रहे।"

"मुझे तो आप ही का ख्याल था।"

तब जैसे जगमोहन को समझाते हुए सत्या जी ने पंजाबी का एक बैत सुनाया :

किथे नस्स जाइए दुनियाँ वालियाँ तों
अन्हें कुत्ते दे वाँग कुरखान कोलों।
न ते हस्सदियाँ देख के सह सक्कन
न ते रोंदियाँ चुप्प करान कोलों।
पहनो ज़रा सफेद ते उंज कुढ़दे
मैले होण, पये उंज दुरकान कोलों।

की कराँ मैं 'तारियंड़' नहीं होंदा
किसे गल्ले छुटकारा जहान कोलों।*

और बोलीं, "पिता जी जब कभी लोगों का अपवाद सुनते तो ताराचंद गुजराती का यह बैत पढ़ा करते। यदि आप लोगों की बात सुनेंगे तो चार पग चलना कठिन हो जायगा।"

और वे उठीं। बेपरवाही से उन्हों ने कहा, "ज़रा चलते हैं गोपाल नगर तक?"

जगमोहन चुप रहा।

"मन न हो तो बैठिए। नमस्कार। कल दस बजे आप की प्रतीक्षा करूँगी। खाना वहीं होगा।"

"नहीं चलिए, मैं आप को छोड़ आता हूँ।"

और जगमोहन अनमना सा उन के पीछे चल पड़ा।

---

*दुनिया वालों से कहाँ हम भाग जायँ, अंध कूकर की तरह जो भूंक खायँ।
जो रहें खुश तो न सह सकते हैं ये, और रोयें तो न दुख आके बटायँ।
वस्त्र उजले देख कर डाह से मरें, और मैले हों तो सौ तेवर चढ़ायँ।
इन जहाँ वालों से 'ताराचंद' हम, ढंग है कोई कि जिस से छूट जायँ।

२६

तीसरी मंजिल की छत से नीचे गली में उतरते ही जैसे आग का एक थपेड़ा सा जगमोहन के मुँह को लगा। हवा बन्द थी। उमस और घुटन का ठिकाना न था, दिन की धूप से तपी हुई गली भट्टी बन रही थी और मैदान एक अदृश्य अलाव सा हो रहा था। इस पर कड़ुवे करेले पर नीम के पानी की भाँति म्युनिसिपेलिटी की मोटर चहबच्चा साफ़ कर रही थी।

"इस खसमा खानी* की कसर रह गयी थी।" सत्या जी ने बड़ी प्यारी सी गाली देते हुए धोती का अंचल नाक पर रख लिया और हरिनिवास को जाने वाली गली की ओर जाने के बदले पोस्ट आफ़िस की ओर हो लीं।

जगमोहन को वह गाली उन के मुँह में बड़ी भली लगी। कुछ ऐसी बात थी सत्या जी में जो उन के पतले छरहरे शरीर और गोरी मुखाकृति के बावजूद उन्हें पुरुषों-सा बना देती। उन का रूखापन, उन की निडरता, स्त्री-सुलभ लाज की लाली का अभाव—जाने अकथनीय सी वह कौन चीज़ थी जो जगमोहन को हर बार इस बात का आभास देती। इस गाली ने, जो पंजाब के गली-मुहल्लों में स्त्रियों की

---

*अपने पति को खाने वाली

आम गाली है, पर जिसे पढ़ी लिखी लड़कियाँ नहीं देतीं, अचानक सत्या जी को उस ऊँचाई से ला गिराया और जगमोहन ने जैसे चौंक कर उन की ओर देखा—किन्तु मुख पर उन के धोती का कोना था और दृष्टि नीचे थी।

यदि उन्हों ने गाली न दी होती तो वह कहता, "नहीं पोस्ट आफ़िस की ओर से नहीं, सीधे चलेंगे। पर उस का ध्यान गाली के कारण भटक गया। वह चौंका तो वे पोस्ट आफ़िस के पास पहुँच चुके थे।

'आज कदाचित् फिर सत्या जी रहट की ओर से जा रही हैं,' उस ने मन में कहा, सोचा कि उधर से न जाये, उन से कह दे कि हरिनिवास की ओर से चलेंगे। पर शाम अभी जवान थी। यद्यपि सूरज अस्ताचल की ओर चला गया था, पर दिये जलने में देर थी। जगमोहन के मन में जिज्ञासा उठी कि वह क्यों न दिन के प्रकाश में वह रास्ता भी देख ले जो अँधेरी रात में उतना सूना, अकेला और डरावना सा लगता था। और वह चुप चाप उन के साथ चलता गया।

"हवा बिलकुल बन्द है," सत्या जी ने कहा," शायद आज रात वर्षा हो।"

जगमोहन ने आकाश की ओर देखा। बहुत ऊँचे आकाश की गहराई में चीलों के झुंड मँडरा रहे थे।

"लक्षण तो आँधी के हैं," उस ने कहा, "जाने आँधी के साथ दो छींटे भी पड़ जायें।"

उस समय सामने की ओर से हवा का हल्का सा झोंका आया और पसीने से तर जगमोहन की कमीज़ में ठंडक की एक प्यारी सी लहर दौड़ा गया।

"आप इस समय केवल भाभी की दावत पक्की करने आयी थीं ?"
उस ने पूछा।

"नहीं मैं कालेज से सीधी इधर आयी।"

का हाथ पकड़ वह गली की ओर भागा। परन्तु आँधी जैसे चौमुखा आक्रमण कर रही थी, गली में जाते ही सामने से रेत उड़ी। आँखें खोल कर देखना कठिन हो गया। आगे, पीछे, दायें, बायें सभी ओर रेत उड़ रही थी। दूसरे निमिष बरसातियों की छतों के टीन उड़ने लगे, किवाड़ खड़खड़ाने लगे और चारों ओर बेपनाह शोर मच गया। सत्या जी का हाथ जगमोहन के हाथ से छूट गया। वे खादी की साड़ी का अंचल मुँह पर लिये और जगमोहन रुमाल से मुँह ढँके वहीं गली के मध्य रुक गये। तभी सत्या जी की बगल में, किसी मकान की डेवढ़ी के किवाड़ हवा के ज़ोर से चौपाट खुल गये। अंचल का कोना हटा कर उन्होंने डेवढ़ी को देखा और जगमोहन का हाथ खींच कर वे उसे अन्दर ले गयीं। किवाड़ जैसे खुले थे, पटाख से फिर बन्द हो गये।

दोनों ने अपनी आँखें मल कर अपने इर्द-गिर्द निगाह दौड़ायी।

मकान अभी बन रहा था। कदाचित् निचली मंज़िल बन गयी थी और ऊपर की बन रही थी। मालिक मकान शायद अभी आये न थे। यद्यपि मकान में भी धूल भरी थी, पर गली की धूल का तो वह पासंग न थी।

आँखों की कोरों को साफ़ करते हुए जगमोहन ने सुख की साँस ली। अपनी मोटी धोती की कोर से मुँह पोंछते हुए सत्या जी ने कहा, "यह खसमखानी आँधी भी किस समय आयी ?" और मुँह में भरी मिट्टी को उन्हों ने कोने में थूक दिया। तभी फिर पटाख से दोनों किवाड़ खुल गये। किवाड़ शीशम की मोटी लकड़ी के थे। सत्या जी झटके से जगमोहन के ऊपर गिरीं। एक बाँह से उन्हें सम्हालते हुए, जगमोहन ने पैर के अड़ंगे से किवाड़ बंद कर दिये और कुंडी लगा दी।

बाहर आकाश एकदम काला पड़ गया होगा, क्योंकि यद्यपि डेवढ़ी यथेष्ठ खुली थी तो भी उस में एकदम अँधेरा-सा छा गया।

"कोई आ न जाय !" उस के पहलू से लगे लगे सत्या जी ने उस की ओर देखते हुए सरगोशी में कहा।

"नहीं नहीं कोई नहीं आता !" जगमोहन बेपरवाही से बोला, "ज़रा आँधी का ज़ोर कम हो जाय तो किवाड़ खोल देंगे। आ भी गया कोई तो कुंडी खोलने में कितनी देर लगती है !

तभी उस की दृष्टि सत्या जी से चार हुई, जाने उन आँखों की कठोर शीतलता कहाँ चली गयी थी। वह स्निग्ध, विनम्र दृष्टि जगमोहन के अन्तर में दूर तक खुब गयी। बड़ी मिसकीनी से उठे हुए, सहमे-सहमे-से उस चेहरे को उस ने निगाह भर कर देखा—आँखों में कदाचित् रेत पड़ जाने से लाली के डोरे दौड़ गये थे। मुख पर धूल का हल्का सा ग़ाज़ा फिर गया था और यह विचित्र बात है कि धूल भरा वह चेहरा अपनी सारी कठोरता खो कर एक अजीब सी कोमलता से भर उठा था। जगमोहन का दिल धड़कने लगा। उस के जी में आयी कि उन धूल भरे गालों को हल्के से अपने ओठों से छू ले। उस क्षणिक कल्पना में उस ने अपने ओठों के चिन्ह भी वहाँ बने देखे। ......पर तभी बाहर ज़ोर से बिजली कड़क उठी। सारा मकान काँप सा गया। एक कौंधा लपका और लगा जैसे बिजली उस डेवढ़ी पर ही गिरी है। साथ ही बाहर बूँदें पड़ने का स्वर सुनायी दिया।

सत्या जी सहम कर जैसे उस के पहलू में घुस गयीं। उस ने दायीं बाँह से उन्हें अपने पहलू में दबा कर जैसे इस प्रहार से बचा लिया, हालाँकि कौंधे की लपक के साथ वह स्वयं भी दीवार के साथ जा लगा।

तभी उस के मन में कौंधे की उस लपक ही सा विचार आया कि यदि सत्या जी की जगह दुरो होती और उस की आँखों में वही तरलता होती तो क्या वे क्षण उस के जीवन के मधुर-तम क्षण न हो जाते ? उस के हृदय की गहराई से एक दीर्घ-निश्वास निकल गया। उस का हाथ ढीला पड़ गया और धीरे धीरे उस ने अपनी कमर के ज़रा ऊपर

३०

अपने वचन के अनुसार जगमोहन अपनी भाभी को सत्या जी के यहाँ ले गया था, और यद्यपि सत्या जी ने खातिरदारी में कोई कसर न रहने दी थी। (दही की पकौड़ियाँ, मसालेदार पहाड़ी मिर्चें, पालक और पराठे) पर जगमोहन को कुछ आनन्द न आया था। वह उखड़ा उखड़ा सा बैठा रहा था।

कारण दो थे। पहला तो यह कि दुरो घर में न थी। जगमोहन को पता चला कि वह इतवार का दिन पुस्तकें बेचने में लगायेगी और साँझ की "येलो बस" वालों की मीटिंग में शामिल होगी। हरीश जी बस-सर्विस के मजदूरों के हितार्थ 'एक साँझ का स्कूल' भी खोल रहे थे। और उस का भार दुरो अपने कंधों पर ले रही थी।

दूसरा यह कि सुबह ही से पंडित रघुनाथ उस के दिमाग पर सवार थे। वह प्रातः सैर आदि से लौट कर जब होतूसिंह रोड के हलवाई की दुकान पर लस्सी पीने आया था तो पंडित जी से उस का साक्षात्कार हो गया था।

"कहिए पंडित जी किधर ?" उस ने कुछ हँसते हुए पूछा था...

"आज एकादशी है ना," पंडित जी बोले," बिना कंजका (कुमारी कन्या) को भोग लगाये हम कुछ भी मुँह नहीं लगाते। गोपालनगर जा रहा हूँ।" और उन्हों ने हाथ का दौना दिखाया जिसमें

दो लड्डू थे। डब्बी बाज़ार के मुहल्ला सिरीन में पंडित जी रहते थे। 'अपने मुहल्ले में इन्हें कोई कंजका ही नहीं मिली जो तीन साढ़े तीन मील चल कर यह गोपाल नगर जा रहे हैं।' जगमोहन ने सोचा और हँसते हुए उस ने यही प्रश्न दोहरा दिया।

खिन्न हुए बिना पंडित जी ने बताया कि वे तो वर्षों से एकादशी को सत्या जी का मुँह जुठला कर कोई चीज़ मुँह लगाते हैं। और हलवाई को पैसे दे कर वे चले गये।

एकादशी के दिन सात आठ मील की मंज़िल मार कर किसी कन्या को भोग लगा कर खाना जगमोहन के लिए आश्चर्य की बात न थी। क्योंकि इस पुण्य-भूमि में धर्म के नाम पर बड़ी बड़ी हिमाक़तें होती हैं। जो चीज़ जगमोहन को बुरी लगी वह यह थी कि दावत के लिए सत्या जी के घर पहुँचने के कुछ ही देर बाद फिर पंडित रघुनाथ आये थे। सत्या जी नीचे डेवढ़ी में उन में मिलने गयी थीं, शीघ्र ही ऊपर आ गयी थीं और पंडित जी वापस जाने के बदले, सामने एक नये बनते मकान की सीढ़ियों पर जा कर ऐसे बैठ गये थे कि वहाँ से उस कमरे की प्रत्येक गति-विधि का ब्योरा ले सकें।

पंडित रघुनाथ वहाँ जाकर बैठ गये।" जगमोहन ने कहा, "आप ने उन्हें ऊपर क्यों नहीं बुला लिया?"

"बैठने दीजिए!"

सत्या जी यद्यपि कई बार बहुत बातें करती थीं, पर यों स्वभाव से वे चुपीती थीं। जिस प्रश्न का उत्तर चार वाक्यों की अपेक्षा रखता हो, उसे वे एक-आध वाक्य ही में निबटा देती थीं। जगमोहन पूछना चाहता था कि वे जब सुबह आये थे तो अब क्यों आये हैं? आये हैं तो क्या चाहते हैं? अब वहाँ जा कर क्यों बैठ गये हैं? पर सत्या जी के इस वाक्य ने उस के लिए आगे प्रश्न पूछने का रास्ता रोक दिया... लेकिन जब तक वह वहाँ बैठा रहा, उस के मन में अनजानी सी खीज

उठती रही। आप कमरे में ब्रिज खेल रहे हों या योंही गप लगा रहे हों और बाहर सी० आ० डी० का संदेह-शील सिपाही बैठा हो तब यदि आप उस की उपस्थिति से अभ्यस्त नहीं तो आप के लिए खेल में या बातों में मन लगाना असम्भव हो जायगा— ख्वाह-म-ख्वाह आप के मन में खीज उठती रहेगी। कुछ यही दशा जगमोहन की थी। बार बार उस की दृष्टि पंडित रघुनाथ पर जाती और बार बार वह झुँझला उठता और किसी बात में उस का मन न लगता।

सत्या जी इस बीच में निरन्तर भाभी से बातें करती रहीं। भाभी के बच्चे उन से हिल गये। स्वयं भाभी उन से हिल गयी। वह इस प्रकार पसर कर बैठ गयी जैसे वह अपनी बहन अथवा अन्तरंग सहेली के यहाँ बैठी हो। कोई चीज़ माँगने में उसे किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ। पकौड़ियाँ उस ने माँग माँग कर और लीं, मसाले वाली पहाड़ी मिर्चें तो वह चार खा गयी और पुलाव पर उस ने ऐसे हाथ साफ़ किया जैसे यह नियामत उसने कभी पहले चखी ही न हो। लेकिन जगमोहन को खाना बिलकुल पसंद नहीं आया—पकौड़ियों में मोटी मोटी लाल मिर्चें थीं और मठा पतला था। उन को उस ने हाथ नहीं लगाया। पहाड़ी मिर्च आधी खायी और पुलाव का केवल एक ग्रास लिया। उस का ध्यान बार बार रघुनाथ पंडित की ओर चला जाता। वह उन्हें अपनी ओर ही टकटकी लगाये बैठे देखता और झुँझला उठता। तभी भाभी ने एक ओर हारमोनियम पड़ा देखा।

"तुम गाती हो?" उस ने पूछा।

"नहीं मैं तो नहीं गाती," सत्या जी ने कहा, "चाचा जी की लड़की 'टूं-टां' करती है।"

"तुम ज़रूर गाती हो," भाभी बोली, "ज़रा एक गाना सुना दो।"

तब जगमोहन को न जाने क्या सूझा, न जाने बैठे बैठे वह उकता गया था कि उस ने भाभी के अनुरोध के साथ, हँसते हुए, अपना अनुरोध

भी मिला दिया और शरारत से बोला, "नहीं नहीं आप अवश्य गाना जानती हैं। कम से कम एक गाना सुना दीजिए।"

और उसे आश्चर्य हुआ जब यह कहते हुए कि "मुझे गाना तो बिलकुल नहीं आता। आप कहते हैं तो सुना देती हूँ, फिर दोष न दीजिएगा कि आप के कानों पर अत्याचार हुआ।" सत्या जी ने बाजे का कवर उतारना आरम्भ कर दिया।

जगमोहन ने कभी कल्पना न की थी कि सत्या जी गाती भी हैं। उन के स्वर में उसे कभी माधुर्य का आभास न मिला था, पर जब उस के अनुरोध पर (चाहे अपने जाने उस ने मज़ाक ही में किया था) वे बाजे का कवर उतारने लगीं तो उसे लगा कि शायद उस का ख़्याल ग़लत था, कि शायद सत्या जी सिद्धहस्त संगीतज्ञ हैं और केवल विनम्रता से काम ले रही हैं, कि पर्दों पर उगंलियाँ रखते ही उन के कंठ से अमृत सी मीठी स्वर-लहरी फूट बहेगी और क्षण भर के लिए वह गंभीर हो, मूर्तिमान औत्सुक्य बन कर बैठ गया। पर जब सत्या जी ने एक-आध बार पर्दे पर अंगुलियाँ चला कर 'पूरण भगत का गाना :

जाओ जाओ रे मेरे साधो, रहो गुरू के सङ्ग

गाना आरम्भ किया था तो जगमोहन को बड़ी निराशा हुई। निराशा शब्द का प्रयोग उतना ठीक नहीं। उसे कुछ वैसी आशा तो पहले भी न थी, पर सत्या जी ऐसे बेतुकेपन से गायेंगी, इस की भी उसे कल्पना न थी। न सुर, न लय, न ताल—कहीं ज़रा सा भी तो लोच न था। दृष्टि बाजे के पर्दों पर गड़ी थी और वे बड़ी कर्कश, बेसुरी आवाज़ में गाये जा रही थीं :

जाओ जाओ रे मेरे साधो, रहो गुरू के सङ्ग।

जगमोहन को खेद हुआ, क्यों उस ने उन से मज़ाक में अनुरोध

किया। उसे उन के उस प्रयास पर दया हो आयी। लगता था जैसे किसी ने उन्हें गाने की सज़ा दे रखी है। उस का जी चाहता था, उन्हें बीच ही में रोक दे, कह दे कि मैं तो मज़ाक कर रहा था, पर उन के दिल को ठेस न लगे, इसीलिए वह चुप बैठा रहा। गाना समाप्त हो गया तो यद्यपि भाभी ने उन्हें 'देवदास' फ़िल्म का भी एक गाना सुनाने को कहा, पर जगमोहन बोला, "हटाओ भाभी, क्यों इन्हें परेशान करती हो। चलो उठो अब, शाम यहीं काटोगी क्या ?"

सत्या जी ने बाजा उठा दिया। उस पर फिर से खौल चढ़ाते हुए बोलीं, "अब तो आप को विश्वास आ गया कि मैं बिलकुल नहीं गा सकती।"

और उन्हों ने आँख उठा कर जगमोहन की ओर देखा—जाने उन आँखों में क्या था। वह पैनी, उदास दृष्टि जगमोहन के हृदय में डूबती चली गयी। उसे बड़ा खेद हुआ। क्यों उस ने मज़ाक मज़ाक में उन से गाने का अनुरोध किया ? किन्तु कहीं दूर हृदय की गहराई में उसे हल्की सी खुशी भी हुई कि उस के अनुरोध का उन के निकट इतना मान है। यह विचार आते ही वह काँप सा गया। उस के हृदय में तो उन के लिए ज़रा भी स्थान नहीं! और वह उठा, "हम ने आप को योंही तंग किया," उस ने कहा और फिर वह भाभी से बोला, "अब उठो भाभी चलें !"

पर उसे फिर बैठ जाना पड़ा। सत्या जी भाभी को घर (याने उस के कमरे, बनावट, आदि आदि) दिखाने ले गयीं और जगमोहन कुछ देर टहलता रहा, फिर बैठ गया। बैठ गया और, जैसे पिछले दो अढ़ाई घंटों में कई बार हुआ था, उस की दृष्टि पंडित रघुनाथ पर चली गयी। वे उसी प्रकार वहीं सीढ़ियों पर अचल बैठे उन की ओर टकटकी लगाये थे। यह वासना थी, लोलुपता थी, वह जिसे उर्दू में बुलहवसी कहते हैं, वह थी ? जगमोहन कुछ भी समझ न पा रहा था। धूप बाहर ग़ज़ब

की पड़ रही थी और वे दो अढ़ाई घंटे से वहाँ सीढ़ियों पर बैठे थे। यों चाहे वहाँ छाया थी, पर धूप उन के निकट पहुँच गयी थी, किन्तु पंडित जी उस की तपन से बेपरवा उन खिड़कियों की ओर दृष्टि लगाये बैठे थे।

सत्या जी भाभी को जैसे घर का प्रत्येक कोना-अंतरा दिखा कर वापस आ गयीं। जगमोहन के मन में एक बार फिर आयी कि वह सत्या जी से पूछे—पंडित रघुनाथ अभी तक क्यों बैठे हैं? वे क्या चाहते हैं? पर उस के कानों में सत्या जी का संक्षिप्त उत्तर गूँज गया। 'बैठने दीजिए।' यदि उन्हों ने फिर वही संक्षिप्त उत्तर दिया तो? और वह चुप रहा।

सत्या जी उन्हें न केवल नीचे डेवढ़ी तक छोड़ने आयीं, बल्कि गुरु तेग़ बहादुर रोड तक चली आयीं। आते वक्त जगमोहन ने जान-बूझ कर पंडित जी की ओर नहीं देखा, पर जब वे तेग़ बहादुर रोड पर पहुँच गये और क्योंकि एक बजने को आया था और सत्या जी ने उस समय तक खाना नहीं खाया था, इस लिए उन्हों ने उन्हें विदा कर दिया तो कुछ और आगे जाकर जगमोहन ने मुड़ कर देखा—पंडित रघुनाथ अपनी जगह से उठ आये थे और सत्या जी से कुछ बहस करते हुए वापस मकान को जा रहे थे।

रास्ते में भाभी सत्या जी की प्रशंसा के पुल बाँधती गयी, बल्कि उस ने तो यहाँ तक कह दिया कि उन्हें हो तो हो जगमोहन को तो जाति-पाँति का कुछ ख्याल ही नहीं, यदि उसे सत्या पसंद हो तो वे उस के भाई को मना लेगी।

किन्तु जगमोहन यद्यपि प्रकट अपनी भाभी की बातें सुनता रहा, उन का कुछ उत्तर भी देता रहा, पर मन ही मन सत्या जी और पंडित रघुनाथ के संबंध में सोचता रहा—सत्या जी ने क्यों पंडित जी को ऊपर न बुला लिया? क्यों उन्हें धूप में दो अढ़ाई घंटे बाहर बैठाये रखा?

वे हीं क्यों बैठे रहे ? उन्हें सत्या जी से काम था तो उस समय चले जाते, दो अढ़ाई घंटे बाद फिर आ जाते। वहाँ पहरेदारों की भाँति वे क्यों बैठे रहे ?

घर पहुँच कर कपड़े उतार, तहमद लगा बिछी हुई चारपाई के बदले ठंडे फर्श पर चटाई बिछा, जब वह लेटा तो उस का दिमाग़ अभी तक उसी समस्या में उलझा था।

साँझ बढ़ आयी थी जब भाभी ने उसे झकझोर कर जगाया। "देखो बाहर वही पंडित जी खड़े हैं।"

"अब यहाँ क्या करने आये हैं ?" वह झुँझला कर तन्द्रिल स्वर में बोला। फिर कुर्ते को गले में लपेट, मुँह पर हाथ फेर और तनिक सचेत हो कर वह छत पर गया और छज्जे के ऊपर से उस ने पंडित जी से कहा कि वे ऊपर आ जायें।

भाभी फिर नीचे जा अपने काम में व्यस्त हो गयी। पंडित जी ऊपर आ गये। जगमोहन ने इस बीच में कुर्ता पहन लिया था और कुर्सी पर बैठ गया था। पंडित जी आये तो उस ने शिष्टाचार से भरा, एक 'नमस्कार' उन्हें किया और ईज़ी-चेयर पर बैठने का संकेत किया।

पंडित जी बैठे नहीं, मेज़ के साथ सटे खड़े रहे।

क्षण भर के लिए दोनों की निगाहें मिलीं। अपने प्रतिद्वन्द्वी को अचानक सामने पा ताज़ी कुत्ते की आँखों में जो आक्रामक-प्रतिहिंसा जाग उठती है, कुछ वैसी ही हिंसा पंडित जी की आँखों में थी। किन्तु जगमोहन के यहाँ हिंसा न थी। वहाँ थी उत्सुकता या फिर झुँझलाहट। उत्सुकता थी पंडित जी के क्रोध का कारण जानने की, उन की प्रतिहिंसा का रूप और प्रकृति जानने की। और झुँझलाहट थी कि क्यों वे ख्वाह-म-ख्वाह अनपेक्ष उस के जीवन में चले आ रहे हैं और जैसे उन के

चार को सीधा सीने पर ले कर उस की प्रकृति जानने के उद्देश्य से वह कुर्सी पर कुछ पीछे को अकड़ कर बैठ गया।

पंडित जी क्षण भर तक कुछ नहीं बोले। अपनी पैनी-दृष्टि के नश्तर से जैसे उस के अन्तर को भेद कर वहाँ का रहस्य जानने की कोशिश करते रहे। फिर जैसे वहाँ के सब भेद जान कर वे मुस्कराये और बोले, "सत्या यहाँ कब से आती है?"

जगमोहन कहना चाहता था, 'आप से मतलब?' पर उस ने उन के आक्रमण को जैसे अपने सीने पर ले कर, उस के प्रहार को अपने में समो कर, निष्फल कर दिया। प्रत्याक्रमण करने की ज़रूरत ही नहीं समझी। सीधे-साधे ढंग से उस ने कहा, "मैं 'संस्कृति-समाज' का मंत्री था और वे महिला-मंत्री इस लिए वे आती थीं।"

"अब आप के ख़याल में अब वह नहीं आयेगी।"

"कोई कारण तो नहीं। मैं ने इसीलिए 'संस्कृति-समाज' से अपना दामन छुड़ा लिया ..."

"आप भूलते हैं, वह आयेगी।"

"हो सकता है।" जगमोहन ने सरल-भाव से कहा, "भाभी से उन का सहेलपना है, उन से मिलने शायद वे आयें!"

जाने क्यों जगमोहन को कुछ संदेह सा हो गया था कि पंडित रघुनाथ का कुछ अधिकार सत्या जी पर है और वह जैसे उन्हें बचाने के उद्देश्य से सफ़ाई दे रहा था।

"आप भूलते हैं!" पंडित रघुनाथ ने ज़ोर देकर कहा, "वह आप के लिए आयेगी।"

"मेरे लिए?"

"वह आप से प्रेम करती है।"

"मुझे तो कभी ऐसा नहीं लगा। कभी कोई ऐसी बात नहीं हुई।"

उस ने सिर उठाया तो उस ने देखा उस का बाज़ू थामे सत्या जी सामने खड़ी हैं......

"चोट तो नहीं आयी ?"

सत्या जी की जगह भाभी होती तो जगमोहन अपनी इस हिमाक़त पर फिर एक बार ठहाका मार कर हँस देता, किन्तु सत्या जी को देखते ही वह गम्भीर हो गया।

"नहीं बच गया हूँ," कुर्सी को फिर सीधी कर, उस पर पहले की तरह बैठते हुए उस ने कहा।

लेकिन चोट उस के काफ़ी आयी थी। सत्या जी ने उस के सिर के पिछले भाग को छुआ, "यहाँ तो 'रोड़' पड़ गया है।" उन्हों ने चिंतातुर स्वर में कहा और धीरे धीरे उस गुमटे को सलाहने लगीं।

वे उस के पीछे कुर्सी से सटी खड़ी थीं। निमिष-भर के लिए जगमोहन के कानों में पंडित जी का वाक्य गूँज गया—'वह धीरा-नायिका है, मुँह से एक शब्द भी न कहेगी'—और जाने उसे क्या हुआ, उस ने अपना हाथ पीछे ले जाकर उन का हाथ थाम लिया और वैसे ही बैठे-बैठे उसे अपने ओठों तक ले आया और फिर उस ने उसे ज़ोर से चूम लिया।

सत्या जी ने न हाथ खींचा न तनिक हिलीं, पर स्वयं जगमोहन जैसे स्वप्न से चौंका। उसे अपनी इस हरकत पर ग्लानि हुई, उस ने हाथ छोड़ दिया और कुर्सी से उठ कर कमरे में घूमने लगा।

सत्या जी चारपाई की पट्टी पर बैठ गयीं। जगमोहन ने एक दृष्टि उन पर डाली। उस की आँखों के सामाने गर्दन झुकाये, पैर पैट में दबाये उत्सुक कबूतरी और पंख फुलाये चक्कर लगाता 'गटर गूं', 'गटर गूं' करता कबूतर घूम गया। पर उस ने दूसरे क्षण इस दृश्य को अपने दिमाग़ से हटा दिया। पूर्णरूप से सचेत होकर वह उन के सामने रुका और बोला, "पंडित रघुनाथ अभी आये थे।"

"मैं ने उन्हें धोबियों के बाड़े की ओर से वापस जाते देखा था।"

सत्या जी ने निरपेक्ष-भाव से कहा।

"आप को यहाँ न आना चाहिए।" जगमोहन बोला

सत्या जी ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया।

"देखिए वे आप के पिता के मित्र हैं। शान्ता जी और भगतराम ने काफ़ी अपवाद फैला रखा है। हम जिस समाज में रहते हैं, वह पुराना है। आप का यों मेरे यहाँ आना ठीक नहीं। आप के पिता को पता चलेगा तो वे क्या कहेंगे? पंडित जी बड़े नाराज़ हैं। वे आप के पिता से कह देंगे। आप के पिता परेशान होंगे। आप स्वयं परेशान होंगी। इस में कोई लाभ नहीं। आप के हित के ख़्याल से ही मैं ने 'संस्कृति-समाज' के मंत्री-पद से त्याग-पत्र दे दिया था। आप को विश्वास दिलाता हूँ, मैं आप के यहाँ कभी न जाऊँगा।"

सत्या जी क्षण भर कुछ नहीं बोलीं। वे उठ खड़ी हुईं। क्रोध, ग्लानि, पश्चाताप् या खेद या कोई और भाव उन के चेहरे पर नहीं आया। सहज-भाव से उन्हों ने कहा, "अच्छा न आया करूँगी। पर अब आप तैयार हो जाइए। मैं प्रो० बैजनाथ कपूर से मिली थी। वे मेरे पिता के मित्र हैं। सुबह मैं यह कहना भूल गयी थी। मैं ने उन से आप की बात की है। वे आप की फ़ीस माफ़ करा देंगे, दाखिले और किताबों का भी प्रबन्ध कर देंगे। आप को शायद दो एक घंटे उन के बच्चों को पढ़ाना होगा। बस इस प्रकार आप आसानी से एम० ए० कर सकेंगे।

सत्या जी की आँखें सदा की तरह धरती पर लगी थीं। जगमोहन के मन में निमिष-भर के लिए आवेग सा उठा कि उन्हें खींच कर अपने सीने से लगा ले, पर उस आवेग से भी बड़ी किसी आन्तरिक-शक्ति से उस ने अपने उस आवेग पर काबू पा लिया और जल्दी से तौलिया और खादी का कुर्ता धोती ले कर तैयार होने चला गया।

पन्द्रह बीस मिनट बाद वह सत्या जी के साथ प्रो० बैजनाथ कपूर के घर जा रहा था।

३१

हरीश के पिता श्री हरि निवास मिश्र होशियारपुर में डी० सी० के सरिश्तेदार थे। वेतन तो उन का उस समय चालीस-पचास से अधिक न था, लेकिन अपने वेतन से चार-पाँच और कई बार आठ-दस गुणा मासिक तक वे ऊपर से बना लेते थे। दुनियादार आदमी थे। इस दुनिया को बनाना जानते थे। जहाँ तक उस दुनिया का संबंध है, उसे बनाने का काम उन्हों ने अपनी पत्नी को सौंप रखा था—इस लोक की चिन्ता वे करते थे, परलोक की वह! न इस लोक की चिन्ता के निमित्त की जाने वाली अपनी सरगर्मियों में उन्हों ने उसे दखल देने दिया था, न परलोक की चिन्ता में किये जाने वाले उस के अनुष्ठानों में वे हस्तक्षेप करते थे। व्रत-नियम, दान-पुण्य, पूजा-पाठ, जो भी उन की पत्नी करती, उस में वे किसी आपत्ति के बिना योग देते। उस समस्त दान-पुण्य, पूजा-पाठ के लिए रुपया कहाँ से आता है, न कभी उस ने पूछा था, न उन्हों ने बताया था। वह उस रुपये को उन की नौकरी का आवश्यक-अंग समझती थी। उसे भी वेतन-सरीखा मानती थी। उस में कुछ पाप भी है, यह उस अनपढ़, धर्मपरायण, भोली-भाली स्त्री ने कभी न समझा था। अपने पति को वह दया-माया की मूर्ति, सत्यवादी और पुण्यात्मा समझती थी। देखने में भी पंडित हरि-निवास मिश्र हर तरफ़ से धर्मपरायण और पुण्यात्मा दिखायी देते थे—

नियमित रूप से प्रातः चो[1] पार कर, बावली पर स्नान करने जाते। उस के बाद स्वयं चंदन रगड़ कर माथे पर और कानों पर टीके लगाते, एक पैसा और कनेर के फूल शिवलिंग पर चढ़ा, प्रसाद पा, मन्दिर की परिक्रमा करते और तीन बार परिक्रमा कर, मुँह का गोला बनाकर उसमें अँगुली से "ओ-लो-लो-लो" का शब्द कर, 'जय बम भोले' बुला, मन्दिर के द्वार पर लगा घंटा बजा, बिना-मुड़े, पीछे हटकर देहली पर मस्तक नवाते। छुट्टी का दिन होता तो कुर्ता धोती और लकड़ी की खड़ाऊँ पहने रहते, कचहरी जाना होता तो उटुंग पायजामा, कमीज़, लम्बा कोट और पंडितों सी घुटी पगड़ी बाँधते। रहा मुकदमेबाज़ों से पेशी को आगे पीछे करने या डिप्टी कमिश्नर के सामने आवेदन-पत्रों को रखने, दबा जाने, गुम करा देने आदि के संबंध में रुपया लेने की बात, तो अधिकाँश के बारे में पंडित जी अपने उस कृत्य को मुकदमेबाज़ों के लाभ-हित समझ कर पुण्य के खाते लिख लेते। जो एक-आध ऐसा कर्म रह जाता जिस के लिए वे किसी प्रकार भी अपने आप को धोखा न दे सकते, उसे वे मन ही मन निष्काम-कर्म समझ कर संतोष कर लेते और उस रुपये को सदा दान के खाते लगा देते। किन्तु ऐसा धन जिसे वे अपने मन में पुण्य का न समझ सकें, पाँच प्रतिशत भी न होता। ऐसी वेश-भूषा में आवृत, टीके लगाने और रोज़ पूजा पाठ कर भोजन पाने वाला व्यक्ति कोई पाप का काम भी कर सकता है, यह बात हरीश की माँ की बुद्धि से परे थी। कचहरी की पेचीदगियों से अनभिज्ञ वह धर्म के कामों में रत रहती। अपने पुत्र को उस ने शैशव से ही सत्य बोलने और सत्याचरण करने की शिक्षा दी थी और नेकी, सचाई और दयानतदारी के लिए उस के अन्तर में कहीं अपार-भूख पैदा कर दी थी। बालक हरीश ने शैशव से ही अपनी सरला-माँ

---

१. होशियारपुर का प्रसिद्ध पहाड़ी नाला जिस का पाट लगभग आध मील है।

३१

हरीश के पिता श्री हरि निवास मिश्र होशियारपुर में डी० सी० के सरिश्तेदार थे। वेतन तो उन का उस समय चालीस-पचास से अधिक न था, लेकिन अपने वेतन से चार-पाँच और कई बार आठ-दस गुणा मासिक तक वे ऊपर से बना लेते थे। दुनियादार आदमी थे। इस दुनिया को बनाना जानते थे। जहाँ तक उस दुनिया का संबंध है, उसे बनाने का काम उन्हों ने अपनी पत्नी को सौंप रखा था—इस लोक की चिन्ता वे करते थे, परलोक की वह! न इस लोक की चिन्ता के निमित्त की जाने वाली अपनी सरगर्मियों में उन्हों ने उसे दखल देने दिया था, न परलोक की चिन्ता में किये जाने वाले उस के अनुष्ठानों में वे हस्तक्षेप करते थे। व्रत-नियम, दान-पुण्य, पूजा-पाठ, जो भी उन की पत्नी करती, उस में वे किसी आपत्ति के बिना योग देते। उस समस्त दान-पुण्य, पूजा-पाठ के लिए रुपया कहाँ से आता है, न कभी उस ने पूछा था, न उन्हों ने बताया था। वह उस रुपये को उन की नौकरी का आवश्यक-अंग समझती थी। उसे भी वेतन-सरीखा मानती थी। उस में कुछ पाप भी है, यह उस अनपढ़, धर्मपरायण, भोली-भाली स्त्री ने कभी न समझा था। अपने पति को वह दया-माया की मूर्ति, सत्यवादी और पुण्यात्मा समझती थी। देखने में भी पंडित हरि-निवास मिश्र हर तरफ़ से धर्मपरायण और पुण्यात्मा दिखायी देते थे—

नियमित रूप से प्रातः चो[1] पार कर, बावली पर स्नान करने जाते। उस के बाद स्वयं चंदन रगड़ कर माथे पर और कानों पर टीके लगाते, एक पैसा और कनेर के फूल शिवलिंग पर चढ़ा, प्रसाद पा, मन्दिर की परिक्रमा करते और तीन बार परिक्रमा कर, मुँह का गोला बनाकर उसमें अँगुली से "ओ-लो-लो-लो" का शब्द कर, 'जय बम भोले' बुला, मन्दिर के द्वार पर लगा घंटा बजा, बिना-मुड़े, पीछे हटकर देहली पर मस्तक नवाते। छुट्टी का दिन होता तो कुर्ता धोती और लकड़ी की खड़ाऊँ पहने रहते, कचहरी जाना होता तो उटुंग पायजामा, कमीज़, लम्बा कोट और पंडितों सी घुटी पगड़ी बाँधते। रहा मुकदमेबाज़ों से पेशी को आगे पीछे करने या डिप्टी कमिश्नर के सामने आवेदन-पत्रों को रखने, दबा जाने, गुम करा देने आदि के संबंध में रुपया लेने की बात, तो अधिकाँश के बारे में पंडित जी अपने उस कृत्य को मुकदमेबाज़ों के लाभ-हित समझ कर पुण्य के खाते लिख लेते। जो एक-आध ऐसा कर्म रह जाता जिस के लिए वे किसी प्रकार भी अपने आप को धोखा न दे सकते, उसे वे मन ही मन निष्काम-कर्म समझ कर संतोष कर लेते और उस रुपये को सदा दान के खाते लगा देते। किन्तु ऐसा धन जिसे वे अपने मन में पुण्य का न समझ सकें, पाँच प्रतिशत भी न होता। ऐसी वेश-भूषा में आवृत, टीके लगाने और रोज़ पूजा पाठ कर भोजन पाने वाला व्यक्ति कोई पाप का काम भी कर सकता है, यह बात हरीश की माँ की बुद्धि से परे थी। कचहरी की पेचीदगियों से अनभिज्ञ वह धर्म के कामों में रत रहती। अपने पुत्र को उस ने शैशव से ही सत्य बोलने और सत्याचरण करने की शिक्षा दी थी और नेकी, सच्चाई और दयानतदारी के लिए उस के अन्तर में कहीं अपार-भूख पैदा कर दी थी। बालक हरीश ने शैशव से ही अपनी सरला-माँ

---

१. होशियारपुर का प्रसिद्ध पहाड़ी नाला जिस का पाट लगभग आध मील है।

के उपदेशों से सत्य के लिए जो अनुराग पाया, वह युवा होने पर और संसार की लम्पटता को देख कर भी वह न छोड़ सका।

पिता अपने पुत्र को प्रसिद्ध एडवोकेट बने देखना चाहते थे। अपने अफ़सरों के लिए उन के मन में अधिक श्रद्धा न थी। उन के अफ़सर साल भर में जितना कमाते थे, बार (Bar) के कई नामी एडवोकेट एक महीने में उतना कमा लेते और फिर कई बार प्रसिद्ध एडवोकेट हाईकोर्ट के जज बन जाते थे। किन्तु बच्चे पर पिता के सपनों के बदले माँ के सपनों का अधिक प्रभाव था। यही कारण था कि जब हरीश केवल आठवीं श्रेणी में पढ़ते थे तो इक्कीस के आन्दोलन में अपने स्कूल के छात्रों का नेतृत्व करते हुए गिरफ़्तार हो गये थे।

हरीश के मस्तिष्क में उन दिनों की स्मृति अमिट-प्रभाव छोड़ गयी थी। जलियाँवाला बाग में जब हत्याकांड हुआ, उस समय वे छठी में पढ़ते थे। ऊपर से सभ्य, पर अन्तर में क्रूर अंग्रेज़ व्यापारियों के प्रतिनिधि डायर ने, बाग के अहाते में 'रौलेट एक्ट' के विरोध में स्थानीय नेताओं के भाषण सुनने के हेतु इकट्ठे होने वाले, सहस्रों निहत्थ लोगों को भून डाला था। उन वीरों की कहानियाँ जिन्होंने सीनों पर गोलयाँ खायी थीं पर अपनी जगह से हिले तक न थे; उन माओं के किस्से जो बच्चों को दूध पिलाते पिलाते गोली का शिकार बन गयी थीं; उन बच्चों और वृद्धों के पिस जाने की घटनाएँ जो भदगड़ में रास्ता न पा सके थे; उस अपार-जन-समूह का क्रन्दन, जिसे चूहेदानी में बन्दू चूहों की तरह, निकलने का मार्ग रोक कर, भून डाला गया; कई गुना बढ़ कर पंजाब के मुहल्ले मुहल्ले, गली गली, घर घर फैल गया था। उन घटनाओं पर कितना रंग चढ़ा, यह उस आवेश में जानना कठिन था। हरीश पर एक घटना का विशेष प्रभाव था। अमृतसर के किसी लड़के के संबंध में (नाम हरीश को याद नहीं रहा) जो शायद अपने स्कूल में हाकी का कप्तान

था, प्रसिद्ध हो गया कि उस ने ग्यारह गोलियाँ अपनी स्टिक पर रोकीं और बारहवीं उस के सीने में लगी और वह शहीद हो गया। वास्तविकता क्या थी, यह तो हरीश को मालूम नहीं। कदाचित् उस के शरीर पर बारह गोलियाँ लगी थीं या कुछ ऐसी ही बात होगी। पर लड़कों में तो यहाँ तक प्रसिद्ध हो गया कि वह अपनी स्टिक से गोलियाँ रोकता हुआ डायर की ओर बढ़ा जा रहा था। यदि उसे बारहवीं गोली चित न कर देती तो वह स्टिक से डायर का सिर फोड़ देता।

बन्दूक की गोलियों को हाकी से किस प्रकार रोका जा सकता है, इस बात की ओर लड़के ध्यान न देते। हरीश के किसी साथी ने गोली चलती न देखी थी। वे गोली को गेंद सरीखी समझते थे और इस घटना को ऐसे वर्णन करते थे जैसे उन्होंने वह सब अपनी आँखों से देखा हो। हरीश जब बाहर निकलते तो हाथ में अपनी छोटी सी हाकी ले लेते और कल्पना करते कि गोली चलेगी तो वे अपनी हाकी से उसे रोकेंगे।

और फिर १६१६ से २१ तक के वे जोशीले दो वर्ष......असहयोग और खिलाफत-आन्दोलन के वे उत्साह भरे दिन......हरीश को वह दिन अच्छी तरह याद था जिस दिन आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। स्कूल के बाहर सड़क पर किसी ने स्टूल पर खड़े होकर बिगुल बजाया और मिनटों में सारा स्कूल खाली हो गया। और फिर वह मीलों लम्बा जलूस और वह गाना

नहीं रखनी...नहीं रखनी सरकार ज़ालिम नहीं रखनी।

और

सौ लानत भेजो कायर नूं!
गोलियाँ तेरियाँ, सीने साडे, कह देओ जाके डायर नूं[1]!

---

१. कायर को सौ लानत भेजो (अभिशाप दो।) और डायर से जा कर कह दो कि तेरी गोलियाँ हैं और हमारे सीने हैं और हम ज़रा नहीं डरते।

एक लड़का ज़ोर से चिल्लाता :

'सौ लानत भेजो कायर नूं।'' शेष कंठ की पूरी आवाज़ से अपने सीनों को घूंसों से गुँजाते हुए गाते...'गोलियाँ तेरियाँ, सीने साडे, कह देओ जाके डायर नूं!'......कैसा जोश था, कैसा उत्साह था, शहीद हो जाने की कैसी लगन थी...।

और जलियाँवाला बाग, तहरीके-अदम-तआवन[1] और हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद[2] ज़िंदाबाद के नारे, नेताओं की जयकारें और प्रिंसपल (क्योंकि वह स्कूल को बंद करने के विरुद्ध था और उस ने अगुआ लड़कों को स्कूल से निकालने की धमकी दी थी, इसलिए) और दूसरे एक दो उस के खुशामदी अध्यापकों की मुर्दाबाद के गगन-चुम्बी घोष! जब वे घर पहुँचे थे तो लगता था जैसे सचमुच स्वराज्य ले आये हैं।

और उन्हीं दिनों हरीश ने देखा होशियारपुर का प्रसिद्ध गुंडा और बैतबाज़ 'फुम्मन' अचानक अपनी गुंडई छोड़ देश-भक्त बन गया है। महात्मा गाँधी ने जब स्वाराज-मन्दिर को (जेलों को यही नाम दिया गया था) बसाने का हुक्म दिया तो सबसे पहली टोली में दूध जैसी श्वेती खादी की कमीज़ और पायजामा पहने और गले में खादी के फूलों का हार डाले अपने ही गाने गाता हुआ कवि फुम्मन भी था। हरीश एक दुकान के तख्ते पर खड़े यह सब देख रहे थे। फुम्मन की चाल में, उस के स्वर में कुछ अजीब जोश था, उस के मुख पर कुछ अलौकिक तेज था। तब हरीश के मन में आयी थी कि वे भी कुछ करें! खड़े खड़े एक दम फट पड़ें! भागे भागे जाकर जेल के सीखचों को तोड़ कर अन्दर घुस जायें! उन के पाँवों को जैसे पंख लग गये थे। वे उन नेताओं के पीछे हो लिये थे, पर जेल वालों ने उन चारों नेताओं को पकड़ लिया था और शेष नारे लगाते वापस आ गये थे।

---

१. असहयोग-आन्दोलन २. हिन्दू मुस्लिम एकता।

फिर रोज़ टोलियाँ बनतीं और नारे लगाती जेल चली जातीं। विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग लगायी गयी, शराब की दुकानों पर पिकेटिंग लगायी गयीं, विदेशी कपड़े की होलियाँ जलायी गयीं, सूत के गोले लंकाशायर पर फेंके गये। हर तरकीब से स्वराज्य-मन्दिरों को भरा गया।

उन्हीं दिनों हरीश भी अपनी कमसिनी के बावजूद डिक्टेटर बने और गिरफ़्तार हुए और उन्हें तीन महीने की सज़ा हुई। अपने लड़के के इस कृत्य का क्या जवाब मिश्र जी ने अफ़सरों को दिया, इसे तो कोई नहीं जानता, पर उन्होंने अपनी दो-रुखी-नीति के साथ मुहल्ले की वाह वा भी ले ली और अफ़सरों को भी संतुष्ट कर दिया। जहाँ अधिकाँश दूसरी महिलाओं ने अपनी पुरानी फटी साड़ियाँ जलाने को दीं, उन की पत्नी ने एकदम नयी साड़ी होली में फेंक दी। पंडित जी ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि अपनी एक नयी कमीज़ भी पत्नी को दे दी कि उसे विदेशी कपड़ा माँगने के हित आने वालों को दे दे। आने वालों ने उन की पत्नी के साथ उन की जय के नारे भी लगाये। पर अपने अफ़सर के सामने उन्होंने अपने लड़के और अपनी पत्नी के कृत्य के लिए क्षमा मांग ली और मुहल्ले में कौन कौन इस 'कुकृत्य' में भाग लेता है, इस की पूरी पूरी सूचना देने का वचन दिया। पुत्र को बिना उस से माफ़ी मँगाये छुड़ा लिया और तत्काल उसे उस की माँ के साथ, उस के ननिहाल के पहाड़ी गाँव 'गगरेट' भेज दिया और तब तक नहीं आने दिया जब तक आन्दोलन की आग सर्द नहीं हो गयी।

हरीश जी ने १६३० के आन्दोलन में भी भाग लिया था और यद्यपि उस बार उन्हें तीन वर्ष की सज़ा हुई, पर गाँधी-इरविन-पेक्ट के अनुसार वे छै महीने कैद भोग कर ही रिहा हो गये थे।

१६३१ में जब दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस के बाद फिर आन्दोलन

आरम्भ हुआ, हरीश जी ने फिर उस में भाग लिया था। किन्तु इन आन्दोलनों के बाद देश के वातावरण में जो निर्जीव-शून्यता आ जाती थी और साम्प्रदायिक-दंगे फूट निकलते थे, वे हरीश के लिए बड़ी मानसिक यातना का कारण बन जाते थे। ये आन्दोलन साबुन के पानी के उन बुलबुलों-सरीखे थे जो मुँह की हवा के ज़ोर से फूल उठते हैं, इन्द्र-धनुष के सातों रंग जिन में झलक उठते हैं, जो नली से अलग होकर उड़ते फिरते हैं, पर जहां ज़रा झटका लगा, अन्दर की हवा निकली कि थूक के लौंदे-सरीखे धरती पर गिर जाते हैं।

इसी शून्य के कारणों का अध्ययन करते हुए हरीश धीरे-धीरे काँग्रेस के वामपक्ष की ओर आते गये थे। पिता के ज़ोर देने पर उन्हों ने चार वर्ष पहले कानून भी पास किया था और बहुत अच्छे नम्बरों से पास किया था, पर न तो वे अपने स्नेही प्रोफ़ेसरों के कहने पर पी० सी० एस० के कम्पीटीशन में बैठे, न वकालत ही कर सके...अंग्रेज़ के अधीन डिप्टी-कलक्टर और मैजिस्ट्रेट जिस प्रकार न केवल स्वयं बँधे थे, वरन् दूसरों को भी बाँधते थे और जिस प्रकार न्याय का खून कर, जनता के शोषण और अत्याचार के साधन बनते थे, उस सब से हरीश को बड़ी घृणा होती थी। उस की अपेक्षा वे आज़ादी से वकालत करना और न्याय के लिए लड़ना कहीं अच्छा समझते थे। पर दुर्भाग्य से उन छै महीनों में, जब वे लाहौर ही के एक नामी फ़ौजदारी के वकील से ट्रेनिंग ले रहे थे और प्रति-दिन कचहरी जाते थे, कुछ ऐसी बातें हो गयीं कि उन का मन वकालत से एक दम फिर गया। उन्होंने आवेग में आकर कानून की सब किताबें बेच डालीं और फिर कचहरी का मुँह नहीं देखा।

हुआ यों कि होशियारपुर में छै महीने ट्रेनिंग लेकर लाइसेंस लेने

के बदले हरीश जी ने लाहौर ही के एक प्रसिद्ध फ़ौजदारी वकील से ट्रेनिंग लेने का निश्चय किया। (उस ज़माने में लॉ कालेज में तीन वर्ष का कोर्स न था। दो साल में एल० एल० बी० की डिग्री मिल जाती थी और लाइसेंस लेने के लिए किसी वकील के पास छै महीने ट्रेनिंग लेना आवश्यक था) यों तो छै महीने के बाद किसी एडवोकेट का सर्टिफ़ीकेट दिखाकर भी लाइसेंस मिल सकता था, पर हरीश जी का तो इरादा सचमुच प्रेक्टिस करने का था, इस लिए उन्होंने पंडित श्याम चरण दास एडवोकेट के साथ ट्रेनिंग लेने का फ़ैसला किया।

पंडित श्याम चरण से उन का परिचय कांग्रेस की एक सभा में हुआ था जहाँ पंडित जी ने 'पंजाबी लोक गीतों में स्वदेश-प्रेम' पर एक बहुत ही सुन्दर भाषण दिया था। १६१६ में जलियाँवाला-हत्याकांड से लेकर १६३७ तक पिछले सतरह अठारह वर्षों में पंजाबी, माओं बहनों, किसानों और मज़दूरों ने प्रचलित तर्ज़ों पर जैसे स्वदेश-प्रेम-संबंधी और तत्कालीन आन्दोलनों में जान फूँकने वाले लोक-गीतों का सृजन किया था, उन सब को उन की तर्ज़ों के साथ गा कर पंडित जी ने सुनाया था। तिंझन[1] में पंजाब की महिलाएँ गाती थीं।

चर्खा कत्तो ते होवे बेड़ा पार जी

और 'गिद्धा'[2] के बोलों में पंजाबी लड़कियों के नये बोल जोड़ दिये थे :

बाबे गाँधी दा
जस गिद्धे बिच गाँवा !

या फिर

गाँधी दा नाँ सुन के अंग्रेज़ दी नानी मर गयी

और जलूसों में मार्च करते हुए लड़के गाने लगे :

---

१. तिंझन = पंजाबी माओं बहनों का इकट्ठे मिल कर चर्खा कातना

२. गिद्धा = लड़कियों का एक प्रसिद्ध पंजाबी-नृत्य।

मारो सूत दे गोले लंकाशायर नूं[1]
शायर नूं
मारो सूत दे गोले लंकाशायर नूं

ज़ुल्म जबर तों नईं घबराना
देश नूं हुण[2] आज़ाद कराना
गोलियाँ भर सीने ते [3] खाना
कहदेओ जाके इह बेदर्दी डायर नूं
डायर नूं
मारो सूत दे गोले लंका डायर नूं

और

चर्खे दी घूं घूं तों[4]
लंकाशैर दा कलेजा धड़के
गाँधी डरदा नईं [5]
जेल कोलों[6]
गोलियाँ दे
खेल कोलों
आप गाँधी कैद हो गया
सानूं[7] दे गया खद्दर दा बाणा
गाँधी डरदा नईं ...

और 'ढोला' की तर्ज़ पर

बाज़ार विकेंदे डोके[8]

---

१. न=को। २. हुण=अब। ३. ते=पर। ४. तों=से। ५. नईं=नहीं। कोलों=से। ७. सानूं=हमको। ८. बाज़ार डोके बिकते हैं। अंग्रेज़ पराया आदमी नादान इसे समझ। गाँधी जिये, स्वराज के लिए हमारा जी बेचैन है।

अँग्रेज़ पराया लोक ए
समझ नादनां
जीवें गाँधी
सुराज लैण लई जिंद कुरलांदी

ये और दूसरे कई लोक-गीत पंडित जी ने सुनाये थे और हरीश की आँखों के सामने उन्नीस और इक्कीस के दिन घूम गये थे और उन्हें पंडित जी का भाषण बहुत अच्छा लगा था। भाषण की समाप्ति पर उन्होंने भाषण की बड़ी प्रशंसा की थी। उसी दिन से उन के यहाँ हरीश का आना जाना हो गया था। पंडित जी लाहौर के प्रसिद्ध फ़ौजदारी वकील तो थे ही, इस लिए जब हरीश ने कानून की परीक्षा पास करली तो उन के साथ ट्रेनिंग लेने का निर्णय किया।

पंडित जी वकील अच्छे हों न हों, पर प्रसिद्ध काफ़ी थे। सभा-सोसाइटियों में जाने का समय सदा निकाल लेते थे, जेल वे एक बार भी न गये थे और न उन का जाने का इरादा था, इस पर भी काँग्रेसियों में बड़े लोक-प्रिय थे। यही हाल हिन्दू-महासभा का था। वहाँ भी वे श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे। जिस प्रकार फ़िल्मी-क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए लोग हस्त-रेखा आदि में निपुणता प्राप्त कर लेते हैं और एक्टरों डायरेक्टरों और प्रोड्यूसरों के हाथ देख कर उन की नज़रों में चढ़ने का अवसर पा जाते हैं, इसी तरह पंडित जी ने लोक-गीतों के अध्ययन में निपुणता पा ली थी और सभा-सोसाइटियों में वे अपने इस ज्ञान का पूरा लाभ उठाते थे और अवसर के उपयुक्त लोक-गीत सुनाते थे। पंजाबी कविता से भी उन्हें मस था। 'वारेशाह'[1] 'हाशिमशाह'[2] और 'बुल्हेशाह'[3] को उन्होंने खूब पढ़ रखा था। जब अवकाश होता उन की

१ वारेशाह=वारिस शाह=पढ़ने वाले हीर के लेखक कवि वारिस शाह को प्रायः वारेशाह पढ़ते हैं। २, ३=प्रसिद्ध पंजाबी कवि।

कविताएँ लय से पढ़ते थे। हरीश जी के रूप में उन्हें एक अच्छा श्रोता मिल गया।

लेकिन हरीश जी को वकालत का नया नया शौक था। वे चाहते, कोई मामला उन्हें दिया जाय; वे उस की तैयारी करें, अदालत में जाकर बहस करें और मामले को जीतने का गर्व प्राप्त करें। पंडित जी उन्हें हीर तो खूब सुनाते, पर कोई केस अकेले उन्हें करने को न देते। आखिर एक दिन शाम को उन्हों ने कहा, "लो भई आज एक मुवक्किल एक अपील के बारे में सलाह लेने आया था, यदि वह फँस गया तो वह केस तुम्हें दे देंगे।"

"कैसा केस है?"

"इन्सॉलवेंसी-एक्ट[1] की दफ़ा[2] तेरह के मातहत[3] है। तुम्हें इन्सॉलवेंसी-एक्ट याद है न?"

"जी हाँ," और हरीश जी ने फ़र फ़र वह धारा पढ़कर सुनादी।"

"बस तो फिर तुम्हीं वह करना।"

"कुछ उस के संबंध में बता दीजिए, ताकि मैं कुछ तैयारी अभी से आरम्भ कर दूँ।"

"ऐसी क्या जल्दी है, उसे आ तो लेने दो।"

आवेगशीलता के बावजूद हरीश में यथेष्ठ ठहराव था। वे शाम को अपने संगियों के साथ घूमने गये, एक पिक्चर भी उन्हों ने देखी, रात को एक उपन्यास भी पढ़ा, इस पर भी उन के दिमाग के किसी कोने में उस मामले की बात घूमती रही और 'इन्सॉलवेंसी-एक्ट' निकाल कर उन्हों ने उस का तेरहवीं धारा और उस के संबंध में आवश्यक मुकदमे और हाईकोर्टों के रूलिंग पढ़े।

रात वे ठीक तरह से सो नहीं पाये और सुबह समय से कुछ पहले ही उठे। नित्य-कर्म से निवृत्त हो, नाश्ता आदि समाप्त कर वे आठ बजे

१. दीवालिएपन का एक्ट। २. धारा ३. अधीन

के लगभग वकील साहब के यहाँ पहुँच गये।

मुवक्किल पूरे सवा नौ बजे आया। यह सवा घंटा हरीश जी ने किस तरह काटा, यह बताने की जरूरत नहीं। यों तो प्रकट वे लॉ-रिपोर्टर पढ़ते रहे, पर जो मामले पहले उन्हें बड़े मनोरंजक लगते थे और जिनके फैसलों के नोट वे लिया करते थे, वे उन के ध्यान को बाँध न सके। लॉ-रिपोर्टर उन के सामने रहा, पर ध्यान उन का इन्सॉलवैंसी-एक्ट की धारा तेरह में लगा रहा। मुन्शी से उन्होंने उस केस के संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त कर ली थी और वे मन ही मन उस की तैयारी के सिलसिले में अपना प्रोग्राम बनाते रहे थे।

मुवक्किल पेशे से राजगीर था। उस का मामला सीधा था। दीवालियेपन की घोषणा करने से पहले उस के एक निकट-संबंधी ने अपना एक मकान दो हज़ार रुपये में उस के हाथ बेच दिया था, पर क्योंकि वह सौदा दीवालियेपन की घोषणा से पहले दो वर्ष के अन्दर अन्दर हुआ था, इसलिए सरकारी रिसीवर ने उस विक्रय को फ्रॉड्यूलेंट (कपट-पूर्ण) ठहराया था, जिसका उद्देश्य रिसीवर को ठगना था। उसी धारा के अधीन मकान रिसीवर ने अपने अधिकार में कर लिया था।

राजगीर का कहना था कि उसे अपने उस संबंधी की आर्थिक स्थिति का कुछ ज्ञान न था; उस ने सचमुच अपनी और अपने पुरखों की सारी पूँजी उस मकान पर लगा दी थी; कि उस ने वह रुपया रजिस्ट्रार के सामने दिया था और इस कारण उस पर कुछ कर्ज़ भी चढ़ गया था।

लोयर-कोर्ट में वह मामला हार गया था, अब वह सेशन में अपील करना चाहता था।

पंडित श्याम चरण ने उस से अपनी फ़ीस, अपने मुन्शी की फ़ीस, टाइपिस्ट का एक रुपया और मिसलें देखने के लिए दो रुपये ले लिये।

राजगीर कोई पैंतालिस-पचास वर्ष का पतला-दुबला मँझले कद का आदमी था। मैली सी तहमद और कमीज उसने पहन रखी थी। पैरों से नंगा था। लगता था, कई दिनों से उस ने हजामत न बनायी थी। उस की डाढ़ी काफ़ी बढ़ आयी थी। उस की शक्ल से तो ऐसा मालूम होता था जैसे उस ने कई दिनों से पेट भर खाना भी नहीं खाया। जाने आधे पेट खाना खा कर उस ने मामला लड़ने के लिए वकील की फीस जुटाई थी। उस के मुख पर कुछ ऐसी करुणा थी कि हरीश जी को उस पर बड़ी दया आयी और उन्होंने फैसला किया कि मिसलें लेने के बाद वे दिन रात श्रम करेंगे, प्रिवी-कौंसल से लेकर भारत के सभी हाई कोर्टों के रूलिंग ढूँढेंगे और उस राजगीर का मामला जिताने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देंगे।

जब राजगीर चला गया तो हरीश जी ने पंडित जी से कहा, "मुन्शी से कहिए, आज मामले की मिसलें निकलवा दे ताकि मैं आज ही से तैयारी शुरू कर दूँ, मेरे ख्याल में मामले में इतना तो दम है कि उसे लड़ा जा सके।"

"अभी क्या जल्दी है", पंडित जी ने बेपरवाही से कहा, "अभी तो अपील के लिए दरख्वास्त दी जायेगी, फिर तारीख पड़ेगी, तब तुम देख लेना।" और क्योंकि उस दिन अन्य कोई मुवक्किल न आया था, इतवार का दिन था, कचहरी बन्द थी, इसलिए उन्हों ने 'वारेशाह' की हीर उठायी और हरीश जी को 'वारेशाह' की उपमाओं, उस की फिलासफ़ी और उस की सार्वभौमिकता पर एक छोटा सा भाषण दिया। 'वारेशाह' पंजाब का सब से बड़ा कवि है और 'हीर वारशाह' किसी भी क्लासिक-काव्य से कम नहीं, इसे पंजाब का बच्चा बच्चा तसलीम करता है, पर पंडित जी का उद्देश्य हरीश को 'वारेशाह' की विद्वत्ता नहीं, अपनी विद्वत्ता बताना था। उन का दावा था कि सभी हीर पढ़ने वाले गलत पढ़ते हैं और उन्होंने बड़े श्रम के बाद छपी हुई हीर

की ग़लतियाँ ठीक की हैं और वारेशाह की उपमाओं और उस के दर्शन को जितना वे समझते हैं, उतना कोई दूसरा नहीं समझता।

और अपनी बात के प्रमाण में उन्होंने ग्रन्थ को वहाँ से खोला, जहाँ राँझा जोगी बन कर हीर की ससुराल में उसे ढूँढता हुआ जाता है और रंगपुर की लड़कियाँ उस की ख़ूबसूरती और फ़क़ीरी-भेस को देख कर उस का अता-पता, गाँव और जाति जानने का प्रयास करती हैं और हरीश जी के भावों की ओर ध्यान दिये बिना, हीर की खास तर्ज़ में पंडित जी पढ़ने लगे :

राँझे आखिया पिच्छे न पवो मेरे
शींह, सप्प, फ़क़ीर दा देश केहा ?
कूंजां[1] वाँग ममोलियाँ[2] देश छड्डे
साडी ज़ात सफ़ात ते भेस केहा ?
वतन दमाँ दे नाल, ते ज़ात जोगी
साडा साक, कबीलड़ा ख़्वेश केहा ?
जेहड़ा वतन ते ज़ात वल्ल ध्यान रक्खे
दुनियादार है ओह दरवेश केहा ?
दुनिया नाल पैवंद न कोई साडा
पत्थर जोड़ना नाल सरेश केहा ?
जिन्हा ख़ाक-दर-ख़ाक फ़ना-होना
वारिसशाह फिर तिन्हा नूं ऐश केहा ?*

*राँझा बोला, "न लड़कियो पड़ो पीछे
सिंह, साँप, फ़क़ीर का देस कैसा ?
वतन छोड़ घूमें हम तो पंछियों-से
ज़ात पात कैसी, कहो भेस कैसा ?
साथ साँस के वतन है, ज़ात जोगी
कोई कुटम, कबीला या ख्वेश[3] कैसा ?

१ कूँज, २ ममोले=प्रसिद्ध पक्षी, ३ ख्वेश=घर।

हरीश रोज़ इस बात की प्रतीक्षा करते कि उन्हें मामले की मिसलें देखने को मिलेंगी और वे लॉ-रिपोर्टर देखने शुरू करेंगे, किन्तु एक महीना गुज़र गया, न वकील साहब और न उन के मुन्शी ने मामले की कोई खबर उन्हें दी। एक दिन जब वे पंडित श्यामचरण के यहाँ पहुँचे तो उन्होंने कहा, "देखो हरीश आज उस राजगीर वाले मामले की तारीख है, तुम ज़रा उसे निबटा देना।"

"लेकिन जी मुझे तो उस मामले के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं।"

"कचहरी में तुम्हें सब बता देंगे।"

"लेकिन कचहरी में पंडित जी को उन से बात करने का भी अवसर नहीं मिला। उन्हें उस दिन दो तीन मुकदमों में पेश होना था। वे एक अदालत से भागते हुए आये और हरीश जी से यह कह कर—कि वे सेशन की अदालत में जाकर खड़े हों, वे पहुँचते हैं, यदि आवाज़ पड़े तो उस मामले को निबटा दें, नहीं इतने में वे पहुँच जायेंगे—फिर दूसरी अदालत में पेश होने को भाग गये।

मुन्शी उन्हें सेशन जज की अदालत में ले गया। हरीश ने बड़े चिंतातुर स्वर में मुन्शी से पूछा कि यदि पंडित जी समय पर न पहुँचे

रक्खे वतन औं, ज़ात का ध्यान हरदम
दुनियादार है वह, दरवेश‡ कैसा?
संग जगत के जोड़ न कोई अपना
पत्थर जोड़ना साथ सरेश कैसा?
जिन को ख़ाक-दर-ख़ाक फ़ना होना§
'वारिस शाह' उन को कहो ऐश कैसा?

---

‡दरवेश=फ़क़ीर

§ख़ाक-दर-ख़ाक फ़ना होना=दर दर की धूल फाँकते खत्म हो जाना या मिट्टी का मिट्टी में मिल जाना

तो वे क्या कहेंगे, उन्हें तो राजगीर का नाम भी मालूम नहीं ।

"अजी आप फ़िक्र न करें कुछ भी कह दीजिएगा ।"

समय पर आवाज़ पड़ गयी । पंडित जी कदाचित् दूसरी अदालत में व्यस्त थे । हरीश सख्त परेशानी की दशा में अदालत गये । गंभीर मुँह बनाये और सूट के साथ आर्य-समाजियों जैसी बुटी हुई पगड़ी बाँधे सेशन जज बैठे थे ।

"इस केस की कौन पैरवी करेगा ?" उन्हों ने अंग्रेज़ी में पूछा ।

जब हरीश ने बताया कि वे उस की पैरवी करेंगे तो जज ने पूछा कि उन के पास क्या लाइसेंस है ? जब उन्होंने बताया कि श्री श्यामचरण दास के साथ वे काम कर रहे हैं तो जज साहब ने एक मेज़ की ओर संकेत किया और बोले, "Speak from there !"[1]

अब हरीश क्या कहें ? क्षण भर के लिए उन की दृष्टि राजगीर पर गयी । उस ने सेशन-जज की अदालत में उपस्थित होने के उपलक्ष में हफ़्तों से बढ़ी अपनी डाढ़ी साफ की थी, चौड़ी धारी की गबरून का कुर्ता और नया तहमद पहना था । उस एक निमिष में हरीश ने यह भी देखा कि दोनों कपड़े कोरे हैं । उन के हृदय को कोई चीज़ कचोटती सी चली गयी । वे क्या कहते ? कुछ गुनगुन करते हुए उन्हों ने यह कहा कि केस बिलकुल सीधा है, हमारे मुवक्किल ने मकान का रुपया दिया है और रिसीवर को यह मकान लेने का कोई अधिकार नहीं ।

पर उन के ये वाक्य स्वयं उन के कानों को सुनायी नहीं दिये । जज ने क्या फ़ैसला दिया, उतनी दूर से उन्होंने नहीं सुना, पर बाहर निकलते ही मुन्शी ने बता दिया कि मामला डिसमिस हो गया है ।

हरीश जी को इतनी ग्लानि और क्षोभ हुआ कि कुछ क्षण उन से बात न हुई । उन्हों ने मुन्शी से कहा, "मुझे बड़ा दुख है, यह मामला

---

१. वहाँ खड़े हो कर बोलो !

जीता जा सकता था।"

"अजी आप ज़रा फ़िक्र न करें, वकालत में यह रोज़ की बात है, आप जैसे कई वकील हमारे हाथों बन गये, कल आप को इस का ज़रा भी मलाल न होगा..."

वह अभी बात कर ही रहा था कि पंडित जी भागम-भाग आ पहुँचे।

"क्यों क्या हुआ?" उन्हों ने राजगीर से पूछा जो ज़रा परे मुँह लटकाये हुए चला जा रहा था।

"खारिज हो गया।" मुन्शी ने कहा।

"मुझे तो पहले ही उम्मीद थी।" पंडित जी ने क़द्रे हँस कर कहा, "यह जज साला कट्टर क़िस्म का हिन्दू है, कभी मुसलमान के हक़ में फ़ैसला नहीं देता।" फिर राजगीर से बोले," तुम ऐसे करो, इस की अपील कर दो। हम इसे जस्टिस हकीमुद्दीन की अदालत में रखायेंगे।" और उन्हों ने मुन्शी की ओर समर्थन के विचार से देखा, "क्यों मुन्शी जी! हकीमुद्दीन से मैं कह दूँगा। कल ही तो चाय पर हम इकट्ठे थे।"

"जी और क्या!" मुन्शी ने समर्थन किया, "हकीमुद्दीन साहब की अदालत में मामला गया तो आप को कुछ कहने की नौबत भी न आयेगी। वे आप के ऐसे दोस्त हैं!"

और दोनों ने मिल कर राजगीर से बीस रुपये हाई कोर्ट में अपील करने के सिलसिले में और ऐंठ लिये।

हरीश स्तम्भित से वह सब देखते रहे। उन्हें अपनी आँखों और कानों पर विश्वास न आता था। इतना बड़ा धोखा! यह तो सोलहो आने लूट थी। वहीं से वे घर चले आये और कई दिन क्रोध और क्षोभ

३२

नूरदीन का बड़ा अनुरोध था कि यूनियन का आफ़िस उस के अपने घर में बनाया जाय, क्योंकि उस के सामने काफ़ी जगह थी और वहाँ पब्लिक सभा हो सकती थी, पर हरीश जी ने अपने संगियों के साथ सोच-विचार कर, कमर्शल बिलडिंग्ज़ के एक कमरे में यूनियन का बोर्ड लगाया। एक तो यह बात थी कि वह कमरा बहुत बड़ा था, वहाँ दो एक दूसरी यूनियनों के भी दफ़्तर थे; दूसरे मज़दूर नेताओं की सहायता ली जा सकती थी; तीसरे वह जगह बसों के अड्डों से दूर और बस-मालिकों के प्रभाव से एकदम स्वतन्त्र थी। नूरदीन बुरा न मान जाय, इसलिए हरीश ने उस को समझा दिया कि कमर्शल बिलडिंग्ज़ में दूसरी यूनियनों के भी दफ़्तर हैं, इसलिए न केवल दूसरे मज़दूर-नेताओं की सहायता ली जा सकती है, बल्कि यदि कभी स्ट्राइक करने की नौबत आयी तो उन से अनुरोध किया जा सकता है, कि हमारे साथ सहानुभूति के रूप में वे भी स्ट्राइक करें; कि हम जो माँगें पेश करेंगे, उन्हें मनवाने में इस से आसानी रहेगी।

"ठीक है जी"! नूर ने मूँछों को ताव देते हुए एक बड़ी सी गाली अपने मालिकों को दी, "इन माईं— को ठीक करने के लिए स्ट्राइक तो करनी ही पड़ेगी।" और उस ने हरीश को विश्वास दिलाया कि वह न केवल अपनी सर्विस में काम करने वालों को यूनियन का सदस्य बनायेगा,

बल्कि ग्रीन-बस-सर्विस, मंचंदा-बस-सर्विस, अमृतसर-बस-सर्विस आदि दूसरी ट्रांसपोर्ट कम्पनियों में काम करने वालों को भी खींच लायेगा।

और सचमुच जिस दिन हरीश ने 'येलो-बस-सर्विस-यूनियन' का बोर्ड लगा दिया और उस के उद्घाटन के लिए सभा की, उस दिन कोई ही सर्विस ऐसी होगी जिस के वरकर्ज़ का प्रतिनिधित्व वहाँ न हो।

हरीश ने उस दिन लाहौर-रेलवे-वर्कशाप-यूनियन के प्रधान मिर्ज़ा इब्राहीम, सोशलिस्ट लीडर मुन्शी अहमद दीन तथा सरदार सोहन सिंह जोश और दूसरे दो एक नेताओं को भी बुला लिया था। कमरे में तिल धरने को जगह न थी।

सब से पहले हरीश ने आगत नेताओं का परिचय दिया और मिर्ज़ा इब्राहीम से, जो रेलवे मज़दूरों के पुराने मँझे और सफल नेता थे, येलो-बस-सर्विस-यूनियन के मज़दूरों को उन के इस प्रयास में परामर्श और आर्शीवाद देने को कहा।

मिर्ज़ा इब्राहीम स्वयं मज़दूर थे, वर्कशाप में काम करते थे, मज़दूरों के मनोविज्ञान को जानते थे। "जब तक आप की कोई यूनियन नहीं, आप इकट्ठे नहीं," उन्होंने कहा, "आप यह समझिए कि आप के पेट और ज़बान की चाबी आप के पास नहीं। आप को मालिक जब चाहें मामूली से मामूली कसूर पर गाली दे सकते हैं, डिमोट कर सकते हैं, सस्पेंड कर सकते हैं, निकाल सकते हैं! आप ज़बान नहीं हिला सकते। अपनी खुद्दारी[1] को ताक में रख कर आप को चुप रह जाना पड़ेगा। लेकिन अगर आप इकट्ठे होकर यूनियन बना लेते हैं तो फिर किसी मैनेजर या मालिक की ताब नहीं कि वह आप में से किसी बेकसूर पर जुर्माना करदे, आप में से किसी को डिमोट करदे, सस्पेंड करदे या निकाल दे। तब आप के पेट और ज़बान की चाबी आप के हाथ—आप की यूनियन के

१ खुद्दारी=स्वाभिमान।

हाथ आ जायेगी; आप अपनी नौकरियों को पक्की बना सकेंगे; अपने साथ की गयी बेइंसाफियों के लिए लड़ सकेंगे; मालिक के मुनाफ़े से बोनस के रूप में कुछ हिस्सा माँग सकेंगे और काम के औकात[1] का तअइयुन कर सकेंगे।[2] यह नहीं कि बारह-बारह तेरह-तेरह घंटे आप से ड्यूटी ली जाय, वक्त-बे-वक्त, बिना एक भी पैसा दिये, डबल काम लिया जाय!" वे क्षण भर रुके फिर बोले, "इस समय आप के पेट और ज़बान की चाबी एक बेबस नज़रबंद की तरह मजबूर और लाचार है। यूनियन बनते ही वह आज़ाद हो जायेगी। इस वक्त अगर आप में से कोई ज़बान हिलायेगा तो मैनेजर या मालिक उसे अलग करके अपना कोई दूर नज़दीक का रिश्तेदार या खुशामदी पिट्ठू उस की जगह रख लेगा। यूनियन बन जाने पर वह कभी ऐसा न कर सकेगा, क्योंकि वह बेइंसाफ़ी एक आदमी के साथ की गयी बेइंसाफ़ी न होगी, सारी यूनियन के साथ की गयी बेइंसाफ़ी होगी।" और मिर्ज़ा ने फारसी ज़बान की एक मिसाल सुनाते हुए कहा कि अकेला मज़दूर एक तिनके के बराबर है। उस तिनके को मालिक हाथ की दो अँगुलियों में मसल कर फेंक सकता है, फूँक से उड़ा सकता है, पाँव तले रौंद सकता है, लेकिन जब मज़दूर मुत्तहिद[3] हो जाते हैं और वही छोटे छोटे तिनके यूनियन के रूप में एक मोटा रस्सा बन जाते हैं तो उस रस्से से हाथियों-सरीखे लहीम-शहीम[4], ताकतवर मालिकों को बाँधा जा सकता है।"

नूर को मिर्ज़ा की यह उपमा बड़ी अच्छी लगी। वह दो एक पैग चढ़ाये हुए भी था। अपनी जगह बैठे बैठे उस ने ज़ोर से ताली बजायी, घुटनों के बल उठ कर एक भरपूर गाली मालिकों के नाम हवा में फेंक दी....."इन्हाँ माईयाँ दा मक्कू ठप्प देना ऐं।"[5] और

---

१ औकात=समय=घंटे, २ तअइयुन कर सकेंगे=नियत कर सकेंगे, ३ मुत्तहिद=इकट्ठे, ४ लहीम-शहीम=लम्बे-तगड़े, ५ इनको सीधे कर देना है।

उस ने "येलो-बस-यूनियन ज़िंदाबाद" का नारा कंठ के पूर ज़ोर से तीन बार बुलाया। जब वह नारे बुला चुका तो लेक्चर देने के अन्दाज़ में उठ कर खड़ा हो गया।

"इन्हाँ सानूं समझिया की है?" वह चिल्लाया, "असाँ इन्हाँ नूं ठीक कर देणा ऐं। मैंनूं इन्स्पेक्टरों कंडक्टर बना दित्ता, लेकिन असाँ मज़दूराँ हुण....[1]

वह आगत नेताओं के अस्तित्व को लगभग भूल चुका था कि हरीश जी ने उस के निकट जाकर उस के कंधे पर हाथ रख, उसे समझा दिया कि नेताओं के भाषणों के बाद उस का भी भाषण होगा।

मिर्ज़ा के बाद मुन्शी अहमद दीन खड़े हुए। उन्होंने देश की ग़ुलामी और उस के नतीजे के तौर पर अपढ़ता, अशिक्षा, ग़रीबी, बीमारी और बेकारी का इतिहास बताते हुए कहा कि इस ग़ुलामी से रिहाई के लिए सब से बड़ी ज़रूरत इस बात की है कि देश के मज़दूर-किसान जागें। देश के सयासी[2] ढाँचे में अपनी सत्ता को पहचानें। "देश के अकसर सरमायादार", उन्हों ने कहा, "इस वक्त अँग्रेज़ सरकार के साथ मिले हुए हैं। अगर आज मज़दूर मुत्तहिद होकर सरमायादारों से अपनी बात मनवा सकते हैं तो कल सरकार से भी अपनी बात मनवा लेंगे, इसलिए सरकार नहीं चाहती, मज़दूर मुत्तहिद हों। वह मज़बूत रस्से से डरती है," उन्होंने मिर्ज़ा इब्राहीम की उपमा को आगे बढ़ाते हुए कहा, "जो रस्सा सरमायेदार को बाँध सकता है, वह सरकार को भी बाँध सकता है। पर सरकार रस्सा पसंद नहीं करती, तिनके पसंद करती है, जिन्हें वह अपनी मर्ज़ी से उड़ा सके।"

---

१ इन्हों ने (मालिकों ने) हमें समझा क्या है ? हम इन्हें ठीक कर देंगे। मुझे इन्स्पेक्टर से कंडक्टर बना दिया, लेकिन हम मज़दूर अब......

२. सयासी—राजनीतिक।

से हवा करने लगी। लेकिन हवा कहीं बाहर से आती तो उसे आराम मिलता।

उस की दृष्टि हरीश पर गयी। वे उस उमस और घुटन से बेपरवाह, उस हुजूम का अंग बने बैठे थे। दुरो ने अपने आप को धिक्का —उस ने हरीश से—अनपढ़ मज़दूरों को शिक्षा देने, मज़दूर-स्त्रियों से ंध बनाने, उन्हें यूनियन के लाभ बताने और अन्य स्वतन्त्र-देश ी नारियों के किस्से सुना कर उन की चेतना को जगाने का वादा िा है। यदि वह इतनी सुकोमल बनी रहेगी तो क्या काम कर सकेगी? और तभी उस के सामने हरीश का एक भाषण घूम गया जिस में उन्होंने एक मिश्नरी लेडी-डाक्टर का ज़िक्र किया था—सैंट स्टीफ़न्ज़ ज़नाना अस्पताल की वह एक डाक्टर थी। एक बार उसे एक गर्भवती ईसाई युवती को देखने एक गाँव में जाना पड़ा। अस्पताल की हैड-डाक्टर ने उस से कहा था कि उस युवती की माँ से अपनी लड़की को अस्पताल भेजने के लिए कहे। उसे समझाया था कि कोशिश करके उसे ले आये, नहीं वह मर जायगी। जब वह उस देहाती के घर पहुँची तो गृहणी बैठी उपले थाप रही थी। प्रतिष्ठित-अतिथि को आया देख, वहीं लोटे के पानी से हाथ धो, दूध का ि ास वह ले आयी और चीनी डाल उस ने अपनी अंगुली से चीनी ोल दी। डाक्टरनी का जी मतला गया। पर देहातिन को बुरा न लगे और वह उस की उपस्थिति से सशंकित न हो, इस विचार से, दस बार साबुन से धोकर खाद्य-पदार्थ को हाथ लगाने वाली वह लेडी डाक्टर आँखें बंद कर दूध पी गयी। डाक्टरनी का कहना था कि उस ने अपने साथ अत्याचार किया, पर वह अपने मिशन में सफल हो गयी। देहातिन को उस पर कुछ ऐसा विश्वास हो गया कि उस ने अपनी लड़की को अस्पताल भेज दिया। "मज़दूरों में काम करने के लिए," हरीश ने कहा था, "आप को मज़दूरों के स्तर पर उतरना पड़ेगा।"

'इन लोगों में काम करने के लिए इन के स्तर पर तो उतरना पड़ेगा ही,' दुरो ने इरीश जी की बात को मन ही मन दोहराते हुए कहा। 'तभी तो इन के जीवन की कठिनाइयों; इन के जीवन के दुख, व्यथा, मलिनता और गंदगी; इन के अरमानों और हसरतों, भावों और अनुभूतियों का पता चलेगा। उसे इस गंध का अभ्यास डालना होगा,' ....लेकिन उस का जी घुटा जा रहा था और कनपटियाँ [illegible] जा रही थीं। मुन्शी अहमद दीन बैठ गये थे और दूसरे नेता भाषण [illegible] रहे थे।

"तुम लोग जो अपने आप को बेमक़दूर,[1] बेबस समझते हो, तुम अपनी इकट्ठी ताकत को नहीं पहचानते। रूस हम से कहीं पिछड़ा हुआ मुल्क था, उस के मज़दूर आप से कहीं कम पढ़े लिखे, गुलाम और बेबस थे, लेकिन मुत्तहिद हो कर, एक होकर, उन्होंने क्रान्ति की और पिछले बीस बरस में अपनी मुत्तहिदा मेहनत से एक पिछड़े हुए मुल्क को दुनिया के ताकतवर मुल्कों के बराबर ला खड़ा किया। मुल्क की क़िस्मत को अपने हाथ में लेने से पहले आप को अपनी क़िस्मत अपने हाथ में लेनी होगी। अगर मैं मिर्जा साहब की तशबीह[2] को आगे बढ़ाऊँ," उन्होंने ज़रा हँस कर कहा, "तो मुल्क की हुकूमत और क़िस्मत की चाबी अपने हाथ में लेने से पहले आप को अपने पेट और ज़बान की चाबी अपने हाथ में लेनी होगी। अपने मालिकों से अपने हुकूक[3] मनवाने होंगे। फिर समय आयेगा कि आप लोग हुकूमत से अपने हक़ मनवा सकेंगे, हुकूमत की बागडोर सम्हाल सकेंगे और अपना हाल[4] ही नहीं, मुस्तक़बिल[5] भी बना सकेंगे।"

'...कहीं मैं पलभर को बाहर बारजे पर जा सकती...' दुरो सोच रही थी। उस का सिर फटा जा रहा था और जी मतला

---

१. बेमक़दूर=अकिंचन=अशक्त। २. तशबीह=उपमा। ३. हुकूक=अधिकार। ४. हाल=वर्तमान। ५. मुस्तक़बिल=भविष्य।

रहा था...तभी उस के मतिष्क में एक कहावत घूम गयी। देहात में मेहतर मैला साफ़ नहीं करते। किसानों के साथ मिल कर जुतायी, बुआयी, कटायी करते हैं, इसीलिए शहरी मेहतर की अपेक्षा अधिक साफ़ होते हैं। कहावत यों प्रचलित है कि देहात की एक लड़की ब्याह के बाद शहर में आयी। अपने घर में दाखिल होते ही उस ने नाक पर दुपट्टा रख लिया, "यहाँ तो बड़ी बू आती है," उस ने भवें चढ़ाते हुए कहा। उस की सास हँसी, लेकिन कुछ बोली नहीं। लड़की को वहाँ रहते कुछ दिन हो गये। तब एक दिन उस ने गर्व से कहा, "तुम लोग जाने कितनी गंदी तरह रहते थे, मैं आयी थी तो कितनी बू आती थी, नाक भी न दी जाती थी, अब देखो कितनी सफ़ाई है।" सास ठहाका मार कर हँस दी। ......घर तो वैसा ही गंदा था, केवल लड़की की नाक जो देहात की स्वच्छ हवा में साँस लेती थी, अब उस शहरी घर के गंदे वातावरण की अभ्यस्त हो गयी थी 'क्या मैं इस वातावरण की आदी न हो सकूँगी,' दुरो ने सोचा, 'मुझे बराबर यहाँ आना पड़ेगा, फिर न मेरा सिर दुखेगा, न जी मतलेगा...गंदी नाली को साफ़ करने के लिए उस में हाथ तो डालना होगा ही, उस की दुर्गन्ध और छींटों-से कैसे बचा जा सकता है ..' और उस ने दायें हाथ के अँगूठे और तर्जनी से अपनी दोनों कनपटियों को कसते हुए दाँत पीस लिये।

नूरा उस समय बड़े ज़ोर से भाषण दे रहा था, "मिर्ज़ा होराँ ठीक आखिया ऐ। साडे ढिड्ड ते जीभ दी चाभी साडे पास नहीं। इन्हाँ माँईया ओस नज़रबन्द कर रखिया ऐ। लेकिन असां ओहनूं छुड़ा लियाणा ऐं। असाँ ओस अपने कब्जे बिच कर लेणा ऐं। ओए गजब खुदा दा, लड़ाई मेरी ताँ मेरी बीवी दी, ते दंड मेनूं देण मालिक! ओह साली उन्हाँ दी की लगदी ऐ? उन्हाँ दी माँ, भैण या धी ऐ? पुच्छे कोई कि सालयो तुहानूं की? मैं दो रणां रक्खाँ याँ चार, मैं दो बोतलाँ दारू पीवाँ याँ चार, में अपनी बीवी नू रक्खाँ याँ ओहदाँ गल्ला वड्डाँ।

किसे माईंया नूं की। तुसी देखो कि मैं ड्यूटी पूरी देंदा ऐं कि नहीं ? जद में ड्यूटी तों गाफ़िल नहीं होंदा, ते तुसी कौन होंदे ओ मेरी तनखाह कट्टन वाले ? अज्ज मैनूं मेरी बीवी दे कहन ते डिमोट कर दित्ता, कल लहना सिंह नूं ओहदे भरा दे कहन ते कड्ढ छड्डोगे। ओए हनेर पा छड्डिया इन्हाँ सालयाँ ने। मैं हुण फैसला कीता ई कि मैं अज्ज तो शराब छड्ड देआंगा, मैं नौकरी छड्ड देआंगा ते मैं अज्ज तों सारा वक्त यूनियन नूं देआंगा ते जी जान नाल आप भरावां दी खिदमत करांगा ते यूनियन नूं अजही बना देआंगा कि मालिक साडे ते जी चाहिया जुल्म न कर सक्कण।'[1]

सभा में किसी ने कहा 'इन्क़लाब' और हाल 'ज़िन्दाबाद' के नारों से गूँज उठा। फिर नूरदीन, हरीश, मिर्ज़ा, मुन्शी, जोश और यूनियन सब की ज़िन्दाबाद के नारे बुलाये गये।

नूरदीन अभी कुछ और कहने के लिए रुका हुआ था, पर हरीश ने उठकर आगत नेताओं को धन्यवाद दिया; मज़दूरों को इतनी तादाद में

---

१. मिर्ज़ा साहब ने ठीक कहा है। हमारे पेट और ज़बान की चाबी हमारे पास नहीं। इन्होंने उसे नज़रबन्द कर रखा है। लेकिन हम उस चाबी को मुक्त करा लायेंगे। हम उसे अपने कब्जे में रखेंगे। अरे गजब खुदा का ! लड़ाई मेरी और मेरी बीवी की और सजा दें मुझे मालिक। वह साली उन की क्या लगती है ? वह उन की माँ, बहन या लड़की है ? उन से कोई पूछे कि सालो तुम्हें क्या ? मैं दो बीवियाँ रखूँ या चार, दो बोतलें शराब पीऊं या चार, मैं अपनी बीवी को घर रखूँ या उस का गला काटूँ। किसी को क्या ? तुम देखो कि मैं ड्यूटी पूरी देता हूँ या नहीं। जब मैं ड्यूटी से गाफ़िल नहीं होता तो तुम कौन होते हो तनखा काटने वाले। आज मुझे मेरी पत्नी के कहने पर डिमोट कर दिया, कल लहना सिंह को उस के भाई के कहने पर निकाल बाहर करोगे। इन सालों ने अँधेर मचा रखा है। मैंने यह फैसला किया है कि मैं आज से शराब छोड़ दूँगा, नौकरी छोड़ दूँगा और मैं सारा वक्त यूनियन को दूँगा। जी जान से आप भाइयों की खिदमत करूँगा और यूनियन को ऐसी ताकत बना दूँगा कि मालिक हम पर मन चाहा जुल्म न कर सकें।

आने के लिए शाबाश दी; नूर दीन की पीठ ठोंकी; यूनियन सचमुच वैसी ताकत बन जाय, जिस का जिक्र नूरदीन ने किया, इस बात की दुआ की; अगली मीटिंग के दिन की घोषणा की और यह कहा कि उस दिन सब अपनी अपनी मांगें लायें, बतायें कि उन्हें क्या क्या शिकायतें हैं, ताकि वे माँगें मालिकों के आगे रखी जायँ और सभा विसर्जित करदी।

दुरो सब ओर से बे-परवा, वाद-विवाद करते लोगों की भीड़ से मार्ग बनाती, लपकती हुई सी, बरामदे में आयी और सिर थामे बैठ गयी। उस का जी मतला रहा था, पर कै न हो रही थी। हर बार वह कै करने के लिए मुँह खोलती और स्वच्छ हवा अन्दर भर लेती और उस की कनपटियों में कोई हथौड़े मारता। जाने वह कब तक बैठी रही। उसे लगा कि जैसे कोई प्यार से उस के सिर पर हाथ फेर रहा है। कनपटियों को थामे थामे उस ने सिर उठा कर देखा— हरीश उस के सिर पर हाथ फेर रहे हैं।

"क्यों क्या बात है। तबीयत कुछ खराब है ?"

हरीश के स्वर में चिंता थी। लजा कर उस ने कहा, "नहीं कुछ नहीं। सिर दुख रहा है। जी कुछ घबरा रहा था। इसलिए बैठ गयी।"

और वह उठ खड़ी हुई।

३३

कमर्शिल बिलडिंग्ज़ से वापस आकर दुरो ने किसी से बात नहीं की। वह न नहायी, न उस ने कपड़े बदले, मुँह-हाथ धोकर अपने बिस्तर में जा लेटी। मौसी नीचे क्या बड़बड़ायीं, उस ने ध्यान नहीं दिया। "मेरा सिर दर्द करता है और लगता है मुझे बुखार है," उस ने मौसी की बड़बड़ाहट के जवाब में ऊपर छत से चिल्ला कर कहा और बिस्तर में जा धँसी।

बिस्तर गर्म था। लेकिन उस गर्मी में भी उसे कुछ अजीब सी राहत मिली। पाँव पूरे पसार कर वह लेट गयी। शुक्ल-पक्ष के चाँद की एक बड़ी सी फाँक ऊपर आकाश में चमक रही थी। दिन भर की प्रबल गर्मी से धूल का गहरा पर्दा-सा आकाश पर छाया हुआ था। पड़ोस के किसी मकान की छत पर कोई बड़े ही सोज़-भरे-स्वर में गा रहा था :

चाँदनी रातों का बेकार दहकता हुआ दर्द
दिल की बेसूद तड़प, जिस्म की मायूस पुकार।[1]

---

१. यह तेरे हुस्न से लिपटी हुई अलाम की गर्द
अपनी दो-रोज़ा-जवानी की शिकस्तों का शुमार
चाँदनी रातों का बेकार दहकता हुआ दर्द
दिल की बेसूद तड़प जिस्म [illegible] यूस पुकार
चन्द रोज़ और मेरी जान [illegible] चन्द ही रोज़

सच्चमुच चाँद आग के एक ऐसे स्रोत सा लग रहा था जिस की दीप्ति उसी से उठने वाले धुएँ ने मंद कर रखी हो। शायद किसी विरही कवि को यह चाँदनी अपने पहलू के बेकार धधकते हुए दर्द का प्रतिबिम्ब लगी होगी। दुरो को वैसा कुछ नहीं लगा। दर्द उस के पहलू में भी था, पर उस में सुलगन न थी, एक ठंडी-सी-पीड़ामयी-मिठास थी और वह ठंडी-सी-पीड़ामयी-मिठास बेकार भी न लग रही थी। उस में तो उसे कुछ अजीब सी राहत, कुछ विचित्र-सी-पुलक-मयी-शान्ति का आभास मिल रहा था। अपने पहलू के धूमिल, मीठे-मीठे, प्यारे-प्यारे दर्द का बिम्ब उसे इस चांदनी में भी दिखायी दे रहा था। उसे लग रहा था जैसे वह एक छोटे, सीमित, गर्मी से धधकते हुए बिस्तर पर नहीं, ठंडी ठंडी घास के किसी सीमाहीन बिछौने पर लोट रही है। और उस का जी चाह रहा था कि वह चांद के उस धूमिल-से प्रकाश को बांहों में भर ले और घास के उस नर्म बिछौने पर लोटती जाय, लोटती जाय ..यहां तक कि थक जाय ...और उसी प्रकार चांदनी के नीचे, घास के उस बिछौने पर सो जाय !

उस के सिर में पीड़ा अब भी थी, लेकिन उस का ज़ोर कम हो गया था। आसक्ति की समाप्ति पर जैसे हृदय के शून्य में केवल कुछ कसमसाहट सी रह जाती है, जिस में आसक्ति की जलन का स्थान कुछ अजीब-सी मधुरता ले लेती है, कुछ वैसे ही मीठे-मीठे भारीपन ने (जो दर्द होते हुए भी दर्द न था) उस के उस सख्त सिर-दर्द का स्थान ले लिया था।

हरीश जी ने जब देखा था कि दुरो की तबीयत ठीक नहीं, उस के सिर में दर्द है और जी घबरा रहा है तो अपने साथियों को विदा कर, आगामी मीटिंग की तिथि का निश्चय करके वे उसे कंधे से थामे नीचे ले आये थे। यद्यपि दुरो ने कहा था कि कमरे की गर्मी और घुटन के

कारण उस का सिर दर्द करने लगा है, वह घर जाकर नहायेगी और छत्त पर जा लेटेगी तो ठीक हो जायेगी तो भी हरीश जी स्वयं नीचे ड्रगिस्ट से जाकर एस्पीरीन ले आये थे और दुरो को चैम्बर-लेन-रोड पर नये नये खुले काफ़ी-हाउस में ले गये थे। कमरे की उस गर्मी और घुटन से बाहर, माल-रोड पर चन्द कदम चलने से ही उस के जी की मतलाहट बंद हो गयी थी। सिर में दर्द था, पर हरीश जी के सान्निध्य का पुलक भी कम न था।

काफ़ी-हाउस में पहुँच कर हरीश ने दो काफ़ी का आर्डर दिया।

"मैं ने तो कभी काफ़ी नहीं पी," दुरो ने कहा।

"चाय पी है कभी ?"

"हाँ चाय तो कई बार पी है।"

"तो एक बार काफ़ी भी पी देखिए।" हँस कर हरीश जी ने कहा। "कड़ुवी तो है, लेकिन ज़हर नहीं। काफ़ी के एक प्याले के साथ एस्पीरीन की दो टिकियाँ ले लीजिए। तबीयत कुछ ठीक हो जायेगी।"

दुरो चुप रही।

"और यदि काफ़ी अच्छी न लगे तो ठंडे पानी से निगल लीजिए," हरीश ने कहा।

बैरा काफ़ी के दो छोटे छोटे, काफ़ी ही के रंग के, भूरे भूरे जग और प्याले ले आया।

काफ़ी प्यालों में ढालते हुए हरीश बोले, "कोई चीज़ बुरी नहीं, चाय हो, काफ़ी हो और मैं तो कहूँगा चाहे शराब हो। बुरा है उस के गुण-दोष न जानना और संतुलन को हाथ से दे देना, चाय और काफ़ी में तो थोड़ा सा नशा भी है, पानी में तो कोई नशा नहीं, पर यदि कोई पानी भी प्रतिदिन बीस-पच्चीस बार पिये तो बीमार हो जाय। इस पर भी चाय या काफ़ी के ऐसे प्रेमियों की कमी नहीं जो दिन में दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह प्याले पी जाते हैं।" और हरीश ने प्याला दुरो के आगे

सरका दिया। "दूध मैं ने आप के प्याले में ज्यादा डाल दिया है कि आप को अधिक कड़ुवा न लगे और आप काफ़ी और उस के साथ साथ मुझ को दिल में न कोसें।"

और हरीश हल्के से हँसे।

दुरो ने ज़रा सी निगाह उठा कर, जो कवि ग़ालिब के शब्दों में, 'बज़ाहर निगाह से कम' थी, हरीश की ओर देखा। निमिष भर के लिए दोनों की आँखें चार हुईं — हरीश की वह हँसी जो मुस्कान का हल्का-सा मुखर रूप थी, दुरो को शुभ्र-ज्योत्सना सी अपने अस्तित्व पर छाती हुई दिखायी दी और उन की दृष्टि में उसे कुछ ऐसी स्निग्धता लगी कि वह शराबोर हो गयी। चुप चाप उस ने काफ़ी का प्याला उठा कर मुँह से लगा लिया।

दुरो की उस नीम-निगाह का हरीश पर भी कम प्रभाव न हुआ। उन के हृदय की गति कुछ तीव्र हो गयी, पर अपनी अचकचाहट को अपने ही सीने में दबा कर उन्होंने बात का रुख पलट दिया। "आप की बात क्या है," उन्हों ने कहा, "मैं खुद थक गया हूँ।"

"आप ज़रा भी तो आराम नहीं करते।" दुरो गम्भीरता से बोली। "दिन रात भाग-दौड़, वाद-विवाद और भाषणों में व्यस्त रहते हैं। थकेंगे नहीं!"

"आप ठीक कहती हैं," हरीश ने कहा, "पर जिसे आराम कहते हैं, उस से मुझे आराम नहीं मिलता। मैं यदि निश्चल बैठ जाऊँ या लेट जाऊँ तो मेरा दिमाग़ बिदके हुए पागल घोड़े की तरह दशों-दिशाओं में भाग निकलता है। काम में लगा रहता हूँ तो दिमाग़ भी शान्त रहता है और जब किसी काम में सफलता मिलती है तो उस शान्ति के साथ सुख का भी अभास मिलता है। आज की मीटिंग जो सफल हुई है, आप नहीं जानतीं, इस से मुझे कितना सुख मिला है।"

"सुख का यह आभास बार बार मिले," दुरो ने कहा, "इस के

लिए शारीरिक स्वास्थ्य की अपेक्षा है। सफलता के लिए स्वास्थ्य ज़रूरी है। पर स्वास्थ्य के लिए आराम की आवश्यकता है।"

"मैं क्या बताऊँ," हरीश जैसे अपने ही विचारों की रौ में बोले, "मैं जब कभी अकेला होता हूँ और सोचता हूँ कि हम कितने पिछड़े हुए हैं, तीन सौ बरस की गुलामी ने हमें क्या से क्या बना दिया है, तो मुझे बड़ा क्लेश होता है। सत्य, शिव और सुन्दर का हमारा आदर्श कहाँ गया ? झूठ, छल, प्रपंच, नीचता, बद-दयानती, रयाकारी, चाटुकरी और रिश्वत—मानव की कोई भी ऐसी कुप्रवृत्ति और दुर्गुण नहीं जो हमारे जीवन का आवश्यक अंग न बन गया हो। कभी कभी मन में साध उठती है," हरीश ने लम्बी साँस भरी। "कि मुझे अपार बल, जनता को समझने और समझ कर ठीक पथ पर चलाने की प्रखर बुद्धि मिल जाय तो मैं ऐसी क्रांति ला दूँ कि गुलामी की बेड़ियाँ पलक झपकते कट कर गिर जायँ और आज जहाँ चन्द लोगों के स्वार्थ का राज्य है वहां जनता का, जनता के हित का राज्य हो और जहां गुलामी और स्वार्थ ने हमारे दुर्गणों को उभार रखा है, वहां स्वतन्त्रता हमारे सद्-गुणों को उभारे ! सब को जीवन में उन्नति करने के सामान-साधन मिलें और हम भारतवासी जो आज सिकुड़ कर बौने-से रह गये हैं, अपने भव्य-आकार को पायँ ! जब मैं यह सब सोचता हूँ तो पल भर भी बैठने को जी नहीं होता। मन चाहता है अनवरत काम करता रहूँ। जनता को जागने, अपनी शक्ति का आभास पाने और देश को स्वतन्त्र करके, स्वयं उन्नत होने की प्रेरणा दूँ ! इस काम में उस की भरसक मदद करूँ !

दुरो चुप चाप हरीश की बातें सुनती रही थी। वे बहुत धीमे स्वर में बात कर रहे थे। लगता था जैसे वे दुरो से नहीं अपने आप से बात कर रहे थे। जैसे उन का चिंतन मुखर हो उठा था, लेकिन दुरो को उन के स्वर में—उस धीमे स्वर में—इमली की वही समान-रूप से जलने वाली आग की गर्मी मिली, जिस ने उसे पहले दिन प्रभावित किया था।

वह अपने सिर का दर्द भूल गयी। हरीश जब मौन हुए और उन्होंने ठंडी हो जाने वाली काफ़ी के दो बड़े घूँट भरे तो सहसा दुरो ने कहा, "मैं तो दवाई खाना भूल गयी।"

"बातूनी आदमी के साथ बैठने में यही तो हानि है," हरीश ज़रा हँसे, "लो दूसरा प्याला लीजिए!" फिर स्वयं ही दूसरे क्षण बोले, "नहीं आप दूसरा प्याला न लें। एस्पीरीन तो ठंडे पानी से भी ली जा सकती है, पर अभी आपने काफ़ी ली है इसलिए ठंडे पानी से लेना ठीक न होगा। आप गर्म पानी ही से ऐस्पीरीन लीजिए और पन्द्रह बीस मिनट बाद ठंडे पानी का एक गिलास पी लीजिएगा। काफ़ी का प्याला तो योंही आप की थकन के ख्याल से मैं ने आप से पीने को कहा था। नहीं एस्पीरीन के लिए तो इसकी कोई ज़रूरत नहीं।"

दुरो ने गर्म पानी के एक घूँट से एस्पीरीन की दो टिकियाँ निगल ली, हरीश ने दो घूँट में शेष काफी खत्म की और दोनों गोपाल नगर की ओर चल दिये।

रास्ते में हरीश जी ने अपनी बात को जारी रक्खा।

"जनता में बलिदान के भाव की कमी नहीं दुरो जी।" उन्हों ने धीरे से कहा। "जब जब महात्मा गाँधी ने युद्ध का तूर फूँका है, लोगों ने अपना तन-मन-धन बलि दे दिया है! फिर यह दशा क्यों है? क्यों हमारे यहाँ क्रांति नहीं होती? क्यों अब भी विदेशी सरकार हमारी छाती पर मूँग दल रही है? अपने अत्याचार के दाँत हमारे जिस्मों पर तेज़ कर रही है? जब मैं सोचता हूँ तो पाता हूँ कि कांग्रेस क्रान्ति नहीं चाहती, क्रान्ति में हिंसा निहित है। हिंसा से कांग्रेस डरती है। क्योंकि क्रान्ति होगी तो अँग्रेज़ ही न जायेंगे, अँग्रेजों को प्रश्रय देने वाले और साथ ही धन से कांग्रेस की सहायता करने वाले सेठ साहूकार भी जायेंगे और जनता का राज होगा। यह जनता का राज वास्तव में कोई नहीं चाहता। जनता को स्वयं उस को समझ नहीं और जो लोग किसान-मज़दूर के

राज्य का ढिंढोरा पीटते हैं, वे केवल उस ढिंढोरे का लाभ उठाना चाहते हैं।"

कुछ क्षण वे चुप चलते रहे, फिर जैसे वे अपने विचारों को साफ़ कर रहे हों, उन्हों ने कहा, "पिछले ज़माने में राजा लोग अपनी सेनाओं के आगे गायों के झुँड कर देते थे कि वे उन की आड़ लेकर रण जीत लें या हार से बच जायँ और यदि कोई हिंसक गायों को मार दे तो उसे पापी ठहरायें। काँग्रेस के आन्दोलन में जनता का यही हाल है। जनता को वे गाय बना देखना चाहते हैं। जनता के सोये सिंह से लोग घबराते हैं। १६२२ में जनता का शेर जब जागा था तो महात्मा गांधी घबरा गये थे और उन्हों ने युद्ध बंद कर दिया था। बनिया जैसे मोल तोल करता है, वैसे ही यह हमारा स्वातन्त्र्य-संग्राम लड़ा जा रहा है। दूसरे प्रान्तों की बात वहाँ के लोग जानें, अपने प्रान्त के नेताओं को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वे एक ओर अँग्रेज़ से हर क़दम पर लड़ने की बात करते हैं दूसरी ओर अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए सर सिकन्दर का एहसान लेते हैं। ये जनता का लाभ क्या करेंगे? रही जनता तो उस के मन में स्वतन्त्रता की ठीक चेतना भी नहीं जगी। यही कारण है कि जब आन्दोलन मन्द पड़ता है तो भयानक साम्प्रदायिक-दंगे आरम्भ हो जाते हैं। मज़दूर हिन्दू हो या मुसलमान, उस के हित एक से हैं, फिर ये दंगे क्यों? कारण वही है। यह युद्ध जनता का युद्ध नहीं। बनियों का युद्ध है—एक ओर अँग्रेज़ और दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमान बनियों का युद्ध है! हिन्दू मुसलमान जनता इन बनियों के हितों की वेदी पर बकरा बन रही है और जाने कब तक बनती रहेगी।

क्षण भर के लिए हरीश चुप हो गये। भंगियों की तोप के पास घास की थिगली लोगों से भरी हुई थी। घर-द्वार की उमस से तंग आयी स्त्रियाँ छोटी छोटी टोलियों में बैठी, घर-द्वार की समस्याओं

को सुलझाने में निमग्न थीं और बच्चे मृग-छौनों से कुदकड़े मारते खेल रहे थे और इन सब के बीच दो एक जगह तरुणियाँ जाने कैसी मिस्कोट में मग्न थीं—अपनी सहेलियों की प्रेम-कहानियाँ एक दूसरी से कह कर, अन्तर में अपने प्रेम से उन की तुलना कर, सुख पाती हुईं; स्कूल की किसी बहन जी के किस्से में रत या फिर 'मालती' की किसी सस्ती प्रेम-भरी-कहानी की चर्चा में तल्लीन...किन्तु सिमकोट की इस प्रकट तल्लीनता के बावजूद उड़ती हुई निगाहों के तीर इधर उधर निरन्तर छोड़ने वालीं और उन्हीं तीरों से बिंधे, पर प्रकट भंगियों की उस पीतल की तोप का बड़ी निष्ठा से निरीक्षण करने वाले कुछ इक्का-दुक्का युवक !....

और आगे लाला लाजपत राय की मूर्ति और उस की छाया में सीमेंट के बने चबूतरे या उस की बेंचों और इर्द-गिर्द बिछे घास के टुकड़े पर बैठे, अध-बैठे, लेटे, अध-लेटे, चाट खाते और दौने वहीं घास पर फेंकते मध्यवित्त के स्त्री-पुरुष और बच्चे........

"मैं जब लाला लाजपत राय की इस मूर्ति के पास से गुज़रता हूँ," हरीश बोले, "तो सदा मेरे मन में यह विचार उठता है कि पंजाब के इस केसरी ने अपने प्राण स्वतन्त्रता की वेदी पर होम कर दिये, पर क्या उन के दिमाग में स्वतन्त्रता का ठीक नक्शा था ? क्या उन के मन की स्वतन्त्रता जनता की स्वतन्त्रता थी ? और मुझे लगता है कि शायद नहीं। इस समय हमारा आन्दोलन इस बात को लेकर है कि विदेशी शासन से देश को मुक्त किया जाय, इस के बाद क्या होगा, इस की कल्पना सब की अलग अलग है—राजे-महाराजे सोचते हैं कि वे अपनी अपनी रियासतों के स्वतन्त्र-अधिपति होंगे; सेठ साहुकार सोचते हैं कि व्यापार उन के हाथ में आयेगा और अंग्रेज व्यापारियों के बदले शोषण की आज़ादी उन को मिलेगी; नौकरी पेशा वर्ग सोचता है अंग्रेज़ के जाने पर उस की उन्नति के मार्ग प्रशस्त होंगे,

जिन पदों पर हिन्दुस्तानी को पर मारने की भी आज़ादी नहीं, वे सब हिन्दुस्तानियों के अधिकार में आ जायेंगे, रहे नेता तो इस समय चाहे वे मनिस्ट्री के पाँच पाँच सौ रुपये महीना पा रहे हैं, पर सचमुच स्वतन्त्रता मिलने पर भी वे अपनी यह तपस्या कायम रख सकेंगे, इस में मुझे सन्देह है। महात्मा गाँधी और उन के चन्द अनुयाइयों को छोड़ शेष सब के सब अवसर-वादी हैं। उन की दृष्टि आज़ादी के बाद बनने वाली कांग्रेस सरकारों पर है। यही कारण है कि हिन्दू मुसलमान में झगड़ा है। यदि जनता के हित उन के सामने हों तो झगड़े की गुंजाइश न हो। जनता तो इस चित्र में कहीं आती ही नहीं। जैसे अंग्रेज़ अपने साम्राज्य की लड़ाइयों में हिन्दुस्तानी सिपाहियों को झोंकते हैं, इसी प्रकार ये सब नेता भारतीय जनता को अपने हितों की सिद्धि के लिए इन आन्दोलनों में झोंक रहे हैं।"

हरीश जी का स्वर कदरे ऊँचा हो गया था। वे एक दम चुप हो गये। फिर सहसा उन्हों ने हँस कर कहा, "मैं तो लैक्चर देने लगा। क्या करूँ, मेरा दिमाग़ हर वक्त यही कुछ सोचता रहता है।"

दोनों कुछ क्षण चुपचाप चलते रहे। माल को पार कर वे लोयर माल पर हो लिये। शहर और बाज़ार की सन्निकटता के कारण जो अदृश्य सा अलाव जलता महसूस होता था, उस की गर्मी में कुछ कमी का आभास मिला। सहसा हरीश ने पूछा, "आप के सिर-दर्द का क्या हाल है?"

"अब तो बहुत अच्छा है।"

"कमरे में बहुत गर्मी थी, फिर इतने मज़दूर और बीड़ियों का धुआँ......आप को अभ्यास भी तो नहीं।"

"धीरे धीरे हो जायेगा।"

"मज़दूरों की बेहतरी चाहने के लिए हमें उन के स्तर पर उतरना पड़ेगा।"

"कोशिश करूँगी। धीरे धीरे आदत पड़ जायगी।"

"आप को आज कष्ट तो बड़ा हुआ। फिर वह नूर आप की उपस्थिति का ख्याल किये बिना गालियाँ बकता रहा। लेकिन इन अनपढ़ लोगों में काम कर के, इन जैसा हो कर, इन का विश्वास जीत कर ही इन्हें ऊपर उठाया जा सकता है। अपने साँझ के स्कूल में आप को इन्हें धीरे धीरे शिक्षित और संस्कृत बनाना होगा।"

"आप जैसा आदेश देंगे, करने का प्रयास करूँगी।"

"आदेश की क्या बात है। हम सब साथी हैं।"

और उन्हों ने बड़े स्नेह से दुरो के कंधे को थपथपा दिया।

"आप शुरू से ही कांग्रेस में काम करते हैं?" सहसा दुरो ने पूछा।

"शुरू से ही समझिए। १६२१ से मैं इस में हूँ, जब मैं छठी सातवीं में पढ़ता था तब से!" और धीरे-धीरे उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन की, अपने पिता की आकाँक्षाओं और अपने मानसिक द्वन्द्वों की कहानी कह दी।"

"आप के पिता को तो बड़ी निराशा हुई होगी?" दुरो ने पूछा।

"वे तो मेरी सूरत नहीं देखना चाहते।"

"आप कम्पीटीशन में क्यों नहीं बैठे?"

सरकारी अफ़सर बन कर अपने ही भाइयों पर अत्याचार तोड़ना मुझे स्वीकार नहीं हुआ और फिर धन-वैभव की चाह मुझे नहीं रही। जाने माँ की शिक्षा का प्रभाव है या क्या, बिना किसी ऊँचे आदर्श के जीवन मुझे निस्सार मालूम होता है। खाने पीने पहनने और मोटर पर चढ़ने की आकाँक्षा मुझे नहीं। अपने आदर्श की पूर्ति के साथ यदि ये सुख मुझे मिलते हैं, उस आदर्श की पूर्ति के साधन बनते हैं तो मुझे उन्हें लेने से इनकार नहीं, पर यदि वही साध्य बन कर रह जाते हैं तो मेरी प्रवृत्ति उन्हें पाने को नहीं होती।"

"आप तो वैरागी हैं।"

"नहीं मैं वैरागी नहीं," हरीश ने कहा, "मैं इन सुखों को हेय नहीं समझता, बल्कि मैं तो ऐसे दिन की कल्पना करता हूँ जब ये सुख सर्व-साधारण के लिए सुलभ होंगे, पर केवल इन्हीं सुखों को पाने के लिए जीना मुझे स्वीकार नहीं। बिना इन सुखों को पाये अपने आदर्श के लिए जूझते रहने की कल्पना मेरे लिए अपेक्षाकृत सुखकर है, मुझे जीवन को जीने की स्फूर्ति देती है। बिना आदर्श के, केवल अच्छा खाने, पीने, पहनने के लिए जीने की कल्पना ही मेरे लिए ऊबा देने वाली है। केवल खाना, पीना और सोना पशु का काम है। इंसान भी पशु है, इसलिए वह भी खाता, पीता और सोता है, सुख शान्ति और स्थैर्य की वाँछा करता है, लेकिन इस के साथ इंसान काम करना, सृजन करना, बढ़ना भी चाहता है, अपनी अकेली ज़रूरतों से ज़्यादा पैदा करना और जीवन को बेहतर बनाना चाहता है। यहीं वह पशु से भिन्न है। जिन लोगों का उद्देश्य केवल अपनी आवश्यकताओं तक सीमित है, जीवन को जो बेहतर नहीं बनाना चाहते, मेरे निकट उन में और पशु में कोई अन्तर नहीं......

"कुछ खाओगी या भूखी ही पड़ी रहोगी।"

दुरो चौंक कर उठ बैठी। वहीं चारपाई पर लेटे-लेटे वह कल्पना में खो गयी थी। हरीश का एक एक वाक्य उस के कानों में गूँज रहा था।

"तबियत तो मेरी कुछ खाने को नहीं चाहती," उस ने अन्यमनस्क-भाव से कहा। उस समय सत्या जी का आ जाना उसे तनिक न रुचा था।

"तो कोई हल्की चीज़ ले लो। दूध डबल रोटी, या दूध-सोडा,

पहले ही गर्मी क्या कम है। भूखी रहने से गर्मी पड़ जायगी।"

"जो आप उचित समझें, ले लूँगा।" उस ने टालने के भाव से कहा। सत्या जी चली गयीं और वह फिर अपनी सुखद-कल्पना में खो गयी।

वह इतने दिनों से हरीश को जानती थी, पर उन्हें कभी इस तरह अपने बारे में बात करते न सुना था। उन्हें इतने निकट से जानने का अवसर न मिला था। जैसे अपने किसी अन्तरंग-सखा अथवा आत्मीय को पाकर आदमी अपने हृदय की तह पर तह खोलता चला जाता है, उसी प्रकार हरीश ने माल-रोड से गोपाल-नगर तक आते आते, अपना अतीत, अपना वर्तमान और अपना भविष्य दुरो के सामने रख दिया था। हरीश की महत्वाकाँक्षाएँ, उन के विचार, उन के अन्तर्द्वन्द्व जैसे दुरो के हो गये थे। जब वह तेग़ बहादुर रोड पर अपने घर के सामने पहुँची थी और उस ने सड़क पर से अपना घर हरीश जी को दिखाया था और उन्हें वहाँ तक लाने में उस ने उन्हें जो कष्ट दिया था, उस के लिए क्षमा चाही थी तो वे हँस दिये थे, "मैं ने खासा बोर (Bore) किया आप को।" उन्हों ने कहा था। "मुझे आप को धन्यवाद देना चाहिए—शांति के साथ मेरी यह सब बकवाद सुनने के लिए!" और फिर उस के कंधे को थपथपाते और मुड़ते हुए उन्हों ने कहा था, "अच्छा तो वन्दे। कोशिश कीजिए कि आप वंसत और जगमोहन को भी अपने साँझ के स्कूल में इन्ट्रेस्टिड कर सकें। एक न एक आदमी वहाँ रहना चाहिए। यों भी बच्चों को पढ़ाना आसान है, लेकिन प्रौढ़ों को पढ़ाना आसान नहीं।"

और वे पलट कर तेज़ तेज़ चले गये थे और थकन और सिर-दर्द के बावजूद वह बड़ी हल्की, पुलकाकुल और प्रसन्न घर में दाखिल हुई थी।

३४

साँझ की उस मीटिंग का नशा दुरो को ही न था, हरीश को भी था और हरीश के साथ दूसरों को भी था।

दुरो को गोपाल नगर छोड़ कर एक स्वप्न की सी अवस्था में हरीश श्याम गली आये थे। दुरो की आँखों में उन के लिए स्नेह और श्रद्धा का जो भाव था, वह उन से छिपा न रहा था और चाहे उन्होंने उसके संबंध में न सोचने का सचेत-प्रयास किया था तो भी जैसे शाम के धुंधलकों में मौलश्री के अदृश्य फूलों की सुगंधि अनजाने ही मन-प्राण को पुलकित कर देती है, दुरो की उस नीम-निगाह ने हरीश के रोम रोम को पुलकित कर दिया था।

गर्मी बेहद थी। नींद उन्हें आ न रही थी। बिस्तर पर सीधे पड़े वे सामने के मकान के पीछे छिपे चाँद को कल्पना में देखने का प्रयास कर रहे थे, जिस की किरणें छिपी होने पर भी आसमान के धूल और धुएँ को चीर, उन की छत पर अपनी आभा बखेर रही थीं। बार बार उन के दिमाग में साँझ की मीटिंग की बात, नेताओं के भाषण, मजदूरों का जोश और फिर दुरो और उस के साथ बीते चन्द सुखद-क्षण घूम जाते और जब सोच सोच वे थक जाते तो अपनी कल्पना को भविष्य के विशाल-आकाश में मुक्त उड़ने देते।—देखते कि देश स्वतन्त्र हो गया है। किसानों मजदूरों का राज है। बेकारी और भूख का नाम

हिंदुस्तान से उठ गया है। जाति जाति का भेद मिट गया है। हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई कोई नहीं। सब हिन्दुस्तानी हैं। पिछड़ी हुई जातियाँ आगे बढ़ आयी हैं और समानाधिकार के साथ देश को समृद्ध बनाने में संलग्न हैं। स्त्रियाँ पूर्णरूप से स्वतन्त्र हैं और जीवन के हर विभाग में पुरुषों के कंधे से कंधा भिड़ाकर काम कर रही हैं। जनता के जोश का वार-पार नहीं। अब मज़दूरी के लिए काम नहीं हो रहा, बल्कि काम के लिए काम हो रहा है। नदियों पर बांध बांधे जा रहे हैं; मरुभूमियां सिंचित होकर मधुवनों में परिणत हो रही हैं; पहाड़ों के सीने भेद कर लोहा, कोयला, तेल और दूसरी अगनित धातें निकाली जा रही हैं, हिमालय के दुर्गम पहाड़ों में चट्टानें काटकाटकर रास्ते बन रहे हैं और चिर-विस्मृति के गर्त्त में दबी वहाँ की दौलत मैदानों में लायी जा रही है। जहां कठिनाई से लोग जा पाते थे और दूर दूर एक आध छप्पर दिखायी देता था, वहां पहाड़ों की ढलानों पर सुख-सुविधा के आधुनिक प्रसाधनों से लेस, कस्बे बस रहे हैं। कल-कारखाने खुल रहे हैं। जहां बेकारी मुँह बाये प्रतिक्षण निगल जाने को तत्पर दिखायी देती थी और बच्चों का जन्म एक मुसीबत होकर आता था, वहां सामने इतना काम पड़ा दिखायी देता है कि आबादी दुगनी भी हो जाय तो कम है और लोग पहाड़ों, रेगिस्तानों और सागरों के बाद, नक्षत्रों को बसाने के स्वप्न ले रहे हैं।........

हरीश का ध्यान पलटा। यूरोप के क्षितिज पर युद्ध के बादल घिर रहे हैं। यह मानव का मानव से युद्ध क्या कभी खत्म न होगा? धरती पर अभी बड़ी जगह है। अफरीका के जंगल और ध्रुवों के बियाबान आबादी को तरसते हैं। वे सब भी भर जायें तो सागर के सीने पर तैरते हुए नगर बसाये जा सकते हैं। क्यों नहीं सारी दुनिया के लोग मिल कर इस धरती पर ही स्वर्ग बसाने का प्रयास करते? क्यों इसे नरक बनाये हुए हैं?......

...पर यह तो जभी हो सकता है जब सारी धरती पर एक ही सरकार हो; सारी दुनिया के सारे प्रदेश एक संघ के सदस्य हों और एक मानव दूसरे मानव का, एक जाति दूसरी जाति का, एक समाज दूसरे समाज का और एक देश दूसरे देश का शोषण करने के बदले उस की सहायता करे। मानव मानव से न जूझे, मानव जूझे प्रकृति से...

...लेकिन यह शोषण और शोषण करने वाले पहले मिटें तो!— चन्द लोग, चन्द कुटुम्ब, चन्द पूँजीपति सारे के सारे देश को—अपने देश ही को नहीं, दूसरे देशों को भी शोषण की चक्की में पीसे जा रहे हैं।

...और हरीश की आँखों में ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के अत्याचारों से लेकर जलियाँवाला बाग तक की घटनाएँ घूम गयीं। पसीने से उन का कुर्ता भीग गया था। उसे उतार कर उन्होंने चारपाई के पाये से लटका दिया और करवट बदल कर लेट गये।

दृश्य फिर पलटा। उन्हों ने देखा कि भारत स्वतन्त्र हो गया है। दुरो उन की जीवन-संगिनी बन गयी है। उन का छोटा सा मकान है; बाग़ीचा है। बच्चे हैं। दुरो स्कूल में काम करती है। जहाँ उन के ही नहीं, दूसरों के भी बच्चे पढ़ते हैं। वे स्वयं देश की धारा-सभा के सदस्य हैं। कई कमेटियों पर उन का नाम है। आज़ाद-देश में ठीक ठीक उन का क्या काम है, यह उन के मस्तिष्क में साफ़ नहीं, लेकिन इतना उन्हें मालूम है कि वे बड़े व्यस्त रहते हैं। दिन रात काम करते हैं, पर थकते नहीं। दुरो उन की व्यस्तता से चिढ़ती नहीं। सच्ची-संगिनी की तरह उन की सहायक है। देश की तक़दीर को पलटना जो है......

और भविष्य के स्वप्न देखते देखते वे फिर वर्त्तमान पर आ जाते ......इस बार वे देखते कि मज़दूरों का बड़ा ज़बरदस्त संगठन हो गया है। यूरोप की लड़ाई से लाभ उठाकर अँग्रेज़-सरकार के विरुद्ध उन्हों ने क्राँति कर दी है। वे क्राँति की अगुवाई करते हुए पकड़े जाते हैं। उन्हें आजन्म कारावास का दंड मिलता है। दुरो भी उन का पीछा

करती है। वह गिरफ़्तार हो जाती है...वे करवट बदल लेते है ...!

...दृश्य फिर बदलता है। इस बार वे देखते हैं कि क्राँति की अगुवाई करते हुए वे गोली का शिकार हो गये हैं और दुरो...लेकिन तभी वे करवट बदल लेते हैं...

उस समय जब हरीश अपनी चारपाई पर करवटें बदल रहे थे 'येलो-बस-सरविस' का चौकीदार कलुआ अपनी चारपाई की पट्टी पर बैठा था। उस की नींद एकदम भाग गयी थी और वह ऐसे सजग बैठा था जैसे सोने का नहीं जागने का समय हो। बाइस-तेइस बरस की उमर, गठा हुआ कसरती शरीर, चौड़ी-चकली छत्तीस-सेंतीस इंच की छाती सुडौल बाँहें, गोल चेहरा, छोटी ठोडी, अकड़ी-सीधी-गर्दन, और काला रंग— शाम की मीटिंग का सब से अधिक प्रभाव कदाचित उसी पर पड़ा था।

कलुआ इलाहाबाद के तीस चालीस मील परे के गाँव सिराथू का रहने वाला था—सिराथू का—जहाँ के किसान बिना लाठी लिये घर से बाहर नहीं निकलते। और एक लाठी कलुआ के पास थी भी। लोहे-जैसे, अन्दर से भरे, सख्त बाँस की! उस लाठी में सुम भी चढ़ा था और कलुआ कभी कभी उसे कड़ुवा तेल भी दे देता था। सुबह जब वह दफ़्तर के बाहर स्टूल पर बैठा खाकी वर्दी पहने ड्यूटी देता, तो यह लाठी उस के पास होती। मैनेजर साहब के आते ही वह उठ कर एटेंशन खड़ा हो जाता और वह चाहे कभी सेना में भरती न हुआ था तो भी एड़ी मिला कर फौजी सलाम देता। उन के गाँव के कुछ आदमी लाहौर में काम करते थे, उन्हीं के पास वह आया था और उन्हीं की मदद से 'येलो बस सर्विस' में नौकर हुआ था।

कलुआ पन्द्रह रुपये कम्पनी से पाता था और क्योंकि रात को वह

मैनेजर साहब के बँगले पर सोता था और सुबह शाम उन की तरकारी-उकारी लाने का काम भी कर देता था, इसलिए राशन उस को वहाँ से मिल जाता था। कोठी के आऊट-हाउस में उसे कोठरी मिली हुई थी। वहाँ वह खाना पका लिया करता था। सुबह छै बजे से लेकर फिर सुबह के छै बजे तक कोई भी समय उस का अपना न था। वह चौबीस घंटे का नौकर था। दो एक बार वह नूरदीन के साथ हरीश के पास गया था और जब हरीश ने यूनियन बनाने को कहा और बताया कि उन की क्या माँगें होनी चाहिएँ और यूनियन के द्वारा वे क्या माँगें मालिकों से स्वीकार करा सकते हैं तो वह बड़ा प्रभावित हुआ था। शाम के भाषणों में जब उस ने दूसरे ऐसे देशों का हाल सुना जहाँ मज़दूरों का राज है, जहाँ अमीरों के लिए ही नहीं, मज़दूरों के लिए भी सुख-सुविधा के साधन उपस्थित हैं; जहाँ कुछ मालिक और शेष नौकर नहीं, बल्कि सभी मालिक हैं और सभी काम करते हैं; जहाँ गरीबों के लड़के पढ़ने के अवसर पाकर बड़े बड़े वकील, इंजनियर, डायरेक्टर और न जाने क्या क्या बन जाते हैं; जहाँ का राजा एक मोची का लड़का है; जहाँ के 'जरनैल' 'करनैल, बढ़इयों, लोहारों, के लड़के हैं तो वह चकित रह गया था। हरीश जी स्कूल खोलने जा रहे हैं। उस ने सोचा, वह उस में पढ़ेगा और न जाने एक दिन जब देश आज़ाद हो, मज़दूर-किसान का राज हो, वह बढ़कर ऐसी ही किसी कम्पनी का मैनेजर हो जाय, मैनेजर......जाने वह डायरेक्टर हो जाय, बड़ा सरकारी अफ़सर हो जाय, कलक्टर-कमिश्नर हो जाय, जरनैल करनैल हो जाय......और वह उचक कर उठ बैठा और चारपाई की पट्टी पर बैठा सामने शून्य में देखने लगा—शून्य में जहाँ उस का भोला भाला, अपक्व दिमाग़ शाम के भाषणों के नशे में, जाने कैसे चित्र बना रहा था।

...उस के सामने अपने गाँव का नक्शा घूम गया, जहाँ पूस-माघ की सर्दी और जेठ-असाढ़ का घाम अधनंगे जिस्मों पर झेल कर, दिन-

रात खेतों में काम करने पर भी कुटुम्ब का गुज़ारा न होता था और लगान आदि के लिए महीने में कुछ समय नगर में आकर चौकीदारी से लेकर झल्लीदारी तक करनी पड़ती थी।

......और साहूकार और पटवारी और दारोग़ा और सिपाही बीस बहानों से उन की लोहू-पसीने की कमाई खा जाते थे। उन का जीवन भी कोई जीवन था—पैवंद लगे टाट सरीखा और फिर उस के सामने उस नयी ज़िन्दगी की तस्वीरें घूमने लगीं, जिस का ज़िक्र उस ने आज के भाषणों में सुना था।

......उस का बाप उसे पढ़ने को कहता था, पर उसे तो मस्ती सूझती थी। अगर वह पढ़ लेता तो कैसा अच्छा होता! मज़दूर-किसानों का राज आते ही वह अपने गाँव का अगुवा जा बनता...उस के सामने अपने गाँव के संगियों की चकित निगाहें घूम गयीं, जब वे देखते हैं कि वह कलुवा—वह उजड, गँवार, अनपढ़ कलुवा—उन सब का सरदार बन कर आ गया है—वह क्या बनेगा, इस का चित्र उस के दिमाग़ में साफ़ न था। कलक्टर से लेकर (जो यदि उन के गाँव के दस मील परे से निकल जाय तो उन के गाँव तक उस की धमक आ जाती थी।) करनैल जरनैल के रूप में उस ने अपने आप को देखा..."मैं पढ़ूँगा, मन लगा कर पढ़ूँगा!" उस ने कसी हुई मुट्ठी अपने सीने पर मारी और फिर लेट गया। लेकिन फिर उस के सामने वही चित्र घूमने लगे।

और वह पत्थर जिस के कारण कलुवा के उस खड़े रुके गंदे पोखर-के-से-जीवन में तूफ़ान आ गया था—वह नूरदीन—शाम की उस मीटिंग का प्रभाव उस पर भी कम न था। दुरो, हरीश, कलुवा और

मन भर की गाली हवा में फेंक दी कि ले साली तेरे उस माँईया बाप के होश मैं ठिकाने करने लगा हूँ।

यह वक्त चूंकि उस के शराब पीकर आने का न था, इसलिए बीवी ने आँख उठा कर उस की ओर देखा।

"मक्कू ढप्प देनाएं तेरे ओस माँईया पेऊ दा।"[१] नूर ने उस का मुँह चिढ़ाते और हवा में मुक्का दिखाते हुए कहा।

बीवी ने प्रतिवाद किया कि उस के मरहूम[२] बाप को वह गाली न दिया करे, उस ने बीस बार उसे समझाया है।

इस पर नूर ने उसे बताया कि उस के माँईया बाप से उसे अब क्या लेना है, जिस ने उस फूहड़ के रूप में चक्की का पाट उस के गले में बाँध दिया। उसे वह जी भर उस के जीवन में रो चुका, अब वह जहन्नुम में अपने कर्मों का फल पा रहा होगा। वह तो उस के नये बाप—नये यार—उस माँईया, साले मैनेजर चोपड़ा की बात करता है।

उस की बीवी ने उस के जवाब में जो कुछ कहा, उस का उत्तर एक पुरज़ोर थप्पड़, एक घूँसे और एक लात की सूरत में नूर ने उसे दिया। एक पुरज़ोर थप्पड़, घूँसा और लात बड़ी बात है। कोई पतली-दुबली बीवी उस से धरती पर गिर कर अपने पति के बल-पराक्रम की क़ायल हो सकती है, पर नूर की बीवी के संबंध में कोई ऐसी बात नहीं हुई। वह अपनी जगह खड़ी रही और यद्यपि जहन्नुम में जाने के भय से उस ने अपने शौहर को हाथ और लात से तुर्की-ब-तुर्की जवाब नहीं दिया, पर जहाँ तक जिह्वा का संबंध है, उस ने कुछ उठा नहीं रखा। इस के बाद कोई आध घंटे तक नूर के घर से (जिस के खुले दरवाज़े पर मोटे टाट का पर्दा था और टाट, आप जानिए, कार्ड-बोर्ड नहीं कि

---

१ होश ठिकाने कर दूँगा तेरे उस बाप के! (मतलब बस-कम्पनी के मालिक से था) २ मरहूम—स्वर्गीय।

ध्वनि-प्रूफ (Voice Proof) हो) वह शोर मचा कि खुदा की पनाह ! उस कोलाहल में नूर की गालियों, मारपीट और उस की बीवी के तानों-तिशनों और हाय-तोबा के साथ चूँकि उस की युवा सुन्दरी लड़की का करुण-मधुर-क्रन्दन भी शामिल था इसलिए 'लायन प्रेस' के पीछे उस तबेले के लोग उस शोर से आजिज़ आ जाने पर भी, कान उठाये उसे सुनते रहे और दो एक युवकों ने पति-पत्नी की इस व्यस्तता का लाभ उठा कर, उस कल-कंठी की, जिस का रुदन भी मुहल्ले वालों को प्यारा लगता था, झलक देखने का भी प्रयास किया।

आध घंटे के कोलाहल के बाद जब नूर घर से बाहर निकला तो उस की आँखें लाल थीं और उस के पाँव ऐसे लड़खड़ा रहे थे जैसे उस ने एक पूरी बोतल चढ़ा रखी हो। उस के पास बोतल न थी, पर बोतल जिस से खरीदी जा सके, वह चीज़ अवश्य थी। अपनी लड़की के क्रन्दन और अपनी पत्नी के विरोध और बावेले के बावजूद, उस ने उस के गले की कंठी बरबस उतार ली थी और थके, पर विजयी योद्धा की भाँति उस ने रणक्षेत्र छोड़ा था।

नूर जिस जगह रहता था, वहाँ सचमुच ही कोई तबेला हो, ऐसी बात न थी। हां किसी ज़माने में वहाँ अवश्य तबेला रहा होगा, क्योंकि अस्पताल रोड की ओर से उस के अन्दर जाने के लिए एक बड़ा सा मेहराबदार गेट बना था और नूर तथा अन्य लोग जिन-क्वार्टर-रूपी-कोठरियों में रहते थे, वे किसी बड़े तबेले ही का हिस्सा मालूम होती थीं।

बड़े गेट से निकल कर नूर अनारकली की ओर को मुड़ा, पर वह अनारकली नहीं गया। 'लायन प्रेस' से आगे, जहाँ 'प्रताप रोड' अनार कली में मिलती है, दायें कोने में खालसा होटल था। उस के पीछे से 'प्रताप रोड' से एक बड़ी छोटी, संकरी गली 'सरक्यूलर रोड' को, कविराज हरनाम दास के दवाखाने के निकट, जा निकलती

थी। नूर उसी में हो लिया। बड़ी ही संकरी गली। होटल का पिछवाड़ा होने और कोई पब्लिक यूरीनल† न होने से, होटल के मद्यपाइयों तथा राह-चलतों के निरन्तर वहाँ लघुशंका-निवारणार्थ बैठने और म्यूनिस-पेलिटी की ओर से सफ़ाई का समुचित प्रबन्ध न होने से, गली में प्रवेश करते ही ठंडी हवा के साथ दुर्गन्ध का एक प्रबल झोंका आता था। यदि किसी भलेमानुस को जल्दी में उसी गली से गुज़रना पड़ता, तो वह नाक पर रूमाल या कमीज़ का दामन अथवा आस्तीन का नीचे को बढ़ा हुआ भाग रख लेना न भूलता था। लेकिन नूरदीन ने ऐसा कुछ नहीं किया। जैसे पुरातन कथाओं के हंस की चोंच दूध-दूध ले लेती है और पानी-पानी अलग कर देती है, उसी प्रकार उस की नाक ने उस दुर्गन्ध से, मदिरा की उस गंध को ले लिया, जो उस गली में खुलने वाले 'खालसा होटल' के पिछले दरवाज़े से आती थी। वहाँ बाज़ार की दृष्टि से छिपा, ६ बजे बन्द किये जाने की सरकारी आज्ञा के बावजूद, रात के बारह बारह-बजे तक खुला रहने वाला मदिरालय था। उसी गंध की सेंध पर चलता हुआ नूरा उस दरवाज़े के अन्दर जा दाखिल हुआ।

बीस एक मिनट बाद जब वह उसी दरवाज़े से फिर निकला तो उस की आँखें और भी लाल थीं और उस की आवाज़ में और भी लड़खड़ाहट थी। उस ने अभी पी न थी, लेकिन जिन के दोस्त निरन्तर पीते हैं या जो पीने-पिलाने का व्यापार करते हैं, उन्हें मालूम है कि पीने वालों को जब कुछ दिन के अन्तर पर बोतल दिखायी देती है तो बिना पिये, मदिरा की सूरत देख कर ही, उन पर नशा-सा चढ़ जाता है। नूर की बग़ल में बोतल ही न थी, बल्कि उस की जेब में पाँच रुपये भी थे जिन के बल पर वह हीरामंडी की अपनी महबूब*—चिराग़ बेगम के साथ रात भर बसर कर सकता था।

---

†यूरीनल=मूत्री। *महबूब=प्रेयसी।

सामने 'सरक्यूलर रोड' पर स्टेशन की ओर से आता हुआ एक ताँगे वाला चिल्ला रहा था—"चलो कोई सवारी हीरामंडी को। चलो कोई एक सवारी हीरामंडी को।"

नूर ने उसे आवाज़ दी। ताँगा रुका और वह पिछली सीट पर लद गया। ताँगा चलने लगा और ताँगे वाले ने फिर हाँक लगायी, "चलो कोई एक सवारी हीरामंडी को।"

नूर ने मस्ती में एक ज़ोरदार गाली अपने आप को देते हुए कहा, "माँइया असीं सारे ताँगे दे पैसे देआँगे। तूं उड़ा लै चल!"[१]

"लओ बाश्शाहो।" और ताँगे वाले ने हंटर हवा में घुमाते और घोड़े की माँ के साथ अपना निकट-तम-संबंध स्थापित करते हुए टिटकारी भरी।

नूर ने बोतल का डाट तो मदिरालय ही में खुलवा लिया था। सोचा था कि एक दो घूँट तो वहीं भर लेगा, लेकिन फिर उसे ख़याल आया कि नहीं वह चिराग़ बेगम के साथ बैठ कर ही बोतल खोलेगा। लेकिन जब ताँगा भाटी की भीड़ को पीछे छोड़, रावी रोड पर हो लिया और ताँगे वाले ने लगामें ढीली छोड़ीं और ताँगे की गति तेज़ होने के साथ हवा का झोंका आया, जो पसीने से तर उस के तन पर बड़ा शीतल लगा तो नूर के लिए अपने आप को रोकना कठिन हो गया। "रोकीं ओ यारा!"[२] उस ने ताँगे वाले को पुकारा। ताँगा रुक गया। नूर ने बोतल खोल कर एक घूँट भर लिया और डाट फिर लगा कर उस ने आस्तीन से ओठों को पोंछा और कड़ुवाहट के कारण ओठ तरेरते हुए चिल्लाया। "उड़ादे बूँदी हुण।"[३]

और ताँगा हवा से बातें करने लगा। बिना पानी या सोडे की मिलावट के शुद्ध देशी शराब—नूर के कंठ के नीचे एक शोला सा

१. हम सारे ताँगे के पैसे देंगे। तुम उड़ा ले चलो! २. रोकना दोस्त!
३. छोड़ दे अब लगामें ढीली!

लपकता चला गया। धीरे धीरे वह शोला जैसे कुछ ठंडा होकर उस की नसों में जा समाया और उन के द्वारा उस के मस्तिष्क तक जा पहुँचा। उस के मस्तक पर हल्का-हल्का सा सरूर रेंगने लगा और तर्जनी की पिछली ओर से दायीं मूँछ की नोक को ऊपर उठाते हुए उस ने तान लगायी :

बाज़ार विकेंदी तर नीं
तेरा केहड़ी गली दे विच घर नीं ?
पिप्पल निशानी आँ !
ढोल जानी आँ,
साडी गली आजा तेरी मेहरबानी आँ ![1]

नूर की आवाज़ काफ़ी मोटी और भद्दी थी, लेकिन चूँकि नशीली और ऊँची थी, इसलिए उस की मुटाई के बावजूद उस में कुछ विचित्र-आकर्षण था।

ताँगे वाले को, जैसे उसे गाते सुन कर ही, नशा हो गया। वह एक पाँव पायदान और एक ताँगे के बम पर रखे खड़ा था। घोड़ा सरपट भागा जा रहा था और ताँगे वाले का मलमल का मैला कुर्ता उस के साथ उड़ा जा रहा था। उसी प्रकार पायदान पर खड़े खड़े लगाम को दायें हाथ से हवा में घुमाते हुए, उस ने नूर के चुप होते ही गीत का दूसरा बन्द गाया। उस की आवाज़ में ऐसी गूँज, लोच और लय थी कि रास्ता चलते क्षण भर रुक कर, उस सरपट भागती हुई तान को सुनने लगे।

---

१. प्रेमी पूछता है—बाज़ार में ककड़ी बिकती है, तेरा कौन सी गली में घर है। प्रेयसी उत्तर देती है, पीपल निशानी है। ओ मेरे ढोल (प्रिय) हमारी गली आजा, तेरी बड़ी मेहरबानी होगी।

बाज़ार विकेंदी तकड़ी
वे मैं, सुक्क सुक्क हो गयी लकड़ी
तेरियाँ गमाँ विच।
जीवें ढोला
ढोल सावाँ
दफ़ा कर नौकरी, कटालै नावाँ !

हीरा मंडी में खूब रौनक थी—पान वाले, हारवाले, खोंचे वाले, कबाबों की दुकानों वाले और पान चबाने, हार खरीदने, कबाब और टिक्के खाने या उन खाने या खरीदने वालों को हसरत भरी नज़रों से देखने वाले और मोती सिनेमा के बाहर लगे पोस्टरों की अधनंगी तस्वीरें देखने और ऊपर चौबारों पर बैठी वारांँगनाओं के दर्शन कर सुख पाने और भोले-भाले शिकारों की ताक में उक़ाब-सी आंखें लगाये अथवा योंही रास्ता चलते तमाशबीनों में राह बनाने वाले......मलमल के कल्फ़ लगे खुले कुर्ते; धरती से लटकते हुए लट्ठे के तहमद; रंग बिरंगी लुंगियाँ; चौड़ी लाइन वाली बोस्की की क़मीजें; घेरदार शलवारें, सूट और निक्करें... गहमा-गहमी, गाली-गलौज, आवाज़ें, गाने और तराने— एक अजीब हुजूम, एक बेपनाह हंगामा, एक विचित्र कोलाहल !......घोड़े की चाल यहाँ पहुँच कर चींटी की सी हो गयी। नूर न मोती सिनेमा के सामने उतरा, न टिब्बी के सामने। वह सीधा अड्डे पर जा उतरा। और अपनी महबूब की गली की ओर हो लिया।

हीरा मंडी का नाम न जाने हीरा नामक किसी नर्तकी के नाम पर पड़ा था अथवा योंही वारांँगनाओं को हीरों से उपमा देते हुए

बाज़ार तराज़ू बिकती है। प्यार तेरे ग़म में सूख सूख कर लकड़ी हो गयी! ओ मेरे ढोल (प्रिय) जिओ, नौकरी को दफ़ा करो और अपना नाम कटालो।

लोग सव्यंग इसे हीरों की मंडी कहने लगे थे, कौन जाने? हीरामंडी वास्तव में एक बाज़ार नहीं, बल्कि बाज़ारों और गलियों का एक समूह है, जिस का केन्द्रस्थल वह चौक है जहाँ ताँगे जाकर रुकते हैं। इस में तीन तरह की वेश्वाएँ रहती है। वे जो सजे बजे चौबारों में जाजमों पर बैठती हैं और पर्दों में निवास करती हैं। बिजली के श्वेत हंडों की रोशनी में जिन के सौन्दर्य की कोई भूली-भटकी झलक अथवा जिन के कल-कंठ की कोई तान ही नीचे वालों को दिखायी या सुनायी देती है। प्रसिद्ध फ़िल्म-अभिनेत्री मुमताज़ बेगम अथवा नूरजहां इन्हीं चौबारों में से फ़िल्मी दुनिया में पहुँचती हैं—दूसरी टिब्बी की उस बेहद संकरी और साँप ऐसे बल खा कर हीरामंडी से सैद-मिट्ठा-बाज़ार के सामने जा निकलने वाली गली की टखियाइयाँ हैं। इन्हें पंजाब में खानगियाँ कहते हैं। इन के दाम आठ आने से दो रुपये तक होते हैं—लेकिन इस ऊँच और नीच के मध्य एक और दर्जा भी है। ये टाखियाइयाँ भी हैं, पर गायिका होने का दम भरती हैं। साज़िन्दों के नाम पर इन के पास एक-आध आदमी होता है जो उन का दल्लाल भी होता है और सारंगी या तबला बजाने वाला भी। इन में से अधिकाँश चौक से क़िले को जाने वाली सड़क की एक ऐसी गली में व्यापार करती हैं जो टिब्बी की अपेक्षा अधिक चौड़ी, सीधी और संक्षिप्त है, पर गंदी और धुएँ और स्वेद और शराब की गंध से लिप्त उतनी ही! इसी गली में नूर दीन की प्रेयसी चिराग़ बेगम रहती थी।

ताँगे से उतर कर नूर ने एक दुकान से टिक्के, कबाब, क़ीमे की प्लेट और नान खरीदे और दुकानदार के नौकर छोकरे से कहा कि वह सब लेकर उस के साथ सामने गली में चिराग़ बेगम के घर तक चले। जब छोकरे ने ट्रे में सब खाद्य-सामग्री सजाली तो नूर आने वाले सुख की कल्पना में मस्त उस के आगे आगे चल पड़ा।

चिराग़ बेगम के पास उस गली की दूसरी टखियाइयों की तरह दो

कोठरियाँ थीं। एक बावर्चीख़ाना और एक बैठक। पर चिराग़ बेगम का यह कमाल था कि जहां दूसरी वारांगनाओं ने बाहर के कमरे ही में चारपाई डाल रखी थी और ग्राहक के आने पर दरवाज़ा बन्द कर देती थीं, चिराग़ बेगम ने दोनों कमरों को सँवार रखा था। बाहर के कमरे में— कमरा क्या कोठरी में—उस ने धरती पर एक पुरानी दरी, चादर और गोल तकिया बिछा रखा था और बावर्चीख़ाने को पर्दा लगाकर उसे दो हिस्सों में विभक्त कर दिया था। उस ओर अँगीठी, चकला बेलन और एक दो हांडियां रखी थीं। इस ओर चारपाई बिछी थी। दोनों कोठरियों के मध्य दरवाज़े में किसी पुरानी धोती या साड़ी को फाड़ कर पर्दा लगा रखा था।

उस समय वह तकिये के सहारे गाने की भंगिमा में बैठी थी और बाज़ार में आने जाने वालों को देख कर एक तान लगा देती थी। नूर के क़दमों की चाप सुन कर उस ने सानुनासिक सी तान लगायी।

आज हम तुम जो चले झूमते मयख़ाने को

"मेरी जान मयखाने जाने की जरूरत नहीं। मयखाना यहीं आ गया है!" यह कहते हुए नूर ने अन्दर प्रवेश किया। बोतल फर्श पर रखी और नौकर छोकरे से नान और कबाब आदि की प्लेटें थाम लीं और एक आना उस के हाथ में देते हुए उस से कहा कि एक घंटे बाद बर्तन ले जाय।

छोकरा चला गया तो उस ने बढ़कर दोनों हाथों से चिराग़ बेगम के दोनों गाल थाम कर उसे चूम लिया।

"परे होकर बैठो। देखते नहीं बाज़ार चल रहा है," उस के दोनों हाथ झटकते हुए चिराग़ बेगम ने कहा।

बाहर बाज़ार में एक दो राह चलते रुक गये थे। नूर ने उठ कर किवाड़ पर टँगा पर्दा खोल दिया और बोला, "मेरी जान आज तो क़यामत बरपा कर रही हो!" और उस ने बढ़ कर उस के गाल को

मसल दिया।

चिराग़ बेगम सचमुच क़यामत ढा रही हो, ऐसी कोई बात न थी। वह तीस को पहुँचती हुई स्त्री थी। और तीस तक जाते जाते उस पेशे में स्त्री की जो दुरगति हो जाती है, इस की कल्पना की जा सकती है। चिराग़ बेगम या चिरागो का—क्योंकि उस की गली वालियाँ उसे इसी नाम से पुकारती थीं—यह कमाल था कि अपनी उमर और पेशे के बावजूद अपने शरीर को उस ने सम्हाल कर रखा था। रंग तो उस का श्याम ही था और नक्श भी उस के कुछ वैसे तीखे न थे—छोटी ठोडी और एक ओर से क़द्रे पिचका हुआ मुँह, लेकिन कंठ के नीचे उस का शरीर अब भी नूर के उस शेर को चरितार्थ करता था, जो वह दो एक पेग चढ़ाने के बाद उसे देख कर गाया करता था :

जवानी है जवानी लाख दोहराओ दुपट्टे को
यह तुग़ियानी[1] समन्दर की भला यों रुकने वाली है!

और जिस्म की इस खूबी के साथ उस में एक गुण यह भी था कि वह अपनी दूसरी सहेलियों की भाँति पाउडर और सुर्खी का बेतुका प्रयोग न करती थी। इसीलिए टखियाई होने के बावजूद उस में आकर्षण था।

लेकिन इस आकर्षण के होते भी, यदि नूरा कभी बे-पिये आता और आँखों में देख कर दिल की बात पढ़ने की शक्ति उस में होती तो वह चिराग़ की आँखों में ऐसी क्रूरता देखता जो उस के ओठों की मुस्कान के बावजूद वहाँ प्रकट थी। चिराग़ जाति की वेश्या न थी। तरुणाई के उन पहले दिनों में, जब जिस्म दिमाग़ पर पूरी तरह अधिकार कर लेता है, वह अपने गाँव के ज़मींदार के हाथों बर्बाद होकर वहीं के एक युवक जुलाहे के साथ भागने को विवश हुई थी। उसी ने उसे

१ तुग़ियानी=तूफ़ान।

अन्त को इस गली में ला बैठाया था। इसी अतीत ने चिराग़ के दिल में पुरुषों के लिए एक विचित्र से प्रतिशोध और अन्यमनस्कता की भावना भर दी थी। वह रोज़ दसियों के साथ सोती, पर जहाँ मिनटों में दूसरों को खत्म कर देती, वहाँ अपना कुछ भी बिगड़ने न देती। शराब वह हमेशा दिखावे को पीती और अपनी जवानी के पापों का प्रायश्चित करने के लिए पाँचों वक्त नमाज़ पढ़ती।

पर्दा करके नूर चिल्लाया कि वह दल्ला[1] हाशिम कहाँ है। ज़रा गिलास लाये और कुछ रंग जमे।

पर हाशिम नूर की बात खत्म होने से पहले ही पर्दे से झाँका!

उस की आँखों में जो भाव था, उस से चिराग़ को पता चल गया कि वह कोई मोटा मुर्ग़ा फँसा कर लाया है। तब आँख के संकेत से उसे अन्दर बुलाते और प्रकट यह कहते हुए कि वह बावर्चीखाने से नूर मियाँ को गिलास उठाकर दे, चिराग़ ने अन्दर जाकर उसे समझाया कि वह उस मुर्ग़ को घंटे भर तक और फँसा रखे, इतने में वह इस को ज़िबह कर लेगी।[2]

गिलास देकर हाशिम चला गया तो चिराग़ ने बड़ा-सा पैग नूर को ढाल कर दिया और ज़रा सा अपने में डाल लिया। इस से पहले अपने गिलास में उस ने पानी यथेष्ट-मात्रा में डाल लिया था। इस के बाद उस ने इस बात का ख्याल रखा कि कबाब और टिक्के और क़ीमा और नान तो वह स्वयं खाये और शराब नूर को पिलाये। तीन बड़े पैग कंठ में उँडेलने के बाद ही नूर निहाल हो गया और बड़े बेसुरे ढंग से गाने लगा :—

---

१. दल्ला=दल्लाल=एक आम पंजाबी गाली=हाशिम चिराग़ बेगम के दल्लाल का नाम था।

२. ज़िबह करना=हलाल करना=छुरी से काटना

३५

प्रो० बैजनाथ उस समय अपने कमरे में धीरे धीरे टहल रहे थे, जब सत्या जी जगमोहन को साथ लेकर वहाँ पहुँची और उन्हों ने क़द्रे हँसते हुए कहा, "चाचा जी नमस्ते।"

चाचा जी ने टहलना नहीं छोड़ा, न वे हँसे, न उन्होंने नमस्कार का जवाब दिया। सत्या जी ने भी उस उत्तर की वैसी कुछ अपेक्षा नहीं रखी। वे कमरे में बिछी चारपाई के पाँयते पर बैठ गयीं और फिर जैसे वह उन्हीं का घर हो, उन्होंने कमरे की एक-मात्र कुर्सी खींच कर जगमोहन से उस पर बैठने के लिए कहा।

जगमोहन चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया। प्रोफ़ेसर साहब घूमते रहे और सत्या जी उन के बैठने की बाट देखती रहीं। इस बीच में जगमोहन की दृष्टि अनायास कमरे का निरीक्षण करती रही।

प्रो० साहब का यह मकान मोहिनी रोड पर था। नया नया बना था, लेकिन नयी केवल दीवारें, फ़र्श और छतें ही जगमोहन को लगीं। शेष सब कुछ वहाँ पुराना था। कुछ विचित्र-अस्तव्यस्तता उसे वहाँ विराजमान दिखायी दी। दो अलमारियाँ थीं, जो बेतरतीब किताबों और मेगज़ीनों से भरी पड़ी थीं। मेज़ भी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से अटी पड़ी थी। एक समाचार-पत्र के पृष्ठ पंलग के नीचे बिखरे पड़े थे। यदि वही सब होता तो भी ग़नीमत था। कवियों, दार्शनिकों और

अध्यापकों को यह अस्तव्यस्तता आदि-काल से क्षम्य है। किन्तु उसी कमरे में किसी बड़े बच्चे के फ़्राक, किसी छोटे बच्चे की चिन्दियाँ और टूटे-फूटे खिलौने बिखरे पड़े थे। अँगीठी पर पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के साथ साथ एक पुराना टाइम-पीस, मिट्टी की गणेश और लक्ष्मी की मूर्तियाँ, दवाई की शीशियाँ और न जाने किन-किन चीज़ों के डिब्बे और डिब्बियाँ पड़ी थीं। इन सब के बीच, पहली ही दृष्टि में ध्यान को अपनी ओर खींचने वाली एक तम्बाकु की पुड़िया भी थी जो बेतरह मुँह बाये जैसे उबासी ले रही थी। जगमोहन को वह सब अत्यन्त घृणास्पद लगा। उस ने चाहा कि इधर हो या उधर, वे बात कर के तत्काल वहाँ से चल दें। पर सत्या जी बड़े धैर्य से बैठी एक पत्रिका के पन्ने उलट रही थीं।

तभी बाल बिखेरे, ओठ खून जैसी सुर्खी से रंगे, हाथ में हुक्के की चिलम लिये, जैसे माँ काली ने प्रवेश किया।

"चाची जी नमस्ते!" सत्या जी हँसते हुए उठीं।

जगमोहन भी अचकचा कर उठा और उस ने ओठों ही में 'नमस्कार' करने का उपक्रम-सा किया।

निमिष-भर को उन की निगाहें जगमोहन से मिलीं और पराये युवक को देख कर काली माता ने साड़ी का पल्लू सिर पर खेंच लिया।

"यह हमारी चाची जी हैं," सत्या जी ने जगमोहन को काली माता का परिचय दिया।

जगमोहन ने एक बार फिर उन्हें 'नमस्कार' किया।

तब उस नमस्कार का जवाब दे, चिलम को हुक्के पर रख कर, उन्हों ने सत्या जी से कहा कि प्रोफ़ेसर साहब से बातें करके वे उधर आयें! और जैसे वे आयी थीं वैसे चली गयीं।

तब प्रोफ़ेसर साहब, जो शायद चिलम की प्रतीक्षा ही में टहल रहे थे, चारपाई पर आ बैठे और हुक्के की नली मुँह में लगा कर उन्होंने

एक लम्बा कश लिया। क्षण दो क्षण वे निर्लिप्त-भाव से हुक्का गुड़-गुड़ाते रहे, फिर खाँस कर चारपाई के सिरहाने रक्खी हुई राख-भरी हंडिया में उन्हों ने बलगम का बड़ा सा लौंदा फेंका और सत्या जी से उन की और उन के पिता की कुशल-क्षेम पूछी।

जगमोहन का ध्यान निरन्तर उन की पत्नी की अत्यधिक कुरूपता पर केन्द्रित था। उन का रंग ही काला न था, नक्श भी भद्दे थे और इस पर तुर्रा यह कि उन्होंने पाउडर और सुर्खी लगा रखी थी, जो उस कुरूपता को और भी बढ़ाती थी। फिर उन का चांचल्य उस कुरूपता पर वही काम देता था जो कडुवे करेले पर नीम का पानी देता है।

उस ने सत्या जी से सुन रक्खा था कि वे हर समय बनी-सँवरी रहती हैं। प्रकट है कि अपने आप को सुन्दर समझती थीं। दो उन के बच्चे थे, पर उन्होंने अपनी माँ की शृङ्गार-प्रियता में किसी प्रकार की कमी न आने दी थी। उन्हें देखते ही जगमोहन के कानों में सत्या जी की यह बात गूँज गयी कि वे बड़ी 'नखरेलो' हैं और प्रोफ़ेसर साहब न केवल उन के नाज़-नखरे सहते हैं, बल्कि उन पर जान भी देते हैं। और जगमोहन हैरान था कि इतनी काली स्त्री से कोई कैसे प्यार कर सकता है।

पर जब प्रोफ़ेसर साहब उन के सामने चारपाई पर आकर बैठ गये और सत्या जी से बातें करने लगे और उस ने ध्यान से उन के चेहरे को देखा तो उसे प्रोफ़ेसरायन से हमदर्दी हो आयी।

प्रोफ़ेसर साहब की आकृति में कोई ऐसा आकर्षण न था जिस का संबंध सौंदर्य से हो। इस के विपरीत उन के मुख की विचित्र-अपरूपता ही उस का एक-मात्र-आकर्षण थी। वे छः फुट को पहुँचते हुए ऊँचे-लंबे आदमी थे। लम्बी-लम्बी बाँहें उन के कंधों से लटकती दिखायी देती थीं। छाती और कमर की मोटाई एक जैसी थी। सामने से आते समय उन्हें देख कर ऐसे लगता जैसे किसी चतुर्भुज को बाँहें और टाँगें लग

गयी हैं और वह एक सी गति से चली आ रही हैं। किन्तु इस आभास का कारण उन के चौकोर शरीर की अपेक्षा उन के मुख की भावनाहीनता ही अधिक थी। उन के मुख पर गोश्त लटकता सा दिखायी देता था। लगता था जैसे सृजनहार ने उन का तन बना कर मुँह बनाते समय मिट्टी का लौंदा मार कर अँगुली और अँगूठे से नाक मुँह के नक्श तो बना दिये, पर फिर ऊब कर उसे साफ़ और सुकोमल बनाने की अपेक्षा वैसे ही अनगढ़ छोड़ दिया। 'प्रोफ़ेसर साहब की आकृति वाले व्यक्ति के साथ जो स्त्री चौबीसों घंटे रहती है,' जगमोहन ने सोचा, 'उसके बच्चे पैदा करती है, वह कालिका भी क्यों न हो, सहानुभूति की अधिकारणी है.....'

जगमोहन पति-पत्नी के संबंध की जटिल-गहराइयों में डूब गया था कि उस ने सुना, सत्या जी उस का परिचय दे रही हैं और जैसे उन गहराइयों को तत्काल तज कर वह ऊपर सतह पर आ गया। कहाँ से होती हुई बात उस तक आ पहुँची थी, यह सब उस ने नहीं सुना। जब वह चौंका तो उस समय सत्या जी कह रही थीं कि यह जगमोहन जी हैं। बड़े उदीयमान कवि हैं। इन के संबंध में मैं पहले भी आप से कह गयी हूँ। यदि एम० ए० करने में आप इन की सहायता कर सकें तो बड़ा अच्छा हो। दाख़िले[1] का प्रबन्ध तो ये किसी न किसी तरह कर लेंगे, पर फ़ीस इन की माफ़ हो जाय तो यह दाख़िल हो जायँ। इन की आर्थिक-कठिनाई की बात तो मैं आप को बता ही चुकी हूँ। पुस्तकों के मामले में तथा और भी जिस तरह हो सके, आप इन की सहायता करें।

प्रोफ़ेसर साहब ने हुक्के के दो कश लगाते हुए एक अन्यमनस्क-श्रान्त-सी दृष्टि जगमोहन पर डाली। जैसे उन्होंने अब पहली बार उसे

दाख़िला : प्रवेश-शुल्क।

देखा। फिर उन्होंने जैसे अपने हुक्के को सुनाते हुए कहना आरम्भ किया कि कविता बेकारों की हॉबी (Hobby) है। जिन आदमियों को दुनिया में कुछ काम करना है, उन्हें कविता करना तो दूर रहा, समाचार-पत्र तक पढ़ने का भी समय नहीं मिलता। उन्होंने अपना उदाहरण दिया कि कैसे उन्होंने बड़े गरीब-घर में जन्म लेकर ट्यूशन करके पढ़ाई की और न केवल हिस्ट्री में, बल्कि फ़िलासफ़ी में भी एम० ए० किया और यद्यपि अब गृहस्थी ने उन के समय को (जो पहले ही परीक्षाओं के प्रश्न-पत्र बनाने, कापियाँ देखने, और कालेज-संबंधी बीसियों पचड़ों के कारण पल-पल से बिंधा है) कम कर दिया है तो भी वे अभी दो विषयों में और एम० ए० करने की सोच रहे हैं।

यहाँ उन्होंने अचानक एक लम्बा कश लिया और जैसे अपने हुक्के से पूछा कि वह एम० ए० में क्या विषय लेना चाहता है।

उन के इस लम्बे प्रवचन को सुनते सुनते जगमोहन का ध्यान भटक गया था। वह सोचने लगा था कि ये कैसे इतिहास के अध्यापक हैं जो महीनों समाचार-पत्र न पढ़ने का उल्लेख बड़े गर्व से कर रहे हैं।

जब प्रोफ़ेसर साहब ने ज़रा सा और मुँह मोड़ कर वही प्रश्न दोहराया तो जगमोहन चौंका और उस ने उत्तर दिया कि वह इतिहास लेने की सोच रहा है। तब उन्होंने अपने प्रवचन का तार जहाँ से छोड़ा था, वहीं से फिर पकड़ लिया और बोले कि उस ने बी० ए० तक इतिहास का अध्ययन किया है, क्या वह किसी ऐसे कवि का नाम बता सकता है जिस ने किसी जाति अथवा राष्ट्र का जीवन बदला हो ?

जगमोहन विदेशों के इतिहास से उतना परिचित न था, पर उस के सामने इक़बाल के शेर आ गये, जिन्हों ने १६२१ के आन्दोलन में रूह फूँक दी थी और जो अब काँग्रेस से अलग होकर मुसलमानों में जातीयता

हॉबी : मनोविनोद के लिए किया जाने वाला कोई काम।

की रूह फूँक रहे थे, फिर टैगोर......पर उस ने चुप ही रहना उचित समझा। उत्तर न पाकर प्रोफ़ेसर साहब समझे कि वह उन की बात से बड़ा प्रभावित हुआ है और बड़े संतोष के साथ उन्होंने हुक्के के दो-चार कश खींचे।

जगमोहन इस बीच में ऊब उठा था। सोच रहा था कि सत्या जी उसे व्यर्थ ही वहाँ ले आयीं। जिन की दृष्टि का घेरा इतना सीमित है, वे भला किसी की क्या सहायता कर सकेंगे। पर नहीं, उस का ख़्याल ग़लत निकला। प्रोफ़ेसर साहब ने प्रिंसिपल से व्यक्तिगत रूप से अनुरोध कर उस की फ़ीस माफ़ करा देने का वादा किया। यह भी कहा कि वे पुस्तकों का भी प्रबन्ध कर देंगे और फिर हुक्के के दो एक कश लगाते हुए जैसे अपने हुक्के ही को समझाते हुए उन्होंने उसे सफल-जीवन के भेद बताये। उस लम्बे अभिभाषण का निष्कर्ष यही था कि दुनिया लेने-देने पर टिकी है। यदि कोई आदमी लेता ही जायगा और देने की नहीं सोचेगा तो वह पाना बन्द कर देगा। वे उस की फ़ीस माफ़ करा देंगे, पुस्तकों का प्रबन्ध कर देंगे। यदि वह रोज़ उन के यहाँ दो एक घंटों के लिए आया करेगा तो वे उसे इतिहास पढ़ा भी दिया करेंगे। पर वे व्यस्त रहते हैं। कभी उन के पास समय न हो तो वह अपनी भाभी की सहायता कर दिया करे, बच्चे को पढ़ा दिया करे आदि आदि.........

जगमोहन पर उन की इस अप्रत्याशित-उदारता का बड़ा प्रभाव हुआ। कुछ क्षण पहले जो कुरूपता उसे उन के चेहरे पर विद्यमान दिखायी देती थी, वह जैसे किसी मन्त्र के बल से दूर हो गयी। श्रद्धा से उस का हृदय प्लावित हो उठा। उस की सब से बड़ी साध वे पूरी कर दे रहे थे, क्या वह ऐसा कृतघ्न था कि उन के किसी काम न आता। आँधी हो या पानी, वह नियमित रूप से उन के यहाँ आया करेगा जो सेवा उस से उन की बन पड़ेगी, वह उस से कभी कन्नी न कटेगा। और अपने भाव उस ने बड़ी विनम्रता से प्रोफ़ेसर साहब के

समत्त्व भी प्रकट कर दिये।

जगमोहन अपनी कृतज्ञता प्रकट कर ही रहा था कि सत्या जी 'चाची जी से मिलने' चली गयीं—काम उन का पूरा हो चुका था और फिर कदाचित कृतज्ञता-प्रकाश में जगमोहन उन की उपस्थिति में कुछ सकुचा जाता, इस लिए वे उठ गयीं।

कृतज्ञता-प्रकाश कर जगमोहन प्रोफ़ेसर साहब को अपनी आर्थिक स्थिति का कुछ और भी गहरा परिचय दे रहा था कि उसे लगा, कश खींचने पर उन के मुँह और नथनों से धुआँ नहीं निकलता। प्रोफ़ेसर साहब ने चिलम एक दो बार हिलायी पर नतीजा कुछ न निकला। तब अपनी बात छोड़ कर जगमोहन ने चिलम उठा ली, "यह बुझ गयी है," उस ने कहा, "मैं और भर लाता हूँ।"

तब प्रोफ़ेसर साहब के 'न' 'न' करने पर भी उस ने चिलम हुक्के पर न रखी। प्रोफ़ेसर साहब की दृष्टि का अनुसरण करने पर चिलम की राख दरवाज़े के बाहर फेंक उस ने तमाखू भरा और आँगन के दरवाज़े से निकल गया। किचन कहाँ है, उसे ज्ञात न था। पर उसे कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि आँगन के दूसरे सिरे पर उसे सत्या जी की साड़ी का छोर किचन की दहलीज़ के बाहर दिखायी दे गया। उस ने चिलम वहाँ जा कर भर ली। सत्या जी ने प्रोफ़ेसरायन को भी उस का परिचय दे दिया (प्रोफ़ेसरायन का परिचय जगमोहन को वे दे ही चुकी थीं) जगमोहन ने उस काले-कलूटे बच्चे को भी देख लिया जिस का चार्ज उसे मिलने वाला था, किन्तु उस समय वह उसे इतना कुरूप नहीं लगा। चिलम भर कर वह चला तो सत्या जी भी उठीं। फिर आने का वादा करके उस के पीछे पीछे चली आयीं। जब उस ने चिलम हुक्के पर रख दी और प्रोफ़ेसर साहब ने हुक्के का कश खींच कर उस का शुक्रिया अदा कर दिया तो सत्या जी ने आज्ञा चाही। प्रोफ़ेसर साहब ने जगमोहन को कालेज में मिलने का परामर्श दिया।

जगमोहन ने कहा कि प्रवेश-शुल्क का प्रबन्ध कर वह शीघ्र ही उन से मिलेगा।

"पर भाई इस से पहले फ़ार्म भरना होगा और फ़ीस माफ़ करने की अर्ज़ी देनी होगी।"

"जी बहुत अच्छा। मैं कल ही मिलूँगा।"

और प्रोफ़ेसर साहब को 'नमस्कार' कर दोनों बाहर निकले।

३६

साँझ गहरी हो चली थी। आकाश पर बादल घिरे थे। उमस के कारण दम घुटा जा रहा था। पर जगमोहन का मन बड़ा प्रसन्न था। वह बोझ जो पंडित रघुनाथ के आगमन के बाद सत्या जी के प्रति उस के मन पर आ गया था, अपने आप दूर हो चला था। जब वे प्रोफ़ेसर कपूर के घर को आये थे तो दोनों में से कोई न बोला था, पर वापसी पर अपने उद्देश्य की सफलता ने दोनों के मन हल्के कर दिये थे। अनायास बातें करते हुए वे चले आये थे।

जगमोहन ने सत्या जी को बताया था कि किस प्रकार प्रोफ़ेसर साहब के घर की अव्यवस्था देख कर उस के मन में एक विचित्र सी उपेक्षा का भाव जगा था—कि उस समय भी प्रोफेसर साहब की इस गर्वोक्ति को वह उचित और स्तुत्य नहीं समझता कि वे महीनों समाचार पत्र नहीं पढ़ते—जो समाचार पत्र भी नहीं पढ़ता वह छात्रों को इतिहास क्या पढ़ायेगा? कि कविता के प्रति उन का विद्वेष भी उसे अच्छा नहीं लगा। किन्तु इस सब के होते भी उन की उदारता, गंभीरता और व्यावहारिकता का वह क़ायल हो गया है।

सत्या जी ने उसे बताया कि प्रोफ़ेसर साहब अमृतसर ही के रहने वाले हैं। वहीं से सत्या जी के पिता में और उन में मैत्री भी है। व्यस्त रहते हैं इसलिए कमरे की सफ़ाई आदि का ध्यान नहीं रख सकते।

कालेज में इतिहास और दर्शन दोनों विषय पढ़ाते हैं। अब वे कालेज जायें, लैक्चर तैयार करें, प्रश्न-पत्र बनायें, परीक्षाओं की ढेर-की-ढेर कापियाँ देखें, ट्यूशनें पढ़ायें या घर की व्यवस्था की ओर ध्यान दें। यह काम ग्रहिणी का है। दुर्भाग्य से ग्रहिणी उन की दूसरी है। पहली बड़ी साफ़-सुथरी, पढ़ी-लिखी, सुघड़ और संस्कृत थी। उस से एक बड़ा लड़का है। बड़ा सुन्दर है। दो काले-कलूटे इन से हैं। किन्तु बच्चों की देख-रेख और घर की सफ़ाई-सजावट की अपेक्षा उन्हें अपना साज-शृङ्गार अधिक पसन्द है।

"लेकिन बड़ा बच्चा तो कहीं देखा नहीं।"

"कहीं बाहर खेल रहा होगा," सत्या जी ने कहा और फिर अपनी बात का तार पकड़ते हुए उन्होंने जगमोहन को बताया कि प्रोफ़ेसर साहब ने उन के पिता को मुसीबत में फँसा दिया है।

जगमोहन ने जिज्ञासा प्रकट की तो सत्या जी ने बताया कि प्रोफ़ेसर बैजनाथ प्रो० ज्योतिस्वरूप के बड़े घनिष्ट-मित्र हैं। जब प्रोफ़ेसर स्वरूप ने लॉ-कम्पनी-लिमिटेड खोली थी तो प्रो० कपूर ने जहाँ स्वयं एक हिस्सा खरीदा, वहाँ सत्या जी के पिता को पाँच हिस्से ले दिये। उन की सारी जमा-पूँजी पाँच सहस्र थी। बम्बई में जब उन के पिता मुलाज़िम थे तो उन्होंने कुछ रुपया जमा किया था, वह सब प्रो० कपूर की कृपा से उस कम्पनी में लग गया।

जगमोहन हँसा। "आप के पिता जी की बात क्या," उस ने कहा, "न जाने कितने उस कम्पनी में डूबे।

"अब दो हज़ार रुपया देने को कहते हैं," सत्या जी बोलीं, "न जाने देते भी हैं कि नहीं।"

"रुपया मिल जायेगा," जगमोहन ने अचानक क़द्रे हँस कर उन्हें आश्वासन दिया। "मैंने आप को शायद बताया नहीं।" उस ने कहा, "इधर कई दिन से मैं सुबह मज़ंग रोड पर सैर को जाता हूँ। प्रोफ़ेसर

साहब अपने ससुर की कोठी से उठ कर ११२ मज़ंग रोड पर चले आये हैं। हाई-कोर्ट वाली सड़क जहाँ मज़ंग रोड में मिलती है, वहीं है उन की कोठी। पारिश्रमिक उन्हों ने मेरा दिया नहीं। मैंने भी तय कर लिया कि रोज़ सुबह को सैर करने उन के घर की ओर ही जाऊँगा। कहूँगा कुछ नहीं। पैसे भी न माँगूँगा। बस रोज़ 'नमस्कार' कर चला आऊँगा। देखूँ कैसे नहीं देते मेरा पारिश्रमिक।"

इस बार सत्या जी हँसी।

"दो तीन दिन तो उन से मेरा साक्षातकार न हो सका। चौथे दिन पहुँचा तो बाहर ही से पता चल गया कि वे उठते ही कमरे में चले गये हैं। दरवाज़े के शीशे से मैं ने देखा, टेबल-लैम्प जलाये मेज़ पर झुके हुए थे। मैं ने दरवाज़े पर दस्तक दी। वहीं मेज़ पर झुके उन्होंने पूछा, "कौन है?" मैंने अपना नाम बताया तो बोले कि गैलरी की ओर से आ जाओ। मैं अन्दर गया और 'नमस्कार' कर पूछा कि इस गर्मी में अन्दर क्यों बैठे हैं? बोले, "हिसाब कर रहा हूँ कि मुझे अभी कितना देना बाकी है।"

"मैं उन के पास मेज़ के किनारे खड़ा था।" जगमोहन का स्वर गंभीर हो गया, "एक कागज पर उन्होंने कितनी ही रकमें लिख रखीं थीं। सब से अन्त में मेरे रुपये भी थे। मुझे सचमुच अपनी आँखों पर विश्वास नहीं आया, पर सच ही सूची के अन्त में मेरा नाम था।" वह कुछ क्षण तक चुप रहा फिर बोला, "वहीं मैंने आप के पिता का नाम और उस के आगे दो हज़ार की रकम लिखी भी देखी।"

सत्या जी ने लम्बी साँस भरी।

जगमोहन ने उन की लम्बी साँस की ओर ध्यान नहीं दिया। अपनी रौ में वह प्रो० स्वरूप और श्री धर्मदेव वेदालंकार की तुलना करने लगा। "मैं सच कहता हूँ सत्या जी," वह बोला, "मुझे प्रो० स्वरूप के प्रति श्रद्धा हो आयी। वे लोगों का रुपया देना न चाहते तो

चुप चाप अपने दीवालिया होने की घोषणा कर देते। रुपये के बदले दो आने भी किसी को न मिलते। उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपने ऋणदाताओं की एक मीटिंग बुलायी और उन के ऋण का लगभग आधा देने का फ़ैसला कर लिया। धर्मदेव उन की जगह होते तो दीवालिया हो जाते और किसी को कानी कौड़ी भी न देते। मैं प्रो० स्वरूप की दिलेरी की प्रशंसा करता हूँ। आदमी वे विद्वान हैं। आज यदि उन का हाथ तंग है तो निश्चय ही कल खुल जायेगा। जो आदमी ओरिएंटल कॉलेज की रीडरशिप की परवाह नहीं करता, लॉ कालेज की लैक्चररशिप की परवा नहीं करता, जो योग्य है, हमेशा असफल न रहेगा। जिस आदमी को अपने ऋणदाता का देना याद है, वह उसे ज़रूर दे देगा।"

दोनों बातें करते ऋषि-नगर पहुँच गये थे। घर के नीचे पहुँच कर जगमोहन ने कहा, "आप कुछ क्षण आराम करेंगी या सीधी गोपाल नगर चलेंगी?"

सत्या जी ने आकाश की ओर देखा। "घटा तो बड़ी घिर आयी है, पर भाभी से मिले बिना नीचे से चले जाना भी मुझे पसंद नहीं।"

"तो आप चलिए, मैं ज़रा भाग कर बर्फ़ ले आऊँ। सख्त प्यास लग रही है। घड़े का पानी होगा उबला हुआ। आप के चाचा जी ने तो (उस का संकेत प्रो० कपूर की ओर था) पानी भी नहीं पूछा।"

और वह भागता हुआ होतू सिंह रोड की ओर चला गया। जब वह बर्फ़ लेकर लौटा और अपनी उमंग में 'साजन आये बसो मोरे मन में' सुर और लय से युक्त आवाज़ में गुनगुनाता हुआ ऊपर आया तो ऊपर की सीढ़ी में चकित सा खड़ा रह गया। सामने ताला पड़ा था और सत्या जी वहाँ नहीं थीं। वह फिर नीचे गया। बर्फ़ से उस के हाथ जलने लगे थे। उस ने बर्फ़ की डली सब से निचली सीढ़ी पर रखी और अन्दर जा कर मालिकिन-मकान से पूछा कि उस की भाभी कहाँ गयी हैं। मालिकन-मकान ने बताया कि 'निशात' में सिनेमा देखने गये

हैं। साढ़े नौ दस तक आ जायेंगे।

तब जगमोहन के ओठों पर आया, पूछे, 'अभी सत्या जी आयी थीं, उन को तो जाते आप ने नहीं देखा,' पर तभी उसे ख़्याल आया, वे ऊपर उस के कमरे में न चली गयी हों। यह ख़्याल आते ही उस ने मालिकिन-मकान से एक लोटा पानी और खाली गिलास लिया। डेवढ़ी में आकर उस ने सीढ़ी से बर्फ उठायी, उसे धो कर लोटे में डाला और ऊपर की छत पर पहुँचा। उस का अनुमान ठीक था। सत्या जी उस के कमरे के बाहर दरवाजे से लगी खड़ी उस की प्रतीक्षा कर रही थीं।

"भाभी तो सिनेमा देखने चली गयीं। उस ने लोटा गिलास उन्हें देकर ताला खोलते हुए कहा, "और मैं नींबू लाया था कि ज़रा शिकंज-बीन पियेंगे।"

सत्या जी उस के पीछे पीछे अन्दर गयीं। जगमोहन ने ठंडे पानी का गिलास भरा, "आप लेंगी।" उस ने पूछा और जब उन्होंने कहा, "नहीं आप लीजिए, आप को प्यास लगी है।" तो उस ने वह एक घूँट में खाली कर दिया और लोटा और गिलास मेज़ पर रख कर चारपाई पर ढेर हो गया।

"मैं तो थक गया हूँ। क्षमा कीजिएगा। अभी उठता हूँ। आप कुर्सी लीजिए।"

"नहीं आप लेटिए।" सत्या जी ने कहा," और उन्हों ने बढ़ कर गिलास पानी से भरा। जगमोहन ने क्षमा माँगते हुए उठने का उपक्रम किया, पर दायें हाथ से उसे रोकते हुए उन्हों ने बायें से गिलास मुँह को लगा लिया।

पानी पीकर वे क्षण भर वहीं रुकी रहीं।

"आप बैठिए।" जगमोहन ने फिर उठने का उपक्रम किया।

"नहीं मैं अब चलती हूँ।" उन्होंने पूर्ववत फ़र्श की ओर देखते हुए कहा। और ब्लाउज़ के अन्दर से रूमाल में बँधी छोटी

सी पोटली निकाली और उसे खोल कर पैंतीस के नोट उस की ओर बढ़ा दिये। "यह पैंतीस रुपये रखिए!" वे हँसीं, "मेरा पहला वेतन मुझे मिल गया है। कल ही पंडित दाताराम ने दिया। फ़ीस तो आप की माफ़ हो जायेगी, पर दाखिला तो देना ही होगा।"

"नहीं नहीं आप रहने दीजिए," जगमोहन ने कहा, "मैं सुबह ही प्रोफ़ेसर ज्योति स्वरूप के पास जाऊँगा और चाहे मुझे उन के दरवाज़े पर भूख हड़ताल न करनी पड़े, मैं दाखिले के रुपये लेकर आऊँगा।"

"वहाँ से भी मैं ला दूँगी। इतने से थोड़ी काम चलेगा।"

"नहीं नहीं मैं ले आऊँगा।"

"आप रखिए ना," वे उस के हाथ में रुपये देती हुई उस के ऊपर झुक गयीं, "इन्हें उधार समझ लीजिए। जभी आप के पास आयें, लौटा दीजिएगा, मैं एक बार भी इनकार न करूँगी। क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं!"

उधार के नाम पर जगमोहन के हाथ में उतनी कड़ाई न रही और उन्होंने उस की मुट्ठी खोल कर उस में रुपये दे दिये। पर, इस प्रक्रिया में वे उस पर काफ़ी झुक गयीं। तब जाने जगमोहन को क्या हुआ। उस का मन एक अपार-कृतज्ञता से भर गया। उन का हाथ थाम कर क्षण भर उस ने उन की ओर देखा, फिर खींच कर उन्हें अपने सीने से लगा लिया और 'How kind of you, How kind of you,' कहते हुए उन के मस्तक को चूम लिया।

उन्होंने प्रतिरोध नहीं किया। केवल उन के गालों पर हल्की सी लाली उभर आयी।

जगमोहन के जी में आयी कि एक बार फिर उन्हें ज़ोर से बाँहों में भींच ले और दोनों ओर की उस लाली को चूम ले, पर वे उठ खड़ी हुईं। "अच्छा तो मैं अब चलती हूँ। कल प्रो० स्वरूप की ओर भी जाऊँगी। अपने लिए भी जाना है। हमारा रुपया तो जाने मिले या न

मिले, पर आप का तो कुछ अवश्य ले आऊँगी।"

"पर आप कैसे......"

"इस की चिन्ता न करें। मैं ले आऊँगी।"

"ठहरिए मैं भी चलता हूँ आप के साथ गोपाल नगर तक!" और वह उठा।

"नहीं आप लेटिए। आप थके हैं।"

लेकिन वह उठा। वे अभी दरवाज़े ही में थे कि वर्षा की पहली बौछार उन के मुँह पर पड़ी।

"पानी तो आ गया।" सत्या जी ने विवशता से कहा, "और एक कदम पीछे हटीं।"

जगमोहन ने कोई उत्तर नहीं दिया। वर्षा की वह ठंडी बौछार उसे अपने गर्म चेहरे पर बड़ी भली लगी। उस के जी में आयी कि कपड़े उतार कर फेंक दे और बरसते पानी में जी भर कर नहाये। वहीं खड़ा वह उमडी-घिरी घटा को निर्निमेष देखता रह गया। कहीं दूर डूबे हुए सूरज की चमक अब भी उजेला सा किये थी, घटा में कहीं कहीं कुछ थिगलियाँ रंगीन हो उठी थीं और दृष्टि की सीमा तक जैसे गिरते पानी की चादर तन गयी थी।

"पीछे हटिए, भीग रहे हैं।" उस का हाथ थाम कर उसे पीछे हटाते हुए सत्या जी ने कहा। "वर्षा की बौछार बहुत दूर तक अन्दर आ रही है। आप का सारा कमरा भीग जायेगा।" और उन्होंने किवाड़ भेड़ दिये।

पर दूसरे क्षण वे तड़ाख से फिर खुल गये और दूर तक वर्षा का तरेड़ा आया। तब जैसे चौंक कर जगमोहन ने दरवाज़ा बन्द कर सिट-कनी चढ़ा दी और बिजली का स्विच दबा दिया।

वह तौलिए से मुँह पोंछ रहा था सत्या जी अभी तक वहीं दरवाज़े के पास खड़ी थीं कि बत्ती एक दम बुझ गयी।

"इस मकान की यही दिक़त है," जगमोहन ने झुँझला कर कहा "जाने कब की फ़िटिंग करा रखी है। तीसरे दिन फ़्यूज़ (Fuse) उड़ जाता है।" बढ़ कर उस ने दो एक बार बटन को ऊपर नीचे दबाया। बत्ती नहीं जली। सत्या जी वहीं खड़ी थीं। "आप क्यों खड़ी हैं, बैठ जाइए।" उस की आवाज़ में हल्की सी चिड़चिड़ाहट थी। "जाने वर्षा कब थमेगी!"

सत्या जी बढ़कर कुर्सी पर बैठने लगीं।

"अरे यह तो बिलकुल भीग गयी है।"

तब वे उसे छोड़ चारपाई की पट्टी पर बैठ गयीं। साड़ी के पल्लू को उन्हों ने फिर अच्छी तरह शरीर के गिर्द लपेटा और जैसे सर्दी से एक बार हल्की सी झुरझुरी ली।

३७

जब वे कमरे से बाहर निकले तो उन्होंने नीचे भाभी की आवाज़ सुनी।

"दस बजने को होंगे," जगमोहन ने कहा। अपना स्वर उसे अपना स्वर न मालूम हुआ। कुछ ऐसी कृत्रिमता उसे उस में लगी।

बाहर वर्षा बिलकुल थम चुकी थी और यद्यपि आकाश पर बादल अब भी इधर उधर दिखायी देते थे, पर वे कुछ निर्जीव से लटके लटके जान पड़ते थे। आकाश की थिगलियों में सितारे चमक उठे थे।

"जाने वर्षा कब थमी। कुछ पता ही नहीं चला।" जगमोहन ने फिर कहा और क्रद्रे हँसा।

अपने स्वर और अपनी हँसी में उसे फिर कुछ वही अजीब सी कृत्रिमता लगी।

सत्या जी ने उस का भी उत्तर नहीं दिया। जगमोहन ने सीढ़ियों के पास पहुँचते हुए फिर पूछा। "देर हो गयी है। खाना आप यहीं खा लीजिए। फिर मैं आप को छोड़ आऊँगा।"

अब के सत्या जी बोलीं। "आप खाना खाइए। मैं चली जाऊँगी। मुझे छोड़ने की चिंता न कीजिए। आप को लौटने में देर हो जायेगी।"

और वे किसी तरह की आवाज़ किये बिना चुपचाप सीढ़ियाँ

उतर गयीं। भाभी को, जिसे मिले बिना जाना उन्हें पसन्द न था, 'नमस्कार' करना भी उन्होंने उचित नहीं समझा।

किन्तु जगमोहन क्षण भर को रुका। "भाभी मेरा खाना मेरे कमरे में रख देना," उस ने कहा, "सत्या जी आयी थीं, वर्षा के कारण जा नहीं सकीं, मैं उन्हें छोड़ आऊँ।"

भाभी ने कोई उत्तर नहीं दिया। न उत्तर सुनने को वह रुका। सत्या जी के पीछे वह सीढ़ियाँ उतर गया।

लेकिन सत्या जी उसे अपने घर तक साथ नहीं ले गयीं, जब वे रहट के साथ वाला मैदान पार कर गोपाल नगर पहुँचे तो सत्या जी ने बरबस उसे वापस भेज दिया।

दूसरी सुबह दफ्तर जाने से पहले भाई साहब उस के कमरे में आये। जगमोहन चौंका। उस के भाई कभी ही उस के कमरे में आते थे। वह क्या करता है, कहाँ जाता है, कभी इस की खोज-खबर न रखते थे। वह नीचे म्यानी में था तो वे दफ़्तर जाते अथवा वहाँ से आते वक्त एक नज़र झाँक भी लेते थे, पर जब से वह ऊपर चौबारे में आया था, वे एक बार भी ऊपर न आये थे।

जगमोहन ने उठ कर ईज़ी चेयर बिछा दी। वे बैठे नहीं। वहीं मेज़ के कोने का तनिक सहारा लेकर वे रुके। "कल शाम सत्या यहाँ कब आयी थी?" सहसा उन्हों ने पूछा।

"हम प्रोफ़ेसर कपूर के गये थे। उन्होंने फ़ीस माफ़ करने का वादा कर दिया है।" जगमोहन ने सीधा, संक्षिप्त उत्तर न दे कर कहा, "पुस्तकों का भी वे प्रवन्ध कर देगें। केवल दाखिले के रुपये चाहिएँ, सो आज प्रो० ज्योति स्वरूप के जाऊँगा। प्रो० कपूर के यहाँ से लौटे तो पानी बरसने लगा। इसलिए सत्या जी रुक गयी थीं।"

"पानी तो साढ़े आठ बजे थम गया था ! वे तो दस बजे के लगभग गयीं !"

"जी बातों में पता नहीं चला ।"

"हूँ ! बत्ती क्यों नहीं जलायी । तुम्हारी भाभी तुम्हें देखने आयी थी ।"

"जी, बिजली बुझ गयी थी ? बाद में आ गयी होगी । फिर जलाने का ख़्याल नहीं आया ।"

"हूँ!" और फिर कुछ रुक कर उन्हों ने कहा, "मैं यह पसन्द नहीं करता । यों तुम अब जवान हो, बालिग़ हो, अपने मालिक आप हो । तुम स्वयं समझ सकते हो ।" वे कुछ और कहना चाहते थे, पर निमिष भर रुक कर उन्हों ने केवल इतना कहा......"मुझे दोबारा कहने की ज़रूरत न पड़े ।" और वे जैसे आये थे चले गये ।

दिन भर जगमोहन के जी पर बड़ा भारी बोझ रहा । भाभी को मुँह दिखाने की भी उसे हिम्मत नहीं हुई । वह कालेज भी बड़ी अनिच्छा-पूर्वक गया । बड़ी अन्यमनस्कता से उस ने फ़ार्म भरा और शुल्क की माफ़ी का आवेदन-पत्र दिया । जब वह लौटा तो बहुत देर हो गयी थी । दोपहर का खाना खाने के बाद भाभी शायद सो रही थी । वह अपना खाना उठा कर चुपचाप ऊपर ले गया था और वैसे ही अनमने भाव से चार कौर निगल कर बिस्तर पर जा लेटा था ।

बरसात की उस अँधेरी साँझ में, जब जगमोहन दीवार के साथ लगा खड़ा था और सत्या जी चारपाई की पट्टी पर बैठी थीं और बाहर मूसला धार वर्षा हो रही थी, वे सहसा उस के बहुत निकट आ गयी थीं ।

जगमोहन वहीं दीवार के साथ टिका खड़ा था कि उन्होंने उसे

बैठ जाने को कहा। कुर्सियाँ दोनों भीग गयी थीं। पर वह कुर्सी प बैठा। तब उन्होंने उसे बाँह से थाम कर चारपाई पर बैठा दिया कि गीली कुर्सी पर बैठने से बीमार हो जायेगा और कहा कि वह थका हुआ है, लेट जाय, बल्कि हाथ से उसे लिटा दिया और स्वयं सिकुड़ कर पट्टी पर बैठ गयीं और उन्होंने फिर झुरझुरी सी ली।

आप को सर्दी तो नहीं लग गयी। "जगमोहन ने कुहनी के बल उठते हुए उन की कलाई पर हाथ रखा। उन का शरीर गर्म था। वह उठ कर बैठ गया। "आप लेट जाइए आपकी तबीयत ठीक नहीं।"

वे लेट गयी थीं और जब वह उठने लगा था तो पट्टी की ओर को खिसकते हुए उन्हों ने कहा था कि वह लेटा रहे, अभी वे उठ जायेंगी। उन्हें कभी कभी दिल की तकलीफ़ हो जाती है।

"आप को दिल की तकलीफ़ है," घबरा कर उस ने कहा, "मैं डाक्टर को बुला लाऊँ"

पर उन्होंने उसे रोक दिया था। उस का हाथ लेकर अप ने दिल पर रख लिया था। उनका दिल बेतरह धड़क रहा था। जगमोहन पहले डर गया था, पर जब उन्होंने कहा कि वह ऐसे ही दबाये रहे, वे ठीक हो जायेंगी तो वह आश्वस्त हो गया था। पर उस का अपना दिल बेतरह धड़कने लगा था और फिर दिल ही ने नहीं, उस के विवेक ने भी जवाब दे दिया था।

शारीरिक-आनन्द के बावजूद जो उसे उस साँझ सत्या जी के अति निकट-सम्पर्क में मिला था, कहीं गुनाह का अहसास भी जगमोहन के अन्तर पर बोझ बन कर बैठ गया था। 'यह ठीक नहीं है।' बार बार उस का अन्तर उसे यही कह रहा था। उस के कई हमजोली अपने यथार्थ अथवा काल्पनिक-प्रेम के किस्से बड़े चटखारे लेकर सुनाया करते थे। ऐसे अवसर की प्राप्ति जिस में किसी युवती का ऐसा निकट-सम्पर्क मिले, शायद उन के लिए जीवन-यौवन की चरम-परिणति थी। पर

जगमोहन को वह सब ठीक न लग रहा था। समाज क्योंकि विवाह के पहले ऐसे संबंध को पाप मानता है, इसलिए जगमोहन भी गुनाह के अहसास से दबा जा रहा हो, शायद ऐसी बात न थी। वही गुनाह दोनों गुनाहगारों के परस्पर विवाह-सूत्र में बँधने पर समाज की दृष्टि में गुनाह नहीं रहता, जगमोहन यह बात जानता था और समाज का यह 'लाइसेंस' उसे खासा हास्यास्पद लगता था। उस के हृदय में जो बोझ था, उस का कारण दूसरा ही था। उसे लगता था जैसे उस क्रिया में उस की अपनी कामना का अभाव था। गर्मियों में बच्चा पानी के भरे पोखर में कूदता है, छलाँगें लगाता है, डूबता-उतराता है और उसे उस खेल में एक अकथनीय-उल्लास और पुलक का आभास मिलता है, किन्तु यदि उसे पोखर में बरबस धकेल दिया जाय, अथवा अनिच्छापूर्वक वह उस में कूदने को विवश हो जाय तो उस स्वाभाविक-आनन्द के बावजूद जो गर्मी के दिन पानी से लबालब भरा पोखर, शरीर को देता है, उस का मन खिन्न और मलिन ही रहेगा। जगमोहन के मन की दशा कुछ उसी लड़के ऐसी थी। अपनी उस खिन्नता और मन के बोझ का वह ठीक-ठीक कारण न ढूँढ पा रहा था। तब मन ही मन उस ने तय किया कि अब यदि सत्या जी आयीं तो वह उन्हें ठीक ठीक स्थिति समझा देगा और सख्ती से मना कर देगा कि वे उस के यहाँ न आयें।

किन्तु साँझ को जब वे आयीं तो जगमोहन न ठीक ठीक अपनी मानसिक स्थिति समझा सका और न अपने स्वर में सख्ती ला सका। वे आयीं तो बड़ी खुश खुश थीं। कुछ धूप में चलकर आने के कारण और कुछ मन के उल्लास से उन के गाल गुलाबी हो रहे थे। आते ही उन्होंने जगमोहन के सामने चालीस रुपये के नोट रख दिये और बताया कि वे सुबह ही प्रोफ़ेसर साहब के गयी थीं और यद्यपि उन्होंने बहुतेरा

टाला, पर वे चालीस रुपये लेकर हिलीं। "संस्कृति-समाज की महिला-मन्त्री होना आज काम आया," उन्हों ने हँस कर कहा, "नहीं आप के रुपये लाने में खासी कठिनाई होती।"

इतना कह कर जैसे वे थक कर बैठ गयीं और उन्हों ने अपनी खादी की मोटी साड़ी से चेहरे का पसीना पोंछा।

जगमोहन वह बात उन से करे, उस से किसी तरह न बन पड़ा। कुछ क्षण दोनों चुप बने रहे। सत्या जी आँचल से हवा करती रहीं और जगमोहन सोचता रहा कि कैसे वह सब उन से कहे। अन्त में वह जो कुछ बोला, वह साँझ की घटना के संबंध में नहीं, बल्कि उमस के संबंध में था। "बड़ी उमस हो गयी है," उस ने कहा, "आप इतनी दूर से आयी हैं, आप को प्यास लग आयी होगी। मैं लस्सी बना लाऊँ।"

"नहीं नहीं आप बैठिए।"

लेकिन वहाँ बैठना उस के लिए कठिन हो रहा था। "नहीं नहीं मैं अभी लाता हूँ।" कहते हुए उस ने कुर्ता पहना और नीचे भाग गया। होतूसिंह रोड से बर्फ और दूध लाते और लस्सी के गिलास बनाते हुए उस ने तय कर लिया कि वह कैसे बात करेगा। वे उसके लिए इतना कष्ट मोल ले रही थीं, स्थूल-रूप से उन्हें डाँट देना उस के बस के बाहर की बात थी। इसलिए उस ने सोच लिया कि वह अपने बड़े भाई का नाम लेकर उन को वहाँ आने से मना कर देगा।

लेकिन ऊपर जाकर लस्सी का भरा गिलास देते हुए उसने जो बात शुरू की तो पिछली साँझ की घटना से उस का कोई संबंध न था।

"आपने बड़ा कष्ट किया," स्वयं भी लस्सी का घूँट भरते हुए उस ने कहा, "पहले प्रो० कपूर के गयीं और अब प्रो० स्वरूप के, पर मैं सोचता हूँ कि एम० ए० करने से कुछ लाभ नहीं। फ़ार्म तो मैं भर आया हूँ, पर अब मेरी तनिक भी इच्छा एम० ए० करने की नहीं।"

सत्या जी ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप लस्सी पीती रहीं। अब जगमोहन क्या करे, उसकी समझ में न आया। दो-एक घूंट भर कर उसने अपने पहले कथन की सफ़ाई दी, "मैं जितना सोचता हूँ, पाता हूँ कि मेरी यह आकाँक्षा विफल सी आकाँक्षा है। मैं ने एम० ए० कर भी लिया तो क्या तीर मार लूँगा!"

सत्या जी अब भी चुप रहीं। लेकिन जिस प्रकार अमावस के अँधेरे में मार्ग न सूझ पाने पर भी, बीच रास्ते में रुकने के बदले, मनुष्य चलता रहता है, उसी प्रकार जगमोहन अपनी उसी बात का तार पकड़े कहता गया। सहसा उसे एम० ए० न करने के संबंध में वसन्त की युक्ति याद आ गयी और उस ने शब्दशः उसे दोहरा दिया।

"अव्वल तो अपनी इस साधन-हीनता से मुझे विश्वास नहीं कि मैं एम० ए० की यह नदी पार कर जाऊँगा। फिर पार कर भी गया तो थर्ड-क्लास एम० ए० करके क्लर्की करने की अपेक्षा एम० ए० किये बिना भी क्लर्की की जा सकती है।"

"क्लर्की क्यों?" सहसा उन्होंने कहा और अपने स्वभाव के विपरीत निगाहें तनिक ऊपर उठायीं, "आप तो प्रोफ़ेसर होना चाहते हैं न कालेज में!"

"चाहने भर से तो मैं लेक्चररशिप पा न जाऊँगा।" जगमोहन ने कहा और उस ने फिर वसन्त के शब्द दोहरा दिये। "फ़र्स्ट क्लास एम० ए० हो, फिर बी० टी० हो, साथ में कोई सिफ़ारिश हो, तब कहीं लैक्चररशिप मिल सकती है। बिना उस के यदि कहीं प्राइवेट कॉलेज में नौकरी मिली भी तो वह क्लर्की से भी गयी गुज़री होगी।

सत्या जी चुप रहीं।

"फ़र्स्ट क्लास पाने के लिए मैं परिश्रम भी कर सकता हूँ," उस ने लस्सी का खाली गिलास मेज़ पर रखते हुए कहा, "अव्वल तो इतिहास लेकर फ़र्स्ट क्लास पाना कठिन है—विज्ञान और गणित मेरे विषय

नहीं—फिर परिश्रम करने के लिए भी तो समय चाहिए। वह शायद इस दौड़-धूप में मुझे न मिल सके।"

"पर क्या ज़रूरी है कि एम० ए० करके नौकरी ही की जाये।" सत्या जी के स्वर में वह प्रोत्साहन-मिला-उपदेश था जो हठी बच्चे को समझाने वाली माँ के स्वर में होता है। "आप संसार भर का इतिहास पढ़ेंगे, आप का ज्ञान बढ़ेगा। अव्वल तो आप क्लर्की करें ही क्यों? और करें भी तो आप क्लर्की करते हुए भी शेष क्लर्कों से बेहतर होंगे।"

जगमोहन क्षण भर चुप रहा, क्योंकि बात उन की ठीक थी, फिर बोला, "हाँ यह आप ठीक कहतीं हैं, पर मेरे पास साधन कहां? कल प्रो० कपूर मुझ से नाराज़ हो जायँ तो मेरी पढ़ाई धरी की धरी रह जायगी।"

"उस की आप चिन्ता न कीजिए। प्रो० कपूर नाराज़ हो जायेंगे तो भी आप को कष्ट न होगा। फ़ीस आदि का प्रबन्ध हो जायेगा। जब तक मैं नौकरी करती हूँ, कोई चिन्ता नहीं।"

अब जगमोहन को वह बात कहने का अवसर मिल गया जिस के लिए वह इतना घुमा-फिरा रहा था। उस ने बाहर की ओर देखते हुए कहा। "मैं नहीं चाहता आप कष्ट करें। आप ने पहले ही बड़ा कष्ट किया है। भाई साहब को आप का यहां आना पसन्द नहीं।"

सत्या जी चुप रहीं।

और उसी तरह बिना उन से निगाह मिलाये, बाहर की ओर देखते हुए, जगमोहन ने भाई साहब की नाराज़गी का ज़िक्र किया। फिर अपनी ओर से जोड़ा, "वे ठीक ही कहते हैं। हम जिस समाज में रहते हैं, उस के नियमों का तो हमें पालन करना ही होगा। मैंने तो इसीलिए 'संस्कृति-समाज' से त्याग-पत्र दे दिया था। लेकिन फिर यह सब हो गया। मेरी ग़लती भी हो तो आप को रोकना चाहिए।

एकांत में तो हमारे बुज़ुर्ग युवा बहन-भाई को भी रहने न देते थे मुझे स्वयं अफ़सोस है। आप यहां न आया कीजिए। मैं भी उधर न जाऊँगा।"

सत्या जी कुछ क्षण बैठी रहीं। फिर उठीं। "अच्छा मैं न आया करूँगी।" उन्हों ने कहा। और फिर उस के निकट आकर बोलीं, देखिए कालेज ज़रूर दाखिल हो जाइएगा। एम० ए० करने में किसी तरह का हर्ज नहीं।" और फिर उन्हों ने दोहराया, "मैं अब न आऊँगी।"

वे कुछ क्षण रुकीं। लम्बी सांस को उन्हों ने सीने में दबा लिया और जैसे फ़र्श से कहा, "मैं सदा जब घर से निकलती हूँ, फ़ैसला करती हूँ, इधर न आऊँगी, पर फिर अर्जुन गली से इधर को मुड़ आती हूँ। लेकिन आप चिन्ता न करें। मैं न आऊँगी।" फिर दो पग चल कर वे मुड़ीं, "आप के उधर आने में तो कोई हर्ज नहीं।" उन्हों ने कहा

"नहीं मैं न आऊँगा। यह सब ठीक नहीं। मैं तो पुरुष हूँ। हिन्दुस्तान में पुरुष के दस खून माफ़ हैं। आप को भुगतना पड़ेगा। मेरा न आना ही ठीक है।"

"अच्छा न आइएगा। पर कालेज में ज़रूर दाखिल हो जाइए। नमस्ते।" और वे चली गयीं।

३८

शाम अभी जवान थी, आकाश में हल्के-हल्के, रीते, श्वेत बादल, बीच में नाम-मात्र को श्यामलता लिये, अनायास झूल रहे थे। देखते देखते डूबते सूरज ने उन्हें अजीब सी गुलाबी चमक प्रदान कर दी। सारे का सारा आकाश गोल गुलाबी बादलों से जगमगा उठा। जगमोहन को चीनी के बारीक गुलाबी तारों के मीठे-मीठे गोलों की याद हो आयी जो तब पंजाब के गली-बाजारों में आम बिकते थे। हथगाड़ी पर लगी छोटी सी मशीन में ज़रा सी रंगीन चीनी डालने पर बड़े बारीक से तार निकलते थे। खोंचेवाले उन के गोले बनाकर, उन्हें हथगाड़ी पर रखे शीशे की दीवारों वाले टीन के कनस्तरों में लगा देते थे। शीशे की दीवारों के अन्दर वे गोल-गोल-गुलाबी-गोले बड़े भले लगते। गलियों में घूमने वाले खोंचा-फ़रोश हथगाड़ी और मशीन के बिना उन्हीं कनस्तरों को बगलों में दबाये, हाथ में घंटी लिये आ निकलते थे। ज्योंही घंटी की आवाज़ सुनायी देती और बच्चों की दृष्टि उन गोल गुलाबी गोलों पर पड़ती तो वे 'बुड्ढी माई दा झाट्टा,' 'बुड्ढी माई दा झाट्टा'[1] चिल्लाते हुए उन्हें आ घेरते। शायद जब चीनी में गुलाबी रंग न मिलता था और किसी बुढ़िया के रजत-केशों ऐसे तार मशीन से

१—बुढ़िया माई के बाल

निकलते थे तो पंजाबी बच्चों ने उन्हें यह अजीब-सा नाम दे दिया था, जो तारों का रंग बदल जाने पर भी प्रचलित था। जगमोहन को लगा जैसे किसी अदृश्य खोंचा-फ़रोश ने लड़कों की शरारत से तंग आकर अपने कनस्तर के सभी गोले आकाश के आँगन में फेंक दिये हैं। वे हवा से फूल गये हैं और बिखर गये हैं।

वह निर्निमेष उन बड़े-बड़े आकाशीय गोलों को देखता रहा। धीरे धीरे उनके गुलाबीपन में नीलाहट दौड़ने लगी। पहले उन का मध्य-भाग नीला हुआ। फिर वह नीलाहट नासूर की तरह फैल कर उन की कोरों तक चली गयी और फिर सारे का सारा आकाश गहरी-काली-नीलाहट से आच्छन्न हो गया।

जगमोहन का मन कुछ विचित्र सी, बेनाम सी उदासी से भर गया। सत्या जी चली गयी थीं और वह दरवाज़े में रुका रहा था। गोपाल नगर तो दूर, वह उन्हें सीढ़ियों तक भी छोड़ने न गया था। रुका रहा था और अनमने-भाव से आकाश के शून्य में तकने लगा था। धीरे-धीरे अचानक गुलाबी हो जाने वाले आकाश ने उस के ध्यान को अपनी ओर खींच लिया था। जब वह गुलाबीपन जैसे अपना रक्त खो देने पर, नीला पड़ गया तो जगमोहन की निगाहें भी उधर से हटीं। उस ने एक लम्बी सांस ली और छत पर टहलने लगा। टहलते-टहलते वह छत के पर्दे के पास जा खड़ा हुआ।

सामने धोबियों ने वर्षा के कारण अन्दर रखे हुए कपड़े रस्सियों पर लटका दिये थे। दिन भर तेज़ धूप रही थी। रात की वर्षा से मैदान में चारों ओर इकट्ठे पानी और कीचड़ से सड़न की कुछ अजीब घुटी-घुटी सी गंध फैल रही थी। सामने इंजनीयर की लाल कोठी पर एक कौआ बेकार काँय काँय कर रहा था। जगमोहन के मन की उदासी कुछ और गहरी हो गया। अपने चौबारे में बैठना उस के लिए दुष्कर हो गया। उस ने कपड़े पहने। चालीस रुपये के नोट उसी प्रकार पड़े थे। उन्हें

देख कर जगमोहन के हृदय में एक तेज़ सी चुभन हुई, पर उसे दबा, उन्हें वैसे ही तकिये के नीचे रख कर उस ने दरवाज़ा बन्द किया। भाभी से कहा कि वह घूमने चला है, देर हो जाय तो खाना उस के कमरे में रख दे और वह सीढ़ियां उतर गया।

नीचे पहुँच कर उस ने सोचा कि चातक जी की ओर जाय। वह हफ़्तों से उधर न गया था। पहले प्रो० स्वरूप के काम में लगा रहा था फिर 'संस्कृति-समाज' से त्याग-पत्र देने के कारण चातक जी आदि से मिलने को उस का मन न हुआ था। फिर एक और भी कारण था, उस का दोष न सही, पर उस के न चाहते हुए भी वह अपवाद सत्या जी को उस के निकट ले आया था। घंटों वे उस के संग बैठी रहती थीं। बाहर जो जुगुप्सा फैल रही थी, उस की भनक उसके कान में पड़ जाती थी। दिन के उजेले में किसी से मिलने को उस का मन न होता था। उस दिन जब उस ने सत्या जी को कभी न आने के लिए कह दिया और उसे विश्वास हो गया कि वे न आयेंगी तो चाहे उन्हें इस प्रकार रोकने से, जब वे उस के लिए इतना कष्ट मोल ले रही थीं, उसे बड़ा दुःख हुआ था, पर उस किस्से के ख़त्म हो जाने से उस के मन को कुछ शान्ति भी मिली थी। उन के लिए उस के हृदय में प्रेम न था, होता भी तो विवाह करने की उस की स्थिति न थी। फिर बेकार बात को बढ़ाने; उन्हें किसी तरह की आशा दिलाने; जिस गांव नहीं जाना बेकार उसकी राह पूछने; बाहर हो रही निन्दा को और हवा देने और इस सब की आग में जलने से लाभ!

और उसने सोचा कि वह चातक जी के यहाँ जाय! उसे चातकजी से मिले बहुत दिन हो गये थे। वे क्या कर रहे हैं? क्या लिख रहे हैं? यह सब जानने को वह बड़ा उत्सुक था। प्रेस में वे मिल जायेंगे, इसकी कुछ वैसी आशा उसे न थी। साँझ के समय उनके कवि-हृदय को दफ़्तर में बैठना घोर अरसिकता लगती थी। प्रेस बन्द करके वे

अनारकली के अपने प्रसिद्ध हिन्दी प्रकाशक 'हिन्दी-पुस्तक-गृह' के यहाँ जा बैठते थे। कुछ दूसरे मित्र भी वहाँ आ जाते। पुस्तकें खरीदने को आने वाली तरुणियों को एक नज़र देखने का अवसर मिलता और मन बहल जाता। वहाँ बहुत भीड़ होती, कुर्सियाँ खाली न होतीं तो कवि चातक शुक्ला जी को दफ़्तर में जा पकड़ते। तब 'शुक्ल-साहित्य-सदन' में जा बैठक जमती। कभी कभी दूसरे दो चार शागिर्द पेशा भंगेड़ी आ जुटते। उन में से कोई भाँग घोंटने का ज़िम्मा अपने सिर ले लेता और खूब भाँग छनती।

अभी इतना समय न हुआ था कि शुक्ला जी का दफ़्तर बन्द हो जाता, इसलिए जगमोहन घोड़ा अस्पताल की ओर तेज़ तेज़ कदम उठाने लगा। उस का विचार था कि यदि चातक जी प्रेस में न मिले तो 'हिन्दी-पुस्तक-गृह' देखता हुआ वह शुक्ला जी के दफ़्तर जायगा और उन का पता करेगा। यदि वहाँ भी न मिले अथवा गोपाल नगर चले गये तो वह उन के घर जायगा और भाभी ही से मिल आयेगा। इतने दिन हो गये, वह एक बार भी उधर नहीं गया। वह चातक जी से चाहे न मिलता, पर भाभी से तो उसे अवश्य मिल आना चाहिए था—एक अजीब-ग्लानि से उस का मन भर आया और पिछले कई सप्ताह उस की आँखों के सामने घूम गये। अपनी दशा उसे कुछ उस व्यक्ति की सी लगी जो एक बड़े, खुले, प्रशस्त-पथ पर चला जा रहा हो कि अचानक वह पथ उसे एक घने जंगल में ले जाय, क्षण-क्षण सँकरा होता जाय और उसे लगे कि वह उस पथ पर चलता गया तो सदा के लिए उस जंगल के अँधेरे में खो जायेगा। बाहर निकल कर रोशनी न देख पायेगा। कभी खुली हवा में सांस न ले पायेगा। फिर वह अचानक उस मार्ग को छोड़ दे। तब वह चकित हो देखे कि सामने प्रकाश फैला है और स्वच्छ हवा मैदान की सोंधी-सोंधी, खुली-खुली, प्राणवान-गंध लिये उस के नथनों में भरी जा रही है।

जगमोहन ने सुख की लम्बी साँस ली। शुक्र है कि वह जंगल के अँधेरे से निकल आया। वह बढ़ा जाता तो उस अँधेरे और घुटन में खो जाता आजादी से साँस लेना उस के नसीब में न होता।

लेकिन बार बार इस बात का शुक्र करने और लम्बी साँस लेने के बावजूद, उस के मन को कुछ विचित्र सा बोझ दबाये जा रहा था। पिछले कुछ दिनों की स्मृतियों में उलझा वह कभी चातक जी को कोसता, जिन्हों ने 'संस्कृति-समाज' खोल कर उसे मंत्री बनाया; कभी शुक्ला जी को जिनके अपवाद ने सत्या जी को उन के निकट कर दिया; कभी सत्या जी को जो लाज-शर्म छोड़ कर उस के घर आने लगीं; कभी अपनी परिस्थितियों को जिन के कारण वह इतना बेबस हो गया कि सत्या जी को उसकी सहायता करने का साहस हुआ और कभी अपनी दुर्बलता को जिसके कारण वह कठोर न हो पाया और उस जाल में उलझ गया ....

और उस की चाल धीमी हो जाती और वह बोझ जैसे उस के मन को दबाने लगता।

वह इसी चक्कर में सोचता तीव्र-मन्द गति से चलता गया—प्रसन्न होता कि अच्छा हुआ वह इस सब उलझन से निकल गया और सुख की लम्बी साँस लेता; कुछ पग तेज़ तेज़ बढ़ता, लेकिन दूसरे क्षण फिर भगतराम या चातक जी या शुक्ला जी या सत्या जी अथवा अपने आप को कोसने लगता और उस की गति मन्द हो जाती।

प्रेस में पहुँच कर उस ने देखा कि प्रेस बन्द है और उस के फाटक पर बड़ा सा ताला पड़ा है। कुछ और ध्यान से जगमोहन ने देखा तो उसे लगा कि जैसे वह कई दिनों से खुला नहीं। क्योंकि ताले को जंग-सा लग रहा था और नाली का कीचड़ किसी दिन वर्षा के कारण भर कर जो उस के किवाड़ों तक आया था तो वहीं टिका था।

जगमोहन वापस फिरा। 'हिन्दी-पुस्तक-गृह' अनारकली पहुँचा।

मालूम हुआ कि चातक जी तो कई दिन से उधर नहीं आये, बल्कि उन की एक पुस्तक के प्रूफ़ उन के यहाँ गये थे, जो लौट आये। तब जगमोहन शुक्ला जी के दफ़्तर पहुँचा, पर इस सारे चक्कर में उसे देर हो गयी थी और शुक्ला जी दफ़्तर से घर जा चुके थे।

शुक्ला जी का दफ़्तर सरक्यूलर रोड पर था। पहले जगमोहन ने सोचा कि अमृतधारा रोड जाने के बदले वह मोहन लाल रोड से इक्के पर बैठ जाय और गोपाल नगर जाकर 'शुक्ल-साहित्य-सदन' उतरे! कवि किसलय या कटिंक या चातक जी वहां हों तो उन के साथ कुछ समय बिताये! पर शुक्ला जी से उसे कुछ ऐसी चिढ़ थी कि उन के यहाँ बहुत देर बैठना और उन की व्यंगपूर्ण, घटिया बातें सुनना उसे अच्छा न लगा। उस की अपेक्षा भाभी के पास जाना, उन के सुख-दुख की सुनना और अपनी सुनाना उसे कहीं बेहतर दिखायी दिया और वह उधर को चल पड़ा।

पर जब वह रेलवे रोड और सब्ज़ी मंडी पार कर, अमृतधारा रोड की गली में चातक जी के मकान पर पहुँचा उसे वहां भी ताला लगा मिला।

जगमोहन का मन एक अजीब निराशा से भर गया। सत्याजी के प्रति अपने दुर्व्यवहार का बोझ उस शाम की उदासी और उतना लम्बा मार्ग तय करने की थकन के साथ मिल कर, जैसे कई गुना हो, उस के मन-प्राण पर आ बैठा।

वह अनमने-भाव से मुड़ा और उस ने जैसे मन भर का पग वापस ऋषि नगर चलने के लिए उठाया, पर तभी उसे दायीं ओर से शुक्ला जी आते दिखायी दिये।

"कहो भाई तुमने तो ईद का चांद हो गये" उन्हों ने मूँछों में मुस्कुराते और खैनी के रस को बाहर निकलने से बचाते हुए कहा।

जगमोहन ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया। "कहिए कैसे मिज़ाज

हैं ?" उस ने पूछा।

"हमारा क्या है, न सावन सूखे, न भादों हरे। हम कवि तो हैं नहीं कि रस टपके। वह सब तो तुम लोगों के लिए है। कहो कैसे हाल चाल हैं ? मज़े हैं ना ?"

'मज़े' पर शुक्ला जी ने ज़ोर दिया, पर जगमोहन ने उस ज़ोर और उस में निहित व्यंग की ओर ध्यान नहीं दिया। बड़े शिष्टाचार-भरे-स्वर में उस ने कहा, "आप की दुआ से सब ठीक चल रहा है।"

तब उन्होंने शिकायत की कि वह 'संस्कृति-समाज' में क्यों नहीं आता। उस के त्यागपत्र देने से सारा भार उन पर आ पड़ा है। "अरे भई दोस्तों के मज़ाक का ऐसा बुरा मान जाते हो ?" उन्होंने कहा और उसे लगभग आलिंगन-बद्ध करते हुए उन्होंने अनुरोध किया कि वह 'संस्कृति-समाज' में अवश्य आया करे।

कुछ तेज़ बात कहने के बदले जगमोहन ने कहा कि उस ने एक आध ट्यूशन ले ली है और कालेज में दाखिल हो गया है। एम० ए० की पढ़ाई है और उस के पास समय नहीं। तो भी वह आया करेगा। त्यागपत्र उस ने काम के आधिक्य के कारण दिया था, नहीं और कोई बात नहीं।

"अरे भई सत्या तुम्हारे यहां आती है तो हमें क्या ? मज़े करो, ऐश लो, पर मित्रों को भी न भूलो।"

जगमोहन ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। "चातक जी के क्या हाल हैं ?" उस ने पूछा, "कहीं चले गये हैं क्या ? प्रेस में भी ताला लगा है और घर में भी।"

"चातक जी के मज़े हैं। प्रेमी-जीव हैं और प्रेम के अभाव में स्वाति की बूँद के बिना सचमुच के चातक हैं।" और शुक्ला जी ठोढ़ी को तनिक ऊपर कर हँसे। "बीवी को उन्होंने उस के मैके भेज दिया है और मिसेज़ शर्मा के चक्कर में पड़े हैं। कविताओं पर कविताएँ लिख

गली जाती है, उस में जाकर बायें हाथ को मुड़ने वाली गली में, अंतिम मकान की दूसरी मंजिल पर श्री कर्मा रहते हैं। यह सब बता कर और जगमोहन को अच्छी तरह समझा कर उन्होंने उस से कहा कि चातक जी का अनुकरण न करें और कभी कभी गोपाल नगर भी दर्शन दे दिया करें। यह अनुरोध कर हँसते हुए और ठोड़ी को आगे कर, सुर्ती के रस को गिरने से बचाते हुए वे चले गये।

जगमोहन गंदे नाले की ओर बढ़ चला।

रहे हैं। 'संस्कृति-समाज' के गत-अधिवेशन में उन्होंने एक कविता पढ़ी थी—बेचैनी के घूँट—क्या बात है !"

"मिसेज़ कर्मा ? यह कौन देवी हैं ?"

श्री विश्वकर्मा जरनलिस्ट हैं, उन की श्रीमती हैं। कुछ बेकार थे बेचारे। लाहौर में भाग्य आज़माने आये थे। श्री चातक उन्हें यहां जमाने पर तुले हैं और साथ साथ स्वयं भी वहाँ पैर जमा रहे हैं।"

और शुक्ला जी ने आँख दबायी। जगमोहन ने उस ओर ध्यान नहीं दिया और पूछा, "तो क्या वे लोग चातक जी के यहां ठहरे हैं ?"

"यहीं निकट ही गंदे नाले की ओर चातक जी ने उन्हें फ़्लैट ले दिया है। भाभी तो हैं नहीं, इसलिए स्वयं खाना वहीं खाते हैं। मैं वहीं से आ रहा हूँ। चाहता था ज़रा ले चलूँ उन्हें 'गोपाल नगर' तक, पर वे तो अब उसी फ़्लैट के बन्दी हैं।"

और उन्हों ने व्यंग-भरी लम्बी सांस लेते हुए ऐसे खीसें निपोरीं कि सुरती का रस बाहर निकलता निकलता बचा।

जगमोहन ने बताया कि वह बहुत दिनों से उन से नहीं मिला। आज आया तो उन का कहीं पता ही नहीं चला। उन के प्रेस, हिन्दी-पुस्तक-गृह, शुक्ला जी के दफ़्तर—सब जगह ढूँढ़ता यहां आया था और निराश जा रहा था.........

"अरे अब इतनी दूर आये हो तो और चार कदम बढ़ कर उन से मिल आओ। श्रीमती कर्मा के दर्शन भी हो जायेंगे। चातक जी तो गीत ही लिख रहे हैं, कौन जाने तुम कोई महा-काव्य ही लिख दो।"

और वे हँसे।

जगमोहन ने उस ओर ध्यान नहीं दिया और श्री कर्मा के घर का पता पूछा। तब शुक्ला जी ने वहीं धरती पर उस का मान-चित्र बना कर समझा दिया कि गंदे नाले में डाक्टर गिरधारी लाल की दुकान के आगे जो सड़क निस्बत रोड को गयी है, उस में मुड़ने पर दायें हाथ को जो

गली जाती है, उस में जाकर बायें हाथ को मुड़ने वाली गली में, अंतिम मकान की दूसरी मंजिल पर श्री कर्मा रहते हैं। यह सब बता कर और जगमोहन को अच्छी तरह समझा कर उन्होंने उस से कहा कि चातक जी का अनुकरण न करें और कभी कभी गोपाल नगर भी दर्शन दे दिया करें। यह अनुरोध कर हँसते हुए और ठोड़ी को आगे कर, सुर्ती के रस को गिरने से बचाते हुए वे चले गये।

जगमोहन गंदे नाले की ओर बढ़ चला।

३९

श्रीमती कर्मा के लाहौर आने से पहले कवि चातक प्रेम और सौन्दर्य के गीत भूल कर आग उगलने लगे थे, पर श्रीमती कर्मा के आगमन ने उन के हृदय की जलती-तपती-भूमि पर वर्षा की पहली बून्दियों-का-सा काम किया। कवि के चिर-सोये प्रणय-गीत फिर जाग उठे और उन के हृदय का मरु जो उस संगीत के अभाव में मौन, निस्तब्ध पड़ा था, एक बार फिर उन की गुंजार से मुखरित हो उठा।

चातक जी दिल के कवि थे, पर दुनिया में पग पग पर दिमाग़ की आवश्यकता पड़ती है। भले-बुरे, हानि-लाभ की सोच दुनिया के साथ चलने की पहली शर्त है। कवि चातक, लेकिन, बस कोरे कवि थे। व्यावहारिकता उन्हें छू न गयी थी। हानि-लाभ का लेखा-जोखा उन के बस की बात न थी। हिसाब-किताब में जी खपाना वे अपने कवि का अपमान समझते थे। ज़िन्दगी के ऊँच-नीच, सम-विषम मार्ग उन्हें परेशान कर देते थे। वे तो चाहते थे—नदी किनारे एक झोंपड़ी हो, उसमें उन की प्रेयसी हो और वे हों; (प्रकट है कि प्रेयसी से उन का मतलब अपनी पत्नी से न था) उन की प्रेयसी गाये और वे वीणा बजायें, उन की प्रेयसी नाचे और वे गायें! अधरों की मुस्कान हो, हृदय की

धड़कन, आँखों की चल-चितवन और मन का पागलपन हो! अपनी इस छोटी सी माँग को उन्होंने अपनी एक कविता में यों व्यक्त किया था :

हम ने जग से अधिक न चाहा, केवल चाहा नदी किनारे,
छोटी सी कुटिया, स्वर जिसमें, गूंज रहे हों प्राण तुम्हारे!
अधरों की मुस्कान; हृदय का स्पन्दन; आँखों की चल-चितवन;
चंचल-पग; पायल की रुनझुन; उत्कंठित मेरा पागलपन!
तुम गाओ मैं वीण बजाऊँ!
तुम नाचो मैं गीत सुनाऊँ!
जग का यह सब छल-बल प्रेयिसी,
लगा तुम्हारे अंक भुलाऊँ!

पर यह बात उन की समझ में न आती थी कि उन की यह छोटी सी इच्छा मुग़ल-सम्राट जहाँगीर का वैभव और उस वैभव के पीछे मुगलों की शक्ति या फिर आदि-मानव की संकुचित दुनिया चाहती है। जीवन के प्रतीक्षण बढ़ते हुए संघर्ष में शान्ति के चन्द क्षण पाने के लिए सुबह से शाम तक जूझना जरूरी है। नदी का किनारा, छोटी सी कुटिया और अकंटक-शाँति का सपना आज के संघर्ष-मय जीवन में रूमानी सपना है। जब चातक जी की यह इतनी सी माँग पूरी न होती और वे देखते कि एक ओर घर में उन की बीवी और बच्चे उन को चिकोटियाँ काटते हैं तो दूसरी ओर प्रेस के कम्पॉज़ीटर, मशीन मैन, और कर्ज़दार उन की बोटियाँ नोचते हैं; जिन को काम करके दिया है, वे पैसे नहीं देते और पग-पग पर उन्हें अपमानित होना पड़ता है तो उन का जी चाहता—ऐसी फुफकार मारें कि यह सारी की सारी दुनिया भक से उड़ जाय! तब इन सारी विषमताओं के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर, उन्हें भस्मसात कर देने को उद्विग्न हो, वे चिल्ला उठते :

आग लगा दूं इस दुनिया को, जिस ने मेरे स्वप्न जलाये,
मधु पीने वालों को जिस ने, बरबस विष के जाम पिलाये,

किंतु यदि कवि दुनिया के छल-प्रपंच, ऊँच-नीच से भाग कर आत्म-हत्या करने की धमकी दे तो दुनिया में उस पर हँसने वाले, उस की निर्बलता का मज़ाक उड़ाने वाले अथवा सब्र-संतोष पर उसे लेक्चर देने वाले बहुत मिलेंगे, पर उस की अकर्मण्यता को प्रश्रय देकर, उस का वह शाँतिमय नीड़ बना देने वाला कोई विरला ही शायद मिले— विशेषकर किसी ऐसे प्रादेशिक कवि को, जिस ने अपनी ख्याति का डंका भारत भर में न बजा दिया हो।

कवि चातक को जग की इस हृदय-हीनता का भी पर्याप्त-अनुभव हुआ था। जब प्रेस उन का न चला और दो-दो तीन-तीन महीने का वेतन मशीन मैनों और कम्पॉज़िटरों को न मिला तो उन लोगों ने हड़ताल कर दी। दो तीन बार पहले भी हड़ताल हुई थी, तब एक बार श्री धर्म देव ने और दूसरी बार शुक्ला जी ने बीच-बचाव कर दिया था और आख़िर चातक जी ने एक छोटी ट्रेडल और कुछ टाइप बेच कर अपने कर्मचारियों का वेतन और ऋण-दाताओं का कर्ज़ चुकाया था। यदि वे प्रेस में बैठते और जी लगा कर काम करते तो उन का प्रेस चलता रहता और फिर कठिनाई न होती, पर काम में उन का मन न लगता था। प्रेस दिन रात का जो श्रम चाहता है, उस से भाग कर वे किसी काल्पनिक-प्रेयसी की गोद में जा बैठना पसन्द करते, प्रेम के गीत लिखते और सभाओं में नव-वय के लड़के-लड़कियों को सुना कर प्रशंसा पाते। कभी-कभार जोश में आकर मशीनों को चलता रखने के लिए अपने रुसूख़ के बल पर जो काम वे लाते, उन की इसी पलायन-वृत्ति के कारण समय पर न होता या अच्छा न होता और मज़दूरी या मारी जाती या समय से न मिलती। काम पूरा करने से पहले ग्राहक से कैसे रुपये ऐंठे जाते हैं, अथवा किया हुआ काम उठाने से पहले कैसे प्रेस की मज़दूरी ले ली जाती है— इन सब हथकंडों से वे अनभिज्ञ थे और बुरे काम के अथवा समय पर न मिलने वाले काम के पैसे अपने आप आ

कर देने वाले इस स्वार्थी-संसार में उतने अधिक नहीं। नतीजा यह हुआ कि फिर कई महीने का वेतन उन के सिर हो गया और मज़दूरों ने फिर हड़ताल कर दी। जब चातक जी मज़दूरों को किसी प्रकार काम करने पर राज़ी न कर सके तो झल्ला कर उन्होंने प्रेस को ताला लगा दिया। मज़दूर धरना देकर बैठ गये। उन में से कुछ मनचलों ने उन को बीच बाज़ार पकड़ लिया और झगड़े में एक आध झांपड़ भी हवा में छोड़ दी।

इस अपमान से कवि के हृदय को बड़ा धक्का लगा। उन का मन हुआ कि एक दम आत्म-हत्या कर लें। तब अपने कुछ मारवाड़ी सेठ-मित्रों को, जिनके दरबार में अपनी प्रेम-सनी कविताएँ सुना कर उन्होंने कई बार दाद पायी थी, उन्होंने लम्बे-लम्बे पत्र लिखे कि यदि इस संकट में उन की सहायता न की गयी तो वे आत्म-हत्या कर लेंगे। अपने पत्रों को बल देने के लिए उन्होंने तार भी छोड़ दिये :

'आत्म-हत्या की सोच रहा हूँ, तत्काल सहायता भेजिए !'

उन का विचार था कि चिट्ठियों के उत्तर में सभी जगह से नहीं तो चार पाँच जगह से अवश्य हज़ार-हज़ार दो-दो हज़ार रुपया आ जायगा और वे संकट-मुक्त हो जायेंगे, पर जब कहीं से रुपया न मिला और दो एक जगह से केवल समवेदना, एक-आध जगह से आर्थिक-संकट का रोना और शेष जगह से चुप्पी हाथ आयी तो कवि का मन बड़ा खिन्न हुआ। उस रात उन्होंने एक साथ दो कविताएँ लिखीं। एक में आँसू थे और दूसरी में आग !

पहली कविता में उन्हों ने लिखा :

दुनिया ज़हर भरी यह इस में, प्राण, और अब रह न सकेंगे !
अधिक परायेपन की इस बहिया में अब हम बह न सकेंगे !
कब तक मौन-रूप से इस अभिनय को हम चुपचाप तकेंगे!
जग की निर्ममता न थकेगी अपने सारे यत्न, थकेंगे !

सदा भिखारी समझा जग ने ,
यहाँ हमारा मान नहीं है !
एक ज़रा से सिक्के जितना ,
जग को अपना ध्यान नहीं है !

और दूसरी में :

प्राण छोड़ दो वीणा, आओ हाथों में तलवार उठायें !
तारों की झंकार नहीं, अब खड्‌ग की खनकार सुनायें !
सुरा नहीं मेरे प्याले में प्राण, रक्त लाओ अब भर कर !
गीत प्रेम के नहीं, जगत में गूंजे मेरे ताण्डव का स्वर !

तहस नहस कर दे दुनिया को ,
देखो लहर चली वह आती ।
मेरी अपमानित वाणी पर ,
महाक्राँति के बोल उठाती ।

तब, जब कवि का सारा ज़ोर कागज़ के पन्नों पर क्राँति के गीत लिख-लिख रखते जाने में लग रहा था, प्रेस को पूर्ववत ताला पड़ा हुआ था और मज़दूर हफ़्ते भर से धरना दिये हुए थे, शुक्ला जी कवि चातक की सहायता को आये। लाहौर की ऐसी एक सभा, जो एक ही समय में साम्प्रदायिक भी थी और काँग्रेस का साथ भी देती थी, सरकार-विरोधी एक पत्र निकालती थी—'रणभरी'! पत्र का आरम्भ तो कई वर्ष पहले, सभा ने 'अहरार-पार्टी' के काश्मीर-आन्दोलन के उत्तर में किया था, पर बाद में सनसनी की कोई बात न रहने के कारण अपने आप वह साप्ताहिक बन्द हो गया था। अब बूचड़खाना-आन्दोलन का लाभ उठाने और अपनी खोयी सत्ता पुनः पाने के लिए पार्टी फिर उस पत्र को निकालने जा रही थी। पर हिन्दी के जो दो चार अच्छे प्रेस लाहौर में थे, वे कोई न कोई बहाना कर के टाल रहे थे। तब शुक्ला जी उन्हें लेकर कवि चातक के पास आये। तय यह हुआ कि सभा प्रेस-

कर्मचारियों का पिछला वेतन दे दे और पत्र चातक जी के प्रेस में छपना शुरू हो। चातक जी को उन्होंने समझा दिया था कि इस तरह कम्पॉज़िटरों के धरने से बदनामी होती है, यदि पत्र सरकार के विरुद्ध ज़ोरदार लेख लिखेगा तो सरकार निश्चय ही प्रेस से ज़मानत माँग लेगी। तब प्रेस को बन्द कर देना बेहतर रहेगा। साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। उल्टे वाह वाह घाते में मिलेगी।

चातक जी को शुक्ला जी का यह प्रस्ताव बड़ा भाया। उन्होंने न केवल पत्र को अपने प्रेस में छापना स्वीकार कर लिया वरन् सम्पादक के रूप में अपना नाम देने की भी इच्छा प्रकट की। सभा वालों को क्या चाहिए था। चुपड़ी और दो दो। उन्हें प्रेस की ही चिन्ता थी, यहाँ सम्पादक की भी समस्या हल हो गयी।

'रण भेरी' का प्रथमा अंक प्रकाशित हुआ तो न केवल मुख-पृष्ठ पर सम्पादक के रूप में कवि चातक का नाम था, बल्कि सारे पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में 'रणभेरी' नाम से उन की कविता भी प्रकाशित हुई थी।

आज बज उठी है रणभेरी, प्रिये उठा कर बीणा धर दो।
बाँध कृपाण कमर में मेरी,, रक्त-तिलक मस्तक में कर दो।
रिपु-सेना में मचे खलबली, ऐसा डट कर युद्ध करें हम।
अपने या रिपु के जीवन के जाने से क्यों तनिक डरें हम?

अग्नि-परी तुम बनो कुमारी,
औ' मैं लप-लप करती ज्वाला।
स्तब्ध विश्व देखे यह अपलक,
अपना ताण्डव-नृत्य निराला।

जब यह पहला अंक छप कर बाहर आया तो 'रणभेरी' पर उनका नाम देख, इस विडम्बना पर कवि चातक के रसिक-मित्रों ने आपत्ति की। "आप का नाम तो 'पारस' 'पराग' 'मंजरी', 'मालती,' 'सुरभि'

'स्वाति' नामक पत्र-पत्रिकाओं पर होना चाहिए था," उन के मित्रों ने कहा, "आप प्रेमी-जीव हैं, आप को यह तोप-तलवार, आग और लोहू के गान नहीं सुहाते।"

तब कवि चातक ने अपने उन मूढ़-मित्रों को समझाया कि वे तो कवि हैं और कवि की प्रतिभा निरंकुश रह कर ही अपने चरम-विकास को पहुँचती है। कवि की प्रतिभा का पंछी स्वतन्त्र-हृदय से आकाश की गहराइयों और बुलन्दियों में तरारे भरता है। वह जो अनुभव करता है, लिखता है, इसीलिए उस की वाणी से कभी स्नेह-निर्झर बहता है, कभी क्रान्ति का ज्वालामुखी फूटता है।

और कवि चातक अपनी धुन में 'रणभेरी' फूँकते रहे और 'श्वास-श्वास से महा-क्रांति का आवाहन' करते रहे कि एक साँझ सरकार ने उन के प्रेस को ताला लगा दिया, 'रणभेरी' के अंक ज़ब्त कर लिये और सशस्त्र-क्राँति के अभियोग मे उन्हें गिरफ़्तार कर लिया।

हवालात में पहुँच कवि ने एक सुख की साँस ली। उन्हें लगा जैसे वे एक बंधन से मुक्त हो गये हैं और अब अपनी कल्पना को घर-बाहर के झंझटों से आज़ाद कर, उन्मुक्त बहने देंगे। जेल उन के लिए नयी न थी। वे पहले भी इस 'स्वराज्य-मंदिर' की सैर कर चुके थे। स्वयं प्रेस बेचते या बन्द करते तो उन्हें अपने मित्र और साले का छै-छै हज़ार रुपया देना पड़ता, अब तो सरकार ही ने, प्रेस को ताला लगा कर, उन की असफलता का सारा बोझ अपने ऊपर ले लिया। प्रेस की उस विपत्ति से छूटे सो छूटे, देश-सेवा का यश घाते में हाथ लगा।

पर जब कुछ दिन बाद अदालत में मामला पेश हुआ और उन पर हिंसा के प्रचार और सशस्त्र-क्राँति के प्रचार का अभियोग लगाया गया और सरकारी वकील ने कड़ी से कड़ी सज़ा की माँग की तो सात वर्ष कड़े कारावास का ध्यान आते ही कवि के होश फ़ाख्ता हो गये। तब अपनी सफ़ाई में महाक्राँति का आवाहन करने वाले अपने गीतों

की जो व्याख्या उन्होंने की, उसे सुन कर उन के मित्र उन की बुद्धि के चमत्कार को देख, प्रशंसा से 'वाह वा' कर उठे।

"मेरे इन गीतों को पढ़ कर आप लोगों ने मुझे हिंसा का प्रचारक साम्यवादी कहने की कृपा की है," कवि ने कहा, "लेकिन यदि आप मेरा विश्वास करें तो मैं कहूँ कि मैं साम्यवाद के सिद्धान्तों का क, ख, भी नहीं जानता। इतना मैंने अवश्य सुना है कि साम्यवाद में हिंसा निहित है और साम्यवादी हिंसा के द्वारा क्रांति चाहते हैं। मैं हिंसा का घोर-विरोधी हूँ, क्योंकि मैं परम-गाँधीवादी हूँ।"

[यहाँ कवि चातक ने अपने गत-जीवन का इतिहास बताया कि कैसे वे परम-गाँधी-भक्त रहे हैं और अहिंसात्मक-असहयोग कर जेल हो आये हैं।]

"रही हिंसक-क्रान्ति की बात," उन्हों ने कहा," तो जो कवि यह लिखता है......'मैं अबोध भोला कवि गाता, गीत प्रणय के मनहर संगिनि'......और जो एक पंछी के दुःख को नहीं देख सकता है, वह मानवों को खड़ग अथवा बन्दूक का निशाना क्या बनायेगा? (यहाँ कवि चातक ने अपनी कविताओं से उद्धरण दे कर बताया कि वे कैसे राजनीति से ऊपर रह कर प्रेम के गाने गाते हैं।) "मेरी कविता में महा-क्रान्ति, महा-प्रलय, अस्त्र-शस्त्र, तीर-तलवार, गोले-गोली शब्द पढ़ कर शायद आपने यह अन्दाज़ा लगाया है कि मैं सशस्त्र-क्रान्ति का पुजारी हूँ," उन्हों ने रोनक्खी सी हँसी के साथ कहा, अभिधा, लक्षणा व्यंजनादि पर एक छोटा सा भाषण दिया और बोले, "मेरी कविता में इन शब्दों को लाक्षणिक-रूप में लेना होगा। क्रांति या प्रलय से मेरा मतलब सामाजिक-क्रान्ति करने वाले प्रयत्नों से है। शस्त्र, तीर-तलवार गोले-गोली से मेरा अभिप्राय उन उपायों से है, जिन के द्वारा सामाजिक-वैषम्य का नाश किया जा सकता है। इसी प्रकार और दूसरे

ऐसे उपायों को हम शस्त्रों की संज्ञा दे सकते हैं, जिन से घातक-शस्त्रों का प्रयोग किये विना ही सामाजिक-वैषम्य को दूर किया जा सके। मैं ने एक जगह लिखा है :

प्राण छोड़ दो वीणा, आओ हाथों में तलवार उठायें!

इसका सीधा-साधा अर्थ यह है कि अब अपने आप को भोग-विलास और ललित-कलाओं में व्यस्त रखने के बदले सामाजिक-क्रान्ति के समर-क्षेत्र में आयें। जब मैं कहता हूँ :

अपने या रिपु के जीवन के जाने से क्यों तनिक डरें हम?

तो यहाँ 'रिपु' से मतलब हाड़-माँस के शत्रु से नहीं, उस की स्वार्थ-भावना से है। मैं यह मानता हूँ......

कवि चातक अपना वे-हड्डी-का-सा सुकोमल हाथ उठा-उठा कर अपने रोते से स्वर में बड़े जोश से बोलते जा रहे थे कि मैजिस्ट्रेट ने उन्हें रोक दिया। एक विद्रूप-भरी मुस्कान उस के ओठों पर फैल गयी। उस ने उन्हें चेतावनी दी कि आगे को वे ऐसी कविताएँ न लिखें, जिन में निहित अहिंसा को उन्हें स्वयं समझाना पड़े! पत्र और प्रेस से उसने तीन-तीन हज़ार रुपये की ज़मानत माँगी और उन्हें छोड़ दिया।

कोई वैसा आन्दोलन तो चल न रहा था। सभी प्रान्तों में कांग्रेस सरकार से सहयोग कर रही थी। इस लिए जो मामला आन्दोलन के दिनों में महीनों चलता, वह एक ही वैठक में खत्म हो गया।

प्रेस और पत्रिका के वन्द हो जाने से कवि एक दम बेकार हो गये, किन्तु अदालत ही से वे एक बड़ा महत्व-पूर्ण काम ले आये। वह काम था लाहौर में श्री विश्वकर्मा तथा उन की सुन्दर पत्नी को बसाना।

श्री कर्मा उन के पूर्व-परिचित थे, नयी नयी उन की शादी हुई थी।

चातक जी के मामले की खबर सुन, अपनी पत्नी के साथ वे अदालत में गये थे। कवि चातक के युगों युगों से 'छवि के लोभी' और 'मधु के प्यासे' नयनों ने श्रीमती कर्मा की छवि देखी तो दिल खो बैठे। बाहर आकर बड़े तपाक से श्री कर्मा से मिले। उन की पत्नी का परिचय पाया। उन की स्थिति समझी। उन का प्रेस होता तो वे उसी में निसंकोच उन्हें मैनेजर बना देते! दुर्भाग्य प्रेस बन्द था। तब उस का रहा सहा टाइप बेच कर उन्होंने उन की सहायता की। कवि-पत्नी घर का खर्च चलाने के लिए अपने भाई से रुपये मँगाती रहीं। लेकिन कवि श्री कर्मा को अपने साथ लेकर सभी पत्रों में घूमते रहे और आखिर एक जगह उन्हें नौकरी दिला दी। श्री कर्मा आर्य-होटल में एक कमरा लेकर ठहरे थे। कवि चातक तो उन्हें अपने घर ले आते, पर पत्नी के डर से उन्होंने ऐसा नहीं किया और उन्हें एक अलग फ़्लैट ले दिया, उस का किराया 'हिसाब-दोस्ताँ दर दिल'* का ख्याल करके अपने पास से दिया और बड़े दिनों के बाद एक प्रेम-कविता लिखी...'पगला रावण'...क्योंकि रावण पर-स्त्री को चुरा लाया था और उस के प्रेम में पागल था, इसलिए उस कविता में उन्होंने रावण का गुण-गान किया और अपने आप को 'कलियुगी रावण' कह, जग के रूढ़िवाद का मज़ाक उड़ाया, जो प्रेम को समझ नहीं पाता।

अपनी उस कविता में उन्होंने रावण से कहलाया :

वेद पढ़े हैं मैं ने सारे; तत्व विश्व का मैंने जाना;
हुआ अमर; है किन्तु मुझे प्रिय प्रेम-युद्ध में जान गँवाना!
लिखने वाले चाहे लिख लें, काला था रावण का आनन;
जो प्रेमी हैं समझ सकेंगे, भरा ज्योति से था उस का मन!

और इस प्रेम-युद्ध में वे एक-निष्ठ होकर भाग ले सकें, इस विचार

*दोस्तों का हिसाब दिल में!

से उन्होंने पत्नी को (यह समझा कर कि जब तक वे कोई नया काम न खोजें, बच्चों समेत उस का वहाँ रहना कष्ट-कर होगा, वे नौकरी अथवा काम पाते ही उसे मँगा लेंगे) उस के भाई के पास भेज दिया; घर के बर्तन-भांडे श्री कर्मा के यहाँ पहुँचा दिये कि वे अपनी गृहस्थी जमा लें, उनकी पत्नी दो एक महीने नहीं आयेगी, तब तक उन का वेतन मिल जायगा और नये बर्तन-भांडे आ जावेंगे...और क्योंकि चातक जी ने उनके लिए इतना किया था, इसलिए श्री कर्मा ने, श्रीमती कर्मा के कहने पर, उन्हें अपने यहाँ ही खाना खाने पर विवश किया। अपने घर से इतनी दूर खाना खाने जाने की मुसीबत कवि के लिए भारी-विपत्ति के बराबर थी, इसलिए अन्ततोगत्वा उन्होंने अपना फ़ॅउँटेनपेन और सिल्प-कापी उठायी और वहीं जा डेरा जमाया। श्री कर्मा तो दफ़्तर चले जाते, कवि चातक कविता करते और श्रीमती कर्मा को रावण के प्रेम का रहस्य बताते।

४०

जगमोहन शुक्ला जी के बताये मार्ग पर ढूँढ़ता-ढूँढ़ता जब आध पौन घंटे बाद श्री कर्मा के फ़्लैट पर पहुँचा और उस ने जा कर दरवाज़ा खटखटाया तो दरवाज़ा एक युवती ने खोला।

"श्री विश्वकर्मा जरनलिस्ट यहीं रहते हैं ?"

"जी !"

'जी' कहने वाली उस युवती की ओर जगमोहन ने आँख उठा कर देखा। उस पहले दर्शन में युवती का गोरा रंग, लम्बी नाक, चंचल आँखें और ओठों पर स्मिति की क्षीण-सी रेखा ही जगमोहन को दिखायी पड़ी। चूँकि युवती उस की ओर ही देख रही थी, इसलिए उस ने आँखें झुका लीं और बोला :

"चातक जी क्या यहीं हैं ?"

"जी !"

और वह उसे अपने पीछे आने का संकेत कर, हल्के-हल्के दोलन में बड़े ही आकर्षक-ढंग से अपने कूल्हे मटकाती हुई, आगे आगे हो ली।

एक छोटी सी गेलरी के अन्त पर, दायीं ओर के एक दरवाज़े की ओर उस ने संकेत कर दिया और बाहर का दरवाज़ा बन्द करने चली गयी।

जगमोहन ने पहले किवाड़ पर 'टक टक' की और फिर उसे तनिक

खोल कर देखा—चारपाई पर अध-बैठे अध-लेटे कवि अपनी आराधना में निरत थे। कुछ पुस्तकें (समकालीन कवियों की) उन के इर्द-गिर्द चारपाई पर बिखरी थीं। जो कविता वे लिख रहे थे, उस की स्लिपें इधर उधर पड़ी थीं। दाढ़ी उन की थोड़ी सी बढ़ आयी थी, बाल कुछ अधिक बिखरे थे और सामने की लटें कुछ और उद्दंड हो माथे पर खेल रहा थीं।

जगमोहन के पैरों की चाप से चौंक कर कवि ने आँखें उठायीं।

"अरे जगमोहन!" उन्होंने चौंक कर कहा, "आओ आओ, बैठो!" और यह कहते हुए उन्होंने स्लिपों को समेट कर उस के लिए जगह बना दी।

जगमोहन उन के पास बैठ गया तो चातक जी ने हाथ की स्लिप पर उस कविता की पंक्ति समाप्त की जो वे लिख रहे थे। फिर उसे भी उन्होंने एक ओर रख दिया, दीवार से पीठ लगायी, जगमोहन की ओर को मुँह किया और टाँगें पसार कर बैठ गये।

"सुना तुम हम से नाराज़ हो गये हो।" उन्होंने अचानक कहा।

जगमोहन निमिष भर चुप रहा, फिर उस ने कहा, "नहीं, नाराज़गी कैसी।"

"मालूम है कितने दिन पर आये हो?"

जगमोहन चुप रहा।

"तुम्हारी भाभी ने कई बार तुम्हारी याद की।"

जगमोहन ने फिर भी कोई उत्तर न दिया।

तुम उस दिन शान्ता के घर नाराज़ हो गये। 'संस्कृति-समाज' को तज दिया सो ख़ैर, पर हमारे यहाँ आना भी छोड़ दिया, ऐसी नाराज़गी भी क्या।"

"नहीं नाराज़गी की बात नहीं," जगमोहन दीवार की ओर देखते हुए बोला, "पहले धर्म जी का काम निबटाने में लगा रहा, रुपया तो

उन्होंने दिया नहीं, केवल तीस रुपये प्रोफ़ेसर साहब से मिले, सो उन से क्या बनता, इसलिए फिर दाखिला जुटाने में व्यस्त हो गया। एक ट्यूशन भी ले ली। आज कुछ अवकाश मिला है तो आया हूँ। प्रेस में ताला, घर में ताला, ढूँढ़-ढूँढ़ कर यहाँ पहुँचा हूँ। शुक्ला जी न मिलते तो शायद मैं गोपाल नगर जाता।" फिर कुछ रुक कर उस ने पूछा, "प्रेस आप ने क्या बन्द कर दिया ?"

"सरकार ने ज़मानत माँग ली।"

"कैसे ?"

"तुम्हें नहीं मालूम ? मैं तो जेल भी हो आया।"

"नहीं मैं तो इतने दिन ऋषिनगर से बाहर ही नहीं गया। समाचार-पत्र तक नहीं पढ़ पाया।"

"हम तो चार दिन तक सरकार के जमाई बन 'स्वराज्य-मन्दिर' में भी रह आये !" कवि हँसे और अपनी चमत्कार-पूर्ण सफ़ाई की बात उन्होंने सविस्तार जगमोहन को सुना डाली।

जगमोहन ने खेद प्रकट किया कि लाहौर में रह कर इतनी बड़ी बात का उसे पता नहीं लगा। फिर कुछ रुक कर उस ने बताया कि भगतराम आदि की बातों से उस का मन ऐसा खट्टा हो गया था कि जब उस ने 'संस्कृति-समाज' से त्याग-पत्र दिया तो फिर उधर भूल कर नहीं गया। साहित्यिकों से उसे कुछ वितृष्णा सी हो गयी, इसलिए इतनी बड़ी घटना का उसे पता न चला। उसे यदि पता चलता तो क्या वह जेल में उन से मिलने न पहुँचता, अथवा भाभी को तसल्ली न देता।

"अरे भाई इतनी सी बात पर नाराज़ हो जाते हो। हमें न जाने क्या-क्या सुनना पड़ता है। पर हम कभी किसी की परवाह नहीं करते। जग ने प्रेम के मार्ग में इतनी बाधाएँ खड़ी कर रखी हैं कि पुरुष वही है, जो उन्हें ढाये और ढाने में सुख पाये। यदि सत्या को तुम से या तुम्हें सत्या से प्रेम है तो क्या हुआ, उस के ज़िक्र से ही क्यों बिदकते हो।

तुम और वह तो आज़ाद हैं. मैं ने एक बन्धन में बँधी हुई प्रेयसी को सम्बोधित कर लिखा है :

प्रेम तुम्हारे घर आया है, तोड़ो सब जग की सीमाएँ,
आओ नग्न प्रकृति से नाचें, छोड़ जगत की मर्यादाएँ।
जग ने तुम को दूर किया, मैं
पास बुलाने को आया हूँ।
पीकर तुमको चिर दिन की मैं
प्यास बुझाने को आया हूँ।

"नग्न प्रकृति से नाचें—मेरा तो यही नारा है।" कवि बोले, "यह दबी-घुटी दृष्टियों का विनिमय मुझे पसन्द नहीं। 'पीकर तुम को' कितनी ज़ोरदार अभिव्यक्ति है। मैं कविता में इसी सीधी और ज़ोरदार अभिव्यक्ति का क़ायल हूँ। वह कविता ही क्या जिस में दबे-प्रेम को ढूँढ़ने लिए खुर्दबीन की ज़रूरत पड़े।" वे हँसे और उन्होंने माथे की लट को पीछे हटाया।

'पर प्रेम के सिवा क्या कविता का और कोई विषय ही नहीं ?' जगमोहन पूछना चाहता था, पर वह चुप रहा।

चातक जी फिर उत्साह से बोले, "जैसे पर-नारी राधा के प्रति कृष्ण के प्रेम को मैं बुरा नहीं समझता, वैसे सीता के प्रति रावण के प्रेम को मैं हेय नहीं मानता। राम का सूखा-कर्त्तव्य सब ने देखा, पर रावण के हृदय की धधकती-ज्वाला किस ने जानी ?"

और कवि चातक उठे। एक कोने में कुछ कागज़ों और स्लिपों के ढेर से ढूँढ कर उन्होंने एक कविता की स्लिपें निकालीं और बोले, "इस कविता का शीर्षक है 'रावण का प्रेम'। मैं ने उस के हृदय के जिस स्तर को छुआ है, किसी इतिहासकार ने नहीं छुआ।"

और वे अपनी कविता सुनाने लगे।

कविता लम्बी थी। चातक जी ने रावण को वीर्यवान और निर्भय योद्धा ही नहीं, अपने जैसा लिजलिजा प्रेमी भी दिखाया था। वह सीता के रूप की सुधा पी 'हाय हाय' करता है। वह राम से इसलिए युद्ध करता है कि सीता को न पा कर वह जीना नहीं चाहता, युद्ध के बहाने मर जाना चाहता है......

जगमोहन का ध्यान कई बार भटक गया, पर जब चातक जी ने कविता समाप्त की तो उस ने शिष्टाचार-वश प्रशंसा कर दी—और कहा कि उन्होंने सीताहरण को एक नये दृष्टिकोण से देखा है जिस के लिए वे बधाई के पात्र हैं।

उत्साहित हो कवि चातक ने कविता की दो पंक्तियाँ फिर सुनायीं—

त्रेता के रावण को सच है
बिंधवाओगी तुम बाणों से।
किन्तु लगाओगी कलियुग के
रावण को अपने प्राणों से।

और बोले, "आज 'बायरन' को कौन अंग्रेज़ युवती प्यार नहीं करती ? बायरन मर्यादाओं को तोड़ देने वाला कलियुगी रावण नहीं तो क्या था ? अपने प्यार को न छिपा कर बीच खेत उस की घोषणा करने वाले 'चातक' की भी आज लोग निंदा करते हैं। पर वह दिन आयेगा जब भारत के लोग उसे पूजेंगे और युवतियाँ उस की कविताओं को प्राणों से प्यार करेंगी।

जगमोहन ने तनिक आँख उठा कर उन की ओर देखा। ग्रीक युद्ध में बायरन की मृत्यु और कचहरी में अपनी सफ़ाई में दिये गये चातक जी के वक्तव्य की याद आ जाने से उस के ओठों पर हल्की सी विद्रूप की रेखा दौड़ गयी। सत्या जी की उपेक्षा के बावजूद उन के प्रति

कवि चातक के प्रेम की बात याद आने से उस ने कहना चाहा, 'पर बायरन' जिन्हें प्यार करता था, वे भी तो उस पर मरती थीं, बल्कि उस पर तो कई ऐसी युवतियाँ भी मरती थीं, जिन से उसे प्यार नहीं था। क्या आप भी अपने बारे में ऐसा कह सकते हैं ?' पर उस ने यह सब नहीं कहा। बात चीत का रुख पलटने के विचार से वह पूछने को हुआ 'अब आप कौन सी कविता लिख रहे हैं ?' पर फिर इस डर से कि कहीं वे उतनी ही लम्बी कविता सुनाने न बैठ जायँ, उस ने ओठों पर आती हुई अपनी बात रोक ली। क्षण भर तक वह प्रेम में दयनीय सी बनी, मजनूं-की-सी उन की सूरत देखता रहा, फिर उस का जी उस कमरे की घुटन-भरी-उमस से उठ भागने को व्यग्र हो उठा।

"पानी न होगा एक गिलास यहाँ ?" अचानक उस ने कहा।

कवि सचमुच अपनी नयी लिखी कविता सुनाने जा रहे थे। जगमोहन की बात सुन कर बोले, "उधर रसोई-घर से पी आओ !" पर फिर जगमोहन के संकोच को देख कर उठे।

"चलो तुम्हें पानी भी पिला दें और कुम्मो जी से तुम्हारा परिचय भी करा दें।"

"कुम्मो जी कौन ?"

"विश्वकर्मा की पत्नी। पूरा नाम कुमोद है, पर मैं कुम्मो ही पुकरता हूँ।"

जगमोहन कवि के पीछे पीछे बाहर निकला। युवती, जिस ने दरवाज़ा खोला था, सामने गेलरी के बारजे पर खड़ी बाहर की ओर देख रही थी।

"कुम्मो जी घर में नींबू होगा ?"

"अभी देखती हूँ।"

और वही स्मिति ओठों पर लिये हुए कुम्मो जी उसी प्रकार मटकती हुई-सी उन के पास से निकल, किचन में चली गयीं।

दोनों उन के पीछे-पीछे रसोई-घर में गये। चातक जी अन्दर चले गये। कुम्मो जी सब्ज़ी की टोकरी में नींबू देख रही थीं, वे उन के पीछे जाकर, उन के कंधे के ऊपर से टोकरी ही में, नींबू देखने में उन की सहायता करने लगे। जब कुम्मो जी को नींबू मिल गया तो उसे उन के हाथ से ले कर रसोई-घर के ताक में पड़ा नींबू-निचोड़ चातक जी ने उठाया और उसे कोने के नल पर धोने लगे।

"लाइए मैं बना दूँ," श्रीमती कर्मा ने कहा।

"तुम चीनी घोलो मैं नींबू निचोड़ता हूँ।" चातक जी बोले और नींबू काटने लगे।

शर्बत पी कर जगमोहन ने कहा, "अच्छा अब मैं चलता हूँ, देर हो गयी है और मुझे ऋषि-नगर जाना है।"

"अरे यहीं खाना खा कर जाओ अब!" चातक जी ने कहा और श्रीमती कर्मा से अनुमोदन चाहते हुए बोले, "क्यों कुम्मो जी।"

"हाँ हाँ, खाना खा कर जाइए," कुम्मो जी ने कहा, "तरकारी तो तैयार है। आटा अभी गूँथे लेते हैं।"

"हाँ हाँ, लाइए मैं आटा गूँथ दूँ।" और बिना उन का उत्तर सुने, ऐसी स्फूर्ति से, जो जगमोहन ने पहले कभी चातक जी में न देखी थी, वे टीन के कनस्तर से आटा निकाल, छलनी में डाल, उसे परात में छानने लगे। श्रीमती कर्मा तरकारी देखने लगीं।

जगमोहन वहीं दहलीज़ में बैठ गया। तब आटा छानते हुए चातक जी ने जगमोहन को कुम्मो जी का और कुम्मो जी को जगमोहन का परिचय दिया।

"श्री विश्वकर्मा कब आयेंगे दफ़्तर से?" सहसा जगमोहन ने पूछा।

"उन की नाइट-ड्यूटी है। तुम्हारे आने से कुछ ही पहले गये हैं।" चातक जी बोले।

"खाना ...."

"खाना उन के दफ़्तर का चपरासी ले जाता है।" इसी गली में रहता है।

और आटा छान कर, उस में पानी डाल, कवि बड़े इतमीनान से उसे माड़ने लगे।

४१

कुछ दिन बाद, जब साँझ समय जगमोहन का मन फिर ऊबा और अकेले सैर को जाने, छत पर नहा कर कविता करने अथवा दुरो से खरीदी हुई पुस्तकें पढ़ने या फिर मौन-रूप से क्षितिज में उठते और अस्तोन्मुख सूरज की किरणों से पल पल रंग बदलते बादलों को देखते रहने को उस का मन न हुआ तो वह कवि चातक की ओर नहीं गया, बल्कि उस ने तय किया कि वसंत को ढूँढे और यदि वह मिल जाय तो उसे लेकर हरीश जी के यहाँ जाय अथवा जो पुस्तकें उस ने पढ़ी हैं, उन के संबंध में उस से बातचीत करे या महज़ गप लड़ाये। इसी विचार से उस ने कपड़े बदले और लोहारी मंडी को चल पड़ा।

कवि चातक के यहाँ कुछ अजीब-सी घुटन जगमोहन को महसूस हुई थी। उन की कविताएँ, जो उसे कुछ ही महीने पहले बड़ी अच्छी लगती थीं, जिन्हें पढ़ कर वह झूम उठता था, अब फीकी, फिसफिसी दिखायी देती थीं। यह कैसा प्रेम है?—वह सोचता—यह कैसी भूख है? किस प्रकार केवल चित्र देख कर, केवल एक दृष्टि-विनिमय अथवा एक भेंट पर वे इस प्रकार ऐसे गीत लिख सकते हैं, जिन के शब्द-शब्द से राल सरीखा प्रेम-रस टपकता है? क्या वे उन सब को उसी शिद्दत से प्यार करने लग

हैं ? उन्होंने तो सत्या जी का चित्र देख कर ही कविता लिख दी थी, पर सत्या जी उस के यहाँ तो आती रहती थीं—उस के अत्यन्त-निकट आ गयी थीं—तो भी उस से वैसी कविता क्यों नहीं बनी ? सत्या जी से उसे प्रेम न सही, पर दुरो को तो वह चाहता है—तो वह क्यों उस के संबंध में वैसी, प्रेम के आकाश की ऊँचाइयों में उड़ने वाली, कविता नहीं लिख सका ? उस ने जब अपनी भावनाओं पर कविता लिखी थी तो वह चातक जी से सर्वथा भिन्न बनी थी—छिपकली सी यह मुहब्बत, आज के युग की लजीली— उस ने लिखा था। वह लजीली मुहब्बत उसी की तो थी ? पर वैसी क्यों थी ? वह उत्तर न दे पाता!......वह तो वयस में चातक जी से छोटा है, उसे तो उन से कहीं ज्यादा प्रेम होना चाहिए। क्या वह समय से पहले प्रौढ़ हो रहा है ? ......वह झुँझलाता, पर अपने आप को कोई संतोषजनक उत्तर न दे पाता...... उस के दिल-दिमाग़ की बनावट कदाचित् चातक जी से भिन्न है। उस का मन शायद उन की तरह केवल 'छवि का लोभी, मधु का प्यासा' नहीं। उस की परिस्थितियों ने उसे कदाचित् यथार्थवादी बना दिया है......वह अपने मन को समझाता, खीझता, झुँझलाता पर संतोष न पाता।

पर दुरो ने उसे जो पुस्तकें ला कर दी थीं, उन्हें पढ़ कर जहाँ वह चातक जी की कविताओं से और भी दूर चला गया था, वहाँ उसे अपने कुछ प्रश्नों का उत्तर भी मिल रहा था। उस के मन की आँखों के आगे जो कुहरा सा था, वह छटता जा रहा था। इंसान कैसे पैदा हुआ ? कैसे धीरे-धीरे प्रगति कर वर्तमान उन्नत-दशा को पहुँचा ? यही उस ने उन पुस्तकों में पढ़ा था। 'आओ नग्न प्रकृति से नाचें'—चातक जी के गीत की पंक्ति उस के दिमाग़ में घूम गयी। और मन ही मन वह हँस पड़ा। प्रकृति की नग्नता तज कर उन्नत होने में इंसान को सदियाँ लग गयीं। अपने बाहर और अन्दर की [illegible]ग्नता से युद्ध कर, अपनी बर्बरता को संस्कृत बनाने के लिए इंसान [illegible]टा। आज वह

अपने नग्न-आवेगों को दबा कर माँ, बहन, भाभी, चाची, मित्र-पत्नी और पड़ोसिन में तमीज़ करने लगा है; बात का विरोध होने पर वह विरोधी का सिर फोड़ने के बदले उसे समझाना सीख गया है; अपनी पाशविक-वृत्तियों को दबा कर वह संस्कृत होता जा रहा है!......नग्न-प्रकृति से नाचें......सब लोग नग्न-प्रकृति से नाचने लगें तो शायद कवि चातक प्रेम की कविता करने के बदले किसी क्रूर-शक्तिशाली के जूते सीधे करें या हुक्का-चिलम भरें.........और कवि जी के चिलम भरने की कल्पना से वह चलते चलते मन ही मन ठहाका मार कर हँस दिया।

वसंत लोहारी दरवाज़े के अन्दर जिस मन्दिर में रहता था, वहाँ पहुँच कर जगमोहन को पता चला कि वह तो महीना भर पहले मन्दिर का वह कमरा छोड़ गया है। तब जगमोहन ने पुजारी से (जो वसंत का मालिक-मकान भी था) उस का नया पता पूछा।

पुजारी ने बताया कि वसंत पुरानी अनारकली के एक मोहर बनाने वाले सिक्ख गुलबहार सिंह के यहाँ काम करने लगा है। वहीं रहता, खाता और सोता है। पुजारी जी अपना किराया उगाहने वहाँ गये थे, इसलिए उन्हें उस दुकान का पता था। उन्होंने जगमोहन को अच्छी तरह बता दिया कि पुरानी अनारकली में जहाँ 'गोपाल-हिन्दू-होटल' है, उस के आगे चार दुकान छोड़ कर एक गली है, उस के सिरे पर एक अँग्रेज़ी-दवाइयों-वाले की दुकान है, बस उस के साथ वाली दुकान में वसन्त काम करता है।

पहले तो जगमोहन के जी में आयी कि घर वापस चला जाय, परन्तु न जाने क्यों, घर जाने को उस का मन न हुआ। उस के मस्तिष्क में जो प्रश्न उठ रहे थे, उन के संबंध में वसंत से वह बातें करना चाहता था। इतने दिन से लगभग रोज़ सत्या जी आ कर उस की जिन

खाली घड़ियों को भर जाती थीं, वे अब रीती-रीती उस के मन को अजीब-शून्य से भर रही थीं। इसलिए भी घर जाना उसे प्रिय नहीं हुआ। वह वापस मुड़ा। उस ने सरदार गुलबहार सिंह की दुकान देख रखी थी। एक मेज़ के पीछे, जिस पर उन के सिर को छूता-सा एक शीशे का पर्दा लगा रहता था, वे दिन भर बैठे काम किया करते थे। वसंत ने वहीं काम करना शुरू कर दिया है, यह सोच कर जगमोहन हँसा और अनारकली की ओर चल दिया।

अभी वह गली के पास ही था कि उस ने देखा—वसंत दुकान को ताला लगा रहा है और बाहर दुकान के ऊँचे तख्ते से लगी लकड़ी की सीढ़ी पर दुकान के मालिक सरदार गुलबहार सिंह खड़े अपने पिता से बहस कर रहे हैं। उन की आवाज़ इतनी ऊँची थी कि जगमोहन तक पहुँच रही थी।

"मैं कद किहा सी कि छत्ती रुपये फूक छड्डो," स० गुलबहार कह रहे थे, "तुहाडी पुरानी आदत ए। जाँ डोबा, जाँ सोका। माँईया हफ़्ते च छत्ती रुपये कमाये नहीं जाणे।"[1]

"हाँ जी मेरी आदत ए," उन के पिता ने नीचे बाज़ार से उत्तर दिया, "इह गल्ल किस सुझायी सी कि त्रीह ऐंटरियाँ भेजन नाल कम्पाइलर साले दी मा[2]......" और उन्हों ने एक बड़ी मोटी गाली दी, जिस का मतलब था कि कम्पाइलर को हराया जा सकता है।"

---

१. मैंने कब कहा था छत्तीस रुपये फूँक दो। आप की पुरानी आदत है। या डुबा दें या सुखा दें। हफ़्ते भर में छत्तीस रुपये कमाये नहीं जा सकते।

२. जी हाँ मेरी आदत है! यह बात किसने सुझायी थी कि तीस ऐंटरियाँ भेजने से कम्पाइलर को हराया जा सकता है।

ऐंट्री=दाखिले का फ़ार्म=किसी छपी पहेली का भर कर भेजा जाने वाला फ़ार्म जिस के साथ एक रुपया फ़ीस जाती है। कम्पाइलर=वर्ग-पहेलियाँ बनाने वाला।

"हाँ मैं आखिया सी ! मैं ते अज तक तिन्नाँ तो ज्यादा एंटरियाँ नहीं भेजियाँ। तुसाँ किहा कि डाक्टर होराँ दस भेजियाँ ते दो इन्टर-लॉकर (Interlocker) परम्यूट (Permute) कीत्ते हए, असाँ वीह भेजाँगे ते चार परम्यूट कराँगे ते हौली हौली तुसाँ त्रीह भेज छड्डियाँ, छे रुपये उत्ते लग्ग गये ते छत्तियाँ दी माँईया सट्ट पै गयी।"[1]

"आहो जी, हुण तां तू चतुराई दस्सें गा ई। जे इनाम आजाँदा ते पुच्छदा मैं! ....,"[2]

"हाँ आजाँदा इनाम! इह माँईया जुआ है। न्हेरी पायी होई ऐ इन्हाँ सालयां ने। लाटरी होई, सट्टा होया, रेस होई, क्रॉसवर्ड होई, सब इक्कोई गल्ल ऐ। साडी होवे न सरकार ते मिनंटाँ 'च बन्द कर छड्डे। इह अँग्रेज़ाँ ने हिन्दुस्तानियाँ नूँ लुट्टन दा मसाला बनाया होया ऐ। मां दा खसम होए जेहड़ा अज्ज तों इक्क वी क्लू (Clue) भेजे।"[3]

यह कहते हुए गुलबहार सिंह सीढ़ियाँ उतर बाज़ार में आ गये थे। दोनों बाप-बेटा झगड़ते हुए दायीं ओर की गली में मुड़ गये।

वसंत ताला लगा कर तख़्त पर ही खड़ा यह सब कौतुक देख रहा था। उन के गली में मुड़ते ही वह सीढ़ी से नीचे उतरा। तभी उस ने

---

१. हाँ मैंने कहा था! आज तक कभी तीन से अधिक ऐंट्रीज़ मैंने नहीं भेजीं। आप ने कहा कि उन्होंने दस भेजी हैं और दो इन्टरलाकर परम्यूट किये हैं। (बदल कर भेजे हैं) हम बीस भेजेंगे और चार परम्यूट करेंगे और धीरे-धीरे आप ने तीस ऐंट्रीज़ भेज दीं। छै रुपये ऊपर लग गये और छत्तीस रुपये की चोट पड़ गयी।

२ हाँ जी तू अब तो चतुराई बघारेगा ही। यदि इनाम आ जाता तब मैं पूछता।

३. हाँ आ जाता इनाम! यह सब जुआ है। अँधेर मचा रखा है इन (गाली निकाल कर) लोगों ने। लाटरी हुई, सट्टा हुआ, रेस हुई, क्रॉसवर्ड हुई, सब एक ही बात है। हमारी सरकार हो तो मिनटों में इसे बन्द कर दे। यह अँग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानियों को लूटने का मसाला बनाया हुआ है। माँ का खसम हो जो आज से एक भी ऐंट्री भेजे!

जगमोहन को खड़े देखा और ज़ोर से ठहाका मार कर हँस दिया।

"बात क्या है ?" जगमोहन ने उस के कंधे पर हाथ मारते हुए कहा, "क्यों लड़ रहे थे ?"

"सारा दिन ये इसी तरह झगड़ते रहे हैं," वसंत बोला, "दिन भर बड़ा लुत्फ़ रहा ।" और वह नाल की ओर चला।

उस के साथ-साथ चलते हुए जगमोहन ने कहा, "कोई क्रॉसवर्ड का झगड़ा है क्या ?

"हाँ हाँ क्रॉसवर्ड का ही, चलो बताता हूँ, ऐसा दिलचस्प कि उम्र भर न भूले।"

"चलो लारेंस को चलते हो !"

"नहीं भाई लारेंस को नहीं। मैं दिन भर का थका हूँ और मुझे बेहद भूख लगी है, पहले यहीं 'गोपाल होटल' में बैठ कर खाना खायेंगे। फिर मुझे एक जगह जाना है .....तुम कैसे आये थे ?

"योंही मन ऊब रहा था, सोचा तुम्हारी ओर ही चलूँ। तुम्हारे निवास-स्थान पर गया तो पता चला कि तुम ने यहाँ नौकरी कर ली है।"

दोनों बातें करते 'गोपाल-हिन्दू-होटल' के सामने आ रुके। बाहर सड़क से ज़रा हट कर चारपाइयाँ बिछी थीं, जिन के आगे खाने की थालियाँ रखने को मैले से बेंच लगे थे और उन पर होटल के ग्राहक बैठे खाना खा रहे थे। 'दाल' और 'फुल्के' का शोर बुलन्द था। होटल के ग्राहक खाना भी खा रहे थे और फ़िल्म से ले कर राजनीति तक, हर विषय पर तर्क-वितर्क भी कर रहे थे।

"चारपाइयों और बेंचों की बात को सुन कर शायद कोई ऐसा व्यक्ति चौंके जो लाहौर के इन होटलनुमा तँदूरों या ढाबों से परिचित

नहीं। पर लाहौर में ऐसे ढाबों की कमी न थी। 'गोपाल-हिन्दू-होटल' भी एक मामूली ढाबा था, जिस की कुल परिधि एक बड़े से कमरे तक सीमित थी। उस कमरे में न कोई रोशनदान था न खिड़की। दो बड़ी-बड़ी, मैल से काली, ऊँचे तख्तों-ऐसी मेज़ें पड़ी थीं। उन के दोनों ओर दो बेंच पड़े थे। 'होटल' का रसोई-घर कहीं अलग न था। वहीं कमरे के बाहर सड़क की ओर को बढ़ा कर जो छता हुआ बरांडा-सा था, उस में एक ओर भट्टी पर बड़ा सा तवा औंधा पड़ा था और उस पर धड़ाधड़ फुल्के बन रहे थे। पास में दाल की देग और तरकारी का पतीला पड़ा था। दूसरी ओर टीन के छत के खम्बे के साथ हमाम था। जिस में से ग्राहक हाथ धोते थे। भट्टी और हमाम के बीच अन्दर जाने की सीढ़ियाँ थीं। भट्टी के धुएँ ने अन्दर कमरा काला कर रखा था। उस की कालिख निम्न-मध्यवर्गियों को इतनी बुरी न लगे कि वे उसे मज़दूरों का होटल समझ लें, इसलिए उसकी दीवारों पर पीली मिट्टी पुतवा दी गयी थी, पर दीवारों की जो शक्ल उस पीली पुताई के बाद बनी थी, वह किसी अधेड़ काली स्त्री के मुख पर लगे पाउडर की तरह दयनीय थी। कालिख किसी तरह छिपाये न छिप रही थी और धुआँ बड़ी जल्दी पीलाई को अपने ऐसा बना रहा था।

क्योंकि सभी सीटें भरी थीं और अन्दर के कमरे की उमस में खाना खाना कठिन था, इसलिए दोनों मित्र वहीं बाहर खड़े कुछ क्षण बातें करते रहे। जगमोहन ने प्रोफ़ेसर स्वरूप का किस्सा बताया कि किस तरह वसंत की बात ही ठीक निकली, उस का लगभग सौ रुपया प्रो० स्वरूप के पास रह गया और वसंत ने बताया कि किस प्रकार वह सरदार गुलबहार सिंह के यहाँ नौकर हुआ।

उतने में एक चारपाई खाली हो गयी। वसंत हाथ धोने को हमाम की ओर बढ़ा। एक मैली सी साबुनदानी में (जिस का ऊपर का ढकना और नीचे का हिस्सा ग़ायब था, केवल बीच की साबुन वाली सफ़ेद

प्लेट शेप थी और जिस की सफ़ेदी में सब ओर मैल लगी थी) एक पतली सी लाइफ़ब्वाय साबुन की लाल टुकड़ी रखी थी। ऊपर बरांडे के खम्बे से तौलिया लटक रहा था, पर वह एक दम मैला चीकट था और बार बार हाथ पोंछे जाने से इतना गीला था कि उस में से पानी निचुड़ रहा था। वसंत ने उसी साबुन को मलकर हाथों की मैल उतारी और उसे दोहरा कर उसी साबुन दानी में रख दिया। फिर हमाम की टूंटी खोल कर हाथ धोये। उन्हें तौलिये से पोंछने को वह बढ़ा, पर उसे छू कर ही रह गया। रूमाल के लिए उस ने जेब में हाथ डाले, पर रूमाल था नहीं! तब उन्हें बालों पर फेरता हुआ वह चारपाई की ओर आया।

जगमोहन चारपाई पर बैठ गया था। "तुम भी एक आध फुल्का खा लो!" वसंत ने आते हुए कहा।

"मेरा खाना तो घर पड़ा है,—जगमोहन बोला, "फिर मैं इतनी जल्दी खाता भी नहीं, बाहर खाऊँगा तो मामी बेकार नाराज़ होंगी।"

लेकिन वसंत ने उस की बात नहीं सुनी और नौकर छोकरे को दो का खाना और साथ में स्पेशल डिश लाने का आदेश दे दिया।

छोकरे ने चारपाई के आगे पड़ी हुई बेंच साफ़ कर दी और खाना लाने चला गया।

"तुम स० गुलबहार सिंह की बात सुनाने जा रहे थे।"

"अरे हाँ!" और याद-मात्र ही से वसंत ने ठहाका लगाया। फिर बालों पर एक बार और हाथ फेर कर वह स० गुलबहार सिंह की कहानी सुनाने लगा।

४२

'गोपाल-हिन्दू-होटल' वाले अपने ग्राहकों को फुल्के सदैव गर्म-गर्म, फूले-फूले और अच्छी तरह सिके हुए देते थे। बाहर जब ग्राहकों की बारात बैठी हो, रसोइया भी एक ही हो, बैरे का काम करने वाला छोकरा भी एक हो और चारों तरफ़ गर्म, सिके हुए फुल्कों का शोर मच रहा हो तो एक ही वक्त में सभी की माँग पूरी करना असम्भव है। इसी लिए जब 'गोपाल-हिंदू-होटल' के बाहर चारपाइयों पर बैठे हुए कुछ ग्राहक गर्म-फूले फुल्कों को तोड़, उन की हवा निकाल, उन्हें मज़े ले ले कर खाते थे तो दूसरे अपनी बारी की प्रतीक्षा करते हुए इस या उस समस्या पर बहस करते थे। खाना खाते या खाने की प्रतीक्षा करते हुए वसंत ने जगमोहन को गुलबहार सिंह और उन के पिता का जो किस्सा सुनाया, वह कुछ यों है :

सरदार गुलबहार सिंह 'एंग्रेवर ऐंड रबर-स्टैम्प-मेकर' की दुकान के साथ डाक्टर टेकचन्द बाहरी 'कैमिस्ट-ऐंड-ड्रगिस्ट' की दुकान थी। दोनों दुकानों का तख्ता साझा था। डाक्टर बाहरी और सरदार गुलबहार सिंह दोनों ने एक एक बेंच अपनी ओर रख कर तख्ते को दो हिस्सों में बाँट रखा था।

डाक्टर टेकचन्द नाम ही के डाक्टर थे। उन के पास कोई डिग्री-विग्री नहीं थी। वास्तव में उन के पिता डाक्टर थे। टेकचन्द ने तो यों ही अपने नाम के साथ डाक्टर लगा लिया था, पर क्योंकि रिटायर होने के बाद उन के पिता भी वहीं बैठने लगे थे, इसलिए कोई आपत्ति न करता था। यों भी सभी दवा-फ़रोश अपने नाम के साथ डाक्टर लिखते हैं।

डाक्टर टेकचन्द तैंतीस-चौंतीस वर्ष के युवक थे। चौड़ा माथा, खड़े खड़े-से बाल, चौकोर मुँह, पाँच फुट पांच इंच के लगभग क़द। सर्दियों में सूट ऐसा पहनते थे जिसे दर्ज़ी ने सीते समय प्रेस किया हो तो किया हो, फिर उन्होंने न कभी कराया, न स्वयं किया। गर्मियों के कपड़े वे दस पन्द्रह दिन से पहले धोबी को देना गुनाह समझते थे और देखने में डॉक्टर के बदले अच्छे खासे कम्पाउँडर लगते थे। बी० ए० भी पास थे, किन्तु न सूरत से ऐसा मालूम होता था, न बात चीत से। जब कभी किसी से बात करते हुए हंसते तो कुछ इस तरह दाँत और आँखें निकालते कि लगता जैसे सनकी हैं। यों भी सूरत-शक्ल से नीम-पागल दिखायी देते थे। कान की एक दवाई का आविष्कार उन्होंने किया था। नाम रखा था 'लोटो टोन'! इस नाम से कान का क्या संबंध था, यह जगमोहन कभी न जान पाया था। पर उन की दुकान पर चारों ओर 'लोटो टोन' के बड़े बड़े बोर्ड लगे हुए थे और डाक्टर साहब उस दिन की कल्पना किया करते थे, जब उन की दवाई अमृत-धारा की तरह बिकेगी और वे एक बड़ी भारी बिलडिंग बनवायेंगे और उन का पता होगा—डा० टेकचन्द बाहरी, लोटो टोन बिलडिंग, लोटो टोन स्ट्रीट, लोटो टोन पोस्ट आफ़िस आदि आदि......

उन के पिता डाक्टर हंसराज बाहरी डाक्टर की अपेक्षा किसी आर्य-समाजी स्कूल के टीचर मालूम होते थे। बुटी हुई आर्य-समाजियों-जैसी पगड़ी, खादी की कालर-दार कमीज़, मोटी ग्रे-पट्टी का कोट और

अपेक्षाकृत तंग मोहरी का उटुँग पायजामा—सोलहो आने आर्य-समाजी महाशय दिखायी देते थे। उन्हीं दिनों कचहरी-रोड की सिविल-डिस्पेंसरी से रिटायर हुए थे और आर्य-समाज पुरानी अनारकली के प्रधान-मंत्री चुने गये थे। चूँकि विचारों के लिहाज़ से आर्य-समाजी थे और बीसवीं सदी के बिजली, तार, रेडियो और सिनेमा के ज़माने में वैदिक काल को लाने के स्वप्न देखते थे, इसलिए विदेशी दवाइयों में उन्हें कुछ वैसी आस्था न थी। पिता ने डाक्टरी पढ़ायी थी, नौकरी भी सिफ़ारिश से दिलादी थी, इसलिए वे अपना कर्तव्य निभाते रहे थे, पर निजी तौर पर वे आयुर्वेद के बड़े समर्थक थे। यदि किसी की आँखें आ जायँ तो उसे बोरक या एक्रेफ्लेविन, या जिंक-लोशन के बदले रसौंत और धनिया की पोटली बनाकर सेंकने अथवा त्रिफला के पानी से धोने या भीम सेनी सुर्मा प्रातः उठते समय और रात को सोते समय लगाने का परामर्श देते। किसी को क़ब्ज़ की शिकायत होती या बाल पक रहे होते तो त्रिफला का पानी सिर में डालने, त्रिफला का सालन खाने और त्रिफला फाँकने को कहते। यक्ष्मा के लिए उसी ज़माने में नये चले इलाज ए० पी० आदि में उन का विश्वास न था। वे त्रिफला फाँकने, बसंत-मालती खाने और लाक्षादि तेल की मालिश करने की सलाह देते। उपदंश, मधुमेह, प्रमेह, नपुसंकता, आदि रोगों के लिए उन्होंने अचूक आयुर्वैदिक नुस्खे तैयार कर रखे थे। वहीं दुकान के तख्ते पर कुर्सी रखे वे लोगों को देख नुस्खे लिखा करते। उन्हीं के अनुरोध पर डाक्टर टेकचन्द ने 'गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी' की एजेंसी भी ले रखी थी जब मरीज़ देखते कि एम. बी. बी. एस. डाक्टर आयुर्वैदिक औषधियाँ बताता है तो न केवल डाक्टर साहब की विद्वत्ता में उनकी आस्था बढ़ती, बल्कि अपने प्राचीन आयुर्वेद में भी उन का विश्वास पक्का होता। फिर उन्हें आराम आये चाहे न आये पर वे आयुर्वेद की बड़ाई करते न थकते—'अब भाग्य के आगे किस का बस है ? आयी को कौन टाल सकता है ?

लेकिन जो औषधियाँ हमारे पूर्वज ईजाद कर गये हैं, अंग्रेज़ी दवाइयाँ उन का क्या मुकाबिला करेंगी।' डा० साहब की आयुर्वैदिक औषधि के बावजूद किसी रोगी के मर जाने पर वे कुछ इस प्रकार की दलीलें देते और डाक्टर साहब का हवाला देकर तर्क-वितर्क करते हुए अंग्रेजी दवाइयों का पक्ष लेने वाले का सिर फोड़ने को तैयार हो जाते।

गर्मियों के दिन थे। सारी दोपहर खाली जाती थी। मरीज़ तो क्या, कोई भूला-भटका कुत्ता भी (होटल का सामीप्य होने के बावजूद) उधर न झाँकता था और डा० टेकचन्द बाहरी तख्ते पर लगी बेंच पर पड़े ऊँघा करते।

उन्हीं दिनों डाक्टर साहब के एक मुसलमान ग्राहक को वीकली के क्रॉसवर्ड-कम्पीटीशन में दस हज़ार का इनाम आ गया। वह पुरानी-अनारकली के थाने में सब-इंस्पेक्टर था। लम्बे-तगड़े डील-डौल का आदमी था। उस की रगों में पठानी खून था या उस का डील-डौल पठानों का सा था या उस के सिर पर कुल्ला और पठानों-जैसी पगड़ी थी या फिर चूंकि वह पुलिस में था, लोग उसे आम-तौर-पर 'खान साहब' कह कर पुकारते थे। जो भी हो, ये खान साहब केवल मैट्रिक तक पढ़े हुए थे। जब उन्हें दस हज़ार रुपया आया तो उन्होंने पहले तो एक नयी शादी की। फिर वे और ज़ोर से कम्पाइलर की माँ के साथ (अपने कथनानुसार) वह कुछ करने के पीछे पड़ गये जो वे जायज़ तौर पर अपनी बीवी के साथ ही कर सकते थे। बोल-चाल की गँवारू पंजाबी में उस का मतलब यह था कि वे कम्पाइलर को हराने के पीछे पड़ गये! गाली का प्रयोग केवल कम्पाइलर को एक बार पूरी तरह परास्त करने में उन के लौह-निश्चय और जोश ही का द्योतक था।

जब डाक्टर टेकचन्द ने देखा कि उस मैट्रिक पास पठान को, जिसे अपने मन में वे दिमाग़ से बिलकुल कोरा समझते थे, दस हज़ार रुपया

आ गया है तो उन्हें ख़्याल आया कि स्वयं उनको जो बी० ए० पास हैं, क्यों नहीं आ सकता ? खान की तो एक ग़लती थी और चूंकि पूरा ठीक किसी का न था और एक ग़लती वाले चार थे, इसलिए चालीस हज़ार क इनाम में उस के हिस्से दस हज़ार आया था, लेकिन डाक्टर टेकचन्द ने तय किया कि वे कम्पाइलर को चारों खाने चित्त गिरा देंगे, पूरा इनाम लेंगे और रुपये के अभाव में जो वे अपनी 'ज़ोटो टोन' का ठीक प्रचार न कर सकते थे, वह करेंगे। वे बड़े ज़ोरों से वीकली की वर्ग-पहेलियाँ हल करके भेजने लगे। इनाम पाने की आशा में वे अपनी तमाम स्कीमें स० गुलबहार सिंह को बताते। सरदार जी के मुँह में पानी भर आता, लेकिन यद्यपि उस दिन से डा० टेकचन्द रोज़ उन का सिर खाने लगे थे, सरदार. गुलबहार सिंह ने कभी क्रॉसवर्ड हल करने की नहीं सोची। बात यह थी कि उन को भी किसी ज़माने में क्रॉसवर्ड हल करने का शौक था और वे साल भर अपने हल भेजते भी रहे थे, लेकिन कभी उन के भाग्य में चार ग़लतियों वाला इनाम भी न आया था। उन दिनों वे डाक्टर टेकचन्द को क्रॉसवर्ड भर कर भेजने का परामर्श दिया करते थे, लेकिन डा० साहब उसे जुआ कह कर टाल देते थे। जब सरदार साहब दोपहर को गली के नल से मुँह धो, सिर पर ठंडे पानी का हाथ फेर, नींद को भगा कर पहेलियाँ सुलझाया करते थे, डा० साहब बेंच पर पड़े ऊँघा करते। अब डाक्टर साहब ने सरदार साहब की जगह ले ली थी और जब डाक्टर साहब आँखों पर ठंडे पानी के छींटे मार, बाह चढ़ा, कम्पाइलर से जूझा करते, सरदार साहब बड़े मज़े से पड़े खुर्राटे लिया करते।

इस बीच में खान साहब (जो अपने इनाम का कम से कम एक हज़ार रुपया अपनी नयी कोशिशों में लगा चुके थे और नौकरी छोड़ कर कम्पाइलर की ऐसी की तैसी करने में चौबीसों घंटे रत रहने लगे थे) डाक्टर साहब के साथ आ मिले और दोनों मिल कर आठ-आठ

दस-दस हल (Entries) भेजने लगे।

'सरदार गुलबहार सिंह के पिता सरदार नौनिहाल सिंह भी रिटाइर्ड पोस्ट-मास्टर थे। अपनी पेनशन का आधा भाग कम्यूट (Commute)[1] करा के उन्होंने एक हज़ार रुपया लेकर गुलबहार को दुकान ले दी थी और स्वयं 'सतगुर' के भजन में लगे रहते थे। अपनी तो उन्हें कुछ ऐसी चिन्ता न थी, पर 'सत-गुर' के नाम पर आठ आने-रुपया सट्टे में अवश्य लगा देते थे। एक बार उन्होंने एक रुपया लगाया था तो उन्हें नव्वे रुपये आये थे, तब उन्होंने अपनी शेष पेनशन के बदले भी सरकार से रुपया ले लिया था। यह मन्नत मान कर कि जो भी रुपया आयेगा आधा 'सतगुर' के नाम पर शीश महल के गुरुद्वारे में चढ़ा देंगे, उन्होंने सारी रकम दो तीन सप्ताह में सट्टे की भेंट करदी थी और इस बहाने कि गुलबहार सिंह अकेले दुकान से अधिक पैदा नहीं कर सकता वे भी दुकान ही पर बैठने लगे थे।

स० नौनिहाल सिंह जब डा० टेकचन्द और खान को रोज़ क्रॉसवर्ड हल करते देखते तो उन का मन भी, अधिक नहीं तो कम से कम एक, 'एंटरी' भेजने को बहुत किया करता। लेकिन गुलबहार सिंह उन्हें सदा ताना देता कि सारी पेनशन उन्होंने सट्टे में लगा दी, क्या अभी उनकी तबीयत जुआ खेल कर भरी नहीं (आधी पेनशन दुकान पर लगी थी, इसे वह भूल जाता और यद्यपि सरदार नौनिहाल सिंह अपने सुपुत्र को सदा यह बात याद दिला देते, पर जब भी वह ताना देता, सारी पेनशन लुटाने का देता) कभी सरदार साहब चुप हो जाते और कभी इस बात पर

---

१. कम्यूट कराना=सारी उम्र पेंनशन लेने के बदले, कुछ थोड़ा, पर इकट्ठा रुपया ले लेना।

बहस छिड़ जाती। गुलबहार कहता कि वह साल भर तक झख मार चुका है और डाक्टर बाहरी भी झख मार कर बैठे जायेंगे। पर नौनिहाल सिंह कहते कि यह कामनसेंस (सहज-बुद्धि) का प्रश्न है और यदि वाहेगुरु ने उसे कामनसेंस नहीं दी—दी है तो उसे काम में लाने का सलीका नहीं दिया—तो इस में किस का दोष है? गुलबहार अपने बाप की बात का जवाब तो तीखा देना चाहता, पर आदर-वश चुप लगा जाता। डा० टेकचन्द प्रायः पहेली हल करना छोड़ उन के निकट आ जाते और अपनी ओर के बेंच पर पांव रखे नये मुसलमान की तरह अपने नये-धर्म के पक्ष में जोरदार दलीलें देते। वे वीकली के पुराने आठ दस अंक उठा लाते, जिन में से हर एक में किसी न किसी पुरस्कार-विजेता का इण्टरव्यू छपा होता और जैसे सनातन-धर्मी अपने पक्ष में जगद् गुरू श्री शंकराचार्य की, आर्य-समाजी स्वामी दयानन्द की, मुसलमान मुहम्मद साहब की, कांग्रेसी महात्मा गाँधी और मुस्लिम लीगी जिन्ना की राय देकर अपने पक्ष की पुष्टि करते हैं, डाक्टर टेकचन्द उन पुरस्कार विजेताओं की सम्मतियाँ पढ़ते।

"देखिए भूमेश्वर राव श्रीपद राज महुंदरी से क्या लिखता है," वे पत्र का वह पृष्ठ उलट कर कहते, जिस मे कि पत्र के 'अपने सम्वाद दाता द्वारा' किसी न किसी प्रथम-पुरस्कार-विजेता का इण्टरव्यू छपा रहता है, "कि इनाम जीतने में मेरी सफलता जुआ, चांस या लक्क का परिणाम नहीं, मेहनत और बुद्धि का फल है। मैं तीन वर्ष से लगातार यह पहेलियाँ हल कर रहा हूँ और आख़िर अब जाकर मैं ने कम्पाइलर पर विजय पायी है।"

उस के आर्य समाजी पिता डा० हंसराज बाहरी सदा अपने पुत्र के समर्थन में दोहा पढ़ते:

जिन ढूंढा तिन पाइया गहरे पानी पैठ!

और फिर उस की व्याख्या करते हुए संस्कृत का श्लोक पढ़ते

न हि सुपतस्य सिंहस्य प्रविश्यती मुखे मृगः

और फिर आर्य-समाजियों के ढंग में पुरुषार्थ पर एक छोटा-मोटा भाषण झाड़ देते।

खान भी इस अवसर पर चुप न रहता। मौके या बे-मौके का ख्याल किये बिना, वहीं अपने बेंच पर बैठा बैठा वह शेर पढ़ता :

गिरते हैं शह-सवार ही मैदाने-जंग में
वह (साला) तिफ़्ल क्या करेगा जो घुटनों के बल चले।

इस समर्थन पर डा॰ टेक चन्द की बाछें खिल जातीं और वे जैसे बाज़ार से गुज़रने वालों को सुना कर कहते, "और क्या! इच्छा-शक्ति और निष्ठा दो ही कुंजिया हैं इन पहेलियों को हल करने की। यह देखिए जब भूमेश्वर राव से पत्र के विशेष सम्वाद-दाता ने पूछा कि आप की सफलता का क्या कारण है? तो उस ने कहा, 'Perseverance and will to Succeed'—याने केवल-मात्र निष्ठा और सफलता पाने की इच्छा-शक्ति।"

और डा॰ टेक चन्द कई ऐसे इण्टरव्यू पढ़ कर सुनाते जिन में पुरस्कार-विजेता 'कामन-सेंस-क्रास-वर्ड-पज़ल' को सफलता-पूर्वक हल करने में कामनसेंस, मेहनत, निष्ठा की ज़रूरत बताते। कई लोगों ने तीन तीन साल की मेहनत के बाद पुरस्कार जीते थे। कई उसे समय को लाभ-दायक ढंग से काटने की सब से उत्तम हॉबी बताते थे। कुछ पुरस्कार के अतिरिक्त दूसरे लाभ बताते, जैसे कि उन्हें नये मित्र बनाने का अवसर मिलता है या उन की अँग्रेज़ी अच्छी होती जाती है।

इस अन्तिम दलील को सरदार गुलबहार के मुँह पर जैसे मार खीसें निपोरे और आँखें निकाले चारों ओर देख कर, डा॰ टेक चन्द कहते, "बी॰ ए॰, एम॰ ए॰ अँग्रेज़ी के वे शब्द नहीं जानते जो हमारे इन खान साहब को साल भर में आ गये हैं। अँग्रेज़ी राज्य में अँग्रेज़ी

की जो वक्अत है, उसे कौन नहीं जानता?" फिर कहते, "अव्वल तो हम इस साले कम्पाइलर को हरा कर दम लेंगे, असफल भी रहे तो अँग्रेजी का ज्ञान घाते में रहेगा।" और बताते कि वे सदा कम्पाइलर के नोट पढ़ते हैं। उस की दलीलें अकाट्य होती हैं। "सचमुच हम क्लू (Clue) के सब शब्दों की ओर ध्यान नहीं देते और वे पत्र निकाल कर कोई क्लू देते जैसे : "Even a henpecked hubby some times— his wife ungrudgingly. और कहते "वाक्य में खाली जगह दो शब्द लगते हैं Adores या Adorns! बताइए इन दोनों में से खाली जगह कौन सा शब्द ठीक होगा?"

कुछ सोचने का उपक्रम सा करते हुए गुलबहार एक शब्द बताता और उन के पिता दूसरा। तब कितनी देर तक उस जवाब की 'क्यों' के कारणों पर बहस होती और आख़िर में डाक्टर साहब पत्र से पढ़ कर सुनाते कि शब्द Adores है! "निन्नानवे प्रतिशत लोग Adorns कहेंगे, क्योंकि पति पत्नी का गुलाम है और गहने नारी की सब से बड़ी कमज़ोरी! लेकिन कम्पाइलर ने वहाँ even और sometimes शब्द भी रखे हैं। जिस का पति पत्नी के अँगूठे तले है, उस की पत्नी गहने तो अपने पति से लेती ही रहती है और जहाँ तक उस की आर्थिक-स्थिति उसे आज्ञा देती है, पति भी अपने दब्बू स्वभाव के कारण लाकर देता रहता है पर..." ......अँग्रेजी के विशद-ज्ञान के बावजूद कम्पाइलर की बात को अपनी भाषा में समझा पाना डाक्टर साहब के लिए कठिन हो जाता। वे आगे अँग्रेज़ी में पढ़ते, "Even and sometimes would be an under-statement in the case of adorns. But the feeling of adoration cannot be exacted even by a compelling wife from a husband, who is a mere lump of clay in her hands. There may however be rare moments when the devotion of the wife touches the very core of the husband's heart and he accords her ungrudgingly the silent worship of the soul." और फिर

अपनी ओर से कहते, "इस लिए शब्द adores है" ।

यह सब पढ़ कर, जैसे वे स्वयं कम्पाइलर हों, दांत निपोरे, आँखें बाहर को निकाले, बाज़ार की ओर देखने—जैसे वे सारे संसार से अपनी बात मनवा रहे हों – और यों गुलबहार को परास्त करके, फिर जाकर खान के साथ उस हफ़्ते की पहेली हल करने में निमग्न हो जाते ।

जब से डाक्टर टेकचन्द को क्रासवर्ड का शौक लगा था (जो शौक से बढ़ कर उन्माद की हद को पहुँच गया था) ऐसा प्रायः दूसरे तीसरे होता । Adores या Adorns के बदले Slash अथवा Slush होता और भूमेश्वर राजमहुँदरी वाले का हवाला देने के बदले वे गोपालनारायन देवनारायण वेडेकर या किसी और पुरस्कार-विजेता का हवाला देते—बहरहाल तार कुछ ऐसे ही टूटता और उन के इस लैक्चर का फल यह होता कि इधर बाप-बेटों में घंटों बहस होती रहती । आखिर डाक्टर टेकचन्द के इन्हीं लैक्चरों की बदौलत गुलबहार ने अपने बाप को इस शर्त पर वीकली लाकर देना स्वीकार किया कि वे सिर्फ एक हल भेजेंगे ।
"आना होएगा तां ओसे नाल आ जायेगा," गुलबहार ने कहा, "इस तों ज्यादा मैं इक भी ऐंटरी नहीं भेजण देणी ।"[1]

नौनिहाल इस बात पर तैयार हो गये । अब उन का अधिक समय पहेलियाँ हल करने में गुज़रने लगा । कई बार उन का मन करता कि वे भी अढ़ाई रुपये की तीन ऐंट्रियाँ भेज दें और एक interlocker pemrute कर दें, पर गुलबहार सख्ती से इनकार कर देता । यदि उस के पिता उस से किसी शब्द का मतलब अथवा किसी खाली जगह में रखे

---

१. आना होगा तो उसी से आ जायगा, इस से अधिक मैं एक भी हल नहीं भेजने दूँगा ।

जाने वाले दो शब्दों में से एक की उपयुक्तता के संबंध में प्रश्न पूछते तो वह कभी जवाब न देता। "कम्म करण देओ न दार जी," वह कहता, "क्यों परेशान करदे ओ, अग्गे ई मंदी ने मुसीबत पायी होई आ, जेहड़ा थोड़ा बौत कम्म आँदा है, ओभी तुस्सी करण नहीं देंदे।[1]

इस बीच में वसंत भी आ गया था। उस का काम घूम घूम कर काम लाना था। २५ प्रतिशत उस का कमीशन था। जगह सरदार जी ने उसे दुकान के पीछे एक कोठड़ी में दे दी थी, जिस का दरवाज़ा गली में खुलता था। रात को वह दुकान के आगे सोता था और सुबह सरदारों के आने से पहले, दुकान खोल कर झाड़-पोंछ देता था। एक हफ़्ते के काम से उसे दस रुपये बन गये थे, और वह खुश था कि रोज़ी पैदा करने के साथ वह काम भी सीख लेगा।

सरदार नौनिहाल सिंह चाहे सब-पोस्ट-मास्टर रहे हों, पर थे तो मैट्रिक ही, कई बार जब वसंत दुकान पर होता तो वे उसे सहसा रोक कर पूछते :

"क्यों भई बसंत, तेरा की ख्याल है, इत्थे लफ़्ज 'कैट' ऐ जां 'कट' ऐ ?[2]

"कित्थे सरदार जी ?"[3] वसंत पूछता।

और सरदार जी पत्र से पढ़ते : How dangerous a deep — often prove to be, when handled by an inexperienced person.

और वसंत को जो भी सूझता, वह बता देता, लेकिन साथ ही यह भी कह देता कि उसे इन पहेलियों की समझ नहीं बाद में उसे दोष न

---

१. काम करने दो न सरदार जी, क्यों परेशान करते हो। पहले ही मंदी के मारे मुसीबत है। जो थोड़ा बहुत काम आता है, वह भी आप नहीं करने देते।

२. क्यों भई बसंत तेरा क्या ख्याल है, यह शब्द कैट (बिल्ली) है या कट (घाव) है।

३. कहाँ सरदार जी ?

दिया जाय कि उसी के कहने पर शब्द रखा गया था, आया नहीं। और सरदार साहब जाकर डाक्टर बाहरी के साथ परामर्श करने लगते।

जब शुक्र के दिन पहेली का हल निकलता तो वहाँ का दृश्य बस देखने से संबंध रखता। डाक्टर साहब मार्केट से जाकर अंक लाते। आकर अपने हल से (जिस की कापी वे अपने पास रखते) मिलाते और फिर खान के साथ झगड़ते कि वे पहले ही कहते थे कि यह शब्द रखो। कई बार किस्मत को और कई बार luck को गालियाँ देते। सरदार नौनिहाल सिंह कहते कि भाई हम ने तो एक ही भेजा था, हमारी पाँच गलतियाँ आयी हैं। (हालांकि उन की आठ नौ होतीं) तुम्हारी तरह हम आठ दस भेजते तो कम्पाइलर की माँ को ......वे एक बड़ी सी गाली देते जिसका मतलब होता कि वे कम्पाइलर को बुरी तरह हरा देते।

एक शुक्रवार जब डाक्टर टेकचन्द अंक लेकर आये तो उन की बाछें खिली हुई थीं और आँखें बाहर को निकली पड़ती थीं। बिना इधर उधर देखे वे दुकान के अन्दर गये और पन्द्रह मिनट बाद और भी ज्यादा बाछें खिलाये बाहर आये।

"लीजिए सरदार जी, मार दिया साले कम्पाइलर को! All Correct Solution!" उन्होंने जैसे सारे बाज़ार को सुना कर कहा।

सरदार नौनिहाल सिंह अपनी बड़ी उम्र के बावजूद बेंच के ऊपर से उछल कर उनकी दुकान पर चले गये। गुल बहार बड़ी ज़रूरी मोहर तैयार कर रहे थे। पहले जब शुक्र के दिन डा॰ टेकचन्द पत्र लाते और अपनी ग़लतियाँ मिलाते और सरदार नौनिहाल सिंह उन के साथ बात-चीत करते तो वे दृष्टि उठा कर भी उधर न देखते, पर उस दिन वे भी उठ कर अपनी दुकान के तख्त पर आ गये। डा॰ टेकचन्द उन

पुरस्कार ही क्यों आता और उन्होंने स्वयं अपने मकान के लिए फर्नीचर का आर्डर दे दिया। डा० टेकचन्द ने लोटो-टोन के लेबल छपने दे दिये, शीशियाँ खरीद लाये, एक हज़ार डिब्बे बनाने का आर्डर दे आये और लोटो-टोन बिल्डिंग के लिए धरती देखते फिरे। (मकान तो इतने इनाम में बन न सकता था, क्योंकि आधा इनाम खान साहब को जाता, पर जगह ले रखना उन्होंने उचित समझा) रहे खाँन साहब सो वे तीसरी शादी की फ़िक्र करने लगे।

लेकिन जब वीकली में पुरस्कार की घोषणा छपी तो मालूम हुआ कि सात टाइयां पड़ी हैं। पहला पुरस्कार आठ हज़ार का और सात टाइयाँ, फिर इनाम में डा० और खान का साझा! डाक्टर टेकचन्द इस तरह बैठ गये जैसे बच्चे को दबा कर आये हों। विज्ञापनों आदि पर वे इनाम से अधिक खर्च कर चुके थे।

डाक्टर साहब को जो निराशा हुई, उस से सरदार साहबान मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए। यद्यपि प्रकट तो उन्हों ने डाक्टर साहब को तसल्ली दी कि अब रास्ता खुल गया है, अभी अगला इनाम बीस हज़ार का है, हो सकता है यही आप को आ जाय, पर मन ही मन वे स्वयं उसे पाने की आशा—आशा नहीं—यकीन बाँधे हुए थे।

लेकिन जब उस पहेली का हल छपा तो सरदार साहबान ने जो तीस हल भेजे थे, उन में से एक भी ऐसा न निकला जिस में पाँच से कम ग़लतियाँ हों। गुलबहार सिंह अपने पिता पर बरस पड़ा कि उन की जुए की आदत उन्हें ले डूबी और उस के पिता उसे डाँटने लगे कि वे तो मज़े से एक हल भेजते थे, विनोद का विनोद हो जाता था अँग्रेजी की अँग्रेजी आती थी, उसके लोभ ने लटिया डुबो दी।

४३

वसंत ने कहानी खत्म की तो जगमोहन ठहाका मार कर हँस दिया।

दोनों खाना खा चुके थे। उसी हमाम के नल पर, उस ज़रा सी साबुन की टिकिया से हाथ धो, दोनों ने उन्हें अपने बालों पर फेर कर सुखा लिया और माल की ओर चल दिये।

"तबीयत आज बेहद भारी थी," जगमोहन ने हँसते हुए कहा, "तुम ने गुलबहार सिंह की बात सुना कर जैसे सारा बोझ उतार दिया।"

"हँसी तो आती है," वसन्त बोला, "पर तकलीफ़ भी कम नहीं होती। ऐसा कपट का जाल बिछा रहा है इन वीकली वालों ने कि अगनित ग़रीब क्लर्क अपनी गाढ़े पसीने की कमाई, पलक झपकते अमीर हो जाने की दुराशा में उन के हवाले कर देते हैं। 'कॉनसिसटेंसी बोनस' वे देते हैं (कि यदि इनाम न आये तो भी लोग बोनस की आशा में पहेलियां हल करके भेजते रहें) कभी कभी आसान पहेली वे देते हैं (कि लोगों की हिम्मत न टूटने पाये और जो लोग छोटा-मोटा इनाम पायें वे अपने इनाम का अधिकांश फिर उन्हींको सौंप दें) और पुरस्कार-विजेताओं के इण्टरव्यू वे छापते हैं (कि इनाम पाने के बाद वे चुप न बैठें, वरन् दुगने जोश से पहेलियां हल करके भेजें) सरकार अपनी है नहीं, वीकली अँग्रेजी कम्पनी की है। लाखों रुपया इंग्लिस्तान के हिस्सेदारों को पहुँचता है। वे क्यों बन्द करने लगे इसे ?"

जगमोहन ने वसंत की पूरी बात नहीं सुनी। बाज़ार में चलते-चलते रुक कर उस ने फिर एक बार ठहाका लगाया।

"कहिए किधर घूम रहे हैं ?"

किसी ने जगमोहन के कंधे को थपथपाया। जगमोहन सिर को पीछे किये हँस रहा था, निमिष भर के लिए उसी मुद्रा में रहा, फिर वह चौंका और मुड़ा। दुरो और हरीश कमर्शिल बिल्डिंग्ज़ की ओर से आ रहे थे और हरीश का हाथ उस की पीठ पर था। जगमोहन गंभीर हो गया।

"वन्दे जी।"

दुरो ने हाथ जोड़ कर दोनों को नमस्कार किया।

उत्तर में दोनों ने हाथ जोड़ दिये।

"कहिए आप फिर हमारे स्टडी-सरकल की मीटिंग में नहीं आये।" दुरो उलाहने के स्वर में बोली।

"अवकाश नहीं पाया," जगमोहन ने उत्तर दिया "आप तो जानती हैं, पहले धर्म जी का काम रहा, फिर एक ट्यूशन ले ली और दखिला जुटाने में लगा रहा।

"अब तो कालेज बन्द हो गये हैं।"

"जी हाँ!"

"यहाँ हरीश जी ने ट्राँसपोर्ट-मज़दूरों की यूनियन आर्गेनाइज़ की है, यहीं उस का दफ़्तर है," दुरो ने कमर्शियल बिल्डिंग्ज़ के ऊपर की मंजिल में एक कमरे की ओर संकेत किया। "यहीं मैं शाम को सात बजे से नौ बजे तक प्रौढ़ों की क्लास लेती हूँ। मैं तो इसी सिलसिले में आप की ओर आने वाली थी।"

"जो भी सेवा आप लेना चाहें, मैं हाज़िर हूँ।"

"आप वसंत जी, आप भी फिर नहीं आये ?"

"जी मैं ने यहीं एक एंग्रेवर के यहाँ नौकरी कर ली है। दिन भर शहर की खाक छानता हूँ, आठ बजे दुकान बन्द होती है, इतना थक

जाता हूँ कि खाना खाते ही सो जाता हूँ। ऐसे संघर्ष में रत हूँ कि क्या कहूँ।"

"परसों तो इतवार है। हमारे 'स्टडी-सरकल' की मीटिंग है। कुछ समय निकालिए। यह भी तो आप ही का संघर्ष है।"

"चलते चलिए!" हरीश जी ने कहा, "नौ बज गये हैं और आप को दूर जाना है।"

साथ ही साथ कदम उठाते हुए वसंत ने कहा, "देखिए आने की पूरी कोशिश करूँगा," फिर जगमोहन की ओर पलट कर बोला, "तो कल तुम आ रहे हो न, मुझे स्वयं अभी एक जगह जाना है। कल चलेंगे लारेंस तक। इसी वक्त आना।"

"बेहतर।"

और वसंत दोनों हाथ माथे पर जोड़, सिर को तीनों की ओर घुमाते हुए, एक ही भंगिमा से तीनों को नमस्कार करता हुआ चला गया।

मार्केट के चौरस्ते पर रुक कर हरीश जी ने जैसे अपने से कहा, "हमारी एक ज़रूरी मीटिंग है साढ़े नौ बजे, मेरा समय पर वहाँ पहुँचना बड़ा जरूरी है," और फिर मुड़ कर जगमोहन से बोले, "आप तो शायद संत नगर रहते हैं।"

"जी ऋषि नगर।"

"क्या दुरो जी को गोपालनगर पहुँचा कर उधर से घर को न चले जायेंगे!" फिर दुरो से बोले, "जगमोहन न मिलते तो मैं चलता गोपाल नगर तक, आती बार ताँगा करना पड़ता और पैसे भी आप के लगते। मेरे पास तो आप जानती हैं, एक पैसा भी नहीं।" और वे हँसे।

"जी मैं पहुँचा दूँगा," जगमोहन ने तत्परता से कहा। उस की इस तत्परता में हल्का सा पुलक भी निहित था।

"कोई बाघ तो है नहीं रास्ते में जो मुझे खा जायगा," दुरो हँसी। "आप काहे चिन्ता करते हैं!"

उस की बात का उत्तर दिये बिना हरीश ने जगमोहन के कंधे को थपथपा दिया, "थैंक्स कामरेड", और फिर दायाँ हाथ सिर से ज़रा सा ऊपर उठा कर "चीरियो," कहते हुए वे चले गये।

दुरो क्षण भर वहीं खड़ी हरीश जी को जाते देखती रही, फिर सहसा चौंक कर और एक लम्बी साँस को कंठ के नीचे दबाते हुए (जिस प्रयास में उस का वक्ष उठा तो, पर निमिष भर को वहीं रुका रहा) वह मुड़ी। तब, जैसे उसे पहली बार जगमोहन की उपस्थिति का भान हुआ हो, उस ने कहा, "हरीश जी इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें चन्द मिनट का भी अवकाश नहीं मिलता," और वह हँसी और उसी हँसी में उस ने वक्ष में रुकी-घुटी साँस मुक्त कर दी, "आप काहे इतनी दूर जाने का कष्ट करेंगे?" उस ने चलते हुए जगमोहन से कहा, "मैं चली जाऊंगी।"

जगमोहन ने उस के साथ क़दम उठाते हुए कहा, "नहीं नहीं, इस में कष्ट की कौन बात है?"

"हरीश जी योंही फ़िक्र करते हैं," दुरो के स्वर में ज़रा सी खीझ थी," मैं बीस बार इस से भी कुछ देर बाद अकेली गयी हूँ।"

"देखिए दुरो जी मुझे तो खुशी होगी।" भावना के आधिक्य से जगमोहन का गला लगभग घुटा जा रहा था। शब्द उस के मुँह से ठीक निकल न पा रहे थे। कुछ अजीब सी हकलाहट उन में थी, अपनी सारी इच्छा-शक्ति को काम में ला कर उस ने वाक्य समाप्त किया, "हाँ, यदि आप मेरे साथ जाना न पसन्द करें तो दूसरी बात है।" वह क्षण भर रुका, फिर जैसे अन्तर का सारा ज़ोर लगा कर उस ने कहा, "पर अपने रास्ते चलता चलता भी मैं उस तोप तक तो आप के साथ चल ही सकता हूँ।"

उसके अन्तिम वाक्य में हकलाहट के साथ कुछ ऐसी आर्द्रता थी कि दुरो चौंकी। उस ने चलते चलते मुड़कर जगमोहन की ओर देखा। पश्चात्ताप-भरी-सी मुस्कान निमिष भर को उस के ओठों पर फैल गयी। "नहीं नहीं चलिए, आप का आभार होगा।" उस ने कहा। "मैं ने तो योंही हरीश जी की बात पर कहा था।"

और वह फिर सिर झुकाये अपने ध्यान में मग्न चलने लगी। उसे हरीश जी पर क्रोध न था। उन की घोर-व्यस्तता पर तो उस के मन में दया का भाव ही था, क्रोध था उसे योंही......इस चाँस पर...... यूनियन के दफ़्तर से नीचे उतरते ही जगमोहन के मिल जाने पर...... मीटिंग के आरम्भ होने में अभी आध घंटा था। जगमोहन न मिलता तो वे उसे गोपालनगर के इस सिरे तक अवश्य छोड़ने आते। ट्राँसपोर्ट-यूनियन की मीटिंग के बाद आज ही हरीश को कुछ समय मिला था। वे साँझ के स्कूल में आये थे और जब वे दोनों इकट्ठे उतरे थे तो दुरो का ख़याल था कि वे गोपालनगर तक उस के साथ जायेंगे......तभी जगमोहन मिल गया और जैसे वह कोई बोझ हो, उसे जगमोहन पर लाद कर वे चले गये और सहसा उस के हृदय में कहीं बहुत गहरे कुछ अजीब सा, अनाम सा सुलग उठा।

भंगियों* की तोप कहीं पीछे रह गयी, गोल बाग कहीं पीछे रह गया, पुराना सेक्रेटेरिएट भी कहीं पीछे रह गया......दोनों चुप चाप चले जा रहे थे। न दुरो ने बात आरम्भ की, न जगमोहन ही को साहस हुआ।

ऊपर आकाश में रीते सफ़ेद बादल बिखरे हुए थे, जिन में शुक्ल-पक्ष का चाँद साँझ ही से निकल आया था। बड़ी हल्की हवा रमक रही थी। पर जगमोहन को ऊपर आकाश से बरसते हुए रजत-सौन्दर्य

---

*बहंगियों या भंगियों की तोप जिसे राणा रणजीत ने रावी से निकाला था और जो लाहौर के अजायब-घर के सामने रखी है।

का भान न था। वह तो जैसे अर्ध-सुप्तावस्था में चला जा रहा था। चेतना उस की जैसे शून्य थी। कभी-कभी किसी भटके राही सा विचार बार-बार उस के दिमाग़ के दरवाज़ों पर दस्तक देता—वह मार्केट ही से क्यों न चला गया? वह क्यों हठ कर के उस के साथ आया? लेकिन दिमाग़ के बन्द दरवाज़े जैसे उस दस्तक को परे ढकेल कर वैसे के वैसे भिंच जाते।

तेगबहादुर रोड पर, चौक के इधर ही, सत्या जी का घर दिखायी दे जाने से सहसा जगमोहन रुक गया। उस के दिमाग़ के किवाड़ जैसे अपने आप बिना किसी दस्तक के चौपाट खुल गये और जैसे बाहर प्रतीक्षा करने वाले विचारों की भीड़ एक साथ वहाँ घुस आयी! एक साथ ही बहुत कुछ कहने को उस का मन व्यग्र हो उठा। किन्तु उस का कंठ अवरुद्ध-सा हो गया, उस के ओंठ जैसे सिल गये। बड़े ही यत्न से जब वह बोला तो इस के सिवा और कुछ न कह सका......

"दुरो जी, मुझे क्षमा करना......आप का घर आ गया है। मैं चलता हूँ ......मुझे पता होता, आप को मेरा आना इतना खलेगा तो वहीं मार्केट से अलग हो जाता।"

उसके स्वर में कुछ ऐसी हकलाहट, कुछ ऐसी आर्द्रता थी कि दुरो ने चौंक कर उस की ओर देखा। हरीश के ध्यान में वह जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गयी थी। जगमोहन का गीला-गीला स्वर उसे जैसे धरती पर ले आया। वह रुकी। मुड़ी। जगमोहन सिर झुकाये खड़ा था। आवेग से वह हल्का सा काँप रहा था। उस के नथने फड़क रहे थे। दुरो के वक्ष में कुछ अजीब-सी ममता, नदी के ज्वार-सी, सहसा उमड़ आयी। बाज़ार न होता तो शायद वह उस बच्चे को अपने सीने से लगा कर प्यार से थपथपा देती।

"अच्छा नमस्ते जी!"

जगमोहन के सूख-रहे-से कंठ से बड़े ही भीगे-से शब्द निकले और

वह मुड़ा। दुरो ने उसे बाज़ू से थाम लिया।

जगमोहन सिर झुकाये चुप खड़ा रहा। दिल उस का बेतरह धड़कने लगा।

"मुझे माफ़ करना भाई," दुरो ने उस की बाँह पर हाथ का ज़ोर ज़रा बढ़ाते हुए कहा, "मुझे तुम्हारा साथ आना नहीं खला। तुम्हारा तो आभार मुझ पर है। हरीश जी का न आना मुझे खला। पर मैं नयी-नयी इस क्षेत्र में आयी हूँ। देश और जनता की सेवा ममत्व और स्वत्व का जो बलिदान चाहती है, मैं अभी उस के योग्य नहीं हुई। अपनी छोटी सी हस्ती और उस की छोटी-छोटी इच्छाएँ मुझे बड़े महत्व की लगती हैं। उन के न पूरा होने पर दुख होता है। पर जिन्होंने अपने ममत्व, स्वत्व और अहं—सब के ऊपर देश को रखा है, उन के सम्मुख इन भावनाओं का उतना मूल्य नहीं। मुझे गोपाल नगर तक पहूँचाने का भार आप पर छोड़ कर उन के चले जाने से मुझे क्षोभ हुआ। न जाने मुझे क्या हो गया। मैं अपने आप में न रही। मैं शर्मिन्दा हूँ। हरीश जी से भी। आप से भी।' और उस ने जगमोहन के बाज़ू को तनिक सा हिलाया, "अबतो नाराज़ नहीं!"

"नहीं इसमें शर्मिन्दा होने की क्या बात है?" जगमोहन का सूखा कंठ न जाने कैसे गीला हो गया, उस की हकलाहट न जाने कहाँ चली गयी। सहज-भाव से उस ने कहा, "हम सभी नये हैं। हमें अभी बहुत कुछ सीखना है। मुझे शिकायत न करनी चाहिए थी।"

"नहीं-नही आप की शिकायत बजा थी।" दुरो ने जगमोहन के कंधे को थपथपाया। "तो परसों स्टडी-सरकल में आ रहे हैं न आप? सत्या बहन कहती थीं, आप ने कोई बड़ी सुन्दर कविता लिखी है। उसे ज़रूर लाइएगा।"

"ज़रूर लाऊँगा!" जगमोहन के स्वर में एक अजीब सी उत्फुल्लता और उल्लास था।

"अच्छा नमस्ते, चलूँ देर हो रही है।" और जगमोहन के कंधे को एक बार थपथपा कर दुरो तेज़-तेज़ चली गयी।

जगमोहन कुछ क्षण वहीं जमा-सा खड़ा रहा। जब दुरो अपने मकान के दरवाज़े में चली गयी तो वह मुड़ा। उस के हृदय से एक दीर्घ-निःश्वास निकल गया। और जैसे अपने साथ उस का सारा क्रोध, क्षोभ और खिन्नता ले गया। उस का मन हल्का और उत्फुल्ल हो गया।

चाँद सफ़ेद-सफ़ेद बादलों में तेज़-तेज़ भाग रहा था। जगमोहन भी तेज़-तेज़ चलने लगा। कल्पना के बादल उस के मस्तिष्क पर छा गये-सफ़ेद-सफ़ेद, हल्के-हल्के, पुलक और उल्लास से भरे और वह अनायास उन में बहने लगा।

"तुमने बड़ी देर कर दी, मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ।" उस के घर पहुँचते ही बड़े भाई ने कहा और उन्होंने अपनी बीवी को आवाज़ दी कि खाना परोसे।

उस के भाई खाने पर कभी ही उस की प्रतीक्षा करते थे। किसी दूसरे दिन वे ऐसा कहते तो वह उत्तर देता, "आप ने नाहक प्रतीक्षा की, आप खा लेते।" पर वह अपने में इतना मग्न था कि उस ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। छत के नल पर जा कर हाथ धो आया और भाभी ने खाना पुरसा तो चुप-चाप खाने पर बैठ गया। बार-बार उन के सामने वही दृश्य आता जब दुरो ने उस की बाँह थाम कर उसे रोका था। उस का एक-एक शब्द उस के कानों में गूँजता। उसे जगमोहन का साथ आना न खला था, हरीश जी का न आना खला था। कदाचित् वह हरीश जी को चाहती थी। तो भी उस से वह घृणा नहीं करती। इतना ही क्या पर्याप्त नहीं? वह तो उस से प्रेम करता है। यही क्या यथेष्ट नहीं? कलाकार सृजता है। देता है, पाता नहीं।

पर देने में उसे सुख मिलता है। प्रेम करना भी क्या वैसा ही नहीं? अपने ही में वह क्या सुख नहीं? कलाकार बाद में चाहे ख्याति पाये और प्रेमी अपनी प्रेयसी का प्रेम पाले, पर उस पाने के बिना भी तो सृजन और प्रेम दोनों सुख देते हैं। और जगमोहन सुखी था—यह जान कर भी कि उस के प्रेम का प्रतिदान शायद दुरो न दे सकेगी! उस क्षण की याद करके जब दुरो ने उस की बाँह को हिला कर कहा था—अब तो नाराज़ नहीं—जगमोहन के ओठों पर सुख की हल्की सी मुस्कान आ जाती थी। एक विचित्र-सा पुलक उस की नस-नस में दौड़ जाता था......

और उस के भाई सत्या जी की प्रशंसा कर रहे थे। उन्होंने दस हज़ार के केस उन्हें सप्ताह भर के अन्दर दिलवाये थे और जब उन्होंने उसे कमीशन का आधा देना चाहा तो उस ने इनकार कर दिया था। भाई साहब उन की शालीनता, चतुराई, कर्मठता और सौहार्द की प्रशंसा कर रहे थे। "जब मैं ने बहुत ज़ोर दिया," भाई साहब कह रहे थे, "तो कहने लगी कि मेरी ओर से भाभी के लिए इन रुपयों की माला बनवा दीजिएगा।"

"बच्चे तो उस से ऐसे हिल गये हैं कि आँटी, आँटी करते नहीं थकते," भाभी ने रद्दा जमाया, और वह भी तो कुछ न कुछ उन के लिए लाती रहती है।"

"वह यहाँ आती है?" सहसा जगमोहन ने पूछा, "मैं ने तो मना कर दिया था कि वह यहाँ कभी न आये!"

भाई साहब खाना खा चुके थे। हाथ धोते हुए उन्होंने कहा, "उस दिन मैं ने वह सब भ्रम में कहा था। वह ऐसी लड़की नहीं लगती। उस की शालीनता का तो मैं क़ायल हो गया हूँ। इतनी देर बैठी रही। एक बार भी तो नज़र ऊँची नहीं की।"

और वे सोने चले गये।

जगमोहन के हाथ धुलाते हुए भाभी ने कहा, "अँधेरे में बैठने का

उन्होंने बुरा माना होगा, नहीं सत्या को तो वे बड़ा मानते हैं। 'तुम्हें पसन्द हैं तो मैं करूँ बात उस की चाची से ?"

जगमोहन ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया। उस की दृष्टि सहसा भाभी की साड़ी पर गयी। "यह बड़ी अच्छी साड़ी पहनी है। कब लायीं ?"

"सत्या के साथ बाजार गयी थी—यौंही घूमने—वहाँ खादी भंडार में चले गये। मुझे इस का रंग पसन्द आ गया। सत्या का वहाँ हिसाब है। ज़बरदस्ती उस ने मुझे ले दी।"

"बहुत बढ़िया रंग है।" जगमोहन ने केवल इतना कहा और ऊपर चला गया।

आकाश सर्वथा निरभ्र था। सफेद बादलों के टुकड़े न जाने कहाँ चले गये थे। चाँद पूरी आभा के साथ चमक रहा था। हाँ, दिशाओं के घेरे में कभी-कभी बिजली चमक उठती थी।

बिस्तर बिछा कर उस पर लेटते हुए जगमोहन देर तक चाँद को देखता रहा और फिर उस ने लम्बी साँस ली। पं० रघुनाथ, सत्या जी, वह स्वयं, दुरो और हरीश, जाने हरीश के आगे भी कोई हो और वह विषाद से मन ही मन हँसा और ओठों में गुनगुनाने लगा, भर्तृहरि का प्रसिद्ध दोहा :

> यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
> साप्यान्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यरक्तः

दो तीन बार उस ने ओठों ही ओठों में यह श्लोक दोहराया फिर वह उसी तरह मन ही मन हँसा। तब उसे 'संस्कृति-समाज' के अवसर पर लिखी अपनी कविता याद आ गयी।

यह प्रेम कुसुम सखि मेरे
सूने उर की डाली पर,
चुप चुप धीरे धीरे सखि
मुरझा जायगा खिलकर।

तुम पा न सकोगी इस की
जीवन भर गंध कुमारी!
पर मिट कर महकायेगा
यह मानस की फुलवारी।

क्या डंके की चोट अपने प्रेम की घोषणा करने वाले और उस के लिए 'हाय हाय' करते हुए जान दे देने वाले का प्रेम ही बड़ा है? —जगमोसन ने सोचा—चुप-चुप उस की ज्वाला में—दूसरों को तो क्या—अपने महबूब तक को उस की आँच दिये बिना उस में सुलगने वाले का प्रेम क्या कुछ नहीं? और जगमोहन ने जैसे भावना के पूरे आवेग से वही गीत दोहराया:

तुम पा न सकोगी इस की,
जीवन भर गंध कुमारी।
तुम पा न सकोगी इस की
. . . .

———

४४

कभी कभी ऐसा भी होता है कि सुख-दुख, हर्ष-विषाद, मानसिक कष्ट और हार्दिक-हुलास—एक दूसरे से सर्वथा विरोधी भावनाओं से एक ही दिन में हमें दो चार होना पड़ता है। इतवार का दिन जगमोहन के लिए कुछ वैसा ही दिन साबित हुआ।

सुबह जब वह उठा तो यद्यपि अभी सात ही बजे थे, पर सूरज जैसे सिर पर आ गया था। धूप में आँखें न टिकती थीं। उमस और गर्मी के मारे शरीर में चींटियाँ सी रेंगती हुई महसूस होती थीं। इस पर भी जगमोहन एक दम उछल कर नहीं उठा। रात खुली आँखों से सपने देखते रहने और यों देर में सोने के कारण शरीर कुछ थका-थका सा लग रहा था। वहीं चारपाई पर लेटे-लेटे सूरज की ओर से आँखें मोड़, उस ने खुल कर एक अंगड़ाई ली। फिर सिरहाने पड़े कुर्ते से मुँह और गर्दन का पसीना पोंछा और उठ बैठा। कुछ क्षण वह उसी प्रकार जैसे गत रात के रस में शराबोर बैठा रहा। फिर दुरो की बात 'अब तो आप नाराज़ नहीं' याद आ जाने से उस के ओठों पर हल्की सी मुस्कान दौड़ गयी। वह उस नशे की सी अवस्था में जाने कब तक बैठा रहता, पर धूप उस की नंगी पीठ पर बेतरह चुभने लगी थी। सुख की लम्बी साँस ले, बिस्तर गोल कर उस ने अन्दर कुर्सी पर रखा। फिर चारपाई अन्दर की। बिस्तर उस पर बछाया। तब वह नित्य-कर्म से निवृत्त होने चला गया।

डेढ़ दो घंटे के बाद जब वह होतूसिंह रोड के हलवाई की दुकान से लस्सी का गिलास पी कर प्रो० कपूर के घर उन के बच्चे को पढ़ाने जा रहा था, तो उस की गति में अन्यमनस्कता के बदले एक विचित्र स्फूर्ति-सी थी।

प्रो० कपूर के घर जाना वास्तव में जगमोहन को एक दिन भी अच्छा न लगा था। वह स्वयं ग़रीब था। उस की बीसियों ऐसी आदतें थीं जो ज़रा ऊँचे-स्तर के लोगों में असभ्यता का अंग समझी जातीं, पर इस के बावजूद वह अपने कमरे में सफ़ाई और क़रीने का बड़ा क़ायल था। प्रो० कपूर के घर कुछ ऐसी अस्त-व्यस्तता फैली रहती थी कि जगमोहन का मन वहाँ बड़ा घबड़ाता था। प्रोफ़ेसर साहब के कमरे ही में नहीं, प्रोफ़ेसरायन के कमरे में, आँगन में, डेवढ़ी में—सब जगह, सब तरह की चीज़ें बिखरी-रहती थीं......मैले कुचैले कपड़े; फटी-पुरानी चिंदियाँ; खिलौने; बर्तन; रसोई-घर से कुत्ते या बिल्ली पर खेंच कर मारी गयी कोई लकड़ी या उपला; साइकिल का प्लास या घंटी का ढकना; बिजली के बल्ब का खौल या कोई टूटा गुलदान और दसियों दूसरी चीज़ें..... जगमोहन को सब से ज़्यादा बच्चों के खिलौनों और फटी-पुरानी चिंदियों से नफ़रत थी।.....दो चार सुन्दर खिलौने अँगीठी पर अथवा कमरे के एक ओर कोने में पड़े हों तो उसे कोई आपत्ति न थी, पर खिलौने—जिन की सूरत-शक्ल बिगड़ चुकी हो, बच्चों ने जिन के हाथ-पाँव सिर या धड़ तोड़ दिया हो, मैल ने जिन्हें काला कर दिया हो ......और चिंदियाँ जिन से जूते तक पोंछने को जी न चाहे...कई बार उन्हीं बे-रंग-रूप के मैले-घिनौने खिलौनों को हाथ में ले कर उसे उन से बच्चों को बहलाना-परचाना पड़ता था और उन सब से मन ही मन जगमोहन को बड़ी घृणा होती थी......लेकिन उस कूड़े के ढेर पर बैठी प्रोफ़ेसरायन अपनी शृङ्गार-साधना और प्रोफ़ेसर साहब अपने अध्ययन में सतत निरत रहते। फिर माता-पिता सफ़ाई

और स्वच्छता की ओर से उदासीन हों तो बच्चों से उन की आशा रखना बेकार है..... मैले-कुचैले कपड़े पहने, नंगे, अध-नंगे, बहती हुई नाक और कीचड़-भरी आँखें लिये हुए वे सभी कमरों में धमा-चौकड़ी मचाते फिरते।

जगमोहन जिस बच्चे को पढ़ाता था, वह अपेक्षाकृत साफ़ था, प्रोफ़ेसर साहब की पहली पत्नी का बड़ा बच्चा—गोरा-चिट्टा, साफ़-सुथरा, मौन - गंभीर और उस बचपने ही में प्रौढ़ता का नक़ाब पहने! जगमोहन को उसे पढ़ाना अच्छा भी लगता था। पर जब वह उसे पढ़ाने बैठता तो प्रोफ़ेसर साहब के दूसरे बच्चे नंग-धड़ङ्ग आ इकट्ठे होते कि उन्हें भी पढ़ाया जाय और तब लड़ाई-झगड़ा, रोना-रुलाना और पुचकारना-परचाना होता। तभी प्रोफ़ेसरायन को कोई काम याद आ जाता और वे 'मास्टर साहब' को उस काम पर भेज देतीं।

पहले दिनों में जगमोहन कृतज्ञता-वश अपने आप भाग-भाग कर उन के छोटे मोटे काम कर देता था......बच्चों के स्कूल जाने का वक़्त सिर पर आ जाता, घर में दो आलू भी न होते कि काट कर छौंक दिये जायँ, जगमोहन स्वयं ही कहता......'लाइए, मैं भाग कर बाज़ार से ला देता हूँ।'......भाभी बाथरूम में नहा रही होतीं कि आँगन में पीढ़े पर बैठा या खिलौनों से खेलता बच्चा रुदन-वीणा छेड़ देता। जगमोहन उसे अपने आप उठा कर परचाने लगता......भाभी रसोई-घर में आटा गूँथ रही होतीं कि प्रोफ़ेसर साहब की चिलम बुझ जाती और वे आवाज़ देते। जगमोहन झपाके से उठ कर चिलम भर लाता......उन पहले दिनों में यह सब वह अपने आप करता था, पर धीरे-धीरे भाभी ने जगमोहन की उस सहृदय-विनम्रता को जैसे अपने अधिकार के रूप में ले लिया। वह अभी पढ़ाने को बैठने की तैयारी कर रहा होता कि उसे आदेश मिलता—ज़रा बाज़ार से भाग कर सब्ज़ी ले आये...वह बड़ी तन्मयता से बच्चे को पढ़ा रहा होता कि आवाज़ पड़ती...चिलम

बुझ गयी है, भर दे। वह घंटे भर से कहीं अधिक समय लगा कर, बच्चे को पढ़ा कर घर जाने लगता कि भाभी कहतीं, "मोहन ज़रा नन्हें को चौक तक तो घुमा लाओ, बड़ा बेहाल हो रहा है"......और चाहते हुए भी वह इनकार न कर पाता ....वह झुँझलाता कि क्यों उस ने अपने आप यह बला मोल ले ली? खीझता कि क्यों उस ने अपनी स्थिति को ऐसे गिरा दिया? अफ़सोस करता कि पढ़े-लिखे होते हुए भी उन्हें क्यों इतनी समझ नहीं कि यदि किसी ने बाँह दी है तो उसे निगल न लेना चाहिए और झुँझलाता-खीझता, अनिच्छा और अन्य-मनस्कता से वह रोज़ एक दो घंटे के लिए प्रोफ़ेसर साहब के यहाँ जाता, बच्चे को पढ़ाता, घर का छोटा-मोटा काम करता और प्रोफ़ेसर साहब की चिलम भरता।

उस दिन जब वह प्रोफ़ेसर साहब के घर की घिनावनी-अस्तव्यस्तता, उन के बच्चों और बीवी की बदतमीज़ी और अपनी स्थिति की यथार्थता को भुलाये हुए, खुश खुश वहाँ पहुँचा तो उनके यहाँ कुछ संबंधी आये हुए थे। दो युवा लड़कियाँ नागिनों सी दो-दो वेणियाँ लहरातीं, आँगन में इधर-उधर उड़ती सी फिर रही थीं। प्रोफ़ेसरायन रसोईघर की चौखट में बैठी पूरियों के लिए आटा मल रहीं थीं। उन लड़कियों की माँ (अथवा चाची या मौसी, जगमोहन को मालूम न हो सका) पास ही पीढ़े पर फसकड़ा मारे बैठी पेड़े कर रही थी। बच्चा आँगन में घुटनियों चल रहा था और दूसरे बच्चे बाहर धमा-चौकड़ी मचाने चले गये थे।

जगमोहन ने पूछा कि रतन (बच्चा जिसे वह पढ़ाता था) कहाँ है? और जब उसे पता चला कि वह अपने मेहमान हमजोलियों के साथ बाहर खेलने गया है तो वह आँगन ही में पड़ी एक लोहे की कुर्सी पर बैठ गया। फिर उस ने वहीं आँगन में एक ओर पड़ा समाचार-

पत्र उठा लिया और चुपचाप पढ़ने लगा। तब सहसा वे दोनों लड़कियाँ, जिन की उपस्थिति से समाचार-पत्र में दृष्टि गड़ाये भी जगमोहन अभिज्ञ था, सहसा नाक भौंह चढ़ाती हुई डेवढ़ी में चली गयीं। जगमोहन ने आँख उठा कर देखा, बच्चे ने अपना फ़्राक और शरीर और फ़र्श सब खराब कर दिया था, अंडरवेयर उस की 'सुघड़' माँ ने उसे पहना न रखा था और वह दृश्य आँखों के लिए कुछ वैसा दर्शनीय न था। जगमोहन ने आँखें फिर समाचार-पत्र में जमा लीं, किन्तु बच्चा अपने हाथ खराब करने जा रहा था और उस की माँ आटे में हाथ लथेड़े थी। तब उन लड़कियों की माँ (या मौसी या चाची) ने उन में से एक को आवाज़ दे कर बुलाया और कहा कि ज़रा बच्चे को नल के नीचे ले जाय! उस लड़की ने एक बार फिर दृष्टि उठा कर उस ओर देखा और फिर जिस तरह नाक भौंह चढ़ायी, उसे देख कर प्रोफ़ेसरायन ने जगमोहन से कहा कि वह ज़रा लड़के का फ़्राक उतार कर उस पर पानी डाल दे।

जगमोहन के जी में आयी कि उठे और बिना किसी प्रकार का उत्तर दिये वहाँ से चला जाय। वह धाय है या भंगी? जिस काम को संबंधी होते हुए वह लड़की नहीं करना चाहती, उसे उन के बच्चे का अध्यापक होते हुए वह क्यों करे? भले ही प्रोफ़ेसर साहब का अहसान उस पर है, पर वह उन का नौकर तो नहीं! अपार खीझ से झुँझला कर वह उठा, लेकिन वह गया नहीं। चुपचाप बिना किसी से आँखें मिलाये उस ने बच्चे को उठाया। उसे नल पर ले जा कर, उस का फ़्राक उतार कर, एक ओर फेंक दिया और उसे नल की धार के नीचे धो दिया। तब उसे उस की माँ के पास बैठा कर उस ने राख से अच्छी तरह हाथ धोये और बिना किसी को 'नमस्ते' किये वह चला आया।

घर आ कर वह सीधा अपने कमरे में गया और अन्यमनस्क सा खुर्री चारपाई पर लेट गया। मन में उस के तूफ़ान सा मचा हुआ था। उसे यह भी पता नहीं चला कि खाने का समय कब का हो चुका है और

नीचे भाभी बैठी उस की प्रतीक्षा कर रही है। आखिर जब वह एक बच्चे को गोद में लिये और एक का हाथ थामे ऊपर आयी और उस ने उसे चल कर खाना खाने के लिए कहा तो वह हड़बड़ा कर उठा। किन्तु उसी प्रकार जा कर खाना खाने में उसे एक अजीब सी घिन लगी। वह अपने उल्लास में अपना वही सिल्क का कुर्ता और धोती पहन गया था, किन्तु वही कपड़े पहने खाना खाने को उस का जी न हुआ। वह नल पर गया। अपने सब कपड़े धोकर उस ने धूप में फैला दिये। साबुन से अच्छी तरह मल कर नहाया और तब खाना खाने बैठा।

खाना खाने के बाद उस ने कुछ क्षण सोना चाहा, किन्तु जब फिर दिमाग़ में लहरिये से उठने लगे तो वह झुँझला कर उठ बैठा। नेकर-कमीज़ पहन, वह बाहर छत पर निकला। कपड़े काफ़ी सूख गये थे। उन्हें साथ लिए हुए वह नीचे उतरा। गली के धोबी से उस ने कहा कि ज़रा और सूख जायँ तो वह इस्त्री कर के रख दे, वह लौटते समय ले लेगा। तब श्रीमती कर्मा के यहाँ जा कर चातक जी के साथ कुछ समय गुज़ारने के विचार से वह घोड़ा-अस्पताल की ओर चल पड़ा।

कवि चातक उसे उसी छोटे से कमरे में मिले। श्री कर्मा ने इस बीच में शायद एक नौकर छोकरा रख लिया था। उसी ने दरवाज़ा खोला और वही उसे चातक जी के कमरे में ले गया। दरवाज़े में जगमोहन क्षण भर के लिए ठिठक गया—चातक जी चारपाई पर अध-लेटे अध-बैठे थे। खादी का धुला धोती-कुर्ता उन्हों ने पहन रखा था। दाढ़ी बिलकुल साफ़ थी। बाल सफ़ाई से कढ़े थे। ओठों पर पान की लाली थी। उन के सामने चारपाई की पट्टी पर ही श्रीमती कर्मा बैठी थीं। कवि बड़ी तन्मयता से कविता सुना रहे थे और वे सुनती हुई करोशिया चला रही थीं।

अचकचा कर श्रीमती कर्मा उठीं। हड़बड़ी में ही उन्हों ने जगमोहन से आकर उसी स्थान पर बैठने को कहा और जब हड़बड़ी ही में जगमोहन वहीं चारपाई की पट्टी पर उन की जगह बैठ गया तो वे बाहर चली गयीं। जगमोहन ने सुना वे नौकर छोकरे को दबे-स्वर में डाँट रही थीं कि वह बिना पूछे क्यों लोगों को अन्दर ले आता है। उसे आने वाले को बाहर रोक कर अन्दर खबर करनी चाहिए। नौकर कह रहा था कि वह तो पूछने आ रहा था, पर साहब भी पीछे-पीछे आ गये।

जगमोहन मन ही मन हँसा। फिर उसे कुछ ग्लानि हुई। पर जब उस ने चातक जी की ओर देखा तो वह आश्वस्त हो गया। उन की आकृति पर लेशमात्र भी आक्रोश न था, बल्कि लगता था जैसे उस के इस प्रकार आ जाने से वे बड़े प्रसन्न हुए।

जगमोहन आश्वस्त हो कर अच्छी तरह बैठ गया तो चातक जी ने श्रीमती कर्मा की बड़ी प्रशंसा की कि वे काव्य की जैसी रसिका हैं, वैसी कम ही महिलाएँ उन्हें देखने को मिली हैं। "कविता की बारीकियों को समझना और उन की दाद देना हर महिला के बस का रोग नहीं, इस के लिए बड़े कोमल, समवेदनशील-हृदय और बारीक सूझ-बूझ की आवश्यकता है।" उन्हों ने कहा और बताया कि किस प्रकार उन के सान्निध्य से प्रेरणा पा कर वे लगभग हर रोज़ एक कविता लिखते रहे हैं और उन की कविताओं का एक संग्रह तैयार हो गया है।

"शुक्ला जी आप की एक कविता की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे," जगमोहन ने कहा, "आप ने शायद 'संस्कृति-समाज' में पढ़ी थी।"

"बेचैनी के घूँट!" कवि चातक बोले, "वही मैं कुम्मो जी को सुना रहा था। उस कविता ने तो तहलका मचा दिया है। मैं जहाँ जाता हूँ, लोग उसे ही सुनाने का अनुरोध करते हैं।"

वे उठे और कोने के ढेर से एक कापी उठा लाये। "यह देखो कविताओं का एक संग्रह तैयार हो गया है।" उन्हों ने कहा। फिर किंचि

हँसते हुए बोले, "लो सुनो तुम्हें भी 'बेचैनी के दो घूँट' पिला दूँ।"
और उन्हों ने उसी तरह चारपाई पर बैठ कर कविता सुनानी शुरू की :

प्राण, निमन्त्रण दिया मुझे क्यों, आने का निज-स्वर्ण-भवन में ?
नस नस में दौड़ा दी पीड़ा, लहरा दी आतुरता मन में।
चिर दिन के सोये सपने प्रिय, पंख-नवीन अचानक पा कर,
उड़ने को रंगीन-गगन में, जाग उठे ज्यों अंगड़ाई भर।

पर अपनी स्थिति की यथार्थता
पावों की बेड़ी बन जाती।
हृदय इधर सुख से विह्वल प्रिय
उधर नियति चुप चुप मुस्काती।

कहाँ तुम्हारा यह आकर्षण, तीन लोक को मोहित करता,
कहाँ गरीब भिखारी सा मैं, दो दिन जीता, दो दिन मरता।
तुम हो कली स्वर्ग के वन की, मैं काँटा जलते मरुस्थल का,
मुझे बुलाया क्यों ढिग अपने, मचा जगत में प्राण तहलका।

तुम से प्यार जगत की आशा,
तुम से प्रीति जगत का सपना,
मुझी अकेले को तुम चाहो
प्राण, बनाना फिर क्यों अपना ?

फूलों की रंगीन हँसी में, प्रिय मुस्कान तुम्हारी खिलती,
और तुम्हारी चंचलता की, झाँकी है विद्युत में मिलती।
कमलों की पलकों से लगते, नयन तुम्हारे साँझ सिकारे,
उन की चितवन चूम जी उठें, कहाँ प्राण ये भाग्य हमारे।

ममता से मन हो उठता है,
लोट जाऊँ चरणों में विह्वल।
पर मेरी लज्जा की बेड़ी,
कर देती है गति को निश्चल !

कवि चातक अभी यहाँ तक ही पहुँचे थे कि मिसेज़ कर्मा घबरायी हुई आयीं।

"बाहर एक औरत आप को पूछ रही है। मैं तो पहचानती नहीं, पर शायद भाभी ...."

और इस से पहले कि मिसेज़ कर्मा अपनी बात खत्म करतीं, अपने अस्तव्यस्त बाल और सानुनासिक स्वर लिये, चंडी का रूप धरे, भाभी दरवाज़े पर खड़ी थीं।

"मैं भीं कहूँ किं लाहौंरं सें कोंई खंबंर क्यों नहीं आंतीं। तुंम इंहाँ मंजें उँड़ां रहें हों और उँहां बंच्चे भूंखों मंर रंहे हैं।" उन्होंने अपने कर्कश सानुनासिक स्वर में कहा। "आधें लांहौंरं कां चंक्कर लंगांयां हैं जंब तुंम्हांरां पतां लंगा पांयीं हूं।" वे चिल्लायीं "तुम्हें यहीं रँगरँलियाँ मंनानी हैं तों हमें जंहर दें दों।"

चातक जी उचक कर उठ बैठे। उन की सारी मस्ती काफ़ूर हो गयी। कापी उन्होंने एक ओर रखी और चारपाई से उठे। बालों की लट को उन्होंने बायें हाथ से पीछे हटाया और एक पैर से दूसरे के टखने पर खुजली को शाँत किया। तभी उन के काले-कलूटे बच्चे को उठाये, मूँछों में मुस्कराते शुक्ला जी दरवाज़े में नमूदार हुए।

"अरे भई चातक जी आप ने घर कोई पत्र नहीं लिखा? भाभी बेचारी घर में ताला लगा देख कर न जाने कहाँ कहाँ ढूँढ़ती दफ़्तर पहुँचीं!..... "

"तुम्हें आने से पहले लिखना चाहिए था। मैं स्टेशन पर पहुँच जाता।" कवि ने ऐसे कहा जैसे उन की साँस फूल रही हो और बात उन के मुँह से निकल न रही हो।

"स्टेंशन पंर नहीं घंर लेनें चलें जांते!" भाभी मुँह बिचका कर व्यंग से बोलीं," तुमनें किंसीं चिंट्ठीं कां जंवांब दिंयां किं मैं तुम्हें लिंखती। तुंम ने तों भेज दिंया मैके किं चलों जांन छंटीं, अंब निंश्चिंत

हों कर रंडियों के संग मजें उड़ाओ।"

सहसा चातक जी की आँखें मिसेज़ कर्मा की आँखों से चार हुईं। मिसेज़ कर्मा के मुख पर स्याही पुत गयी और कवि का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा।

दुर्घटना की आशंका से जगमोहन का हृदय धक-धक करने लगा। उस के ख़्याल में भाभी सीमा का अतिक्रमण कर गयी थीं। चातक जी की आकृति को देख कर उसे भय हुआ कि कहीं वे उन का सिर-विर न फोड़ दें।

पर ज्योंही कवि की क्रोध भरी दृष्टि उन की पत्नी के आग्नेय नेत्रों से चार हुई, उन का सारा क्रोध हवा हो गया। बढ़ कर बड़े धैर्य से भाभी के कंधे पर हाथ रखते हुए उन्हों ने कहा, "चलो अब जो कहना है, घर चल कर कहना।"

जगमोहन ने देखा, उन का रंग फ़क्क है और स्वर हकला रहा है। उस के मस्तिष्क में पंजाबी भाषा का एक चुटकला घूम गया—एक व्यक्ति अपनी पत्नी से बड़ा दबता था। उस के दोस्त उसे 'बीवी-का-ग़ुलाम' कह कर चिढ़ाते थे और वह उन के सामने डींग हाँकता था कि उस की बीवी तो उस के भय से काँपती है। एक दिन उस के दोस्त शाम को उस के यहाँ आ जमे और उस ने, उन के छेड़ने पर, रौब दिखाने के लिए ज़ोर से चिल्ला कर बाहर चाय भेजने के लिए कहा। जब आध घंटा प्रतीक्षा करने पर भी चाय न आयी और मित्रों ने उस से कहा कि पहले भाभी से पूछ तो लिया होता तो वह क्रोध के मारे उठा और अन्दर जाते हुए चिल्लाया, "आज या मैं नहीं या.......और वह अन्दर दाखिल हो गया। सामने उस की पत्नी खड़ी थी, "या?" उस ने कर्कश-स्वर से पूछा।

उस की आवाज़ धीमी पड़ गयी, भरे हुए स्वर में उस ने कहा, "या फिर मैं ही नहीं!" और यह कहते हुए उस ने फिर सिर झुका लिया।

चातक जी के क्रोध को देख कर उस ने सोचा था कि वे भाभी को चोटी से पकड़ कर दो चक्कर देंगे, पर जिस स्नेह से उन्होंने उन के कंधे पर हाथ रखा, उसे देख कर वह मन ही मन हँस दिया।

भाभी चलने ही वाली थीं कि उन की नज़र बिस्तर के तकियों पर पड़ी, "ये तकिये भी घर से उठा लाये हो," उन्हों ने जैसे चिंघाड़ते हुए कहा और बढ़ कर तकिये उठा लिये।

इसके बाद तो एक कुहराम सा मच गया। क्योंकि चातक जी केवल तकिये ही घर से न लाये थे, वहाँ तो लगभग सारे के सारा सामान वहीं से आया था। भाभी चिल्लाये जातीं और एक एक चीज़ इकट्ठा कर शुक्ला जी को दिये जातीं कि वे नीचे ताँगे में रखवायें। आखिर बिस्तरे, चादरें रसोई-घर के लगभग सारे बर्तन, चकला-बेलन और अँगीठी ले कर जब भाभी चातक जी को साथ लिये, बाहर निकलीं तो सारी गली इकट्ठी हो गयी थी।

सामान और बच्चे शुक्ला जी के साथ ताँगे पर भेज दिये गये थे। भाभी चातक जी और जगमोहन के साथ पैदल आयी थीं। उन्हें उन के घर छोड़ कर और भाभी से झूठ बोल कर कि उसे तो चातक जी के उधर जाने का पता उसी दिन चला था, नहीं वह अवश्य उन्हें पत्र लिखता, जब जगमोहन सड़क पर आया तो ज़ोर से ठहाका मार कर हँस दिया। शाम को स्टडी-सरकल की मीटिंग थी। पहले उस ने सोचा कि अब इतनी दूर क्या जाय। वहीं से ग्वाल-मंडी चला जाय। फिर उसे दुरो का अनुरोध याद हो आया कि वह अपनी कविता अवश्य लाये। तब उस ने सोचा कि वह घर जायगा, कपड़े बदल कर, कविता की कापी लेकर वापस आयगा और वह तेज़ तेज़ घर की ओर बढ़ा।

४५

जगमोहन जब स्टडी-सरकल में पहुँचा तो मीटिंग जारी थी। एक साहब जो वेश-भूषा और बैठने के ढंग से प्रोफ़ेसर लगते थे, एक लेख पढ़ रहे थे। लेख अभी आरम्भ हुआ था अथवा खत्म होने को था, क्योंकि न कोई जमाही ले रहा था, न पीछे लेटा था, सब आगे को झुके बैठे थे और उनकी निगाहों के भाले पढ़ने वाले की ओर अविराम तने हुए थे।

जगमोहन को नहाते, कपड़े बदलते देर हो गयी थी, मार्ग में उसे कोई ताँगा न मिला था और वह तेज़ तेज़ आया था। शरीर उस का पसीने से तर था और साँस फूल रही थी। कमरे में एक टाट और उस पर दरी बिछी थी, किन्तु दरी पर तिल भर भी जगह न बची थी। धोती के छोर से मुँह का पसीना पोंछते हुए, वह उस टाट पर ही सट कर बैठ गया। निमिष-भर को उसे ध्यान आया कि उस के कपड़े मैले न हो जायँ, फिर उस ने सोचा कि पुनः लक्स से धो लेगा। उस जैसे साफ़ कपड़े पहने तो वहाँ एक आदमी भी न था। जगमोहन ने एक दृष्टि उपस्थित-मंडली पर डाली। अधिकांश के बाल बिखरे और कपड़े अस्त-व्यस्त थे। एक कोने में महामना मालवीय बने बैठे पंडित दाता राम से उस की दृष्टि चार हुई। सिर तनिक झुका कर उस ने उन्हें 'नमस्कार' किया। 'ये इस मीटिंग में क्या करने आये हैं,' उस ने मन ही मन

सोचा, पर तभी उस ने देखा कि उन के साथ ही, फ़र्श पर दृष्टि लगाये सत्या जी बैठी हैं। 'तो सत्या जी इन्हें यहाँ भी घसीट लाये हैं,' यह सोच वह मन ही मन हँसा। तभी उन के साथ बैठी दुरो ने तनिक आँख उठा कर उस की ओर देखा। जगमोहन ने 'नमस्कार' किया। सिर के इंगित ही से उस के 'नमस्कार' का उत्तर दे कर वह फिर लेख सुनने में तन्मय हो गयी।

लेख समाप्ति पर ही था, क्योंकि जगमोहन के पहुँचने के कुछ ही देर बाद वह ख़त्म हो गया। विषय उस का क्या था? जगमोहन कुछ भी न समझ पाया। अन्तिम वाक्य भी उसने ध्यान से नहीं सुने। दुरो ने उस से कविता पढ़ने के लिए कहा था, इसलिए वह हरीश जी के नाम एक चिट लिखने में निमग्न रहा कि उस ने एक नयी कविता लिखी है और वह पढ़ना चाहता है। उस ने केवल लेख का अन्तिम वाक्य ही सुना—"ऐसे समाज में व्यक्ति का ह्रास नहीं, चरम-विकास होगा।"

कैसे समाज में? जगमोहन ने यह जानने का प्रयास नहीं किया। उस ने चिट अपने आगे बैठे युवक को दी कि वह हरीश जी को दे दे।

हरीश जी ने उस चिट को पढ़ा। फिर उस को दरी पर रखते हुए बोले, "इस लेख पर कुछ बात चीत होनी चाहिए। किसी को कुछ कहना हो तो कहे।"

"यह किसलय जी कुछ कहना चाहते हैं।"

किसलय जी – जगमोहन ने झट मुड़ कर देखा – उस के दायीं ओर पीछे को कवि किसलय बैठे थे। 'अच्छा ये भी पहुँच गये,' उस ने मन ही मन कहा और साथ बैठे हुए युवक से लेख पढ़ने वाले का नाम पूछा।

"कामरेड खन्ना, अभी एम० ए० में फ़र्स्ट क्लास-फ़र्स्ट आये हैं और दयालसिंह कालेज में लेक्चरर नियुक्त हुए हैं," साथी ने उत्तर दिया।

"यदि आप क्षमा करें तो मैं दो शब्द कहूँ।" किसलय जी ने विनम्रता से कहा।

"हाँ हाँ, कहिए!" हरीश जी और प्रो० खन्ना एक साथ बोले।

"मेरी एक शंका है," किसलय जी ने कहना शुरू किया, "जिस समाज अथवा शासन-पद्धति में लेखक अथवा कवि पर यह अंकुश रखा जाय कि वह यह लिखे और यह न लिखे, वहाँ उस के व्यक्ति का चरम-विकास कैसे हो सकता है? कवि की प्रेरणा (लेखक कवि में शामिल है) तो मुँह-ज़ोर घोड़ा है, कब वह अनमना सा अस्तबल के एक कोने में खड़ा रहता है; कब दुलकी चलता है; कब चारों पैर उठा कर सरपट भागता है, कब यौवन की मस्ती में उन्मत्त हो नाच उठता है और कब झुँझला कर अलिफ़[1] खड़ा हो जाता है, इस का कोई ठिकाना नहीं। अंकुश से आप उसे जुए में तो जोत सकते हैं, पर उस के व्यक्तित्व का चरम-विकास नहीं कर सकते।"

"घोड़े और कवि के दिमाग़ में अन्तर है, यह तो आप मानेंगे।" प्रो० खन्ना ने कहा, "महज़ तुनक कर अलिफ़ खड़े हो जाने वाले, अथवा मार्ग-कुमार्ग देखे बिना बे-लगाम चलने वाले घोड़े की अपेक्षा ताँगे में जुत कर, सवारियों के साथ धीर-गति से चलते हुए मीलों की मंज़िल मारने वाले घोड़े की उपादेयता से तो आप इनकार न करेंगे।"

"मैं उपादेयता से इनकार नहीं करता," किसलय जी ने कहा, "प्रश्न दूसरा है। यहाँ व्यक्ति के चरम-विकास का प्रश्न है। यदि अपनी स्वतन्त्र-शक्ति में मत्त नाच उठने वाला घोड़ा जुए में जुत कर अनमनी गति से......"

'अनमनी गति से क्यों, दुरो ने कहा, यदि घोड़ा सधा और पला

---

(१) अलिफ़ खड़ा हो जाता है=अगले पांव उठाकर—उर्दू भाषा के प्रथम-अक्षर की भांति—सीधा खड़ा हो जाता है।

है और भूखा नहीं है तो उस की गति द्रुत और उतनी ही मत्त हो सकती है। ताँगों में जुते, भरे-पुरे घोड़े भी तो आप ने देखे होंगे, जो हवा से बातें करते हैं और फिर रण में बरसती गोलियों में निर्भीक चले जाने वाले घोड़ों की बात भी आप ने सुनी होगी।"

"मुझे अपनी बात कह लेने दीजिए देवी जी!" किसलय जी ने विनम्रता से कहा, "यदि अपनी स्वतन्त्र-शक्ति में मत्त नाच उठने वाला घोड़ा जुए में जुत कर अनमनी गति से सीधा चलता रहे तो यह उस के व्यक्तित्व का चरम-विकास कहाँ हुआ? उपादेयता, माना, उस की बढ़ गयी। यद्यपि यहाँ भी अपना अपना दृष्टिकोण है। मुझे जुए में जुते हुए धीर-गति से चले जा रहे असील घोड़े की अपेक्षा अपनी शक्तिमत्ता की समस्त भव्य-दर्शनीयता के साथ, पिछली दोनों टाँगों पर अलिफ़ खड़े हो जाने वाले घोड़े अधिक रुचते हैं। धीर गति से चले जाने वाले घोड़ों को कोई नहीं देखता। पर जब कोई मदमत्त तुरंग अपनी उमंग में सरपट भाग उठता है, अथवा घेरे बनाता हुआ नाचता है, अथवा अपने पूरे व्यक्तित्व की दर्शनीयता के साथ दोनों पिछली टाँगों पर अलिफ़ खड़ा हो जाता है तो लोग-बाग अपना काम छोड़ कर उसे देखने आ जाते हैं। मैं तो जैसे मंत्र-मुग्ध रह जाता हूँ।"

"आप उस पर सवार जो नहीं होते, इसलिए!" किसी ने पीछे से कहा और सारी मंडली अनायास अट्टहास कर उठी।

उस हँसी की ओर ध्यान दिये बिना किसलय जी ने गंभीरता से कहा, "यही दशा कवि की है। अनुशासन के अंकुश के नीचे उस की उपादेयता चाहे कुछ बढ़ जाय (यद्यपि इस में मुझे सदेह है) पर उसका चरम-विकास न होगा। जग के संघर्ष से भाग कर अपने उदास-क्षणों में अथवा उसमें पूरी शक्ति के साथ रत हो कर, जग की लम्पटता, संकुलता, संकीर्णता, छिछलेपन, झूठ, फ़रेब, चाटुकारी, समय-साधकता, उत्कोच-प्रियता से झुँझला कर, जब वह अपनी प्रतिभा के बल अलिफ़

खड़ा हो जाता तो उस की क्रुद्ध-साँसों से जो उद्‌गार निकलते हैं, उनके मुकाबिले में सधे हुए घोड़े की भाँति अनुशासन में जुते, सोच सोच कर लिखने वाले कवि की कृति क्या ठहरेगी ?"

वे चुप हो गये। हरीश जी के ओठों पर हल्की मधुर-मुस्कान फैल गयी।

"आप कह चुके ?" प्रो० खन्ना ने पूछा।

"जी !"

"आप ने कवि अथवा लेखक की प्रेरणा को मुँह-ज़ोर घोड़े से उपमा दी है।" उन्हों ने कहा, "कई आलोचक उस की उपमा किनारे तोड़ कर बह निकलने वाली नदी से भी देते हैं। ऐसी उपमाओं को बढ़ाया भी जा सकता है, पर आप एक बात भूल जाते हैं कि मानव दिन-प्रति-दिन उन्नति करता है।......"

"यह विवाद-ग्रस्त प्रश्न है।"

"यदि आप मानव की उन्नति में विश्वास नहीं करते तो हमारी बहस खत्म हुई और मैं यदि आप की जगह होऊँ तो इस विश्वास के साथ जीने की अपेक्षा अफ़ीम खा कर सो रहना श्रेयस्कर समझूँ।"

इस पर फिर कुछ सदस्य हँस दिये।

"नहीं नहीं, आप कहिए," किसलय जी ने कहा, "मेरे कहने का यह अर्थ था कि कुछ लोग मानव की प्रगति में विश्वास नहीं करते, उन का विचार है कि उस का पतन हो रहा है। मेरा भी ऐसा ही विचार हो, यह बात नहीं।"

"तब यदि आप यह मानें कि मानव उन्नति करता है तो मैं यह विनय करूँगा कि यह उन्नति उस अनुशासन का ही परिणाम है जो उस की बुद्धि ने (आप उसे आत्मा कह लीजिए) उस की कुवृत्तियों पर लगा रखा है। यदि आप की स्वतन्त्र-शक्तिमत्ता की बात ही क़ायम रहती तो हम आज इस तरह ठंडे दिल से बैठ कर विचार-विनिमय न

कर रहे होते। मेरी बात आप रद्द करते कि मैं आप के सिर में फरसा घोंप देता अथवा आप भाले से मेरा सीना छलनी कर देते। मानव की अनुशासन-हीन-वृत्तियों और शक्तियों के चरम-विकास की कल्पना बिलकुल रूमानी कल्पना है—अपने देश के उन महानुभावों की कल्पना की भाँति जो इस वैज्ञानिक बीसवीं शताब्दी में फिर से वैदिक काल उपस्थित कर देने का स्वप्न देखते हैं और उस युग की प्रशंसा करते नहीं थकते।"

"फिर दूसरी बात," पल भर रुक कर उन्होंने कहा," यह है कि शत-प्रतिशत अनुशासन-हीनता सम्भव है ही नहीं। प्रतिभा मस्तिष्क की तनया है। गदहा कविता नहीं करता, क्योंकि दिमाग़ की उस के यहाँ कमी है। जब मस्तिष्क अति-भाव-प्रवण और अनुभूतिशील हो तो सोच-विचार उस का पहला गुण होगा और सोच-विचार लगाम अथवा हंटर के अतिरिक्त और कुछ नहीं। महान-कलाकार सदैव अपनी प्रतिभा पर अपनी बुद्धि का अंकुश रखते रहे। सर्वथा अनुशासन-हीन कविता (अथवा कहानी) ऊबड़-खाबड़ होकर रह जायगी। कुछ पंक्तियाँ सुन्दर और कुछ एक दम निरर्थक होंगी। चैखोव और टाल्स्टाय के संबंध में कहा जाता है कि वे अपनी प्रतिभा पर पूरा काबू रखते थे। अपने अध्ययन को बढ़ाते और कृतियों को सदा सजाते-सँवारते रहते थे। एक आलोचक ने बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—They were own sledge driv rs[1]—"तीसरी बात," उन्होंने फिर तनिक दम लेकर कहा, "लेखक हो अथवा कवि, वह सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है। उस का अनुशासन मानता है। उस समाज के जीर्ण होने पर वह उसे तोड़ने को विवश होता है तो वह नये समाज के लिए अनुशासन के नियम बनाता है।

१. वे अपनी गाड़ी के स्वयं कोचवान थे।

'बेवक्त की शहनाई' अथवा 'असमय की रागिनी' नाम के मुहावरे उसी अनुशासन के प्रमाण हैं। बेवक्त की शहनाई कितनी भी सुर और लय से क्यों न बजायी जाय, अच्छी नहीं लगती। प्रश्न उस की कला का नहीं, उपादेयता का है।"

"कला उपादेय होनी चाहिए या नहीं, इस पर दो मत हो सकते हैं।"

अब हरीश जी बोले।

"कला कला के लिए है अथवा जीवन और उस के विकास के लिए, इस विषय पर पिछली किसी बैठक में विस्तार से बातचीत हो चुकी है। अब उसे नये सिरे से उठाना समय बर्बाद करना है।"

"मैं किसलय जी से केवल इतना और कहना चाहता हूँ" प्रो० खन्ना ने कहा, "कि अबाध-नदी की शक्तिमत्ता से हमें इनकार नहीं, पर बँध कर उस की शक्ति घट जाती है, यह हम नहीं मानते। अबाध नदी अपने किनारों को तोड़ कर गाँव के गाँव बहा ले जाती है, खेतियाँ वीरान कर देती है और बँध-सध कर वह सैकड़ों एकड़ धरती सैराब करती है[1]। उस की शक्ति से पैदा होने वाली बिजली से न केवल गाँव के गाँव जगमगा उठते हैं, वरन् उद्योग-धन्धों से मालामाल भी हो जाते हैं। यह उस की शक्ति का ह्रास नहीं, चरम-विकास है। अबाध प्रेरणा कवि और उस के पाठकों को कितनी हानि पहुँचा सकती है, इसे जानने के लिए फ्रांसीसी कवि बादलेयर और स्टीफ़न मैलारमे को पढ़िए और बँधी-सधी प्रेरणा के चमत्कार जानने को हमारे यहाँ टैगौर और प्रेमचन्द ही काफ़ी हैं। टैगोर और प्रेमचन्द बिना किसी राजसी-अंकुश के जीवन के गायक थे। उन की लेखनी में उपादेयता थी। रवि बाबू को तो खैर सुविधाएँ प्राप्त थीं, पर यदि प्रेमचन्द को समाज अथवा राज्य

---

१. सैराब करती है=सिंचित करती है।

की ओर से पूरी सुविधाएँ मिलतीं तो क्या उन के व्यक्तित्व का चरम-विकास न होता ? क्या वे पन्द्रह के बदले तीस उपन्यास न लिखते ? अथवा उन के उपन्यासों में जल्दी लिखने के कारण जो त्रुटियाँ रह गयी हैं, वे रह पातीं ?"

"एक और बात भी है," दुरो ने कहा, "यदि हम तीन प्रकार के सैनिक लें—एक वे जो रुपये के लिए लड़ते हैं, चाहे उन्हें कहीं लड़वा लिया जाये। दूसरे वे जो सिद्धान्त के लिए लड़ते हैं, पर साधनों का जिन के यहाँ अभाव है। तीसरे वे जो सिद्धान्त के लिए लड़ते हैं, और जिन्हें समस्त साधन भी प्राप्त हैं—तो आप ही कहिए कौन अच्छा लड़ सकते हैं ?"

"जिन के पास सिद्धान्त और साधन दोनों हैं।"

"बस यही स्थिति लेखक और कवि की भी है, प्रतिभा के बिना तो न लेखक लेखक है और न कवि कवि, पर उस प्रतिभा के विकास के लिए दूसरे साधन दरकार हैं। प्रकट है कि जो समाज अपने कलाकारों के लिए अधिक से अधिक साधन जुटा सकता है, उसी में उन के व्यक्तित्व का चरम-विकास सम्भव है।"

हरीश द्रौपदी की इस युक्ति पर प्रसन्नता से मुस्कराये और उन्होंने प्रशंसा भरी दृष्टि से उस की ओर देखा।

दुरो का मुँह लज्जारुण हो गया। यह कह वह पीछे दीवार से पीठ लगा कर बैठ गयी।

"आप केवल कवियों और लेखकों को ही क्यों लेते," हरीश ने कहा, "व्यक्ति में तो बीसियों तरह के लोग शामिल हैं। वैज्ञानिक, दार्शनिक, अध्यापक, जर्नलिस्ट, मशीनें-ट्रेक्टर-मोटरें बनाने-चलाने वाले आदि आदि......रोटी और बेकारी की चिन्ता से मुक्त होकर उन के व्यक्तित्व और कौशल का विकास किस समाज अथवा पद्धति में हो सकता है, हमें यह भी तो देखना है......" एक साथी कुछ कहने को प्रस्तुत था। उसे हाथ के संकेत से रोक कर हरीश बोले, "बस आज

इतना ही यथेष्ट है, यह पच जाय तो फिर और।" वे हँसे, "अब श्री जगमोहन अपनी कविता सुनायेंगे।"

जगमोहन चौंका। यह बहस उसे इतनी दिलचस्प लग रही थी और वह इस में इस हद तक खो गया था कि अपनी कविता सुनाने की बात वह एक दम भूल गया था। इस वाद-विवाद के बाद उसे अपनी कविता भी रूमानी लगी। उस ने एक दम लाल होते हुए कहा, "इस बहस के बाद मेरा कविता पढ़ना व्यर्थ है।"

"आखिर क्यों?"

"वह भी कुछ रूमानी सी है। अब मैं यह बात समझ गया हूँ।"

"किसी कविता का रूमानी होना कोई ऐसी बुरी बात नहीं, यदि उस के पाँव धरती पर टिके रहें।" हरीश ने मुस्करा कर कहा, "आप पढ़िए तो, कम से कम औरों को मालूम हो जायगा कि क्यों वह अब आप को पसन्द नहीं।"

जगमोहन ने कापी खोली। यद्यपि उस बहस के बाद उस का उत्साह किंचित भंग हो गया था...तो भी उस ने बड़ी अदा से वही कविता—छिपकली सी यह मुहब्बत आज के युग की लजीली—पढ़नी शुरू की :

छिपकली सी यह मुहब्बत
आज के युग की लजीली
भीरु,
आपने नाम ही के सहम से जो सिमट जाये,
तिमिर से आच्छन्न कोनों
और अँतरों से सरक कर
झाँकती है।

बढ़ गयी दो पग
जमी सी फिर वहाँ, जैसे

गर्म राख

न अब आगे बढ़ेगी
आँकती है—
एक भर कर जस्त
निज आखेट पाये।
किन्तु फिर जब सरक कर दो पग बढ़ाये।
शलभ उड़कर और ही कोना बसाये।

है कहाँ वह प्रीति ?
गह कर बाँह प्रिय की
ले चले बरबस जो अपने साथ।

हाथ पर अपने लिये सिर
है कहाँ वह प्रेम उन्मद
चल पड़े जो
जीत लाने प्रियतमा का हाथ ?

है कहाँ वह प्रीति
चुन ले भर सभा में
स्वयं मन का वर
बढ़ा कर—
डाल दे उस के गले में हार !
छोड़ कर सङ्कोच
गणना
दुःख-सुख की

और गत-आगत का लेखा
घोषणा कर दे कि मुझ को
प्रिय तुम्हीं से प्यार !

हैं कहाँ वे—निडर चल दें
प्रेम के पथ पर अकम्पित
औ' न क्षण भर को सशंकित
कह रहा क्या
ईर्षा से जल रहा संसार ?

प्रेम सपना हो गया है—
अब पुराना प्रेम—
खेलती आखेट उलफ़त
आज सायों के सहारे
छिपकली सी !

किसलय जी ने कई बार बीच में कविता की प्रशंसा की और जब जगमोहन ने कविता समाप्त की तो अनायास ही सब करतल-ध्वनि कर उठे।

जगमोहन ने कापी बन्द की तो प्रोत्साहन से उस का मुँह चमक उठा था। प्रो॰ खन्ना और अन्य एक दो चुप बैठ रहे थे। हरीश केवल मुस्कराते रहे। जब तालियाँ बज चुकीं तो उन्होंने कहा :

"कविता, जहाँ तक कला और भावों की अभिव्यक्ति का संबंध है, सुन्दर है। इस के मुक्त-छंद में प्रवाह है और यह बोध-गम्य भी है। पर यह आप ने ठीक ही कहा था कि यह रूमानी है। आजकल के प्यार का खाका आप ने सुन्दर खींचा है, पर प्यार ऐसा क्यों है ? उस की ओर संकेत नहीं किया। अभी हाल ही में एक उर्दू कवि ने बड़ी ही सुन्दर कविता लिखी है।" और उन्होंने कोने में बैठे एक युवक की ओर संकेत

किया, "क्यों अहसान, सुनाओ तो ज़रा फ़ैज़ की वह नज़्म — मुझ से पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग !"

और अहसान ने अपनी जगह बैठे बैठे आँखें मीचे, दर्द-भरे स्वर में कविता पढ़ी कि महफ़िल तड़प उठी :

मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग !
मैं ने समझा था कि तू है तो दरख़्शाँ है हयात,
तेरा ग़म है तो ग़मे-दहर का झगड़ा क्या है ?
तेरी सूरत से है आलम में बहारों का सबात,
तेरी आँखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है ?
तू जो मिल जाये तो तक़दीर नगूँ हो जाये !
यों न था, मैंने फ़क़त चाहा था—यों हो जाये !
और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा।
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा।
अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्म
रेशम-ो-अतलस-ो-कमख़्वाब में बुनवाये हुए ;
जा-ब-जा बिकते हुए कूचा-ो-बाज़ार में जिस्म
ख़ाक में लिथड़े हुए, ख़ून में नहलाये हुए ;
जिस्म निकले हुए इमराज़ के तन्नूरों से ;
पीप बहती हुई गलते हुए नासूरों से ;

महबूब=प्रिय; दरख़्शाँ=प्रकाशवान; हयात=जीवन; ग़मे-दहर=संसार का दुख; आलम=दुनिया; सबात=स्थायित्व;

नगूँ=नत, उलटी; फ़क़त=केवल; राहतें=खुशियाँ; वस्ल=मिलाप; तारीक=अँधेरे; बहीमाना=बर्बर; तलिस्म=इन्द्रजाल ;

रेशम-ो-अतलस-ो-कमख़्वाब=रेशमी बहुमूल्य कपड़े; कूचा-ो बाज़ार=गली बाज़ार; इमराज़=बीमारियाँ; तन्नूरों=तँदूरों।

लौट जाती है उधर को भी नज़र क्या कीजे ?
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न, मगर क्या कीजे ?
और भी दुख है ज़माने में मुहब्बत के सिवा ।
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा ।
मुझ से पहली मुहब्बत मेरी महबूब न माँग !

अहसान कविता पढ़ते गये और सुनने वाले झूमते गये, जब कविता खत्म हुई तो जगमोहन को लगा जैसे उस कविता का जादू उस धूल भरे कमरे के कण-कण में बस गया है ।

"अब आप समझ गये कि क्यों वह पहली सी मुहब्बत नहीं रही ।" हरीश जी बोले, "आज हमारा जीवन उतना सरल नहीं, हमारी समस्याएँ सरल नहीं, इसलिए मुहब्बत में पेचीदगी आ गयी है—लौट जाती है उधर को भी नज़र क्या कीजे—इसलिए पहली सी मुहब्बत सम्भव नहीं । कवि जागरूक है और उस की दृष्टि उन दृश्यों की ओर जाती है । वह अपनी भावनाओं को व्यक्त कर देता है, अपनी कठिनाई बता देता है । दूसरे बता नहीं सकते पर उसी तरह महसूस करते हैं । और प्रेम में वह अनायासपन नहीं रहा ।"

"फिर जिस स्वयम्बर और कफ़न बाँध कर प्रिय को लाने की बात आपने लिखी है ।" खन्ना बोले, "वह भी मानव के चरम-विकास के दिनों की बात नहीं । यह उन दिनों की बात है जब नारी केवल 'योनि-मात्र' थी । और नारी के लिए पुरुष का भी केवल एक ही उपयोग था । अपवाद हैं, पर अधिकाँश स्वयम्बरों में एक ओर बल और शौर्य और दूसरी ओर सौन्दर्य ही की वाँछा थी । आज ऐसा नहीं, जीवन उतना सरल नहीं । युवक-युवती के प्रेम के साथ सौ दूसरी समस्याएँ हैं । इसीलिए झिझक, संकोच और गणना (Calculations) है ।

दिलकश = आकर्षक ।

"गणना वही अंकुश है जो मानव के मस्तिष्क ने, बुद्धि ने उस के हृदय पर लगाया है।" किसी ने कहा।

"यह छिपकली का सा प्रेम हमारी वासना, अज्ञान और उसी कारण पुरुष-स्त्री के सहज संबंध पर लगी वर्जनाओं के कारण है।" हरीश बोले, "अनगिनत सदियों के तारीक वहीमाना तालिमों के फल स्वरूप! ऐसा प्रेम न रहेगा। ये इन्द्रजाल टूटते जा रहे हैं। जब भी हम पूर्ण-रूप से स्वतन्त्र हुए, नर-नारी के परस्पर-संबंधों में भी स्वतन्त्रता आयेगी। नारी 'योनी-मात्र' न रह कर सहचरी और संगिनी बनेगी और समाज के विकास में अपना पूरा योग देगी।"

बात खत्म कर हरीश जी ने घड़ी देखी। साढ़े नौ बजने को आये थे। "अच्छा भई, अब बस! काफ़ी देर हो गयी है। हमें तो कल ट्राँसपोर्ट-यूनियन की बड़ी जरूरी मीटिंग कर, मालिकों के सामने पेश की जाने वाली माँगों का फ़ैसला करना है। घर घर जा कर मज़दूरों को सूचना देनी होगी। अब खत्म करें।"

लोग उठ खड़े हुए। कुछ युवक छात्रों ने हरीश और प्रोफ़ेसर खन्ना को घेर लिया। दुरो ने जगमोहन की कविता को सराहा :

"सत्या बहन योंही प्रशंसा न करती थीं। बड़ी अच्छी कविता लिखी आप ने। मध्यवर्गी के प्रेम की निर्बलता का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।"

जगमोहन कुछ उत्तर देने जा रहा था कि 'कहिए मोहन जी आप के तो फिर दर्शन ही नहीं हुए,' कहते और अपने कृत्रिम दाँत दिखाते हुए पंडित दाता राम उन के निकट आ गये।

"जी मैं, इधर काम में व्यस्त रहा।" जगमोहन ने हाथ जोड़ कर उन्हें नमस्कार करते हुए कहा।

"मैं तो आज दोपहर आप के घर भी गया था, पर पता चला

"दूसरे विद्यालयों वाले परीक्षाओं के निकट पहुँच कर हाय-तौबा मचाते हैं, पर हमने तो निर्णय किया है कि परीक्षा के निकट पहुँच कर भाषणादि आरम्भ करने के बदले शुरू ही से उन की व्यवस्था की जाय, ताकि पक्की नींव पर ही छात्राओं के ज्ञान की इमारत खड़ी की जा सके।" और उन्होंने पगड़ी सिर पर रख ली। "तो कल आप पधारिए!" उन्हों ने कहा, "सत्या जी विद्यालय को आते समय आप को ताँगे में लेती आयेंगी।"

"जी नहीं, वह सब कष्ट करने की ज़रूरत नहीं। मैं पहुँच जाऊँगा।"

"नहीं नहीं भाई, ताँगा आप को घर से ले जायगा और घर छोड़ जायगा।" पंडित जी ने जगमोहन की पीठ थपथपाते हुए कहा, "हमें आप को एक बार ही नहीं बुलाना, फिर भी कष्ट देना है।"

४६

सत्या जी के मस्तिष्क में हलचल मची हुई थी। पिछले कई दिनों की घटनाएँ अपने विभिन्न-चित्रों की भीड़ को लिये हुए वहाँ चक्कर लगा रही थीं—एक के बाद एक चित्र आता, अपनी बात कहता और चला जाता—पर प्रकट उन की आकृति पर उस हलचल का कोई बिम्ब न था। चुपचाप, निगाहें सड़क में गाड़े, वे तेज़ तेज़ ऋषि नगर की ओर चली जा रही थीं।

जगमोहन को एक बार ही नहीं, कई बार 'देवचन्द-विद्यालय में' भाषण देने जाना पड़ा था। 'प्रभाकर' की छात्राओं ही को नहीं, 'भूषण' और 'रत्न' की छात्राओं को भी निबन्ध लिखने का ढंग बताना पड़ा था। उन की कापियाँ ठीक करनी पड़ी थीं। सत्या जी स्कूल जाते हुए ताँगे में उसे ले जाती थीं। वहाँ से चलते समय उसे पंडित दाता राम से दस रुपये और ताँगे के पैसे दिलवा देती थीं। एक डेढ़ सप्ताह में चालीस रुपये उन्होंने उसे दिलवा दिये थे।

चलते चलते सत्या जी के ओठों पर हल्की सी मुस्कान दौड़ गयी। जगमोहन को क्या मालूम कि वे सब रुपये उन्हीं की जेब से गये थे। सत्या जी ने अपना दो महीने का वेतन विद्यालय को दान दे दिया

था कि वह प्रमुख-लेखकों और कवियों के भाषण करा सके और उन्होंने बड़ी सफ़ाई से उस रुपये का अधिकांश जगमोहन ही को दिलवा दिया था। जगमोहन के मन में उन के प्रति जो हिम-देमी, ठंडे-लोहे-सरीखी, कठोरता आ गयी थी, वह आखिर पिघलती हुई सी दीख रही थी। उस के भाई-भाभी सत्या जी से प्रसन्न थे। उस की भाभी ने तो हँसते हँसते संकेत किया था कि यदि वे उन के घर आ जायँ तो ऐसी सहृदय देवरानी को पाकर वे कृत्य-कृत्य होंगी। हँसी-हँसी में उन्होंने यह भी बता दिया था कि उस रात देर तक, बिना बत्ती जलाये, ऊपर कमरे में उन दोनों के बैठे रहने से भाई साहब कुछ अप्रसन्न हुए थे और उन्होंने जगमोहन को डाँटा भी था। पर जब उन्हें ठीक स्थिति का ज्ञान हुआ (भाभी ही के बताने पर, यह कहना वे नहीं भूलीं) तो उन्हें अफ़सोस हुआ था। भाभी ने सत्या जी को बताया था कि जगमोहन शायद भाई साहब से डर गया है, वे भाभी के पास आती रहें, अपने आप जगमोहन को पता चल जायगा और उस का बर्ताव बदल जायगा।

'लेकिन क्या भाई साहब का डर ही जगमोहन की बेरुखी का कारण था?' चलते चलते सत्या जी ने सोचा, 'कदाचित उस डर से अलग भी कोई चीज़ थी! पास हो कर भी वह सदा उन से दूर था!' उस वक्त भी, जब वह उन के वक्ष से लगा, उन्हें अपनी बाहों में बाँधे था, सत्या जी को उस दूरी का अहसास हुआ था। वह अनायासता जो स्त्री-पुरुष को एक कर देती है, वह एकता जिस के बारे में कवि ने लिखा है :

पंख पंख में,
चोंच चोंच में,
भावों में निज भाव सँजोये।

वह उन दोनों में कहाँ थी? उस समय जब उन के शरीर का अणु-

अणु उस के साथ एकाकार हो जाने को व्यग्र था, जगमोहन प्रबल-बहिया की महोर्मियों पर बरबस बहने वाले उस व्यक्ति सा उन से दूर था, जिस का तन तूफ़ान की उन वेगवती-लहरों में डूबता-उतराता है, पर मन उन के साथ नही रहता ।

एक लम्बी साँस सत्या जी के हृदय की गहराई से निकल गयी। अपनी स्थिति की यथार्थता का उन्हें ज्ञान न हो, ऐसी बात न थी। कई बार उन्होंने सोचा था कि वे जगमोहन का मोह छोड़ दें! उस के यहाँ न जायँ! इतना अपवाद फैल गया था, उन के पिता चिंतित हो उठे थे और कई बार उन की शादी की बात चला चुके थे! वे सोचतीं—यह मार्ग वे तज दें! पर जाने क्या बात थी, कैसा आकर्षण था उस मार्ग में ? उस मकान के नीचे से गुज़र जाने में भी उन्हें एक विचित्र से पुलक का आभास मिलता था। उस दिन जब जगमोहन ने उन्हें अपने घर आने से मना कर दिया था, उन्होंने तय किया कि वे मर जायेंगी, पर वहाँ न जायेंगी। कुछ दिन वे उधर से स्कूल जाने के बदले लोअर माल से हो कर स्कूल जाती रही थीं। किन्तु एक दिन वे सुबह संतनगर में एक सहेली को छोड़ने आयीं और उन्होंने सोचा कि उधर ही से विद्यालय चली जायँ, तभी अचानक होतूसिंह रोड पर जगमोहन से उन का सामना हो गया। उन का दिल बेतरह धड़क उठा। जगमोहन ने एक रूखी सी 'नमस्ते' की और बिना दूसरी बार उन से आँखें मिलाये, तेज़ तेज़ चला गया। उन का सारा दिन सपने की सी दशा में बीता। जगमोहन की आकृति बार बार उन की आँखों में आती रही और उन के हृदय की गति तेज़ हो जाती रही। साँझ को वे फिर उधर ही से वापस आयीं और यद्यपि फिर जगमोहन से उन की भेंट नहीं हुई, किन्तु वे बारबार उधर से आने लगीं, बल्कि पोस्ट-आफ़िस की ओर से आकर जगमोहन के मकान के नीचे से गुज़रने लगीं। वे उस के मकान के नीचे से गुज़र जातीं और बस इतने ही से दिन भर उन का मन, झील के ठहरे-निथरे पानी पर हवा से इधर

उधर डोलने वाली नौका की तरह, उद्विग्न रहता !

तभी अपने पिता के स्कूल से काम ले कर जगमोहन के बड़े भाई को उन्होंने दस हज़ार के केस दिला दिये। इसी बहाने जगमोहन की अनुपस्थिति में वे उस के घर भी जाती रहीं। बच्चों के लिए वे हर बार फल और खिलौने ले जाती रहीं। यद्यपि न जगमोहन से उन का साक्षात्कार हुआ और न वे उन दिनों कभी उस के कमरे में गयीं, किन्तु उस घर में उन्होंने अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः पा ली।

जगमोहन को भाषण के लिए अपने विद्यालय में ले जाने के हित पहले दिन जब वे ताँगा लिये उस के घर पहुँची थीं तो वे स्वयं उस के कमरे में न गयी थीं। भाभी द्वारा उन्होंने जगमोहन को कहला भेजा था कि देवचन्द कालेज गुमटी बाज़ार से ताँगा आया है, जल्दी आने का कष्ट करें। भाभी से आते समय मिलने का वादा कर के वे चली आयी थीं। उनके जी में आया था कि कुछ देर भाभी के पास रसोई-घर की चौखट में बैठें, पर फिर कुछ सोचने पर उन्होंने यही उचित समझा। एक बार ठोकर खा कर वे दोबारा पहल न कर चाहती थीं—चाहती थीं कि अपने आप जगमोहन के मन का जमाव पिघल जाय—अधीर वे न होना चाहती थीं—और वे चुपचाप आकर ताँगे में बैठ गयी थीं।

जगमोहन नीचे आया। हाथ जोड़ कर उस ने 'नमस्ते की। सत्या जी ने बिना आँखें उठाये 'नमस्ते' का जवाब दिया। जगमोहन ताँगे की अगली सीट पर बैठ गया और ताँगा चलने लगा।

यद्यपि सत्या जी ने दृष्टि उठा कर उस की ओर न देखा था तो भी वह अन्तर उन से छिपा न रहा था जो होतूसिंह रोड पर की जाने वाली उस रूखी 'नमस्ते' और इस 'नमस्कार' में था। उन्हें जगमोहन के स्वर में हल्की-सी स्निग्धता का भी आभास मिला था। किन्तु उस 'नमस्कार' के अतिरिक्त उस दिन जगमोहन ने और कोई बात नहीं की। वे भी चुप बैठी रहीं और ताँगा खट-खटा-खट अपनी स्वभाविक-गति से चलता

रहा......होतूसिंह रोड, घोड़ा अस्पताल, ट्रेनिंग कालेज रावी रोड, हीरा मण्डी, सैद मिट्ठा, गुमटी बाज़ार ......और 'देवचन्द-विद्यालय' को जाने वाली गली के पास जा कर वह रुक गया !

तत्काल ताँगे से उतर, उस की मज़दूरी चुका कर, सत्या जी जगमोहन को अपने विद्यालय में ले गयीं और पंडित जी से उसे मिला कर चुपचाप अपनी क्लास में चली गयीं।

किन्तु जगमोहन के मन का यह जमाव सब दिन वैसा ही न बना रहा था। उतना लम्बा रास्ता चुपचाप ताँगे पर बैठे रहना उस की सी चंचल तबीयत वाले आदमी के बस की बात न थी। दूसरी बार भी जब वे विद्यालय को जाते-जाते उसे साथ लेती गयीं तो यद्यपि जाते समय दोनों चुप रहे थे, पर आती बार जब सिर-दर्द का बहाना कर के, पंडित जी से छुट्टी ले कर, सत्या जी भी उस के साथ हो ली थीं तो जगमोहन ने बात चलायी थी।

प्रभाकर की जिस कक्षा को वह पढ़ाने गया था, उस में केवल चार लड़कियाँ थीं। जगमोहन धूप का चश्मा लगाये हुए था। एक ने उस से पूछा था, "यह आप ने धूप का चश्मा यहाँ भी क्यों लगा रखा है?"

"सामने सूरज जो है।" दूसरी बोल उठी थी। जगमोहन के सामने जो लड़की बैठी थी, उस का नाम पम्मो था। गोरी चिट्टी और चंचल। उस की सहेलियों का संकेत उसी की ओर था।

जगमोहन ने एक बार आँख उठा कर उस की ओर देखा था। उस का ख्याल था, लड़की का रंग लज्जा से लाल हो गया होगा, किन्तु वहाँ वैसा कुछ न था। एक अजीब सी चंचलता उस की आँखों में भरी थी, जो मानो उस के धूप के शीशों को पार कर उस की आँखों में झाँकने का प्रयास कर रही थी।

वापसी पर जब ताँगा हीरामण्डी को पार कर रावी रोड पहुँचा था तो जगमोहन ने सहसा सत्या जी से कहा था, "अजीब चंचल हैं ये आप

की लड़कियाँ ! मुझे तो ऐसे लगा जैसे मैं चिड़िया-घर के कटघरे में बन्द हूँ और वे सब मेरा तमाशा देख रही हैं।"

सत्या जी मन ही मन हँसीं, किन्तु अपनी उस हँसी का बिम्ब उन्होंने अपने मुख पर नहीं आने दिया। उसी प्रकार ताँगे की पिछली सीट पर दृष्टि जमाये उन्होंने पूछा, "क्या हुआ ?"

जगमोहन ने धूप के चश्मे के मजाक वाली बात सुना दी और फिर बोला, "पिछली बार जब मैं भाषण देने आया था तो निबन्ध-कला के बारे में जरूरी बातें बताने के बाद, मैं ने उन से पहले का लिखा कोई निबंध माँगा। झट पम्मो ने कापी मेरी ओर बढ़ा दी। उस में एक निबंध लिखा था—'मेरी दिल्ली-यात्रा'—आगे की बातें पीछे और पीछे की आगे थीं। गठन थी नहीं। मैं ने उसे बताया था कि वैसा निबन्ध कितनी तरह आरम्भ हो कर चल सकता है। दो पैरे लिख कर भी दिखा दिये थे। कुछ ऐसे शुरू किया था मैं ने— विद्यालय में ईस्टर की छुट्टियाँ हो गयी थीं, मैं अन्यमनस्क सी बैठी थी कि मेरी सहेली कमला आ गयी। प्रसन्नता से उस का मुँह लाल हो रहा था। आते ही बोली —पम्मो मैं दिल्ली जा रही हूँ— आदि आदि....आज मैं कमरे में दाखिल हुआ तो उन में से एक लड़की ने पम्मो से कहा— 'देख तेरी कमला आ गयी !' उस का संकेत स्पष्ट मेरी ओर था। मैं चुप खड़ा उन चंचल लड़कियों को देख रहा था और वे थीं की हँसी के मारे लहालोट हो रही थीं।"

जगमोहन चुप हुआ तो अनायास सत्या जी हँस दीं। जगमोहन भी हँस दिया और सहसा वह अन्तर जो इतने दिनों से उन दोनों के मध्य आ गया था, दूर हो गया। जब वे कृपिनगर पहुँचे और जगमोहन ताँगे से उतरा तो उस ने कहा, "आप भाभी से न मिलेंगी ?"

लेकिन सत्या जी नहीं उतरीं। यद्यपि जगमोहन के स्वर में स्नेह था, पर उस स्नेह से अधिक उस में औपचारिकता थी।

"मैं फिर आऊँगी। मेरा सिर दर्द कर रहा है।" सत्या जी ने कहा और 'नमस्कार' कर उन्होंने ताँगे वाले को आगे बढ़ने का आदेश दिया।

इस के बाद जगमोहन दो-तीन बार और 'देवचन्द-विद्यालय' गया था। दोनों फिर पहले की तरह बात-चीत करने लगे थे। पिछली बार तो सत्या जी ने ताँगा ऋषिनगर ही छोड़ दिया था, भाभी के पास घंटों बैठी थीं, जगमोहन भी कुछ देर को आ बैठा था और फिर भाभी के कहने पर वे नींबू के शरबत का गिलास भी उसे दे आयी थीं।

लेकिन दोनों के बीच का अन्तर बिलकुल दूर हो गया था या नहीं, सत्या जी कुछ न जानती थीं। भाई साहब दौरे पर गये हुए थे और भाभी अपने बच्चों के साथ मैके चली गयी थी तो भी सत्या जी जगमोहन के यहाँ जा रही थीं। ज्यों ज्यों जगमोहन का मकान निकट आता जा रहा था, उन के हृदय की गति तेज़ हो रही थी। रात उन के पिता ने उन्हें पास बैठा कर बहुत देर तक दुनिया के ऊँच-नीच की बात कही थी। शुक्ला जी ने उनकी और जगमोहन की बात को लेकर (सत्या जी की भरपूर प्रशंसा करते हुए, केवल मित्र-भाव से) दो चार बातें कही थीं...कि लोग बहुत सी ऐसी बातें करते हैं, जिन्हें सुनने में शुक्ला जी को बड़ा हार्दिक-कष्ट होता है और कहा था कि यदि सत्या जी का मन वहीं हो तो वहीं शादी कर दी जाय, लेकिन इस तरह लगातार मिलने-जुलने में बदनामी होती है। "अपनी कांग्रेस में काम करता हो।" शुक्ला जी ने कहा था, "तो लड़का चौबीस घंटे आँख के सामने रहता है। लेकिन जगमोहन का तो कुछ पता ही नहीं। कवि है लेकिन कवि तो बे-पीर के होते हैं। उन का कोई भरोसा नहीं!" और उन्होंने अपने दो एक परचित युवकों का पता दिया था। जो देश-प्रेमी थे, जाने-पहचाने थे और सत्या जी के लिए पूर्णरूप से उपयुक्त थे।

शुक्ला जी के अतिरिक्त पंडित रघुनाथ उन के पिता को तंग किये

थे। वे कुटुम्ब के पुराने-मित्र थे और इस नाते उन्होंने इस जुगुप्सा का उल्लेख करते हुए सत्या जी के पिता पर ज़ोर दिया था कि वे उन की तत्काल शादी कर दें। सत्या जी के पिता ये सब बातें सुन कर आजिज़ आ गये।

"मैं यह नहीं कहता कि जगमोहन बुरा लड़का है।" उन के पिता ने कहा था। "वह कांग्रेसी न भी हो, तो भी यदि तुम चाहो तो उस से विवाह कर सकती हो। लेकिन उस की नीयत का ठीक पता तो चले!" और उन के पिता ने उन्हें आश्वासन दिलाया था कि यदि जगमोहन का मन हो तो वे प्रो० स्वरूप से, जैसे भी बन पड़े, अपना दो हज़ार रुपया ले आयेंगे। "मुझे स्वरूप ने विश्वास दिलाया है कि तुम्हारी शादी पर वे मेरा रुपया वापस कर देंगे। तुम जगमोहन के मन की थाह लो। इस बात को लटकाओ नहीं। इसे लटकाने में बदनामी के सिवा कुछ हाथ न आयेगा। समझ लो मेरी सब से बड़ी चिन्ता यही है। मेरे और कोई बेटा-बेटी नहीं, तुम्हारी शादी हो जाय तो मैं निश्चिन्त हो कर अपने आप को काँग्रेस के काम में लगा दूँ!"

सत्या जी अपने पिता से क्या कहतीं? अकेले उन की बात होती तो वे कह देतीं, 'आप प्रोफ़ेसर स्वरूप से रुपया ले आइए।' पर यहाँ बात तो जगमोहन के मन की थी और उस के मन की बात वे जानतीं न थीं। उस पहली शाम जब वे जगमोहन के घर से बहुत देर में लौटी थीं और अपने जाने उस के बहुत निकट हो गयी थीं, उन्होंने हल्का सा संकेत भी अपने पिता से किया था। उस के बाद जब जब उन के पिता ने पूछा वे टाल गयीं। वे कहतीं भी क्या? जगमोहन उन से इतना दूर चला गया था कि उस की सूरत तक को वे तरस गयी थीं। बरसात की उदमाती रातों में जब चाँद बादलों से आँख-मिचौनी खेलता, सारा घर सोया होता, वे अपने बिस्तर पर चुपचाप लेटी, खुली आँखों सपने देखा करतीं।......कल्पना ही कल्पना में वे उसे पा लेतीं। सुख की

एक छोटी सी दुनिया बसा लेतीं। किन्तु कल्पना का इन्द्रजाल टूट जाता और वे अपने बिस्तर पर बेबसी से छटपटा कर रह जातीं।

और धीरे धीरे वे जगमोहन को फिर अपने निकट ले आयी थीं। वे चाहती थीं कि एक जस्त में दोनों एक हो जावें। छिपकली सी वे न बनना चाहती थीं। एक ही बार उसे अंक में भर कर चाहती थीं, 'घोषणा कर दें, मुझे है प्रिय तुम्हीं से प्यार!'......यदि पुराना ज़माना होता, वे राजकुमारी होतीं, जगमोहन उन के स्वयंवर में आया होता तो वे निस्संकोच बढ़ कर उस के गले में वर-माला डाल देतीं। ......लेकिन वे तो अपने वातावरण की पेचीदगियों में पल कर युवा हुई थीं। जन्म ही से अपनी माँ के प्रेम से वंचित, सौतेली माँ की अनमनी-उपेक्षा की छाया में रही थीं। कुछ अजीब तरह का हीन-भाव, मौन, संकोच, अन्तरोन्मुखता उन के स्वभाव का अंग बन गयी थी। स्नेह उन्हें पंडित रघुनाथ से मिला था। पर उस में कुछ अजीब-सी, रेंगती हुई-सी वासना थी, जिस का विश्लेषण तब वे कर न पाती थीं। 'बेटी' 'बेटी' कहते हुए वे उसे अंक में भर लेते थे और स्नेह से उन के शरीर पर कुछ ऐसे हाथ फेरते थे, उन के वक्ष के छोटे छोटे उभारों पर उन के हाथ का दबाव कुछ ऐसे बढ़ जाता था कि कुछ अनजान सी सनसनी की लहर उन के तन मन में दौड़ जाती थी। वे चुपचाप कुनमुनाती सी उन के अंक से लगी रहती थीं। धीरे धीरे ज्यों ज्यों वे युवा होती गयीं, उस स्नेह की यथार्थता को जानती गयीं, पर पं० रघुनाथ उमर में उन से इतने बड़े थे उन के पिता की उमर के—और वे स्वयं कुछ ऐसी संकोची थीं, कि जब वे उन्हें बाँह में भर कर प्यार से उन के सिर पर हाथ फेरते हुए अपने अंक से दबा लेते तो वे कुछ भी न कह पातीं। उन के शरीर में सनसनी सी दौड़ जाती और वे चुप बनी रहतीं।.....और तब जगमोहन उन के जीवन में आया। उस के हाथ का परस ही नहीं, उस की आँखों का परस तक उन की नसों में रक्त के प्रवाह को तेज़

कर देता। उन का दिल धड़क उठता, शरीर गरमा जाता और कानों की लवें सनसना उठतीं।

......कौन जाने उस के भाई की डाँट से जो रुकाव-सा उन के प्रेम की गति में आ गया था, वह दूर हो जाये और जगमोहन नदी के बहाव में बरबस बहते हुए व्यक्ति-सा उन के प्रेम की धारा में न डूबे, बल्कि स्वेच्छा से नदी की लहरों में अपने आप को छोड़ देने वाले तैराक-का-सा सुख पाये! ......और वे उस के घर की ओर बढ़ी जा रही थीं।

रामलाल स्ट्रीट आ गयी। सामने दूर जगमोहन के घर की नवानी के वारजे का छोटा सा भाग दिखायी दे रहा था। सत्या जी का दिल धड़क उठा और गति मन्द हो गयी। तभी अचानक बून्दियाँ पड़ने लगीं। उड़ता बरसता बादल आया और धूप में झड़ी लगाने लगा। सत्या जी भाग सकती थीं, लेकिन गली में तो रामलाल के मकान के अतिरिक्त दूसरा कोई मकान न बना था और मैदान सपाट था। सत्या जी ने चाल कुछ तेज़ कर दी। चंचल हो कर भाग उठना उन की प्रकृति के विरुद्ध था। तीव्र, किन्तु धीर-गति से वे चलती गयीं।

जब वे जगमोहन के मकान की डेवढ़ी में पहुँचीं तो सिर से पैर तक भीग चुकी थीं।

४७

सत्या जी ऊपर पहुँचीं तो निचले कमरे ही में उन्होंने जगमोहन को खिड़की के पास चारपाई पर लेटे, किसी पुस्तक को बड़ी तन्मयता से पढ़ते पाया। उन का हृदय धक से रह गया और हल्की सी उल्लास की लहर उन के शरीर में दौड़ गयी।

बड़ी ही मन्थर गति से सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वे निरन्तर सोच रही थीं कि जगमोहन ऊपर मिलेगा भी या नहीं ? कि वे ऊपर छत पर उस के कमरे में जायँगी, तो क्या बहाना बनायेंगी ?......वास्तव में वहाँ जाने में उन्हें बड़ा संकोच हो रहा था। निचले कमरे में उस की उपस्थिति ने उन की मुश्किल आसान कर दी। बात यह थी कि जाने से पहले जगमोहन के भाई और भाभी ने उसे आदेश दिया था कि उन की अनुपस्थिति में वह निचले कमरे में चला आय। "सूनी जगह है। तुम ऊपर अपने कमरे में रहोगे तो यहाँ की खोज-खबर कौन रखेगा।" उस की भाभी ने कहा था, "रात की बात तो दूर रही, कोई चाहे तो यहाँ दिन-दहाड़े बुहारी फेर सकता है।"

"मालिक मकान तो दोपहर को किवाड़ लगा कर अन्दर सोये रहते हैं।" उस के भाई बोले थे, "कोई चाहे तो दिन में ताला तोड़, हर चीज़ का सफ़ाया कर जाय ! तुम साँझ-सबेरे चाहे जहाँ जाना, पर दोपहर को जरूर घर ही पर रहना।"

और जगमोहन उन के आदेशानुसार दोपहर की उस उमस में नंगे बदन तहमद का लँगोट बनाये टाल्स्टाय का उपन्यास 'आना करीनीना' पढ़ रहा था। उपन्यास पढ़ने में वह इतना तल्लीन था कि सत्या जी के आने का भी उसे पता नहीं चला। वर्षा बाहर बड़े ज़ोरों से होने लगी थी। खिड़कियों से आने वाली धूप ग़ायब हो गयी थी। बरसती हुई घटा शायद सारे आकाश पर छा गयी थी। तभी ज़ोर की बौछाड़ खिड़कियों से अन्दर आयी। जगमोहन हड़बड़ा कर उठा और उस की नज़र सत्या जी पर पड़ी।

"अरे आप!" उस ने चौंक कर कहा।

"भाभी कहाँ हैं?" बड़े क्षीण स्वर में, धरती में निगाहें गाड़े सत्या जी ने पूछा।

"भाभी तो मैके चली गयीं।" और उस ने भीगती हुई चारपाई को खिड़की से परे खींचा। बौछार अब भी सिरहाने तक पहुँच रही थी। उस ने बढ़ कर उस खिड़की को बन्द कर दिया। तहमद लेटने से ढीला पड़ गया था। उस के पीछे टंगी कोर को फिर से छोड़ कर जगमोहन ने उसे कस लिया। सत्या जी ने निगाह उठायी। उन की दृष्टि उस के निरावरण वक्ष और सुगढ़ कन्धों पर छिछलती हुई चली गयी। उन का धड़कता हुआ दिल और भी धड़कने लगा और माथे में हल्का ख़ुमार सा छा गया। पर अपने आप को संयत कर, मुड़ने की हल्की सी भंगिमा के साथ, उन्होंने कहा, "मैं चलती हूँ, मुझे मालूम न था भाभी यहाँ नहीं, मोहिनी रोड जा रही थी, सोचा भाभी से मिलती चलूँ।".......

"पर आप तो बिलकुल भीग गयी हैं," चारपाई के सिरहाने रखी कमीज़ को बाँहों में डालते और किंचित हँसते हुए जगमोहन बोला। हँसी के बावजूद उस के स्वर में हल्की सी चिन्ता थी।

सत्या जी रुकीं, "इस झपाके से आया पानी कि यही मैदान पार करते करते मैं भीग गयी।"

सत्या जी की साड़ी से निचुड़ कर पानी की एक लकीर फर्श पर साँप-सी रेंग रही थी। खादी की साड़ी थी। पानी उस के अधोभाग में सिमट आया था, जिस से साड़ी का निचला भाग तन सा गया था। गीला ब्लाउज़ उन के वक्ष और कमर की रेखाओं को उभारता हुआ उन के शरीर से चिमटा था। आँचल चाहे बिलकुल भीग गया था, तो भी वे उस से सिर और वक्ष ढके थीं। जगमोहन निमिष भर उन्हें देखता रहा, "आप तो बिलकुल ग़र्च्च हो गयीं!" उस ने कहा, "भाभी हैं नहीं। होतीं तो आप को कुछ साड़ी-वाड़ी देतीं।"

सत्या जी फिर मुड़ीं। बोलीं, "मैं चलती हूँ! भाभी आयें तभी आऊँगी।"

"पर बाहर तो मूसलाधार पानी बरस रहा है।" जगमोहन ने एक कदम बढ़ कर कहा, "आप यहीं रुकिए, मैं ऊपर कमरे में चला जाता हूँ।"

सत्या जी ऐसे थीं कि न रुक रही थीं, न जा रही थीं। "आप को असुविधा होगी।" उन्होंने कहा।

जगमोहन अब तक वहीं चारपाई के पास रुका था। आगे बढ़ कर उस ने उन का हाथ थामा और कमरे के मध्य ले आया। "पानी रुकने तक आप यहाँ ठहरिए," उस ने ज़रा अधिकार के साथ कहा, "मैं छत पर चला जाता हूँ।"

सत्या जी वहीं रुकी खड़ी रहीं। बाहर पानी का ज़ोर बढ़ गया था। कमरे की शेष दो खुली खिड़कियों से पानी की बौछार निरन्तर अन्दर आ रही थी। सामने मैदान में धरती से आकाश तक पानी की एक चादर तनी हुई दिखायी देती थी। वायु दिग्भ्रान्त थी। पानी के थपेड़े दोनों ओर से आ रहे थे।

"आप यहाँ रहिए," जगमोहन ने कहा, "ज़रूरत समझें तो खिड़कियाँ बन्द कर लीजिए। हवा बहुत ज़ोर से आ रही है। मैं ऊपर

से आप के बैठने को कुर्सी लाये देता हूँ।"

पर इस से पहले कि वह बढ़ता सत्या जी फिर चल दीं। "मैं चलती हूँ," उन्होंने सीढ़ियों की ओर बढ़ते हुए कहा, "मैं यहाँ आप को परेशान करने नहीं आयी। मैं यहाँ बैठूँ और आप ऊपर पानी में भीगें!"

जगमोहन ने बढ़ कर फिर उनका हाथ थाम लिया। "अरे मैं कहाँ भीगूँगा। छत पर रहूँगा क्या? मज़े से अन्दर कमरे में बैठूँगा।" और वह हँसा।

"यहाँ से जाने, छत पार कर अपने कमरे का ताला खोलने, फिर कुर्सी लाने और फिर ऊपर वापस जाने में आप का ख़्याल है आप इस आँधी-पानी में अछूते बच जायँगे। सिर से पैर तक शराबोर न हो जायँगे।"

जगमोहन किं-कर्तव्य-विमूढ़-सा पल भर खड़ा रहा। फिर बोला, "अच्छा मैं बिस्तर गोल कर देता हूँ। आप चारपाई पर बैठिए। क्या करूँ यहाँ कोई साड़ी वाड़ी नहीं कि आप उसे पहन कर इन्हें सुखा लेतीं।"

सहसा सत्या जी ने कहा, "आप के पास कोई धोती नहीं?"

"वही सिल्क का कुर्त्ता और पतली धोती है जो मैं पहना करता हूँ, दूसरा कोई कपड़ा तो आप के काम का नहीं।" और वह खिन्नता से हँसा।

"लाइए!" वहीं धरती में आँखें गाड़े सत्या जी ने कहा।

जगमोहन ने सूटकेस से सिल्क का कुर्त्ता और बारीक किनारे की पतली धोती निकाली।

"यह तो बहुत पतली है," उस ने उन्हें देते हुए कहा।

"कोई बात नहीं," सत्या जी बेपरवाही से बोलीं। फिर शरीर के गीले कपड़ों की ओर संकेत कर उन्हों ने कहा, "ये कपड़े निचोड़ कर यहाँ खिड़की में डाल देते हैं। बीस-तीस मिनट में सूख जायेंगे, फिर मैं इन्हें पहन कर चली जाऊँगी।"

"अच्छा आप बदल लीजिए, मैं सीढ़ियों में चला जाता हूँ।"

जब वह वापस आया तो सत्या जी कपड़े बदल चुकी थीं। बिस्तर की एक कोर मोड़ कर उन्होंने अपने गीले कपड़े चारपाई के पाये पर रख दिये थे और स्वयं खादी का ब्लाउज़ निचोड़ने का प्रयास कर रहीं थीं। जगमोहन ने बढ़ कर उन के हाथ से ब्लाउज़ ले लिया। उसे और उस के बाद शेष कपड़ों को निचोड़ा और फटक कर उस ने उन्हें खूंटियों पर लटका दिया। धोती उस ने दोनों खिड़कियों के किवाड़ों पर फैला दी।

सत्या जी चारपाई पर बैठ गयी थीं। जगमोहन ने जैसे पहली बार उन की ओर देखा—कुर्ता उन्होंने धोती के ऊपर छोड़ रखा था और बग़ल से धोती का आँचल निकाल कर उसे सिर पर ले लिया था। जगमोहन ने देखा—वे धोती के पतले आँचल की सहायता से, कुर्ते के खुले गिरेबान में झलकते हुए अपने सीने को ढकने का प्रयास कर रही थीं। वह चौंका "अरे मैंने आप को बटन तो दिये ही नहीं।" उस ने कहा, और दो तेज़ कदम भर कर उस ने सूटकेस से बटन निकाले और सत्या जी को दे दिये।

सत्या जी चुपचाप निगाहें नीचे किये बटन लगाने लगीं। कुर्ते के नीचे दूसरी कोई चीज़ न थी। दीवार से पीठ लगाये, जगमोहन ने निगाहें दूसरी ओर कर लीं। उस के रक्त की गति कुछ तीव्र हो गयी और कंठ सूखने लगा।

"ये कैसे लगते हैं?" क्षण भर बाद सत्या जी ने झुँझलाहट से कहा और बटन लगाती हुईं वे उस के निकट आ गयीं।

पतली सफ़ेद धोती में उन की गोरी-गोरी टाँगें कुर्ते के छोर तक दिखायी दे रही थीं। गोरा कंठ और दूध-से-श्वेत-वक्ष दोनों पहाड़ियों का

अधिकांश भाग खुला था। शिखर कुहरे में ढके थे, पर पिंडारी के ग्लेशियर की वह श्वेत चादर—जगमोहन ने प्रकाश में उसे न देखा था।

उस का रंग फीका सा पड़ गया। रक्त का प्रवाह बड़े वेग से उन के मस्तिष्क को जाने लगा। वह हँसा (अपनी हँसी उसे बड़ी अजीब सी लगी) "अरे आप तो बटन उल्टे काज में लगा रही हैं!" और यह कह कर उस ने बटन खोल, सीधे काज में लगा कर, उसे बन्द कर दिया।

सत्या जी ने उसे दूसरा बटन दिया, पर तब न जाने जगमोहन को क्या हुआ, उस के मस्तिष्क के नभ को जाने किस घटा ने एक ही बार ढक लिया। उस ने बटन लेने के बदले उन के हाथ को खींच कर उन्हें अपनी बाँहों में भींच लिया। बन्द कंधे से ऊपर कंठ का हिम जैसा श्वेत भाग हिम जैसा ही ठंडा था। पर जगमोहन के ओंठ आग जैसे गर्म थे। जैसे हवा का वेग तिनके को धरती से उठा कर अपने साथ ले उड़ता है, जगमोहन ने सत्या जी को उठा लिया और चारपाई की ओर बढ़ा।

वर्षा का जोर खत्म हो चुका था। हल्की-हल्की बूंदियाँ बरस रही थीं। ठंडी-ठंडी हवा के झकोरे खिड़कियों से आ रहे थे। और साँझ अपने सायों को लिये हुए उतर आयी थी। जगमोहन के शरीर का तूफ़ान मिट चुका था। वह चारपाई पर लेटा था। उस के निरावरण वक्ष पर सत्या जी अपना गाल रक्खे हुए उस के शरीर से सटी, लेटी थीं। उन के चेहरे की कर्कशता एक बड़ी ही प्यारी—लगभग तरल-स्निग्धता में बदल गयी थी और वे बरसी हुई बदली की तरह हल्की, उत्फुल्ल और संतुष्ट दिखायी देती थीं।

जगमोहन की बायीं बाँह उस के सिर के नीचे थी, दायीं चारपाई के नीचे लटक गयी थी और उस की आंखें छत में लगी थीं।

कुछ ही क्षण ज़ोर से बरस कर आकाश पर तने-रुके-गहरे-गंभीर पर मौन बादल की तरह वह चुप था। जैसे वह बादल सोच रहा था—मैं क्यों खुल कर नहीं बरस सका ? बरसने के इस खेल में अपने आप को भुला क्यों नहीं सका ? मेरी जड़ता गति बन कर अविरल और अबाध क्यों नहीं बही ? .. कि उस के बायें वक्ष से लगी उत्फुल्ल, सन्तुष्ट बदली ने सहसा कहा, "तुम क्या सोच रहे हो ?"

जगमोहन चौंका। सिर के नीचे से अपनी बाँह निकाल कर, अंक से लगी युवती को उस से ज़रा सा दबाते और पूर्ववत छत में देखते हुए उस ने कहा, "कुछ भी तो नहीं !" उस का हाथ धीरे धीरे सत्या जी के केश, कंठ, वक्ष को सहलाता हुआ फिर वापस आ गया। एक हल्की सी नयी सिरहन सत्या जी के शरीर में दौड़ गयी और वे उस के पहलू से और भी सट गयीं। जगमोहन को अपने और सत्या जी के शरीर के बीच हल्के से स्वेद का आभास मिला, किन्तु वह मौन, निष्कम्प लेटा रहा। सत्या जी के वक्ष की वे गोरी-ग़ोरी गोलाइयां जिन की एक झलक मात्र से उस की शिराओं में कौंधा सा लपक गया था, उस स्पर्श के बावजूद उस के शरीर में पुनः ज़रा सी भी सिरहन न उत्पन्न कर सकीं। उस ने बाँह फिर सिर के नीचे रख ली और बाहर खिड़की में देखने लगा .. बूंदियां यद्यपि अब भी बरस रही थीं, पर सूखने को डाली हुई सत्या जी की धोती के नीचे से आकाश की एक नीली निरभ्र फाँक दिखायी देने लगी थी। सत्या जी ने उस के पहलू के साथ सटे-सटे करवट बदली। दायीं कोहनी को चारपाई पर टिका, उन्होंने हथेली पर अपने चिबुक को ऐसे रखा कि उन की ठोढ़ी जगमोहन की ठोढ़ी के बिलकुल निकट आ गयी, और उन का बायाँ वक्ष जगमोहन के वक्ष से सट गया। क्षण भर वैसे ही चुप पड़े रह कर उन्होंने बड़े ही धीमे, भेद-भरे स्वर में पूछा, "एक बात कहूँ ?"

उन के स्वर में कुछ ऐसी आत्मीयता-भरी-सरगोशी थी, कुछ ऐसी

रहस्यमयता थी कि जगमोहन का ध्यान सहसा उधर पलट गया.
"कहिए !" उस ने सिर को तनिक सा झुका कर कहा। सत्या जी ज़रा नीचे सरक गयीं। फिर अपने सिर को वैसे ही उस के सीने में छुपा कर उन्हों ने उसी प्रकार रहस्य-भरे-धीमे-स्वर में कहा, "बहुत दिनों से यह बात कहना चाहती हूँ, पर साहस नहीं कर पायी, कि जाने आप क्या समझें।"

जगमोहन ने उत्तर नहीं दिया। वह सुनने का प्रस्तुत था।

"किसी से कहिएगा नहीं, लाहौर भर में यह बात शायद और कोई नहीं जानता।"

जगमोहन चुप रहा।

सत्या जी ने जैसे थूक निगल कर और अपने शरीर को आत्मीयता के भाव से जगमोहन के शरीर से और भी चिमटाते हुए कहा, "मेरी माँ अपनी नहीं।"

"सौतेली हैं ?"

"जन्म लेने के बाद मैं इन्हीं के हाथों पली हूँ, पर माँ ये मेरी नहीं हैं, मेरी माँ तो मुझे जन्म देते ही अस्पताल में मर गयी।"

"इन्होंने आप को दया कर पाल लिया या गोद ले लिया," जग-मोहन ने निरपेक्ष भाव से कहा, "इस में बुरा क्या है ?"

तब सत्या जी ने उसी तरह लेटे लेटे अपनी स्वर्गीया मां और अपने पिता की प्रेम-कहानी सुनायी कि कैसे उन के पिता उन की इस माँ के साथ बम्बई रहते थे और पड़ोस की एक मराठी लड़की से उन का प्रेम हो गया था। कैसे वह मराठी लड़की गर्भवती हो गयी और जब किसी तरह उस कष्ट-प्रद स्थिति से निष्कृति न मिली तो उस के घर वालों ने उसे उन्हीं के घर भेज दिया कि जिससे यह बला मोल ली है, उसी से कह कि मुक्ति दिलाये। तब पिता उसे अस्पताल ले गये। उन्होंने अस्पताल में यही कहा कि यह मेरी पत्नी है। उसे आश्वासन दिलाया कि जो भी हो,

अस्पताल से आने के बाद वे उस से विवाह कर लेंगे। पर वह मराठी लड़की वह सुख देखने को जीती न रही। सत्या जी को जन्म देने के कुछ दिन बाद मर गयी। तब उन के पिता के कहने पर उनकी इस माँ ने उन्हें पाला।

"इस बात का किसी को भी पता नहीं, मेरी माँ ने कभी किसी दूसरे को नहीं बताया।"

वे चुप हो गयीं और बात कहते कहते उन का जो सिर उठ गया था उसे उन्होंने फिर जगमोहन के वक्ष से लगा दिया।

जगमोहन क्षण भर मौन लेटा छत को तकता रहा। निमिष-भर के लिए विद्युत-सरीखा यह विचार उस के मन में कौंध गया कि कहीं सत्या जी की दशा भी उन की माँ जैसी तो नहीं होने जा रही। कहीं उसे भी तो उन के पिता की तरह वैसी ही स्थिति में विवाह की घोषणा न करनी पड़ेगी। और उस के सामने दुरो का चित्र घूम गया और उसे लगा कि उसका शरीर पसीने से तर हो गया है। एक हल्की सी सिहरन उस की रीढ़ की हड्डी को छूती हुई चली गयी। पर अपने विचारों का कोई बिंब उस ने अपने मुख पर नहीं आने दिया। सिर के नीचे से बाँह निकाल कर सत्या जी की बाँह को थपथपाते हुए, उस ने सिर्फ़ इतना कहा, "आप के पिता बहुत अच्छे हैं।"

"रात वे मुझे शादी के लिए कह रहे थे।" सत्या जी बोलीं, "प्रो० स्वरूप ने वादा किया है कि जिस दिन मेरी सगाई हो उसी दिन वे हमारा दो हज़ार रुपया दे देंगे।"

"आप को शादी कर लेनी चाहिए," जगमोहन ने वैसे ही निरपेक्ष भाव से कहा, पर इस से पहले कि सत्या जी इस बात को बढ़ातीं, वह विचलित हो उठा। "बड़ी उमस हो गयी है।" उस ने कहा और खिड़की में देख कर बोला, "बाहर तो धूप निकल आयी है, मुझे तो शाम को कमर्शल बिल्डिंग्ज़ में प्रौढ़ों के स्कूल पढ़ाने जाना है," और

उस ने उठने का उपक्रम किया।

सत्या जी हट गयीं। जगमोहन उठा। तहमद के छोर से बदन का पसीना पोंछते हुए उन ने बात का रुख पलट दिया। प्रो० कपूर के घर उस की जो दुर्गति हुई थी, उस का किस्सा सुनाने लगा।

४८

साँझ को सत्या जी घर आयीं तो उन का मुख खिला पड़ता था। आ कर उन्होंने हैंड-पम्प के नीचे बालटी भरी, नहायीं, नये कपड़े बदले और अपने बिस्तर में जा कर धँस गयीं। इस बीच में निरन्तर अपनी चची से, बच्चों से, नीचे आँगन में रहने वाली किरायेदारिन से हँस हँस कर बातें करती रहीं। नहाते और बालों में कंघी करते समय गुनगुनाती रहीं और बिस्तर में लेटीं तो एक अजीब-सा शांति-मय-पुलक उन के मन-प्राण पर छा गया। तनिक सा उठ कर दीवार से पीठ लगाये, वे खिड़की के बाहर देखने लगीं—ऊपर आकाश निरभ्र था, पर सामने क्षितिज पर काले-कजरारे बादल उमड़ रहे थे, जिन के किनारे पार्श्व में अस्त होते सूरज की सेन्दूरी लाली से रंजित थे। ठंडी हवा रमक रही थी। बाहर मैदान में जंगली कबूतर उतर आये थे और बरसात में निकल आने वाले कीड़ों को गीली गीली मिट्टी में चुग रहे थे। धर्मभीरु हिन्दू वहाँ दाने डाल देते थे। वर्षा से मिट्टी धुल जाती थी, दाने चमक आते थे और पानी बन्द होने पर कबूतर वहाँ आ जुटते थे। एक कबूतरी बार बार एक कबूतर के पास जा बैठती। कबूतर गर्दन न्योढ़ाता, पंख फुलाता, 'गटर गूँ' 'गटर गूँ' करता, दो एक चक्कर उस के गिर्द लगाता, फिर उड़ कर दूसरी जगह जा दाना चुगने लगता। कबूतरी फिर उड़ कर उस के मार्ग में जा बैठती। आखिर कबूतर उचक

कर उस पर बैठ गया और फिर उड़ कर दाना चुगने लगा। कबूतरी उड़ी और दायें मकान की मुँडेर पर जा बैठी, पंखों में चोंचें मार कर उस ने उन्हें फुला लिया और फिर सुख से दुबक कर बैठ गयी। सत्या जी की दृष्टि वहाँ से दरवाज़े के बाहर बँधी अपनी गाय पर गयी। भर पेट खा कर वह मौन-रूप से पागुर कर रही थी।

सिर खिड़की से हटा कर उन्होंने पाँव सिकोड़ लिये और घुटनों को बाँहों के घेरे में बाँध कर उन्होंने छाती से भींच लिया। एक हल्की सी मीठी-मीठी सिहरन उन के अंगों में दौड़ गयी। पिछले तीन चार घंटे अपने सारे सुख और पुलक के साथ उन की आँखों के सामने घूम गये। उसी तरह बैठे, दीवार से पीठ लगाये, वे कल्पना ही कल्पना में उन क्षणों का आनन्द लेने लगीं।

वे जाने कब तक उसी तरह अधलेटी-अधबैठी रहतीं, पर उन के पिता आ गये। बिजली का बटन उन्होंने दबाया और बोले, "अँधेरे में क्यों बैठी हो?"

"पानी में भीग गयी थी।" सत्या जी ने चौंक कर उठते और शरीर को तनिक सा झटक कर स्वस्थ होते हुए कहा, "कपड़े बदल कर बैठी कि ऊँघ गयी।"

उन के पिता सिरहाने की ओर आ बैठे। सत्या जी को उन्होंने अपने पास बैठने को कहा। जब वे चारपाई की पट्टी पर बैठ गयीं तो उन के पिता ने जेब से उस दिन का 'ट्रिब्यून' निकाला। Matrimonial* के पृष्ठ से मुड़ा हुआ था। कदाचित् उस पृष्ठ को पढ़, उसे मोड़ कर उन्होंने जेब में रख लिया था। शादी-ब्याह के कालम के एक विज्ञापन पर उन्होंने अंगुली रख दी। सत्या जी ने पढ़ा—अफ़रीका से विवाह-हेतु हिन्दुस्तान आने वाले किसी धनी-युवक के निमित्त कोई पढ़ी-लिखी,

---

की अन्य कोई सन्तान नहीं। नौकरी तो वे केवल अपने शौक के लिए करती हैं, बेकार बैठने से उन का जी घबराता है, अपना सारे का सारा वेतन वे उसे लाकर दे दिया करेंगी। जगमोहन चुपचाप उन की बात सुनता रहा था। उस की चुप को स्वीकृति मान कर उन्होंने मन ही मन निश्चय किया था कि वे न केवल स्कूल में पढ़ायेंगी, बल्कि स्वयं आगे पढ़ेंगी...विशारद उन्होंने पास कर ही रखा था . एक वर्ष डट कर मेहनत करेंगी और शास्त्री की परीक्षा में उत्तीर्ण हो, फिर अंग्रेजी में एफ० ए०, बी० ए०, एम० ए० कर, एम० ए० एम० ओ० एल० की डिग्री ले लेंगी। किसी कालेज की प्रिंसिपल हो जायेंगी और जगमोहन को साहित्य-सृजन के लिए आज़ाद छोड़ देंगी। जगमोहन शायद अभी उन से विवाह करने में झिझकता है। शिक्षा की समस्या उस के सामने है, शायद आर्थिक-समस्या भी है। वे उसे इन दोनों चिन्ताओं से मुक्त कर देंगी। उस से कह देंगी कि वे अभी शादी न करेंगे, केवल सगाई की घोषणा कर देंगे ताकि ज़माने का मुँह बन्द हो जाय और उन के पिता की चिन्ता मिटे। वे उसे सगाई के बाद भी आज़ाद छोड़ देंगी, उस का मन न हो तो विवाह न करे......और वे मुस्करायी, क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास था कि वैसा अवसर कभी न आयगा......रात उन्होंने अपने पिता से यह कहने का फ़ैसला कर लिया था कि अफ़रीका के उस खुले अंगों वाले साहूकार मेजर में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं। वे करेंगी तो जगमोहन ही से शादी करेंगी और इस निर्णय के बाद आश्वस्त और शान्त हो वे सो गयी थीं।

"जीजी, जीजी, उठो जगमोहन आये हैं!" दुरो ने प्रातः उसे झकझोरा।

सत्या जी को दुरो का यह स्वर स्वप्न-लोक से आता लगा। जब

किसी हठी मेहमान की हठी दस्तक की तरह यही स्वर बार-बार उन के कानों में आया तो वे उठ बैठीं। दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे में फँसा कर उन्होंने एक अलस-अँगड़ाई ली। "तुम उन्हें बैठक में बैठाओ, मैं अभी आती हूँ।" और चप्पल पहन कर वे अपने कमरे को चलीं।

"मैं ने उन से कहा था," दुरो ने उन के पीछे चलते-चलते कहा, "पर वे आये नहीं, वे जल्दी में हैं।"

"उन से कहो मैं अभी आती हूँ।" और वे तेज़-तेज़ अपने कमरे की ओर गयीं। जाते-जाते हैंड-पम्प पर रुक कर उन्होंने अपनी धोती का छोर गीला किया और उसे मुँह पर फेरते हुए शीशे के आगे जा कर बालों की दो चार लटों को सँवारा, आँखों में हल्की सी काजल की लकीर खींच दी और साड़ी को सिर पर लेकर नीचे धरती में दृष्टि जमाये डेवढ़ी की ओर चल दीं।

बाहर दुरो और जगमोहन में ट्राँसपोर्ट यूनियन के संबंध में बातें हो रही थीं। जगमोहन ने अपने फैसले का जिक्र किया था कि वह अब और आगे न पढ़ेगा। क्या करेगा, यह अभी वह तय नहीं कर पाया। दुरो कह रही थी कि वह ट्राँसपोर्ट-यूनियन की मीटिंग में अवश्य आये। उस का मन भी लगेगा और उन की सहायता भी हो जायगी।

डेवढ़ी ही से सत्या जी ने देखा कि जगमोहन के बाल अस्त-व्यस्त हैं, चेहरा उतरा हुआ है और दुरो से बातें भी वह उखड़े-उखड़े ढंग से कर रहा है।

सत्या जी को आते देख कर दुरो ने नमस्कार के लिए हाथ माथे पर ले जाते हुए कहा, "अच्छा तो नमस्कार," मीटिंग में ज़रूर आइएगा।"

और वह पलट कर चली गयी। जगमोहन उस के 'नमस्कार' के उत्तर में हाथ जोड़ना भूल गया। सत्या जी के आते ही उस ने जेब से एक बन्द लिफ़ाफ़ा निकाल कर उन्हें दिया। "मैं आप से कुछ कहना

चाहता था, पर कह नहीं सका। मैं ने सब इस में लिख दिया है," उस ने बिना उन की ओर देखे कहा और पलट कर लगभग भागता हुआ सा चला गया।

सत्या जी स्तम्भित सी, विजड़ित सी क्षण भर उसे जाते देखती रहीं। फिर पत्र को धड़कते हुए दिल के साथ अन्दर अपने कमरे में ले आयीं। चारपाई की पट्टी पर बैठ कर उन्होंने लिफ़ाफ़ा फाड़ा। फिर उसी तरह उसे हाथ में लिये हुए उठीं। दरवाज़ा उन्होंने बन्द कर, चिटखनी लगा दी। फिर वापस चारपाई की पट्टी पर जा बैठीं। लिफ़ाफ़ा सारे का सारा फाड़ डाला। जल्दी-जल्दी लिखी हुई कितनी ही स्लिपें उनके हाथ में आ गयीं। किसी जगह और तारीख के बिना लिखा था :

"सत्या जी,

रात के डेढ़ दो बजे हैं और मैं उठ कर आप को ये पंक्तियाँ लिखने बैठ गया हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि जब तक मैं यह सब लिख कर आप को पहुँचा न दूँगा, चैन न पा सकूँगा।

इस खत की ज़रूरत न पड़ती, यदि कल वह सब न होता जो हुआ। उस में मेरा कितना दोष है, आप का कितना, हमारे एकाकीपन और उस बरसते आकाश का कितना? मैं इस बहस में न पड़ूँगा। मैं सिर्फ़ इतना कहना चाहता हूँ कि मुझे वह ठीक नहीं लगता। मेरी मानसिक-शान्ति उस से नष्ट हो जाती है।

यह नैतिक पाप है, या सामाजिक? मैं यह भी ठीक तरह नहीं कह सकता! समाज जिस क्रिया को पाप समझता है, विवाह के बाद उस के निकट वह पाप नहीं रहती। विवाह के बाद उस के लिए विशेष प्रबन्ध किये जाते हैं—फूलों की सेजें बिछायी जाती हैं और कहीं कहीं तो

बाजे भी बजाये जाते हैं। सो उस दृष्टि से वह पाप नहीं। —पुरुष-स्त्री का सम्मिलन—सृष्टि की स्वाभाविक-तम क्रिया—पर बलात्कार का दण्ड फिर सात वर्ष क़ैद क्यों है? शायद इसलिए कि उस में स्त्री की इच्छा नहीं होती। अभियुक्त मानवेच्छा के निरादर का अपराधी होता है।

सो क्रिया अपने में पाप नहीं। पाप उस की प्रेरणा में है। मुझे वह इसलिए बुरी लगी कि न चाह कर भी वह मुझसे हुई और यदि इसी तरह हम मिलते रहेंगे, तो यह इसी तरह होती रहेगी...मेरी अनिच्छा के बावजूद...क्योंकि शरीर की एक अपनी इच्छा है और उस के आगे वह कई बार मस्तिष्क की नहीं चलने देता। लेकिन क्योंकि शरीर एक बार भटक गया, इसलिए मस्तिष्क सदा भटका रहे, ऐसा मैं नहीं मानता और इसीलिए मैं ये चन्द पंक्तियां आपको लिख रहा हूँ।

मैं आप को किसी तरह के धोखे में नहीं रखना चाहता। मैं आप से शादी नहीं करना चाहता और इसलिए मैं नहीं चाहता कि यह सब हम में होता रहे...फिर वह कितना भी प्राकृतिक, कितना भी स्वाभाविक ही क्यों न हो! आप यदि अपने आप को कभी अपनी स्वर्गीया माँ की स्थिति में पायें तो क्या होगा?...हो सकता है आप को लोक-निन्दा से बचाने के लिए मैं भी वही करूँ जो आप के पिता ने किया...पर मैं सच कहता हूँ, मैं आप के पिता ऐसा महान नहीं.. मैं उस संबंध के लिए कभी आप को अथवा अपने को क्षमा न कर सकूँगा। आप के पिता शायद आप की माँ से प्रेम करते थे। उनका संबंध दो की स्वतन्त्र-इच्छा के संबंध-स्वरूप पाप न था। पर हमारा वह संबंध निश्चय ही पाप होगा—हमारा वैवाहिक जीवन नरक-सरीखा हो जायगा और

मैं उन बच्चों से......जो बच्चे होने के नाते प्रेम के अधिकारी होंगे......कभी प्रेम न कर सकूँगा।

मुझे यदि आप से प्रेम होता तो शायद मैं इतना परेशान न होता। पर मुझे आप से प्रेम नहीं। शायद आप समझें कि चूंकि आपने आत्मसमर्पण कर दिया इसलिए आप मेरी दृष्टि से गिर गयी हैं और मैं आप से घृणा करने लगा हूँ। मैं आप से घृणा नहीं करता। मैं आप को पसन्द भी करता हूँ। आप की इज़्ज़त भी करता हूँ। आप की विवशता को समझता हूँ। मुझे उस विवशता से हमदर्दी भी है। मैं स्वयं किसी दूसरे के प्रति ऐसे ही विवश हूँ, पर मेरा आप के संग यों रहना उस विवशता का अनुचित लाभ उठाना है। और यह मैं आप का और अपना अपमान समझता हूँ।

इसके अतिरिक्त मैं विवाह करने की स्थिति में भी नहीं हूँ। एम० ए० करने का ख़्याल मैं ने छोड़ दिया है। क्या करूँगा, कैसे रहूँगा, इस का कोई ठिकाना नहीं। आप ने जो स्नेह दिया, मेरी सहायता का जो आश्वासन दिया, उस के लिए 'आभार' शब्द बहुत छोटा जान पड़ता है। आप उतना स्नेह न करतीं तो मैं ठीक-ठीक स्थिति से आप को परिचित करने के लिए इतना बेचैन न होता। आप मेरा ख़्याल छोड़ दीजिए। आप कहीं विवाह कर लीजिए। न करना चाहें तो कम से कम मेरे यहां न आइए। मुझे कोई चिट्ठी न लिखिए, मुझे विद्यालय में न बुलाइए। मैं प्रार्थना करता हूँ कि भाभी अथवा भाई साहब के बहाने से भी आप मेरे यहाँ न आइए। आपके यहाँ मैं भी कभी न आऊँगा, मैं विश्वास दिलाता हूँ।

मैं ने अपने विचारों को क्रम से रखने का प्रयास नहीं किया। मेरी कोई बात बुरी लगे, उसे क्षमा कर दीजिए। आप को बुरा कहना अथवा दुख पहुँचाना मुझे अभीष्ट नहीं। ठीक स्थिति बताना और आप के और अपने जीवन को नरक बनाने से रोकना ही मुझे अभीष्ट है।

यदि आप इस पर भी मेरा पीछा करेंगी, तो मैं लाहौर से भाग जाऊँगा, इस का मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ।

जगमोहन

पत्र पढ़ कर कुछ क्षण सत्या जी स्तब्ध-सी बैठी शून्य में तकती रहीं। फिर उन्होंने पत्र की एक एक स्लिप को बीसों टुकड़े कर खिड़की के बाहर बहा दिया। लिफ़ाफ़ा फटा नीचे गिरा पड़ा था। उसे उठा कर और जैसे दुगने वेग से उसे भी टुकड़े टुकड़े कर के उन्होंने बाहर फेंक दिया। फिर जैसे हताश होकर, वैसे ही टाँगें नीचे किये, वे सीधी लेट गयीं। अचानक एक गोला सा उन के गले में अटक गया और उन के जी में आयी कि ज़ोर से रो उठें, किन्तु उन्हें रुलायी नहीं आयी। अन्दर ही अन्दर वह घुट गयी। उन्होंने एक गहरी लम्बी साँस भर कर करवट बदली। नीचे लटकी हुई टाँगें एक दूसरी के ऊपर चली गयीं और उन का हाथ चारपाई की दूसरी पट्टी के नीचे निर्जीव-सा जा गिरा

गत सांझ उन्होंने 'ट्रिब्यून' का जो अंक फेंक दिया था, वह अब तक वहीं पड़ा था। उन का हाथ उसी पर जा पड़ा। तब जैसे वह बिजली का तार हो, वे चौंक कर उठीं। उन का क्रोध और झुँझलाहट जैसे पूरे वेग से फिर उभर आयी। समाचार-पत्र लिये हुए, दरवाज़ा खोल कर वे सीधी अपने पिता के कमरे में गयीं। सन्ध्या-वन्दन कर वे अभी तख्त पर बैठे थे। समाचार पत्र सत्या जी ने उन के निकट फेंक दिया और धरती में दृष्टि जमाये हुए कहा, "आप वहां बात कर लें!" और जैसे

आयी थीं, वैसे अपने कमरे में चली गयीं।

दरवाज़ा लगा कर वे अपनी चारपाई पर जा गिरीं, अपने ऊपर से उन का अधिकार उठ गया और वह फुसक फुसक कर रोने लगीं।

४६

सत्या जी को चिट्ठी देने के बाद जगमोहन जिस तेज़ी से पलटा, उस में सन्त नगर पहुँचने पर भी किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। इधर उधर देखे बिना, योग-साधकों की भाँति, मस्तक में ध्यान जमाये, वह तेज़-तेज़ चला जा रहा था। पर योग-साधकों की तरह उस के मस्तक में 'ओम्' अंकित न था, बल्कि वहाँ विचारों की ज़बरदस्त होड़ लगी थी और जैसे उसी होड़ के साथ पाँव मिलाये रखने की तेज़ी में, वह चला जा रहा था।

उस क्षणिक-उन्माद के बाद, जिस ने सत्या जी के निकट-सम्पर्क में उस के दिमाग को छा लिया था, निरन्तर उस के मन में तूफ़ान सा उठता रहा था। उस समय भी, जब वह चुपचाप छत को तकता उनके शरीर के साथ सटा, चारपाई पर लेटा हुआ था, यह तूफ़ान हरहराता रहा था। यह और बात है कि उस का बिंब उस ने अपने मुख पर न आने दिया था।

उस क्षणिक-आवेश के उपरान्त उसे अपने आप पर क्रोध आया था कि वह क्यों उस बहिया में बह गया ? पर आपने आप से अधिक उसे सत्या जी पर गुस्सा था—क्यों उन्होंने वह स्थिति उत्पन्न कर दी ? वर्षा में उन का भीग जाना स्वाभाविक हो सकता है, पर उसे ऊपर न जाने देना और जब वह स्वयं धोती देने में संकोच कर रहा था, उस पतली महीन धोती को निस्संकोच बाँध लेना स्वाभाविक न था।

......पर वह भाग क्यों नहीं गया? क्यों बरबस ऊपर अपने कमरे में जाकर नहीं बैठा? क्या उस के अपने मन में कहीं चोर न था?...

......पर वह ऊपर जाने को कहता और चला ही जाता तो शायद वे स्वयं कपड़े माँगने ऊपर आ जातीं।

जगमोहन ज्यों ज्यों सोचता, पाता कि पाप उस के मन में उतना न था जितना उन के मन में था और उसे झुँझलाहट होती कि क्यों यह युवती अपने आप को तबाह करने पर तुली हुई है। जगमोहन के लिए तो मित्रों में मुँह दिखाना कठिन हो रहा है, इसे क्यों शर्म नहीं आती?

और उस समय जब उस के अंक से लगे लगे सत्या जी ने अपना वह भेद उसे बताया कि वे एक कुमारी की कोख से पैदा हुई हैं तो जगमोहन मन ही मन चौंक उठा था। सत्या जी के व्यवहार का रहस्य उस पर अपने आप प्रकट हो गया था। कुमारी की कोख से पैदा होने वाला इंसान इंसान नहीं, ऐसा जगमोहन न मानता था। फिर सत्या जी तो अपने पिता की छत्र-छाया में ही पली थीं। जो बात उसे खली थी, वह यह, कि जाने या अनजाने, वे अपनी माँ के पद-चिन्हों पर चलना चाहती थीं। उस की कहानी को दोहराना चाहती थीं। उन के अन्तर में कहीं यह भावना छिपी थी कि यदि वैसे नहीं तो ऐसे वे जगमोहन को अपने अधिकार में कर लेंगी। यह तो ब्लैक-मैल है—वह मन ही मन चिल्लाया था और उन के पास से उठ बैठा था। वे चली गयी थीं तो निरन्तर यही बात उस के मन में आती रही थी कि सत्या जी उसे ब्लैक-मेल करना चाहती हैं। अपने मन से उस ने पूछा—कल यदि सत्या जी उस से कहें कि वे तो बच्चे से हैं तो वह क्या उन से विवाह न करेगा? दूसरा कोई मार्ग उसे दिखायी न देता था! अपनी आर्थिक-स्थिति में विवाह उसे ऐसी बेड़ी सरीखा नज़र आता था जो उस की आकाँक्षा की हर फलाँग को बाँध दे। 'फिर यह जानते हुए कि यह बेड़ी बड़ी चतुराई से उस के पैरों में डाली गयी है, क्या उस बंधन को

तोड़ कर भागने की प्रवृत्ति उस के मन प्रबल न हो उठेगी ?' उस ने सोचा, 'क्या वह उन से घृणा न करने लगेगा ? उन की अच्छी बातें भी, उन के गुण भी, इसी कारण, उसे दुर्गुण न लगेंगे ?' उस जीवन की कल्पना-मात्र से वह सिहर उठा था और उसकी नींद हराम हो गयी थी।

वैसे ही तेज़ तेज़ चलते हुए, अपनी उस विक्षिप्तावस्था में लिखी हुई उस चिट्ठी की प्रतिक्रिया के संबंध में उस ने सोचा और उस के दिमाग़ का तूफ़ान क्षण भर के लिए थम गया। फिर जैसे वह तूफ़ान दूसरी दिशा को मुड़ गया—कल्पना ही कल्पना में दसियों सम्भावनाएँ उस के सम्मुख घूम गयीं—उस चिट्ठी को पढ़ कर क्रोध अथवा ग्लानि के क्षण में सत्या जी ने आत्महत्या कर ली है—यह विचार बार बार उस के दिमाग़ में आता। उस का दिल धक्क से हो जाता और वह तेज़ तेज़ चलने लगता।

......यह उस ने क्या कर दिया ? क्या वह किसी और तरह इस समस्या को हल न कर सकता था ? कॉलेज में पढ़ने का ख़्याल तो उस ने तज ही दिया था, क्यों नहीं वह कुछ दिन अपने घर चला गया ?...... पर वह लुधियाना में कब तक रहता ? किस के पास रहता ? यदि वहाँ से आने पर वे फिर आने लगतीं तो......उस ने अच्छा किया जो एक निर्मम-प्रहार से वह सब इन्द्रजाल तोड़ दिया ! उन्हें अपने पीछे लगाये रखना, उस आशा के तार को बनाये रखना क्या अच्छा होता ?—सूम भला वह सखी से जो देवे तुरत जवाब !—और वह मन ही मन प्रसन्न होता कि अच्छा हुआ उस ने वह किस्सा ही पाक कर दिया।

पर फिर उसे उन पर दया होने लगती। पंडित रघुनाथ के कहने के बाद उस ने संकेत किया था कि उनकी निंदा होगी; भाई साहब के कहने के बाद उस ने उन का अपने घर आना बन्द कर दिया था, किन्तु वे फिर आने लगी थीं।......'यह कैसी विवशता है जो आदमी को मानापमान तज कर यह मार्ग अपनाने पर मजबूर करती है,' वह सोचता, 'क्या

यदि दुरो उस का वैसा अपमान कर दे तो वह फिर उधर जाय ?...नह वह कभी वैसा न करे...वह उस की याद को दिल में लिये हुए मर जाय, पर अपना यों अपमान न होने दे।

......पर वह पुरुष है और वे स्त्री। स्त्री कदाचित अपने प्रिय को पुरुष की अपेक्षा अधिक चाहती है ?

......पर क्या सभी पुरुष वैसे और स्त्रियाँ वैसी होती हैं ?......
दुरो क्या वैसी है ? यह लुका-छिपी उस के यहाँ कहाँ है ?......

और उस का क्रोध फिर उमड़ आया। बड़ा अच्छा हुआ कि उस ने साफ़ बात लिख कर उस बीमार-संबंध का नाता तोड़ दिया।

"अरे यार बड़ी सुबह सैर को निकल जाते हो ! मैं सुबह उठते ही तुम्हारी ओर आया। यहाँ देखा कि जनाब हवा-खोरी को चले गये हैं।"

जगमोहन चौंका। वह होतूसिंह रोड पर पहुँच गया था। उस ने देखा सामने वसंत चला आ रहा है।

"सैर को नहीं, काम से गोपालनगर गया था।"

"इतनी सुबह ?"

"हाँ, तुम अपनी कहो, किधर आये थे ?"

"तुम्हारा ध्यान किधर है ? कह तो रहा हूँ तुम्हारी ओर आया था !"

"कैसे इतने सवेरे ?"

"तुम से एक सलाह करनी थी। साढ़े आठ बजे तो मुझे दुकान खोल देनी होती है। शाम को थक भी जाता हूँ, फिर तुम्हारा क्या पता शाम को घर मिलो न मिलो, सो सुबह उठते ही चला आया।"

"कहो ?"

"देखो सात बजने को हैं। ऐसे करो कि ज़रा पीछे मुड़ो। देव समाज की तरफ़ से मेरे साथ कुछ दूर तक चलो। मैं समय से वापस भी पहुँच जाऊँगा और बातें भी हो जायेंगी।"

"अरे तो लस्सी का एक गिलास तो पीते चलो।"

और वसंत के 'न' 'न' करने पर भी जगमोहन उसे हलवाई की दुकान पर ले गया। स्वयं उस ने दातुन भी न की थी। वहीं हलवाई की दुकान से एक दातुन और पानी का लोटा माँग, वह एक ओर बैठ, दातुन-कुल्ला करने लगा। हलवाई से उस ने कहा दिया कि इतने में वह आध सेर दही डाल कर दो गिलास लस्सी बनाये।

वसंत ने अपनी बात जारी रखी, "मैं फिर एक दोराहे पर आ गया हूँ!" उस ने कहा, "यहाँ दूसरा कोई आदमी नहीं, जिस की राय लूँ। मैं ने सोचा तुम्हें ही पकड़ूँ और पूछूँ कि जो मैं करने जा रहा हूँ, वह ठीक है या नहीं?"

जगमोहन का ध्यान सत्या जी ही में लगा था। उन पर उस पत्र की क्या प्रतिक्रिया हुई, वह कल्पना में यही देख रहा था। वसंत को चुप होते देख उस ने कहा, "माफ़ करना मेरा ध्यान भटक गया था। तुम क्या कह रहे थे?"

"कुछ नहीं," वसंत ने कहा, "मैं यही कह रहा था कि एक निजी मामले में तुम्हारी राय लेने आया हूँ।"

"तो ठहरो," जगमोहन बोला, "ज़रा लस्सी का गिलास पी कर दिमाग़ को ताज़ा कर लिया जाय, ताकि राय ग़लत न हो जाय, मेरा दिमाग़ कई कारणों से बड़ा परेशान है।"

जगमोहन ने दातुन कर ली तो दोनों ने लस्सी का एक-एक गिलास पिया। जगमोहन इस बीच में निरन्तर अपनी ही बात सोचता रहा। दो एक बार वसंत ने बात चलायी, पर एक आध उत्तर देकर जगमोहन चुप हो गया।

लस्सी पी कर दोनों चल पड़े। वसंत ने फिर कहना शुरू किया। "तुम्हें याद होगा, मैं ने तुम्हें अपनी सगाई की बात बतायी थी। मेरी सगाई एक बड़े अमीर-घराने में हुई थी। लड़की सुन्दर है और मुझे पसन्द भी थी। पिता जी के देहांत के बाद मेरे ससुर ने प्रस्ताव किया था कि यदि मैं इस बात का वचन दूँ कि मैं शादी उन्हीं की लड़की से करूँगा तो वे आगे मेरी पढ़ाई का खर्च उठा सकते हैं।"

"हाँ हाँ।" जगमोहन ने अपनी परेशानी को बरबस दिमाग़ से हटाते हुए कहा।

"मैं ने ऐसा वचन देना स्वीकार न किया। उन के रुपये पर विलायत जाना भी मुझे मंज़ूर न था। क्योंकि यह तो अपने आप को बेचना होता। बीवी के रुपये पर विलायत जाकर मैं सदा के लिए उस का गुलाम हो जाता। लड़की को मैं पसंद करता था; पर मैं अपनी बात पर अड़ा रहा और उन्होंने सगाई तोड़ दी।"

"तुम ने बिलकुल ठीक किया," जगमोहन ने कहा। मन में उस ने सोचा—सत्या जी चाहती थीं कि वे कमायें और मैं आराम से साहित्य-सृजन करूँ— मैं कैसे वह स्वीकार कर लेता। अच्छा हुआ मैं उस कष्ट-कर स्थिति से निकल-गया।

"मेरी मँगेतर यहीं 'लाहौर कॉलेज-फ़ॉर-विमेन' में पढ़ती है," वसंत ने अपनी बात जारी रखी, "एक दिन मैं शाम को दुकान पर खड़ा था कि वह एक सहेली के साथ आयी और उस ने कहा 'नमस्ते जी'। मैं अचकचाया। क्योंकि मैं उसे पहचान नहीं पाया। यह अवश्य लगा कि इस लड़की को कहीं देखा है, पर कहाँ, यह न याद आया। मैं सीढ़ियों से उतर आया।

"आप ने मुझे पहचाना नहीं।" वह मुस्करायी।

"जी मैं......मैं......"

"मैं राय देवीदयाल की बेटी हूँ—सरला!"

"ओह !" मैंने कहा, "नमस्ते नमस्ते !"

और मैंने फिर हाथ जोड़ दिये। तब मालूम हुआ कि वह लाहौर पढ़ने आ गयी है। यहीं एफ़० ए० में दाखिल हुई है और यहीं से बी० ए० करेगी।

"यह मेरी सहेली है, सुहासिनी गौड़।" सरला ने कहा।

"नमस्ते जी !" मैं ने एक बार फिर नमस्ते की।

"इस ने एक दिन कहा," सरला बोली, "कि 'संस्कृति-समाज' में वसंत जी ने कविता पढ़ी थी। इस ने आप की बड़ी प्रशंसा की। मन में ख्याल आया कि शायद कविता पढ़ने वाले वसंत आप ही हैं। दो तीन बार फिर 'संस्कृति-समाज' की मीटिंग में गयी, पर आप मिले नहीं। आज सुहा ने आप को देखा तो बोली—यही वसन्त हैं। आप ने इतनी अच्छी कविता लिखी, हमें नहीं सुनायी।"

"जी सुनाऊँगा।"

हम बातें करते मारकेट के चौरस्ते तक आ गये थे। "चलिए एक कप काफ़ी पियें।" सरला की सहेली ने कहा।

"मैं तो इस दुकान पर नौकरी करता हूँ।" मैं ने कहा, "मैं छुट्टी लेकर नहीं आया।" वास्तव में मेरी जेब में पैसे न थे और इसलिए मैं ने टाल जाना उचित समझा।

"चलिए देख तो लिया है आपके मालिक ने कि आप हमारे साथ आये हैं।" सरला ने कहा।

"पर भाई मेरी तो जेब खाली है। आप के साथ जायँ और पैसे आप दें, यह कुछ वैसा लगता है।"

"कुछ वैसा नहीं लगता," सरला ने कहा, "चलिए। कविता सुने बिना हम आप को जाने न देंगे। इतना भी अधिकार हमारा नहीं रहा क्या ?"

मेरी ओर कनखियों से देखते हुए वह मुस्करायी। उस मुस्कराहट में

जाने कैसा चाँचल्य और उस चाँचल्य के बावजूद जाने कैसी उदासी थी कि मैं बह गया और चुपचाप उन के संग चल पड़ा।" वसंत कुछ क्षण रुका। जैसे कल्पना ही कल्पना में उस चाँचल्य और उदासी और उस मुस्कान का आनन्द ले रहा हो।

तो उन्हों ने तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ा—जगमोहन ने मन ही मन कहा और उस के ओठों पर वेत्ताओं की सी मुस्कान फैल गयी।

"काफ़ी-हाउस में सरला मेरे सामने बैठी और सुहा बायीं ओर। काफ़ी का आर्डर देने के बाद सरला ने अनुरोध किया कि मैं वही कविता सुनाऊँ जो मैंने 'संस्कृति-समाज' में पढ़ी थी। मैं ने कविता सुनायी—प्रेम से इनकार कब है—खत्म हुई कि काफ़ी आ गयी। बातों-बातों में सरला ने बताया कि बी० ए० उसी कालेज से करके वह यूनीवर्सिटी से एम० ए० करना चाहती है। वह होस्टल में रहती है, पर छुट्टियाँ अपनी सहेली सुहा के यहाँ गुज़ारती है। सुहा ने मुझे शनि को बुलाया कि मैं उन के यहाँ जाऊँ और शाम वहीं बिताऊँ।"

"तो आख़िर अब किस्सा कहाँ तक पहुँचा है?" जगमोहन ने हँस कर पूछा।

"बात यह है," वसंत ने ज़रा भेद-भरे स्वर में कहा, "इस बीच मैं कई बार सरला से मिला हूँ। उस रात जब तुम आये थे, मैं सुहा के यहां सरला ही से मिलने गया था। वह कहती है कि यदि मुझे उस के पिता के खर्च पर आगे पढ़ना या कम्पटीशन में बैठना स्वीकार नहीं तो मैं न आगे पढ़ूँ, न कम्पटीशन में बैठूँ। पर उस का अनुरोध है कि मैं उसे न छोड़ूँ। मैं जो भी करूँ, जैसे भी अपने जीवन को निबाहने का फैसला करूँ, वह मेरे साथ है। उस ने कहा है कि यदि मैं उस से किसी तरह की सहायता नहीं लेना चाहता तो न लूँ। यहीं कुछ महीने नौकरी करूँ और जब यूनिवर्सिटी गर्मियों की छुट्टियों के बाद खुले तो दाखिल हो जाऊँ। दाखिले में किसी तरह की

कठिनाई हो, सुहा के पिता सिफ़ारिश कर देंगे। दो एक ट्यूशनें वे दिला देंगे और इस तरह मैं एम० ए० कर लूँ। इस बीच में वह बी० ए० कर लेगी। बालिग़ हो जायगी। अव्वल तो उस के पिता मान जायेंगे, नहीं तो हम लोग सिविल-मैरेज कर लेंगे।"

'दे मारा क्या और उठा-पटका क्या, बात तो एक ही है,' जगमोहन ने मन ही मन कहा। 'फांस लिया उन्होंने तुम्हें।' पर प्रकट वह बोला, "तो तुम ने क्या फैसला किया?"

"बात यह है कि मैं सरला को चाहता हूँ। मुझे उस के पिता का मोल-तोल बुरा लगा—जैसे सरला या मैं पण्य-वस्तुएँ हों—इसलिए मैं ने इनकार कर दिया था, पर सरला का यह प्रस्ताव तो मुझे युक्त-संगत लगा है। तुम्हारा क्या ख़्याल है?"

'तुम इन स्त्रियों को नहीं जानते।' जगमोहन ने मन ही मन कहा। इन के ढंग बड़े सूक्ष्म हैं। तुम्हें जभी पता चलेगा, जब तुम पूरी तरह उन के चंगुल में फँस जाओगे। तुम इस तरह उस के पिता की मदद न लोगे तो दूसरी तरह लोगे। अव्वल तो तुम विलायत जाओगे, नहीं तो यहीं आई० सी० एस०, या पी० सी० एस० या और कोई अफ़सर बनोगे और ज़िन्दगी भर कुर्सियां तोड़ोगे।'

"तुम क्या सोच रहे हो?" वसंत ने पूछा।

जगमोहन चौंका। "ख़्याल तो बुरा नहीं," उस ने कहा। "मैं ने तो तुम से पहले ही कहा था कि तुम्हें एम० ए० में दाख़िल हो जाना चाहिए।"

"मैं सोचता हूँ, तुम ठीक कहते हो। छुट्टियां समाप्त होते ही मैं एम० ए० में दाख़िल हो जाऊँगा। कुछ दिन साथ साथ इकट्ठे पढ़ेंगे।"

"पर मैं ने तो पढ़ाई छोड़ने का फ़ैसला कर लिया है।"

"क्या!" वसंत ने चौंक कर पूछा।

"मेरी तो कोई ऐसी मँगेतर नहीं जो मेरे एम० ए० करने की बाट

देख रही हो।" जगमोहन हँसा।

वसंत भी हँसा। "तो भी आखिर क्या बात है? तुम तो दाखिल हो गये हो।"

"हो तो गया हूँ, पर निभा न पाऊँगा। तुम ने ठीक कहा था, साधन के बिना एम० ए० करना वृथा है। थर्ड-क्लास एम० ए० करने की अपेक्षा न करना भला। फिर भाई मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यदि एम० ए० करना – अच्छे नंबरों से एम० ए० करना ही ध्येय हो तो किसी न किसी तरह, किसी न किसी की सहायता से किया जा सकता है, पर यदि स्वाभिमान के साथ वह सब करना अभीष्ट हो तो मुश्किल है। जब तक देश आज़ाद नहीं होता और सब को उन्नति के एक सरीखे अवसर नहीं मिलते, तब तक मुझ जैसों के लिए एम० ए० बन कर कोई छोटी-मोटी नौकरी कर, इस व्यवस्था को पुष्ट करने के बदले, बिना एम० ए० किये, इस की जड़ों में मठा डालना अधिक श्रेयस्कर है।"

"बड़े कटु हो गये हो इस बीच में, बात क्या है?"

"कुछ नहीं। मैं ने फ़ैसला कर लिया है कि हरीश जी के साथ कांग्रेस पार्टी में काम करूँ और देखूँ कि इस तरह अपने जैसे दूसरों की मुश्किल कुछ आसान कर सकता हूँ कि नहीं। पर तुम एम० ए० में ज़रूर दाखिल हो जाओ। तुम्हारी बात दूसरी है। अच्छा अब मुझे छुट्टी दो। बहुत दूर आ गया हूँ।"

और हाथ मिला कर जगमोहन तेज़ तेज़ वापस पलटा।

५०

येलो-बस-सर्विस-लिमिटेड, के मैनेजिंग डायरेक्टर · मैनेजिंग
रेक्टर क्या मालिक—मि० चोपड़ा जब सात वर्ष पहले लाहौर आ
तो उन की जेब में महीने भर का भी खर्च न था। उन दिनों
तक ट्राँसपोर्ट का संबंध है, उन का ज्ञान इस से अधिक न था
वे सियालकोट में एक मोटर कम्पनी में क्लर्क रह थे और मे
चलाना उन्होंने सीख लिया था। फिर जब छटनी हुई तो वहाँ से
कर आटे की मिल से लेकर नेशनल बैंक तक उन्होंने तरह तरह
क्लर्की की थी और उन का व्यापारिक ज्ञान खूब बढ़ गया थ
आकाँक्षाएँ भी उन की बड़ी थीं और अन्ततोगत्वा वही उन्हें लाह
ले आयी थीं। पन्द्रह बीस दिन घूम फिर कर वे उपयुक्त काम न
पाये थे कि अचानक एक दिन मोटरों के अड्डे पर रौशनलाल औ
हरनामसिंह से (जो अब उनके साथी थे) उन की भेंट हो गयी और उस
दिन उन के दिमाग़ में कम्पनी की रूप-रेखा बन गयी।

वे रतन लाल रोड से गुज़र रहे थे कि बायीं ओर सराय के अन्द
उन्हें बड़ा शोर सुनायी दिया। वे अन्दर गये। दायीं ओर तालाब थ
और बायीं ओर बड़ी खुली जगह थी, जहाँ दो-तीन बसें खड़ी थीं
बड़ी भीड़ जमा थी। वहीं रौशनलाल हरनाम सिंह से बुरी तरह
गुत्थमगुत्था हो रहा था। उन के नाम तो उन्हें बाद में मालूम हुए,

लेकिन दोनों मोटर ड्राइवर हैं और किसी बात पर आपस में उलझ गये हैं, यह उन्हें तत्काल पता चल गया। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि इस सब हाथापाई में बड़ी भयानक गालियाँ, घूँसों और लातों के साथ एक दूसरे के मुँह, नाक, कान, पीठ, कमर आदि पर फेंकी जा रही थीं— गालियाँ, जिन में एक दूसरे की माँ, बहन, लड़की से न केवल निकट-संबंध स्थापित किया जा रहा था, बल्कि उन के शरीर के भिन्न अंगों को, कोई और ही अंग समझ कर, उन के साथ बलात्कार किया जा रहा था---गालियाँ जो पंजाब ही में दी जाती हैं और जिन की कल्पना भी दूसरे प्रान्तों वाले नहीं कर सकते।

चोपड़ा साहब (जो उस समय केवल चोपड़ा थे) कुछ क्षण खड़े देखते रहे। दोनों प्रतिद्वन्द्वियों की कमीज़ें फट गयी थीं और चोटियाँ निकल आयी थीं। पगड़ियाँ दूर गिरी पड़ी थीं और बिफरे साँडों की तरह वे एक दूसरे पर झपट रहे थे। चोपड़ा साहब को आश्चर्य इस बात का था कि दोनों एक दूसरे को उठा उठा कर पटक रहे थे और कोई बीच-बचाव की कोशिश न करता था। चोपड़ा साहब तब इतने मोटे न थे। शरीर भी उन का गठा और तना हुआ था। कुछ वर्ष पहले तक एक ही बार पाँच-पाँच सौ डंड पेल जाया करते थे। वे बहुत देर खड़े तमाशा न देखते रह सके। जब एक बार रौशन लाल ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को उठा कर पटका और उठने से पहले उस की मरम्मत करने को उस ने घूँसा उठाया तो चोपड़ा ने बिजली की सी तेज़ी से उसे अपनी दोनों बाँहों में भर लिया। यदि कहीं साथ कोई हरनाम सिंह को भी पकड़ लेता तो बखेड़ा बन्द पड़ जाता, पर इधर तो उन्होंने रौशनलाल को बाँध रखा, उधर हरनाम सिंह तेज़ी से उठा और उस ने दो चार ज़ोरदार घूँसे रौशन के टिका दिये, जिनमें से एक चोपड़ा साहब को भी पड़ा। तब उन्होंने रौशनलाल को छोड़ कर उसे दोनों बाँहों में बाँध लिया और कुछ इस तरह एक चक्कर देकर

धरती पर पटखा कि वह कुछ क्षण तक नहीं उठ सका। यह सब ब
बचाव करते हुए उन्होंने दोनों को लड़ाई बंद करके आपस में बैठ
बात निबटाने के लिए कहा और तमाशाइयों को ललकारा कि वे
क्या कर रहे हैं, रौशन को थामें और वे सिक्ख को पकड़ते हैं! इस
डांट-फटकार और ललकार का नतीजा यह हुआ कि इधर हरनाम
के उठते ही उन्होंने उसे फिर पकड़ लिया, उधर लोगों ने रौशन
बाँध लिया।

रौशन को छोड़ कर उन्होंने जिस प्रकार उस के प्रतिद्वन्द्वी को
था और जिस प्रकार उसे चक्कर देकर धरती पर पटखा था, उस
रौशन और उस के प्रतिद्वन्द्वी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। कपड़े भी चो
ने अच्छे पहन रखे थे। दोनों अपने साफ़े बाँधते हुए उन्हें अ
शिकायतें सुनाने लगे—चोपड़ा साहब को मालूम हो गया कि
अमृतसर रोड पर बसें चलाते हैं। रौशन दो तीन बसों का मालि
और सरदार की भी एक बस है। एक दिन पहले रौशन का एक ड्रा
अपनी बस लेकर अमृतसर जा रहा था कि उस की बस ख़राब हो ग
हरनाम सिंह पीछे से आ रहा था। उस की आधी बस खाली थी। उ
सब सवारियों को भर कर अपनी बस में बैठा लिया। "ड्राइवर म
डरपोक था," रौशन गाली देते हुए बोला, "उस की जगह मैं होत
देखता किस तरह यह मेरी सवारियां ले जाता।" और उस ने ब
कि एक बार वह खुद बस ले कर जा रहा था। रास्ते में उस की
बिगड़ गयी। सवारियां एक दूसरी बस में जा चढ़ीं। बस ठीक करते
अस्सी-मील की स्पीड से बस भगाकर, उस ने वह बस रोक ली और
के किनारे लगे सरकारी पौधे का जंगला उखाड़ उस ने ड्राइवर का
फोड़ दिया। सवारियां चुप चाप उस की बस में आ बैठीं। "ड्रा
ने मुझे सुबह ही आकर बताया," रौशन लाल ने कहा, "मैं तब
इसके फ़िराक में था। यह साला मिला नहीं। सवारियों का क्या है

माँईया दस मिनट देर हो जाय तो उन की मां मरने लगती है।" वह बोला, "इस साले को तो ख़याल करना चाहिए था। माँईया कल इस की बस बीच सड़क के ठंडी हो जाय तो यह मादर........."

"देख ओए गाली न दे माँईया......"

और बिफरे हुए दो सांडों की तरह दोनों तन कर फिर आमने-सामने, मरने मारने को तैयार, आ खड़े हुए।

चोपड़ा साहब ने दोनों को शाँत किया। वे उन्हें लेकर, उन के साथ बातें करते हुए, रेलवे रोड पर चले जा रहे थे कि उन की नज़र सब्जी मंडी के शराब खाने पर गयी। वे उन्हें अन्दर ले गये। भट्ठी की पूरी बोतल का आर्डर दिया, गर्म-गर्म पकौड़े और चाट मँगायी और शराब के गिलासों पर दोनों में सुलह करादी।

वहीं उन्होंने जाना कि रौशन और हरनाम सिंह व्यवसाय में ही साथी नहीं, स्कूल के दिनों में भी साथ-साथ थे। दोनों तीन-तीन वर्ष मैट्रिक के उद्यान की हवा खाते रहे थे, पर उस का फल उन्हें न मिला था और दोनों बाग़ीचे की रविशों को खराब करने, उस के सुन्दर फूलों को मसलने, तोड़ने अथवा तोड़ने की कोशिश करने के अभियोग में स्कूल से निकाल दिये गये थे।

दो पैग पीकर ही हरनाम सिंह चहक उठा था और उसी ने स्कूल से रौशन के निकाले जाने का किस्सा सुनाया था। मैट्रिक में उनका तीसरा साल था, जब नये साल के शुरू में, उन की क्लास में एक बड़ा सुन्दर लड़का दाखिल हुआ। उन के स्कूल का तो वह था नहीं, क्योंकि उस बाग के फूल-फूल पत्ती-पत्ती से वे परिचित थे। वह उन के नगर का भी न था, क्योंकि नगर के सब लड़कों को वे भली भाँति जानते थे। वह किसी दूसरे शहर से आया था। नाम था उस का हीरा लाल। "बस हीरा ही था।" और हरनाम सिंह ने जैसे उस की स्मृति-मात्र से चटखारा लिया और बोला कि स्कूल के कई भौंरों ने उस नये फूल पर मँडराने की

कोशिश की, पर उस पर तो रौशन का जन्म-सिद्ध अधिकार था। उस नज़र जिधर पड़े, उधर फिर किस की हिम्मत थी कि देख सके। सो र के शेष भौंरे अलग हट गये। लेकिन इसे बदकिस्मती समझिए कि उनके हैडमास्टर उस फूल पर लट्टू हो गये। क्लास के बाद भी वे अपने पास बुला लेते। उस की शिक्षा-दीक्षा में वैयक्तिक दिलचस्पी लेत और वह फूल स्कूल के उद्यान में खिलने के बदले हैडमास्टर के गुलद की शोभा बढ़ाने लगा। ऐसे फूल पर मँडराना संकट-पूर्ण था, पर संक से घबराना रौशन ने सीखा न था। अपनी टेक उस ने नहीं छोड़ी और उसी जुर्म में एक दिन मियाँ को सारे स्कूल के सामने हैडमास्टर ने बारह बैत लगाये।

"अच्छा हैडमास्टर था, जिसे यह इल्लत थी," चोपड़ा ने कहा। "उसे हैंडमास्टर किस ने बनाया ?"

"हमारा हैडमास्टर तो बड़ा अच्छा था। लड़के उस से डरते भी थे, जिधर से गुज़र जाता लड़के सहम जाते," हरनाम सिंह ने कहा, "पर वह हमारा स्कूल छोड़ कर दूसरे स्कूल में चला गया। यह हैडमास्टर तो बाहर से आया था। लड़कों से हिला मिला रहता, इस लिए लड़के उस से खुश भी रहते। पर था ठरकी। और वह मसल है न कि 'आप तो डूबी डूमनी संग और डुबाये'—हैडमास्टर साहब आप तो डूबे साथ हमें भी ले डूबे। इस किस्से के बाद हमीं स्कूल से नहीं निकले, खुद हैडमास्टर साहब भी निकले और फिर टीचिंग लाइन में घुस नहीं पाये। सुनते हैं आजकल बड़े भारी नेता हैं।"

और हरनाम सिंह हँसा। वह एक चौथाई बोतल अपने कंठ में उँडेल चुका था और उस के स्वर में तरुण नदी का सा प्रवाह आ गया था। गिलास का घूँट गले में उँडेल और उसे फिर से भरते हुए उस ने कहा

"हैडमास्टर ने रौशन को सज़ा दी तो इस ने बेत ऐसे खाये जैसे इस पर फूल बरस रहे हों," वह हँसा, "ज़रा सा भी तो हाथ इस ने पीछे

नहीं किया। बेत पड़ता, हाथ उस के ज़ोर से ज़रा नीचे जाता और फिर वहीं आ जाता।" और हरनाम सिंह ने बताया कि रौशन की बलिष्ठ देह ने, लड़ते वक्त उस की मर्दानगी ने और कई बार शत्रुओं की अधिक संख्या होने के कारण पिटते समय उस की सहन-शक्ति ने उसे स्कूल के मनचले लड़कों का रिंग-लीडर बना रक्खा था। "ज्योंही हैडमास्टर बेत लगा कर वापस फिरा," हरनाम सिंह बोला, "इस ने मुँह पर हाथ फेरते हुए कसम खायी कि अगर इस का बदला उस से जल्दी न लिया तो रौशन नाम नहीं। एक दो मास्टरों ने इस की बात सुन भी ली, लेकिन किसी को चूं करने का साहस न हुआ। बेत खाकर इस ने मुझ से कहा कि आज शाम जब हैडमास्टर स्कूल के बाद घर जाय तो उसे रास्ते में पकड़ कर उस की मरम्मत की जाय। अगर उस समय उस के साथ कुछ टीचर हों तो मैं यह कोशिश करूँ कि उपर से रौशन को पीटूँ, पर ऐसी सफ़ाई से कि उन्हें उलझा लूं।"

लेकिन शाम तक ठहरना शायद रौशन के लिए मुश्किल था। हरनामसिंह के बड़े भाई उसे मिलने के लिए गाँव से आ गये थे और वह उन से बात-चीत कर रहा था कि सारे स्कूल में कोहराम मच गया। सभी लड़के एक ओर को भागे जा रहे थे। जब हैडमास्टर दसवीं-बी को पढ़ाने जा रहा था तो हीरा भी उसके साथ था। दसवीं-बी साइंस ब्लाक में लगती थी जो स्कूल के एक ओर बना था और हैडमास्टर अपने दफ़्तर से निकल, छोटा सा खेल का मैदान पार कर, वहाँ जाता था। जाने हीरे को देख कर रौशन के सिर पर खून सवार हुआ या बेतों का बदला उसी समय चुका लेना उस ने उचित समझा। लड़के क्लासों को जा चुके थे और हैडमास्टर साहब बड़े इतमीनान से हीरा से मधुरालाप करते हुए जा रहे थे कि रौशन ने भूखे सिंह की तरह उन्हें दबोच लिया। इस से पहले कि कोई उन की चीखें सुनता, उस ने मारे घूँसों के उन का भुरकस निकाल दिया।

जब हरनाम सिंह अपने भाई के साथ शोर सुन कर वहाँ पहुँ
रौशनलाल दो टीचरों और पाँच लड़कों को ज़ख्मी कर चुका था
सारा स्कूल उस पर पिल पड़ा था। उन की क्लास में उन के श
थे। अच्छे लम्बे तगड़े थे। उन्हें हैडमास्टर को खुश करने और
से बदला लेने का अच्छा मौका हाथ आ गया। "लेकिन लोहा
इस का भी बदन," हरनामसिंह बोला, "इतनी मार खाना इस
काम था। जब तक यह बिलकुल बेहोश होकर गिर नहीं गया,
और लड़के इसे पीटते रहे।"

"इस साले से किसी को हटाया तक नहीं गया। पुराना क
माँ अपनी का ...." रौशन ने नशे में गाली देते हुए

"मैं फौरन पिल पड़ता, पर मेरे भाई वहाँ थे," हरनाम सिंह
में सफ़ाई दी, "उन्होंने पूछा तो एक टीचर ने कहा कि इस
हैडमास्टर को पीटा है।"

"जा साले क्यों बहाने करता है।" रौशन ने केवल इतना
और चुप चाप पीता रहा।

"मैं न बचाता हरामी तो आज यहाँ बैठा मज़े न उड़ा
हरनामसिंह चिल्लाया। "उसी दिन खत्म हो गया होता।" औ
चोपड़ा की ओर पलट कर बोला। "पुलिस लाइन के निकट
स्कूल था जी, मैं पेशाब के बहाने गया और जाकर पुलिस ल
इत्तला दे आया। टीचर और लड़के गुस्से में अन्धे होकर इस प
छिड़क कर होश में लाते और जब यह होश में आता तो फिर
घूँसे जड़ देते। बाकी लड़के ऐसे तमाशा देख रहे थे जैसे सर
रहा हो। वे दूर खड़े ही मारने वालों को बढ़ावा दे रहे थे
लगाओ साले के एक और! गुज्झी* मार मारो!" तभी किसी ने

---

*गुज्झी=गुह्य=जो नज़र न आये। याने जिसका घाव न हो।

पुलिस का शोर मचा दिया। और वे शेर जो अकेले रौशन पर अपने पंजे गाड़ रहे थे और दहाड़ रहे थे, पुलिस का नाम सुनते ही गीदड़ों से भाग उठे।"

रौशन इस बीच चुप चाप पीता रहा। फिर सहसा बोला, "हटा साले क्यों झूठ का तूमार बाँध रहा है? पुलिस तो वैसे ही शोर सुन कर आ गयी थी।"

"हाँ आ गयी थी। माँईया बे-तार बरकी जो लगी थी।" और फिर उस समय अपनी विवशता की सफ़ाई देते हुए हरनामसिंह ने कहा, "भाई न होते तो पाँच सात को मैं वहीं लिटा देता, लेकिन मैं ने छोड़ा उन्हें थोड़ी, बाद में एक एक की गत बनायी।"

लेकिन रौशन नहीं माना। "अकेले दुकेले को पकड़ कर पीटना और बात है," उस ने कहा, "और सौ दो सौ लड़कों का मुकाबिला करना और! साला उस दिन तो भाई की गोद में दुबक गया और अब डींगें हाँकता है। पुराना कायर है तू।" और उस ने एक बड़ी सी गाली हरनामसिंह को दी। "मर्द था तो उस वक्त दिखाता जौहर..."

हरनामसिंह उस समय तक काफ़ी पी चुका था। उस ने सोडे की खाली बोतल उठा कर रौशन के सिर पर दे मारी। "तो आ अब देख ले कौन मर्द है और कौन नामर्द!" वह चिल्याया और दोनों फिर एक दूसरे से गुँथ गये।

चोपड़ा साहब ने फिर दोनों को अलग अलग किया दोनों के बल-पराक्रम की प्रशंसा की और एक दूसरे का सिर फोड़ने के बदले उन्हें इकट्ठे रह कर प्रतिद्वन्द्वियों के सिर फोड़ने का परामर्श दिया। वे स्वयं बेकार हैं, यह बात उन्हों ने उन दोनों पर प्रकट न होने दी—उस दिन के बाद वे उन से रोज़ मिलने लगे।

दो तीन दिन ही में रौशन और हरनामसिंह ने ही नहीं, बल्कि उन के दूसरे प्रतिद्वन्द्वियों ने भी उन्हें अपनी कठिनाइयाँ बता दीं। कुछ लोगों के पास एक एक बस थी और स्वयं चलाते थे। दूसरों के पास दो-दो तीन-तीन थीं। वे ड्राइवर रखते थे। पर वे ड्राइवर उन की कमाई का अधिकाँश खा जाते थे। वे क्लीनर को ड्राइवर की मुखबरी करने को रखते, पर ड्राइवर और क्लीनर दोनों मिल जाते। और फिर जो मालिक स्वयं बसें चलाते थे वे दूसरों के ड्राइवरों को मिला लेते थे। ड्राइवरों और क्लीनरों की बद-दयानती और फ़रेब के साथ साथ विभिन्न सर्विसों में (जिस किसी के पास दो तीन बसें थीं, उसी ने लाइसेंस लेकर अलग से सर्विस बना रखी थी) गला-काट (Cut Throat) कम्पीटीशन था, जिस कारण आठ आने के बदले अमृतसर की सवारी के चार चार आने लोग ले लेते थे। इस कपट-छल और प्रतिद्वन्द्वता के कारण आपस में लड़ाइयाँ होती रहती थीं। चोपड़ा साहब ने दो तीन दिन में सारी परिस्थिति का अध्ययन कर लिया और उनके मस्तिष्क ने एक स्कीम सोच निकाली। बातों बातों में एक दिन उन्होंने रौशन से पूछा कि उस की बसें अमृतसर के कितने फेरे लगा लेती हैं।

"रश (Rush) हो तो तीन-तीन भी लग जाते हैं।"

"फ़ी बस रोज़ का क्या बचता है।"

"बचता क्या है," रौशन लाल ने कहा "माँइया ड्राइवर और क्लीनर ही खा जाते हैं। इतना रैश चलाते हैं कि कोई न कोई पुर्ज़ा रोज़ तोड़ लाते हैं। खर्च निकाल कर पाँच-सात प्रति बस भी बच जाय तो बड़ी बात है।"

"अगर मैं तुम्हें दस रुपये फ़ी बस रोज के दे दूँ तो तुम्हें कोई एतराज़ है ?" चोपड़ा साहब ने कहा था।

"कैसे ?"

"तुम अपनी बसों का प्रबन्ध मुझे सौंप दो। अव्वल तो मैं तुम्हें

सलाह दूँगा कि तुम आराम से बैठ कर मौज करो, पर अगर तुम खुद भी चलाना चाहो तो तुम्हें ड्राइवर की तनखा ऊपर से मिलेगी।"

शरीर उस का कैसा भी बलवान क्यों न हो, पर दिमाग़ से रौशन लाल नितान्त कोरा था। चोपड़ा को वह इन कुछ ही दिनों में मानने लगा था। वह तैयार हो गया। चोपड़ा ने हरनाम सिंह और उस के दो तीन अन्य साथियों को भी इसी शर्त पर तैयार कर लिया। सब से साल-साल का कान्ट्रेक्ट उन्होंने लिखवा लिया। तीन चार नये ड्राइवर, तीन चार नये इन्सपेक्टर, कंडक्टर और क्लीनर रखे और सब के ऊपर सियालकोट ही के अपने एक परिचित बाबू राम सहाई को बुलाकर वर्किंग-मैनेजर बना दिया।

बाबू राम सहाई थे तो मिडिल पास ही, पर न केवल वे हिसाब-किताब देख लेते थे, बल्कि मुलाज़िमों से काम लेना भी जानते थे। चोपड़ा साहब सियालकोट में जिस ट्राँसपोर्ट कम्पनी में काम करते थे, वहीं वे मुलाज़िम थे। चोपड़ा ने उन्हें दुगना वेतन देकर लाहौर बुला लिया। टिकेट देने, चैक करने, एकाउँट देखने और मुलाज़िमों की देख-रेख करने का सारा काम चोपड़ा साहब ने उन्हें सौंप दिया। हिदायत कर दी कि जैसे भी हो, बस भरे या न भरे, पर समय पर छूट जाय! वक्त की इस पाबंदी से न केवल बसें एक फेरा और ज़्यादा लगाने लगीं, बल्कि आठ आने देकर भी मुसाफ़िर उन की बसों में जाने लगे।

इस के अतिरिक्त चोपड़ा साहब ने अपने मैकेनिक रखे और धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों काम बढ़ता गया, बसों को ठीक करने, धोने, फ़िट करने आदि का काम साथ खोल लिया। इस प्रगति के साथ स्टाफ़ भी बढ़ता गया। टिकेट देने वाले, चैक करने वाले और हिसाब-किताब देखने वाले नये रखे गये और बाबू राम सहाई को उन सब के ऊपर नियुक्त कर दिया गया। इस के साथ ही उन्होंने अपने साथियों को अपना हिस्सेदार बनाकर कम्पनी

को पब्लिक लिमिटेड कम्पनी बना दिया और मॉडल टॉउन, बाग़बान पुरा, गोपाल नगर और दूसरी आबादियों को बसें चला दीं। स्वयं वे मैनेजिंग डायरेक्टर बने। इन सात-आठ वर्षों में उन्होंने न केवल हिस्सेदारों को पर्याप्त डिवीडेंड दिया, वरन् स्वयं भी बड़ा रुपया कमाया। उस समय सात बसें उन की निजी मलकीयत थीं, पाँच-सौ रुपया उन का वेतन था और 'येलो-मोटर-मैकेनिक्स' नाम से जो कारखाना था, वह उन की व्यक्तिगत सम्पत्ति था। 'येलो-बस-सर्विस' से उन का कॉन्ट्रेक्ट था कि कम्पनी का सब काम उस के द्वारा होगा। वे कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर थे और सोचा करते थे, किस प्रकार हिस्से दारों के हिस्से हड़प कर उस के एकाधिपति हो जायँ!

५१

चोपड़ा साहब क्रोध और आवेग के मारे दफ़्तर की इस दीवार से उस दीवार तक, चक्कर लगा रहे थे। उस छोटे से कमरे में, जो चोपड़ा साहब के आफ़िस का काम देता था, उन की बड़ी मेज़ और चार कुर्सियों के बाद बड़ी थोड़ी जगह बचती थी, फिर इस समय तो उन कुर्सियों पर कम्पनी के हृष्ट-पुष्ट डायरेक्टर विराजमान थे। उसी तंग जगह में अपने लम्बे, ऊँचे, भारी-भरकम शरीर के साथ घूमते हुए मि० चोपड़ा कमरे को और भी संकरा बना रहे थे। उन के हाथ में 'येज़ो-बस-यूनियन' की चिट्ठी थी जिस में यूनियन ने माँगें पेश की थीं। और अलटीमेटम दिया था कि यदि माँगें स्वीकार न की जायेंगी तो यूनियन स्ट्राइक कर देगी। मिस्टर चोपड़ा चिट्ठी का कुछ भाग पढ़ चुके थे। सहसा रुक कर उन्होंने अपने साथी डायरेक्टरों से कहा, "चिट्ठी का लहजा देखा आप ने ? अब ज़रा इन की माँगें भी सुनिए।" वे चिट्ठी पढ़ने लगे और पढ़ते हुए पूर्ववत घूमने लगे।

१. यूनियन को कम्पनी की ओर से स्वीकार किया जाय !

२. कंडक्टरों, ड्राइवरों, इंस्पेक्टरों, मैकेनिकों, क्लर्कों, चौकीदारों के आधार-भूत-वेतन (Basic Pay) को बढ़ाया जाय और उस में वार्षिक-वृद्धि निश्चित की जाय।

३. जो कर्मचारी छः महीने से ऊपर नौकरी कर चुके हैं, उन की

नौकरी को पक्का किया जाय।

४. सभी नौकरियों पर पेनशनें देने की व्यवस्था की जाय!

"कम्पनी ही सारी यूनियन को दे देते है।" चोपड़ा ने व्यंग से कहा, ओठों में 'बर्र्र' की सी ध्वनि करते हुए असंतोष प्रकट किया और फिर पढ़ने लगे।

५. तरक्कियाँ सीनियारिटी (काल-ज्येष्ठता) के लिहाज़ से हों।

६. एक वर्ष में दो महीने की प्रिविलेज (Privilege) तथा बीस दिन की कैयुअल (Casual) छुट्टी दी जाय।

७. बस सर्विस के सभी कर्मचारियों को बिना फ़ीस डाक्टरी सहायता दी जाय।

८. पब्लिक को बस के मुलाज़िमों के विरुद्ध जो शिकायतें हों, वे एक कमेटी के सामने पेश की जायँ। उस कमेटी में मैनेजमेंट और कम्पनी के कर्मचारियों का समान-प्रतिनिधित्व हो। पब्लिक की शिकायतों के बहाने मैनेजर द्वारा मुलाज़िमों को निकालने और अपने आदमी रखने की जो प्रथा है, उसे बन्द किया जाय।

९. दुर्घटनाओं की सूरत में कम्पनी के मुलाज़िमों को कम्पनी की ओर से वकील करके अदालत में अपनी सफ़ाई देने की पूरी सहायता दी जाय और उन्हें पुलिस की दया-माया पर न छोड़ दिया जाय। इसके अतिरिक्त दुर्घटना के संबंध में ऐसी कमेटी छानबीन करे जिस में कम्पनी और कर्मचारियों की यूनियन का बराबर का प्रतिनिधित्व हो।

१०. कम्पनी के कर्मचारियों की शिक्षा और संस्कृति की वृद्धि के हितार्थ उचित-प्रबन्ध कम्पनी के खर्च पर किया जाय और उस का प्रबन्ध यूनियन को सौंपा जाय।"

चिट्ठी में सभी चौकीदारों को ड्यूटी के समय में कमी, अधिक चौकीदारों की नियुक्ति आदि के संबंध में और भी माँगें थीं, किन्तु चोपड़ा साहब के संतोष का प्याला यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते लबालब भर गया,

चिट्ठी को पढ़ते पढ़ते क्रोध से उन्होंने उसे अँगुलियों में भींच कर तोड़-मरोड़ डाला और ज़ोर से मेज़ पर फेंक दिया।

"आज कल कालेज के छोकरों को और कोई काम नहीं सूझता तो मज़दूरों की भलाई के पीछे लट्ठ लेकर चल पड़ते हैं।" बेज़ारी की एक 'ऊँह।' नाक से निकाल और ओठों से 'बर्रर' की सी आवाज़ करते हुए मिस्टर चोपड़ा ने कहा, "यह जो सात आठ बरस मैं ने अनथक मेहनत की है। (सहसा उन्हें ख्याल आया कि दूसरे डायरेक्टर भी बैठे हैं और उन्होंने इतना और बढ़ा दिया) और अपने मित्रों से इतना रुपया लगवाया है, वह सब क्या इसलिए कि शहर का कोई बेकार लौंडा उठे और कम्पनी की बागडोर मे उसे सौंप दूँ।"

"किस ने यह यूनियन आर्गेनाइज़ की है?" राय बहादुर जवन्द-लाल बोले।

"कोई हरीश है। कम्पनी के मुलाज़िमों में तो यह नाम मेरे देखने में नहीं आया।"

"अजी यही कोई कालेज का छोकरा-ओकरा होगा।" सरदार हरनाम सिंह ने कहा, "कल मैं सरक्यूलर रोड पर जा रहा था कि ताँगों के अड्डे पर एक स्टूल रखे कोई छोकरा उन्हें यूनियन के फ़ायदों पर लैक्चर दे रहा था।" और उन्होंने ज़ोर की एक डकार ली।

"यह साले इन गरीबों की गाढ़े पसीने की कमाई चन्दों के रूप में इकट्ठा करते हैं और काफ़ी हाऊस में जाकर उड़ा देते हैं।" राय बहादुर जवन्दलाल ने रद्दा जमाया।

"आप ज़रा मुझे दिखा दीजिए, मैं उस साले को दो झांपड़ ही में ठीक कर दूँ।"

चोपड़ा साहब ने क्षण भर रुक कर झाँपड़ मारने का प्रस्ताव करने वाले की ओर देखा और फिर ज़ोर से हँस दिये, "तुम भी रौशन यार वही पुराने लड़ाके रहे। उमर ने तुम्हारे जोश को ज़रा भी ठंडा नहीं

किया। ज़रा अपने साथी की ओर तो देखो।"

और दोनों की निगाहें सरदार हरनाम सिंह पर जम गयीं जो बढ़िया सूट पहने, दस्तार सजाये, डाढ़ी 'ईवनिंग-इन-पेरिस' के फ़िक्सर और ठाठे की मदद से जमाये बैठे थे। उनके कोट के दोनों दामन पेट की मोटाई के कारण नीचे को खिसक गये थे और वे बड़े मज़े से बैठे डकार पर डकार ले रहे थे। उन्हें देख कर कौन कह सकता था कि यह व्यक्ति सात आठ बरस पहले परले सिरे का लड़ाका ड्राइवर था।

"यह साला पुराना कायर है!" रौशनलाल ने कहा और अपनी छः फुट लम्बी देह और सैंतीस इंच चौड़े सीने को लेकर वहीं खड़े हो गये। कमीज़ को चढ़ा, बाँह को दोहरा कर उन्होंने चोपड़ा को अपनी बाँह की मछली और मोटाई दिखायी। "मन मन का मुगदर अब भी बाकायदा सुबह उठ कर फेरता हूँ," उन्होंने कहा, "आप ज़रा इशारा कर दीजिए। साले उस लौंडे के दिमाग़ से उमर भर के लिए यूनियन का ख्याल न निकाल दूँ तो रौशन नाम नहीं।"

चोपड़ा साहब का क्रोध हवा हो गया। वे फिर आराम से कुर्सी पर बैठ गये। एक दृष्टि उन्होंने अपने साथियों पर डाली और उन की मुस्कान और भी फैल गयी। कम्पनी के कार्य-क्षेत्र को बढ़ाने के हेतु एक स्कीम पर विचार करने के लिए चोपड़ा साहब ने उन्हें बुलाया था, पर अभी वे स्कीम को उन के सामने रख भी न पाये थे कि उन्हें यूनियन की यह चिट्ठी मिली। और वे उस में उलझ गये। उन की मुस्कान का कारण रौशनलाल की दिलेरी न थी, बल्कि अपने दूसरे साथियों की बेफ़िक्री थी (जो वास्तव में चोपड़ा के श्रम और कौशल का परिणाम थी।) कालेज के छोकरों और यूनियन के अलटीमेटम की चिंता छोड़ कर, लाला जवंदलाल ऊँघ गये थे और कायरता के अभियोग का उत्तर हरनाम सिंह ने एक ऊँचे से डकार के रूप में दिया था।

चोपड़ा की सब से बड़ी खूबी उन की यही मुस्कान थी। क्रोध उन्हें बिलकुल न आता हो, ऐसी बात नहीं, पर वे क्रोध में रौशनलाल की तरह किसी को झाँपड़ देने की बात कभी न सोचते थे। बल्कि क्रोध उन की सोचने की शक्ति को और भी तेज़ कर देता था। सोच-समझ, व्यावहारिकता और दुनियादारी उन में अपने सहयोगियों की अपेक्षा कहीं ज्यादा थी। उन्हें दोनों से अपनी वह पहली भेंट याद आ गयी। मुस्कान को मुखर बना कर उन्होंने कहा। "बैठ जाओ तुम रौशन ! तुम्हारे ज़ोर की ज़रूरत नहीं। ज़ोर-जबरदस्ती से एक आध को तो दुरुस्त किया जा सकता है, सब को नहीं! उस के लिए...और उन्होंने माथे की ओर अँगुली से संकेत किया......इस की ज़रूरत है। एक हफ़्ता भी स्ट्राइक हो जाय तो हमारा हज़ारों का नुकसान हो जायगा।"

रौशन लाल बैठ गया। चोपड़ा साहब ने घंटी पर हाथ मारा। चपरासी ने तत्काल अन्दर आकर 'जी हुज़ूर' बुलायी।

"बाबू राम सहाई को सलाम दो।"

चपरासी चला गया तो उन्होंने अपने साथियों से कहा कि वे यूनियन से निबट लें तो फिर नयी स्कीम पर विचार करेंगे।

उत्तर में 'सरदार हरनामसिंह ने ऐसा डकार छोड़ा, जो उन के आमाशय से नहीं बल्कि सब से निचली अँतड़ी से उठा मालूम होता। राय बहादुर जवंदलाल का खुर्राटा बीच में ही रुक गया। रौशन लाल उठा। वह इतने ही में ऊब गया था, "कोई ऐसी मुश्किल पड़े तो मुझे बुला लेना, मैं इन सालों को पल भर में ठीक कर दूँगा।" और उस ने सिर की ओर संकेत करते हुए कहा, "इस की जरूरत से मैं इनकार नहीं करता, लेकिन इस की जरूरत भी दुनिया में कम नहीं।" किस की ? इस के संकेत में उस ने अपनी बलिष्ठ बाँह को दोहरा कर के मछली दिखादी '

"हाँ हाँ !" चोपड़ा साहब ने मुस्करा कर कहा, "ज़रूरत पड़ी तो तत्काल तुम्हें बुलाऊँगा।"

रौशन लाल के साथ सरदार हरनामसिंह भी उठे। "आज खाना कुछ ज्यादा खाया गया। मुर्ग-मुसल्लम बना था। पूरा का पूरा उड़ा गया।" और उन्होंने फिर डकार लिया, "मेरा इरादा तो शिमला पहाड़ी तक सैर को जाने का है।"

राय बहादुर जवन्दलाल ने आँखें खोलकर 'रिप-वैन-विंकल'[1] की तरह आश्चर्य-चकित-दृष्टि से अपने चारों ओर देखा और फिर कुछ रोनी सी आवाज़ में बोले, "मैं ने तो आज इसी मीटिंग के लिए कचहरी जल्दी बरख्वास्त कर दी। ख़ैर कोई मामले मुकदमे की बात हो या कोई कुछ वैसी गड़बड़ करे तो मुझे बताना, मैं डिप्टी कमिश्नर से कहकर कम्बख्तों को दो चार दिन हवालात में बंद करा दूँगा। सीधे हो जायेंगे।"

वे राय बहादुर थे। १९२१ के आन्दोलन में उन के दरवाज़े पर सियापा हुआ करता था और लोग 'टोडी बच्चा हाय हाय' की पुकार से फ़िज़ा को गुँजा देते थे, पर उसी खुशामद की बदौलत वे राय साहब से राय बहादुर बने थे और आनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए थे। शहर में दो कोठियाँ उन्होंने बनवायी थीं और बड़े से बड़े अफ़सर तक उन की पहुँच थी।

"जी हाँ, इस की ज़रूरत पड़ी तो आप को पता दूँगा," चोपड़ा साहब ने कहा, "पर मेरी कोशिश यही रहेगी कि इस की ज़रूरत न रहे। हमारा काम पब्लिक से पड़ता है। पब्लिक हमारे खिलाफ़ हो जाये तो काम चौपट हो जायगा। यदि ज़रूरत पड़ी तो आप को ही कष्ट दूँगा। यह कम्पनी जितनी मेरी है, उतनी आप की है।"

---

१. अंग्रेज़ी कहानी का एक रवायती नायक जो एक गुफ़ा में बीस वर्ष सोने के बाद अपने नगर वापस लौटा था।

राय बहादुर जयचन्द लाल के जाने के कुछ क्षण बाद बाबू राम सहाई अन्दर आये—पैंतालिस-पचास वर्ष की उमर, शलवार कमीज़ कोट और पगड़ी पहने, कंधे ज़रा से झुके हुए, जिस से बड़ा हल्का सा कूबड़ निकला हुआ, मुँह पर खुशामद-भरी सहज मुस्कान और उसी के कारण दोनों ओर गालों पर बन जाने वाली आड़ी लकीरें और आँखों में चतुराई भरी चमक! दफ़्तर ही की नहीं, चोपड़ा साहब के घर की व्यवस्था भी बाबू राम सहाई ही करते थे। चोपड़ा साहब और उन की श्रीमती की छोटी से छोटी इच्छा का भी उन्हें ख्याल रहता था और यही कारण था कि साठ रुपये मासिक से उन्नति कर वे उस समय डेढ़ सौ रुपया मासिक पा रहे थे और जहाँ चोपड़ा साहब कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर थे, वहाँ वे जनरल मैनेजर थे।

राम सहाई के आते ही चोपड़ा ने उन्हें कुर्सी पर बैठने के लिए कहा, और यूनियन की चिट्ठी उन के आगे खिसका दी।

५२

बाबू राम सहाई ने पहले सोचा था कि चपरासी के हाथ नूरे को बुला भेजें और उस से बातचीत कर यूनियन को तोड़ने की कोई सबील निकालें, पर बाद में सोच सोच कर वे इस नतीजे पर पहुँचे कि उन्हें स्वयं उस के घर जा कर उस से बात करनी चाहिए।

किसी प्रतिष्ठित-ट्राँसपोर्ट कम्पनी के जनरल मैनेजर का किसी साधारण कण्डक्टर या इंस्पेक्टर के घर जाना कुछ वैसा अच्छा नहीं लगता, पर बाबू राम सहाई मनापमान के इस प्रश्न पर कभी न रुकते थे। अवसर आने पर जहाँ वे एक ओर मैनेजिंग डायरेक्टर के जूते तक सीधे कर सकते थे, वहाँ कम्पनी के चपरासी तक के चरण चूम सकते थे। उपाधि चाहे उन की बड़ी थी, अधिकार भी चाहे उन के बड़े थे, पर शक्ल से वे अब भी साधारण क्लर्क मालूम होते थे और रोज़ साँझ समय मैनेजिंग डायरेक्टर के घर पर उपस्थित हो कर उन को और उन की मेम साहब को सलाम देते थे।

'लायन प्रेस' के पीछे तबेले में जा कर जब बाबू राम सहाई ने नूरे के घर दस्तक दी तो दरवाजा उस की लड़की ने खोला और उन के पूछने पर बताया कि नूरा घर पर नहीं हैं। तब बाबू राम सहाई ने अपना नाम बताया और कहा कि वे बड़े ज़रूरी काम से आये हैं, वह अपनी माँ से दो बात करने को कहे।

बाबू राम सहाई का नाम सुनते ही नूरे की बेगम ने आँगन में पीढ़ा बिछा दिया, उन्हें आवाज़ दी कि अन्दर आ जायँ और लड़की से कहा कि बावर्ची-खाने में चली जाय।

आँगन में प्रवेश करते ही बाबू राम सहाई ने नूर से भाई का रिश्ता स्थापित करते हुए भाभी को सलाम कही और फिर पीढ़े पर बैठते हुए घर का हाल चाल पूछा।

उत्तर में नूरे की बेगम ने माथे पर हाथ मारा और कहा कि जब से वह डिमोट हुआ है, उन पर तो जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा है। तनखा ला कर देना तो दूर रहा वह उस की हँसली तक बरबस छीन कर शराब खाने की भेंट चढ़ा आया है। उन्हें तो रोटियों के लाले पड़े हुए हैं। दो दिन से घर में चूल्हा नहीं जला। और वह पड़ोसियों से माँग-ताँग कर अपना और अपनी बेटी का पेट पाल रही है।

अपनी दुर्दशा की बात बताते हुए नूर की बेगम के नयन सजल हो गये। "अपनी तो फिकिर नहीं बाबू जी," उस ने कहा, "किसी न किसी तरह मेहनत-मजूरी कर के, माँग-ताँग कर पेट का दोज़ख भर ही लूँगी। फ़िकिर तो नूरी की है," उस ने बावर्ची-खाने में अपनी बेटी की ओर संकेत किया, "यह अब सोलहवें बरस में है। इस के हाथ पीले करने को तो दो टूम्बें और चार कपड़े दरकार हैं।"

बाबू रामसहाई की नज़र बावर्ची-खाने की ओर गयी जिस पर टाट का पर्दा पड़ा हुआ था और जिस के पीछे खड़ी नूरी उनकी ओर देखती हुई बातें सुन रही थी।

निमिष भर के लिए बाबू रामसहाई को उस की उलझी लटों में दमकते हुए गोरे मुख और चंचल आँखों की झलक मिली। फिर वे आँखें पर्दे की पीछे हो गयीं। मन ही मन बाबू रामसहाई ने सोचा, नूरे की यही दशा रही तो निश्चय ही एक दिन वे इस गोरी को चोपड़ा

साहब की बग़ल में ले जा बैठायेंगे। तब कम्पनी में बराबर का हिस्सेदार बनने में उन्हें किसी तरह की कठिनाई न होगी। बाबू रामसहाई की साध मैनेजर से बढ़कर डायरेक्टर और एक दिन स्वयं मैनेजिंग डायरेक्टर बनने की थी। नूरा तो बिसात पर एक मोहरे था काम देता था। यदि उन का दाँव चल गया तो इसी मोहरे के बल पर वे बाज़ी जीत जायेंगे।

किन्तु प्रकट उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा, "सब कुछ ठीक हो जायगा भाभी, भगवान पर यकीन रक्खो।" जेब से उन्होंने पच्चास के नोट निकाले और कहा कि अभी वह उतने रुपये रखे। शीघ्र ही वे मालिक से कह कर नूर को फिर बहाल करा देंगे और यदि उस ने फिर कोई गड़बड़ न की तो उस की तरक्की के लिए भी कोशिश करेंगे।

"तरक्की तो करा देंगे बाबू जी,- पर इससे हमारा क्या भला होगा," नूरे की बेगम ने कहा, "अब वह रंडी के घर जाता है, फिर रंडी को घर लायगा। कुछ ऐसा करो बाबूजी, जिस से हम को भी खाने को दो टुकड़े मिलें।

"वही तो किया था।" बाबू रामसहाई ने ज़रा ज़ोर देकर कहा, "उस की जो तनखा काटी थी वह तुम्हारे हाथ में ला कर रख दी। मालिक ने तो अपने पास कुछ नहीं रखा," यहाँ बाबू राम सहाई ने अपने मालिक चोपड़ा साहब की उदारता और भलमनसी की बड़ी तारीफ़ की और कहा, "लेकिन नूरे ने जो तूफ़ान मचाया है उस से मालिक का बहुत नुकसान होने का डर है।" और उन्होंने नूरे की बेगम को समझाया, "अगर मालिक का नुकसान होगा तो क्या आप लोगों का न होगा?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं।" नूरे की बेगम ने कहा, "उस की सोहबत असल में अच्छी नहीं बाबू जी, बुरे लोगों में बैठता है, बुरी बातें सुनता है और बुरी बातें सोचता है।"

"सब ठीक हो जायगा।" बाबू रामसहाई ने कहा, "भगवान में

यकीन रखो।" और फिर धीमा स्वर कर बोले, "देखो नूरा आये तो उसे बता देना कि उस की जो तरक्की रोकी थी, वह मालिक ने उस के घर पहुँचा दी है। अगर वह कुछ रुपये माँगे तो उसे दे देना। तुम लोगों को ज़रूरत पड़ेगी तो मैं और दे जाऊँगा। उसे समझाना कि मालिक से दुश्मनी करने में कोई फ़ायदा नहीं और दोस्ती करने में हज़ारों रुपये का फ़ायदा है। वह आये तो मेरे पास भेजना।"

"वह तो रात को बड़ी देर में आता है।" नूर की बेगम ने कहा।

"कल सुबह भेजना।" बाबूराम सहाई बोले और 'अच्छा भाभी सलाम' कह और उसे एक बार फिर तसल्ली दे कर चले आये।

दूसरे दिन बाबू राम सहाई ने नूर के आने की प्रतीक्षा नहीं की, बल्कि सुबह सुबह उसे फिर जा पकड़ा।......तहमद लगाये और खुले गिरेबान की कमीज़ पहने (जिस के बटन लगाने का कष्ट उस ने नहीं किया था) नूरा तबेले के कुएँ पर खड़ा अपने पड़ोसियों को अपनी कार-गुज़ारी सुना रहा था कि किस तरह उस ने अपने मालिकों के होश टिकाने करने का फैसला किया है और बता रहा था कि कैसे मालिक उससे डर गये हैं और उसकी जितनी तनखाह उन्होंने काटी थी, वह झख मार कर उस के घर पहुँचा दी है।

तभी बाबूराम सहाई ने पीछे से उस के गले में हाथ डालते हुए कहा, "कहो भाई नूर मियां, दिखायी नहीं देते।"

"दिखायी तो ऐसे देंगे कि कभी नज़र ही से न उतरें," नूर मियां ने शेखी बघारी, "ज़रा यूनियन बना लें।"

अरे यूनियन बनाते रहो पर काम पर भी आओ, तनख्वाह मालिकों के सिर पर चढ़ती रहेगी।"

"तनखाह की हमें क्या परवाह है," नूर ने सगर्व कहा, "साली यूनियन का काम करते हैं, सो अपने आप हमारी तनखाह पूरी करेगी।"

बाबूराम सहाई उस के गले में हाथ डाले डाले, बातों में उलझाये खालसा होटल में ले आये। वहीं एक कुर्सी पर बैठ, तिपाई आगे खींच, उन्होंने संतरे के अद्धे का आर्डर दिया।

नूर की आँखों में चमक आ गयी। लेकिन बेपरवाही से उस ने कहा, "मैं ने शराब से तौबा कर ली है, बाबू राम सहाई।"

बाबू साहब हँसे। बोले, "अरे मियाँ तौबा न करोगे तो तोड़ोगे क्या ?"

शराब की बोतल आ गयी। काग उड़ा कर बड़ा सा पेग उन्होंने नूर के गिलास में डाला। और सोडा मँगा कर उस से अपना गिलास भर लिया।

"मैंने तो अभी कुल्ला भी नहीं किया है।" नूर ने गिलास हाथ में लेते हुए कहा।

"इसी से कुल्ला हो जाय तो क्या बुरा है।"

नूर ने शराब का घूँट भरा और मस्ती में शेर पढ़ा :

तोड़ दी तौबा वज़ू[1] सहबा[2] से कर के हमने !

बाबू राम सहाई ने हँसते हुए सोडे का एक घूँट पिया, "आदमी तुम लाजवाब हो नूर मियाँ।" वे बोले और उन्होंने नौकर छोकरे से कहा कि वह खाने के लिए कुछ नमकीन लाये।

नूर ने एक और घूँट भर कर जैसे नारे के रूप में शेर कहा :

तौबा कर लें हम मय-ो-माशूक़[3] से
बेमज़ा हैं, यह सवाब[4] अच्छे नहीं

नूर ज्यों ज्यों पीता गया, उस की मस्ती बढ़ती गयी और गाना छोड़ वह शेखियां बघारने लगा कि उस ने कसम खायी थी, वह अपनी

१. वज़ू=नमाज़ से पहले हाथ मुँह धोना, कुल्ला आदि करना। २. सहबा=शराब ३. मय-ओ-माशूक़=शराब और प्रेयसी, ४. सवाब=पुण्य।

डिमोशन का बदला लेगा, अभी यूनियन बनी नहीं, लेकिन मालिकों की नानी मरने लगी है।

"क्या बात है तुम्हारी!" बाबू राम सहाई ने उस के गिलास में शेष सारी बोतल उँडेलते हुए कहा, "मालिकों के सामने तो नहीं, पर जब हम क्लर्क लोग बैठते हैं तो तुम्हारी आपस में दाद देते हैं कि तुम खुद कुर्बानी करके हमारी ज़िन्दगी बना रहे हो।" यहाँ उन्होंने बताया कि वे जनरल मैनेजर हैं तो क्या, पर मालिकों की डाँट उन्हें क्लर्कों से कम नहीं खानी पड़ती। मैनेजिंग डायरेक्टर और दूसरे डायरेक्टरों को नूर ही की ज़बान में दो चार भारी भरकम गालियाँ देते हुए, बाबू रामसहाई ने कहा, "खून पसीना तो हम लोग बहाते हैं, पर सब कमाई डायरेक्टरों के घरों में जाती है। तुम यूनियन आर्गेनाइज़ करो। मैं तुम्हें यक़ीन दिलाता हूँ कि सब से पहले मैं उस का मेम्बर बनूँगा और मैं मेम्बर बना तो कम्पनी का एक भी मुलाज़िम ऐसा न रहेगा जो हमारा साथ न दे। हम सब लोग मिल जायँगे तो फिर कोई ऐसा है जो हमारी बात न माने।"

"असीं डायरेक्टरां दी मां......" नूर ने विशुद्ध पंजाबी में एक भयंकर गाली दी, जिस का मतलब था कि वे डायरेक्टरों की अक़्ल ठिकाने कर देंगे और पंजाबी ही में बोला, "अज्ज शाम नूं मीटिंग ऐ। मालकां नूं अपनियां मांगा असीं भेज छड्डियां हण। ओहनाँ न मन्नियां ते असी वेख लांगे।"[1]

"मैं खुद सब क्लर्कों के साथ मैनेजिंग डायरेक्टर से कह दूँगा कि हम भी यूनियन में शामिल हो रहे हैं। तुम ज़रा चलो तो मेरे साथ। तुम साथ रहोगे तो हमें भी हिम्मत बँधी रहेगी। देखें हमारी बात का क्या असर पड़ता है? क्या जाने मालिक हमारी माँगें मान ही लें!"

"हां हां चल्लो मैं किसे साले तो नहीं डरदा।"[2] उस ने एक ही

---

१. मालिकों को अपनी मांगे हम ने भेज दी हैं। उन्हों ने न मानीं तो हम देख लेंगे। २. हां हां चलो मैं किसी साले से नहीं डरता।

साँस में गिलास खत्म कर, कमीज़ के दामन से ओंठ पोंछते हुए, भू
कर कहा ।

"बैठो बैठो, चलते हैं । ज़रा बिल दे दें और वहां भी पीने खा
का सामान कर लें ।"

यह कह कर बाबू रामसहाई ने बिल चुकाया । एक अद्धा खरीद
कर कोट की जेब में डाला और जब बाहर निकले तो नूर की बाँह में
उन की बाँह थी और यद्यपि उन्होंने सोडा ही पिया था तो भी लगत
था जैसे उन्होंने नूरे का पूरा पूरा साथ निभाया है ।

लेकिन यह तमाशा उन्होंने राह चलतों को दिखाना उचित नहीं
समझा । सरक्यूलर रोड पर पहुँचते ही उन्होंने एक तांगे वाले को
आवाज़ दी और नूरे को लिये हुए उस में जा बैठे ।

५३

एक दिन पहले यूनियन की ओर से जो माँगें मैनेजिंग डायरेक्टर को भेजी गयी थीं, हरीश जी उन का महत्व, यूनियन की आम सभा में, मजदूरों को समझा रहे थे।

"हम ने अपनी माँगें तैयार करने के लिए जो कमेटी बनायी," हरीश जी कह रहे थे, "उस ने काफ़ी सोच-विचार के बाद पन्द्रह माँगें मैनेजिंग डायरेक्टर को भेजी हैं, आप देखेंगे कि हम ने कम्पनी के हर डिपार्टमेंट में काम करने वालों के अधिकारों का ख़्याल रखा है।"

"पहली माँग यह है कि हमारी यूनियन को स्वीकार किया जाय! यह माँग बेसिक, याने बुनियादी या आधारभूत है। यदि कम्पनी आप लोगों को तरक्कियाँ दे दे, आप की दूसरी माँगें स्वीकार कर आप को सभी सुविधाएँ दे दे, पर यूनियन को तसलीम न करे तो वे तरक्कियाँ और सुविधाएँ बेकार हो जायँगी। क्यों? इस लिए, कि कम्पनी निश्चय ही आन्दोलन ठंडा पड़ने पर, इस या उस बहाने, छटनी कर देगी, नये आदमी फिर उसी पगार पर रख लेगी और सुविधाएँ वापस ले लेगी। यदि आप की यूनियन स्वीकृत होगी तो कम्पनी कभी यह अत्याचार न कर सकेगी। यूनियन को तसलीम कराने के लिए हमें, यदि ज़रूरत पड़े, तो स्ट्राइक तक के लिए भी तैयार रहना चाहिए और बिना इस पहली माँग की मंजूरी के इक्का-दुक्का तरक्कियों और सुविधाओं की परवाह न

करनी चाहिए।

"दूसरी माँग में हम ने बेसिक-तनख्वाह में बढ़ौती चाही है। हम माँगें तैयार करने को जो कमेटी बनायी थी, उस में हर डिपार्टमेंट व एक-एक प्रतिनिधि था। कम्पनी के भिन्न डिपार्टमेंटों में जो वेतन दि जाते हैं, उन को हम ने बड़े ध्यान से देखा है और हम इस नतीजे प पहुँचे हैं कि ड्राइवर हो या क्लीनर, कंडक्टर हो या इन्स्पेक्टर, मैकेनि हो या चौकीदार, उन की कपड़े और रोटी की नितांत-आवश्य ज़रूरतों को देखते हुए, वेतन बहुत कम हैं। इस सात आठ वर्ष के अं में, जब कि कम्पनी का काम और लाभ कई गुना बढ़ गया है, नौकरों व पगार, उन के वेतन वही हैं। हमारी माँग यह है कि कर्मचारियों व बेसिक-तनख्वाह में कम से कम २५ प्रतिशत बढ़ौती की जाय!

"तीसरी में हम ने कन्फ़र्मेशन (Confirmation) की माँग की है चले हुए काम को उल्लू भी चला सकता है। पूँजीपतियों का यह आ क़ायदा है कि जब काम चल जाता है तो ये उन लोगों को, जिन खून-पसीने से काम जमता है, दूध की मक्खी की तरह निकाल बाह करते हैं और अपने निकम्मे रिश्तेदार उन की जगह भर देते हैं। इस अतिरिक्त कम्पनी के छोटे अफ़सर भी मज़दूरों को बड़ा परेशान कर हैं। कोई कितना भी अच्छा काम क्यों न करता हो, यदि किसी व्यक्तिग कारण से मैनेजर या असिस्टेंट मैनेजर किसी से नाराज़ हो जाता है त उसे निकाल कर अपना आदमी रख लेता है। इस बुराई को रोकने व लिए जहाँ यूनियनें हैं, वे इस बात की माँग करती हैं कि जो कर्मचार छः महीने तक काम कर चुका हो उसकी कन्फ़र्मेशन की जाय--उसे उ की नौकरी पर पक्का किया जाय!"

"चौथी में हमने पेनशन की माँग की है। यह माँग कितनी उचि और आवश्यक है, इसे वर्कर्ज़ ही भली-भाँति जानते और समझते हैं कम्पनी की नौकरी में, उम्र भर हड्डियाँ तुड़वाने के बाद, बुढ़ापे

निकाले जाने वाले मज़दूर के सामने, भीख माँगने के सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं रह जाता। इसी लिए बड़ी कम्पनियों में प्रॉवीडेंट फंड या पेनशन की व्यवस्था रहती है। हम ने प्रॉवीडेंट फंड की माँग इसलिए नहीं की कि जब तक मज़दूरों की शिक्षा-संस्कृति का स्तर बढ़ नहीं जाता प्रॉवीडेंट फंड की बड़ी रकम लाभ के स्थान पर उन्हें नुकसान पहुँचाती है। हमारे नूरदीन ऐसे मित्र इतनी बड़ी रकम सप्ताह भर में सरक्यूलर रोड, सब्ज़ी मंडी या लंडा बाज़ार के शराबखानों की भेंट कर सकते हैं।"

इस पर मज़दूरों में हल्की सी हँसी गूँजी। हरीश जी आगे बोलने ही वाले थे कि एक क्लीनर भागा भागा आया और उस ने यह खबर दी कि न केवल कम्पनी ने नूरदीन की डीमोशन रद्द कर दी है, बल्कि उसे प्रोमोट करके बड़ा इन्सपेक्टर बना दिया है।

इस खबर से हाल में एक सनसनी सी फैल गयी और 'यूनियन ज़िंदाबाद' के नारे लगाये गये।

हरीश जी ने भी इस पर प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि ऐसा उन लोगों की संगठित-शक्ति ही के कारण हुआ है। पर उन्होंने शंका भी प्रकट की कि शायद कम्पनी ने ऐसा उन में फूट डालने के लिए किया है। उन्होंने समझाया कि जब तक उन की यूनियन तस्लीम नहीं की जाती और जो माँगें उन्होंने मैनेजमेंट के पास भेजी हैं, वे स्वीकार नहीं की जातीं, उन्हें अपनी कोशिश में ढील न देनी चाहिए।

"कुछ मज़दूर मित्रों ने मुझ से कहा है," हरीश जी अपनी बात जारी रखते हुए बोले, "कि हमारी माँगें सख्त हैं, कम्पनी उन्हें कभी न मानेगी। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यदि वे एक होकर अपनी माँगों पर डटे रहेंगे और वक्त पड़ने पर स्ट्राइक करने और कुर्बानी देने को तैयार होंगे तो वे देखेंगे कि झख मार कर कम्पनी उन माँगों को स्वीकार करेगी। मैं अपने मज़दूर-मित्रों को बताना चाहता हूँ कि हमारी माँगें ज़रा भी सख्त नहीं। वे पूर्ण-रूप से उचित हैं, आवश्यक

हैं। हमने कर्मचारियों की ज़रूरतों और कपड़े और अनाज की क़ीमतें को ध्यान में रख कर उन्हें तैयार किया है। आप लोग निरन्तर अपने मालिकों के अत्याचार सहते आये हैं। आप के लिए यह बात नयी है कि आप अपने अधिकारों के तौर पर काम की अच्छी सुविधाओं और अच्छे व्यवहार की माँग कर सकते हैं, इसलिए आप को ये माँगें सख्त लगती हैं। पर यदि आप विदेशों में मज़दूरों की दशा की तुलना अपनी दशा से करें तो आप को मालूम होगा कि आप से किस तरह पशुओं-ऐसा सलूक किया जा रहा है।

"पाँचवीं माँग में हम ने यह चाहा है," हरीश जी ने फिर अपनी माँगों को समझाते हुए कहा, "कि तरक्कियाँ सिनियॉरिटी अर्थात् काल-ज्येष्ठता के हिसाब से हों। जो आदमी पहले से नौकरी करता है, उस को पहले तरक्की दी जाय। यह बात नहीं कि जिस को मैनेजर चाहे नीचे से उठाकर ऊपर बैठा दे।......

हरीश जी अभी यहाँ तक पहुँचे थे कि बाहर बारजे में खड़े किसी मज़दूर ने चिल्ला कर कहा कि नूरदीन और बाबू राम सहाई और कम्पनी के दूसरे क्लर्क आ रहे हैं।

जहाँ तक इस आन्दोलन का संबंध था, यद्यपि ड्राइवर, कंडक्टर, क्लीनर और दूसरे मज़दूर हरीश जी के साथ थे, कम्पनी के क्लर्क दूर दूर ही रहे थे। वे यह बात तो चाहते थे कि यूनियन उन के लिए लड़े, पर स्वयं वे खुल कर आन्दोलन में कोई भाग न लेना चाहते थे। इसीलिए क्लर्कों के आने की बात सुनकर हरीश जी चौंके। लेकिन अभी वे सोच ही रहे थे कि किसी ने आकर हरीश जी को बताया— मैनेजिंग डायरेक्टर ने यूनियन की सब माँगें स्वीकार कर ली हैं और बाबू राम सहाई और दूसरे क्लर्क भी यूनियन के मैम्बर बनेंगे। तभी

विजेताओं की भाँति नूरदीन हाल में दाखिल हुआ। उस के गले में दो तीन हार पड़े हुए थे आँखे लाल थीं और मूँछे उठी हुई थी। हाल में आते ही उस ने ज़ोर से नारा लगाया "येलो-बस-यूनियन—"

और हाल ज़िंदाबाद के नारों से गूँज उठा।

जब नारों का ज़ोर कुछ कम हुआ तो नूरदीन ने बताया कि मैनेजिंग डायरेक्टर यूनियन को तस्लीम करने को तैयार हैं। उन्होंने नूरदीन से माफ़ी माँगी है और उसे फिर से इन्स्पेक्टर बना दिया है। (यहाँ नूरदीन ने अपनी मूँछों को ताव देते हुए अपनी बल-बुद्धि की प्रशंसा की और अपनी बीवी को भयानक गालियाँ दीं, जिस ने जाकर मैनेजिंग डायरेक्टर को परेशान किया) फिर उस ने बताया कि किस तरह अपनी बे-इज़्ज़ती का बदला लेने के लिए उस ने कसम खायी थी जो आज पूरी हुई। कम्पनी जिस मुलाज़िम के साथ बदसलूकी करेगी, वह (यहाँ उन ने सीने पर हाथ मारा) उस का बदला लेने के लिए पहाड़ की तरह खड़ा हो जायेगा। (मज़दूरों ने नूरदीन ज़िंदाबाद के नारे लगाये) उन के शांत होने पर उसने बताया कि मैनेजिंग डायरेक्टर ने नूरदीन से इच्छा प्रकट की है कि उन के सब मुलाज़िम यूनियन के मेम्बर हों और अपनी बेहतरी के काम को स्वयं अपने हाथ में लें। उन्होंने यह भी इच्छा प्रकट की है कि यूनियन के सदस्यों की एक कमेटी उन से मिले और वे उन की माँगों पर विचार करेंगे।

इस पर बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं और नारे लगाये जाते रहे।

इस के बाद बाबू राम सहाई खड़े हुए। उन्होंने मैनेजिंग डायरेक्टर की प्रशंसा की कि वे कितने दयावान और न्यायप्रिय हैं और नूरदीन की डिमोशन भी उन्होंने नहीं, स्वयं बाबू राम सहाई ने ही की थी, क्योंकि वह सारी कमाई शराब खाने में उड़ा देता था। उनका ख़्याल था कि इससे नूरदीन को समझ आयेगी। वास्तव में उस की पूरी पगार

उसे मिलती रही है, क्योंकि जितनी कटी वह उस के घर जाती रही है। मैनेजिंग डायरेक्टर कभी स्वयं क्लर्क थे, वे क्लर्कों और मज़दूरों के हितों को अच्छी तरह समझते हैं। आप लोग अपने प्रतिनिधि और उन का नेता चुनिए। मैनेजिंग डायरेक्टर से मिल कर बात कीजिए, भगवान ने चाहा तो आपकी बहुत सी शिकायतें दूर हो जायँगी उन्होंने शोक प्रकट किया कि इतना शोर मचाने के बदले यदि वे उन से कह देते तो वे पलक झपकते सब ठीक करवा देते। वे चाहे जनरल मैनेजर सही, पर हैं तो क्लर्क ही। ज़रा ऊँचे दर्जे के क्लर्क सही (वे ज़रा हँसे) इसलिए उन्हें मैनेजिंग डायरेक्टर के फ़ायदेसे उन का फ़ायदा ज्यादा प्यारा है।

इस मरहले पर हरीश जी बोले :

"अच्छी बात है," उन्होंने कहा, "मैं कल उन से बात करूँगा। फिर हमारा प्रतिनिधि-मंडल उन से मिल लेगा। मैं ज़रा जान लूँ कि वे हमारी माँगों को कहां तक मान सकते हैं। किन को मान सकते हैं और किन को नहीं मान सकते ?"

इस पर कई मज़दूरों ने 'ठीक है' 'ठीक है' कह कर उनका समर्थन किया।

बाबू राम सहाई ने जैसे बड़े आश्चर्य से हरीश जी की ओर देखा, फिर बोले, "आप कौन हैं, आप तो हमारी कम्पनी में नहीं हैं।"

"मैं यूनियन का सेक्रेट्री हूँ।"

"मैनेजिंग डायरेक्टर आप से बात नहीं करेंगे। वे अपने मुलाज़िमों से बड़े शौक से बात करने को तैयार हैं। उन की माँगें पूरी करने को तैयार हैं, पर वे किसी बाहर वाले से बात करने को कभी तैयार न होंगे।"

"इन लोगों से वे क्या बात करेंगे ?" हरीश जी ने मुस्करा कर कहा, "इन को वे बड़ी आसानी से डरा धमका या फुसला लेंगे। बात उन से

मैं ही करूँगा। मैं भी इन्हीं का प्रतिनिधि हूँ। इन्हीं द्वारा चुना मन्त्री हूँ।"

"आप घबराइए नहीं," नूरे ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा, "मैं कल उन से मिलूँगा। आप मेरे साथ कर दीजिए जिसे करना हो।"

"तुम्हें क्या मालूम है हाकिम से बात कैसे की जाती है," कलुआ बोला। "हमारी ओर से हरीश बाबू ही जायेंगे।"

"चुप रह ओए वड्डे चतुर देआ पुत्तरा।" नूर ने तिनक कर कहा, "चौकीदारी करदेआँ ते हाकिम नू सलामां देंदियां तेरी सारी उम्र बीत जाणी हैं। तूं अपने जेहा ही सब नूँ समझदा ऐं। असां किसे सामने झुकना नहीं जाणदे। गल्ल करन च मुश्किल ही केहड़ी है। हाकिम ऐ कि भूत ऐ।"[1]

"नहीं यह बात नहीं," हरीश ने कहा, "उस में कई तरह की कानूनी बातें हैं। तुम भी हमारे साथ चलना। लेकिन मुनासिब यही है कि सेक्रेटरी की हैसियत से मैं उन के साथ बात कर लूं।"

"चोपड़ा साहब किसी बाहर वाले से बात न करेंगे और न ही बाहर की यूनियन को मानेंगे।" बाबू राम सहाई बोले।

"ते एहदे च केहड़ी गल्ल ऐ, मैं सेकट्री बन जाँदा हां," नूर ने कहा और उसने मज़दूरों से सम्बोधन किया, "क्यों वई, जेहड़े समझदे हण कि मैं सेकट्री बनके मालकां नाल गल्ल कराँ, ओह हत्थ खड़े करन।"[2]

---

१. चुप रह बे बड़े चतुर के बच्चे। चौकीदारी करते और हाकिमों को सलामी देते तेरी सारी उम्र बीत जायगी। तू अपने जैसा ही सब को समझता है। हम किसी के आगे झुकना नहीं जानते। बात करने में मुश्किल क्या है। हाकिम क्या कोई भूत है?

२. तो इस में क्या बात है—याने इस में क्या मुश्किल है, मैं मंत्री बन जाता हूँ। क्यों भई जो समझते हैं कि मैं सेक्रेटरी बन कर मालिक से बात करूँ, वे हाथ खड़े करें।

सभी क्लर्कों और कुछ दूसरे मज़दूरों ने हाथ खड़े कर दिये।

"एह समझ लओ कि मालक सिर्फ मेरे नाल गल्ल करण नूं तैयार ऐ ते मैं तुहाडियाँ सारियाँ माँगाँ पूरियां करा देणियाँ हण ते बाहर वाली यूनियन नू मालिक मनन नहीं लग्गा।"[3]

कुछ और हाथ खड़े हो गये।

"हम हरीश जी को ही सेक्रट्री चाहते हैं।" कलुआ ने उठ कर कहा, "यह मालिक से बात करने गया वहीं शराब खाने में जाकर सो गया तो हमारी सुधि कौन लेगा।"

"अरे भई जल्दी क्या है।" हरीश ने दोनों पक्षों में बीच-बचाव करते हुए कहा, "हम कल वर्कर्ज़ की एक ख़ास मीटिंग बुलाते हैं। इस बात पर हम उस मीटिंग में सोच-विचार कर फैसला कर लेंगे।

लेकिन नूर के सिर पर कलुआ की बात से जैसे जुनून सवार हो गया था। हाथ को ऊपर उठा कर उस ने कहा कि जो उस की लीडरी मानता हो, उस की यूनियन में आना चाहता हो वह उस के साथ आ जाय। वह दिखा देगा कि वह हाकिम से अपनी बात मनवाता है या हरीश।

और बाबू रामसहाई और दूसरे क्लर्क ही उस के साथ न उतरे बल्कि बहुत से मज़दूरों को भी ले गये।

"आप फिकिर न करें बाबू जी हम आपके साथ हैं और रहेंगे।" कलुआ ने सीने पर घूंसा मारते हुए कहा।

हरीश ने कलुआ की बात का उत्तर नहीं दिया। वे देर तक उस दरवाज़े की ओर देखते रहे, जहाँ से वे लोग निकल कर गये थे।

---

३. यह समझ लो कि मालिक सिर्फ़ मेरे साथ बात करने को तैयार है। मैं आप की सब माँगें पूरी करा दूँगा। बाहर वाली यूनियन को मालिक तसलीम नहीं करेगा।

५४

जगमोहन सुबह-सुबह सैर से आया और उस ने लस्सी के लिए दही का दोना भाभी को दिया तो उस की भाभी ने कहा, "अभी सत्या आयी थी।"

"मैं ने तो उस से कहा था कि वह यहाँ न आया करे।" जगमोहन ने झुँझला कर कहा।

"मैं तो जब से आयी हूँ, उस की सूरत तक नहीं देखी," भाभी बोली, "अभी आयी थी और कहती थी सात आठ दिन में उस की शादी होने वाली है।"

जगमोहन ने कुछ उत्तर न दिया। मौन-रूप से ऊपर अपने कमरे की ओर बढ़ा। सीढ़ियों से उस ने भाभी की आवाज़ सुनी, "अभी वह फिर आयेगी।"

जगमोहन अपने कमरे में चला गया। पानी की बाल्टी भर कर उस ने स्नान किया, कपड़े बदले और ऊपर से आवाज़ दी, "भाभी, मुझे लस्सी बना दो।" और जाकर चारपाई पर लेट गया। लेकिन लेटने से पहले उस ने टाल्स्टाय का उपन्यास 'आँनाकाँनीना' उठा लिया और जहाँ से छोड़ा था वहीं से पढ़ने लगा।

पर वह पढ़ नहीं पाया। 'किट्टी' के प्रति 'लेविन' और व्राँस्की के प्रति 'अन्ना' के प्रेम की बात को सोचने लगा। यह कैसा

सौ दो सौ हैं। मैं अभी कुछ पढ़ना और सीखना चाहता हूँ। क्लर्को की चक्की में पिस कर खत्म होना मुझे पसन्द नहीं।"

और वह एक ही सांस में लस्सी पी गया।

खाली गिलास ले कर जब भाभी चली गयी तो जगमोहन मन ही मन हँसा। क्या उस ने जो कहा है, वह ठीक था? क्या आर्थिक-कठिनाई ही उस के रास्ते की सबसे बड़ी दीवार थी? कल यदि दुरो उस से विवाह का प्रस्ताव करे तो क्या वह आर्थिक कठिनाई का बहाना बनाये? दिशाओं के बन्धन को तोड़ कर हरहराने वाले तूफ़ान सा वह उठे और आर्थिक कठिनाइयों के तृण-पात को अपने साथ उड़ाता ले जाय। उस के मन का प्यार, उस प्यार की आकाँक्षा, उस आकाँक्षा का ज्वार जगे तो।........जगमोहन ने लम्बी साँस ली। उस के प्यार का सागर तो सदा उतार पर रहा, चढ़ाव उस ने देखा ही कहाँ! उन्मत्त महोर्मियों का वह नर्तन, तट से वह उन का घोर घर्षण, उस घर्षण का शोर, उस शोर से गुँथी हुई सी फेन की वह लम्बी दूधिया दीवार—इस उतरे हुए सागर ने वह सब कहाँ देखा? इस का पानी तो तट की ओर बढ़ा ही नहीं। किनारे से बहुत दूर, बेबस अरमानों की मरी मरी उर्म्मियों को लिये, जैसे अपने ही में बँधा-रुका मौन पड़ा है।......जगमोहन बेचैन सा कमरे में घूमने लगा—दरवाज़े से दीवार तक, दीवार से फिर दरवाज़े तक। 'लेवन' और 'व्रौंस्की', 'आॅना' और 'किट्टी' और उन का वह सागर के ज्वार सा प्यार—वैसा प्यार आज कहाँ है......

......पर सत्या जी का प्यार क्या वैसा नहीं। कमरे की दीवार के पास पहुँच कर उस ने सिर को झटका दिया। हटाओ, जिस गाँव जाना नहीं है उस की सोच काहे करना! और उस के जी में आयी कि चले कुछ समय चातक जी के यहाँ गुज़ारे और उन की कविताओं में दिमाग़ की इस परेशानी को भुला दे! वह मुड़ा कि उस ने देखा सत्या जी सामने चौखट में खड़ी हैं। जगमोहन न चाहता था कि उस की आँखों

में आक्रोश आये, पर उस सब के बाद जो सत्या जी और उस में घटा था, उन के इस आगमन पर आक्रोश की उस क्षीण सी रेखा का उस की आँखों में आ जाना नितांत अनिवार्य था, आपेक्ष्य था, इसलिए वह रेखा अपने आप, अनचाहे, अनजाने, अनपेक्ष्य उस की आँखों में आ गयी।

सत्या जी के मुख का रंग उस दृष्टि के परस से एकदम सफ़ेद हो गया। फिर उन के मुख पर शिशिर के सूरज की सी मुस्कान छा गयी। दो पग वे आगे बढ़ आयीं, तब जगमोहन सम्हला। कुर्सी घसीट कर उस ने आगे रखी "आइए, आइए बैठिए।" उस ने बढ़ कर कहा। और उन के बैठ जाने पर वह उन के सामने बैठ गया।

सत्या जी उस दिन दस बारह घंटे बैठीं। जगमोहन ने उन्हें जाने को नहीं कहा। इस खबर के बाद कि उन की सगाई हो गयी है, वह आश्वस्त हो गया था कि उसे बरबस उन से विवाह करने को राज़ी न होना पड़ेगा। वह एक बार फिर पहले की तरह उन के लिए लस्सी बनाने को दही लाया; खाना भी उस ने उन्हें वहीं खिलाया; वह उन से बातें भी करता रहा था, किन्तु उस अन्तर को, जो उस ने उन में और अपने आप में पैदा कर लिया था, उस ने रंच-मात्र भी कम न होने दिया।

वे चली गयीं और वह उन्हें होतू सिंह रोड तक छोड़ आया तो सहसा उसका मन भारी हो गया। उसे लगा कि उस के व्यवहार में कहीं फूहड़ता थी; कि उसे उन से वैसा व्यवहार न करना चाहिए था, कि उसे उतना निर्मम न होना चाहिए था। वह मुक्त हो गया है, वे उसे अपने साथ विवाह कर लेने की सारी कोशिशों, समस्त सूक्ष्म-प्रयत्नों के बावजूद सफल नहीं हो सकीं, वह नहीं बहा, नहीं झुका, इस बात की उसे खुशी थी। वह आश्वस्त था। पर जैसे झड़ी के बरसते पानी में

रसोई-घरों का धुँआँ, आकाश की पहनाइयों में ग़ायब हो जाने के बदले, धीरे-धीरे बरसती बूँदियों में दबा-दबा, अपनी जगह बनाता, रींगता हुआ सा बढ़ता है, जगमोहन के उस उल्लास, उस आश्वासन, उस मुक्ति के आभास के नीचे अपनी फूहड़ता, अपनी निर्ममता अपने असंस्कृत-व्यवहार का विचार, धीरे-धीरे रींगता हुआ, उस के दिमाग़ पर छाने लगा।

सत्या जी वास्तव में एक और कोशिश कर देखने आयी थीं, पर वह तो पहले ही से सतर्क बैठा था, इसलिए उन के सब पैंतरे बेकार गये थे।......पर क्या वे पैंतरे थे? उस ने सोचा......क्या वह सब डूबते हुए आदमी का किनारे के लिए छटपटाना भर न था? और जगमोहन का दिल धँसने सा लगा। बोझ का वह अहसास कई गुणा ज़्यादा हो कर उस की आत्मा को दबाने लगा।

......कुर्सी पर बैठते ही हँसते-हँसते सत्या जी ने बताया था कि उन्होंने उस की बात मान ली है। उन की सगाई हो गयी है।

"पर इतनी जल्दी?" उस ने चकित हो कर पूछा था।

"आप ने कहा जो था।" वे बोलीं।

जगमोहन चुप रहा। क्षण भर रुक कर उस ने पूछा, "कहाँ हुई सगाई?"

"अफ़रीका।"

"अफ़रीका!" जगमोहन के स्वर में आश्चर्य की मात्रा और भी अधिक थी। "वहाँ कैसे तय हो गयी इतनी जल्दी?"

"वे यहाँ आये हुए हैं।"

"इसी गर्ज़ से?"

"हाँ।"

"आते ही सफलता मिली उन्हें !"

"सफलता पाये बिना वे जाते जो नहीं !"

"आप का कैसे पता पा गये ?"

"ट्रिब्यून में विज्ञापन दिया था उन्होंने। पिता जी उन से मिले थे दो एक दिन से पूछ भी रहे थे। मैं चाहती न थी। आप ने कहा तो मैं ने हाँ कर दी।"

उन के स्वर में कुछ ऐसा था जो उस के हृदय में दूर तक उतरता चला गया। वह खिन्नता से हँसा, "पर मैंने अफ़रीका शादी करने के लिए कब कहा था।"

"अफ़रीका क्या और अमरीका क्या," उन्होंने हल्की सी लम्बी साँस भर कर कहा था, "जब यहाँ नहीं रहना तो सब जगहें बराबर हैं।"

जगमोहन के कंठ में कुछ गोला सा उठा, पर उसे दबाता हुआ वह खोखली सी हँसी हँसा। "हाँ, हाँ, आप ठीक कहती हैं," उस ने कहा और यों हँसी के इस आवरण से उस ने अपने हृदय को भीगने से बचा लिया।

......फिर सत्या जी ने वैसे ही अवसाद भरे स्वर से हँसते हँसते बताया था कि उन्होंने तो अपने होने वाले पति को देखा भी नहीं।

"पर क्यों ?" जगमोहन ने कहा था।

"क्या लाभ ?" उन्होंने थके उदास स्वर में उत्तर दिया।

तब वह क्या कहे, जगमोहन तय न कर पाया। "आप को देख अवश्य लेना चाहिए था।" उस ने योंही कहा।

"क्या लाभ ?" सत्या जी ने वैसे ही अनमने भाव से दोहरा दिया और जगमोहन के हृदय में एक और कचोका लगा।

"आप देख आइए !" कुछ क्षण बाद सत्या जी ने कहा था। "मुझ से नहीं बनता।"

"उन्होंने भी आप को नहीं देखा?" उत्तर न दे कर जगमोहन ने पूछा।

"नहीं, उन्होंने शायद मुझे देख कर ही हाँ की है।" सत्या जी बोलीं, "खादी भंडार में पिता जी मुझे सामान खरीदने के बहाने ले गये थे। वहीं मेजर साहब भी थे। मुझे पिता जी ने संकेत भी किया, पर मेरी तो आँखें नहीं उठीं।"

"पर आप की चाची अथवा दुरो ने तो उन्हें देखा होगा।" दुरो भी गयी थी।

"उन्हें तो कुछ बहुत अच्छे नहीं लगे। वे तो कहती हैं कि बड़ी उमर है, बहुत मोटे हैं, शायद आँख में कुछ दोष हो। गहरा चश्मा पहने थे।" और फिर बड़े अनुरोध से उन्होंने जगमोहन से कहा, "आप देख आइए!"

निमिष भर के लिए जगमोहन ने सोचा—वह जाय। देख आये—पर दूसरे क्षण उसे ख़याल आया कि यदि अफ़रीका से विवाह हेतु आने वाला वह व्यक्ति मोटा, भद्दा, कुरूप भी हुआ तो क्या होगा? वह क्या कर सकता है? सत्या जी तो अपने होने वाले पति के भद्देपन की बात जानती ही हैं? फिर उसे देखने जाने का लाभ? सहसा उस ने कहा :

"पर सगाई तो आप की हो गयी।"

"नहीं यदि पिता जी से मैं कह दूँ तो टूट भी सकती है।"

"तो कह दीजिए।"

"आप देख आइए एक बार।"

जगमोहन चुप रहा।

"पिता जी कहते थे कि यदि तुम किसी दूसरी जगह चाहो तो वहाँ, कर दें। प्रो० स्वरूप ने दो हज़ार रुपये दे दिये हैं। पिता जी ने वे शादी के लिए अलग रख दिये हैं।"

जगमोहन चुप रहा।

"अब तो यहाँ शादी हो रही है," सत्या जी ने कहा, "ये लोग बड़े धनी हैं, पर यदि मैं कहीं दूसरी जगह शादी करूँ तो पिता जी मुझे दो हज़ार नक़द भी देने को तैयार हैं।"

जगमोहन चुप रहा। दो हज़ार की रकम उस के लिए बड़ी थी पर किस कीमत पर... ..कल्पना-मात्र से उस के शरीर में झुरझुरी सी दौड़ गयी।

"आप एक बार ज़रा देख आइए।"

"देखिए सत्या जी," सहसा जगमोहन बोला, "मैं ने आप से यह नहीं कहा कि आप जा कर कुएँ में छलाँग मार दीजिए। मैं ने आप ही के लाभ हेतु कहा था। मैं पुरुष हूँ और इस समाज में पुरुष के सात खून माफ़ हैं। आप के पिता उदार सही, पर जिस स्थिति में उन्होंने आप की माँ को सहायता का वचन दिया था, उस स्थिति में आप को देख कर शायद वे भी आप की सहायता न कर सकते। इसलिए मैं ने आप को रोका था। आप मेरा ख्याल छोड़िए। अपने जीवन को सफल बनाइए। आप को यहाँ पसन्द नहीं तो इस रिश्ते को छोड़ दीजिए। शाँति के साथ अपना जीवन-साथी चुनिए।"

सत्या जी ने जैसे यह सब नहीं सुना। "आप एक बार देख तो आइए।" उन्होंने फिर अनुरोध किया।

जगमोहन समझ गया। शायद सत्या जी जिस से शादी करने जा रही हैं वह बड़ा कुरूप है। सत्या जी को पूरा विश्वास है कि जगमोहन उसे देखेगा तो उनसे अनुरोध करेगा कि वहाँ शादी न करें और वह अंतर जो दोनों के मध्य आ गया है अपनत्व भरे उस अनुरोध के बाद धीरे धीरे मिट जायगा—न, वह ऐसा नहीं करेगा। वह चुप बैठा रहा, तभी उस ने सोचा, शायद सत्या जी ने निराशा-जनित क्रोध के आवेग में अपने पिता को वहाँ शादी करने की अनुमति दे दी है

और अब उस बन्धन से निकलना चाहती हैं। क्यों न वह उन के भावी पति को देख आये और उन्हें उस बन्धन से मुक्त होने में सहायता दे! - लेकिन उन्हें उस बन्धन से निकालने का मतलब—विशेषकर उस के लिए— स्वयं उस में फँसना था!......न वह यह नहीं कर सकता और वह चुप बैठा रहा। कहा तो उस ने सिर्फ़ यह, "मैं जा कर क्या करूँगा। जब तुरो कहती है कि ठीक नहीं, तब आप क्यों कर रही हैं? छोड़ दीजिए, यों आत्महत्या करने से लाभ?"

"कर सकती तो अच्छा होता," सत्या जी ने कहा, "पर कर नहीं पायी।"

और उन्होंने बताया कि किस प्रकार पिछली शाम वे रावी पर गयी थीं। रावी का पानी जो सर्दियों में एक क्षीण सी रेखा में, मरे हुए साँप सा लेटा रहता है, शेषनाग सा फुफकारें मार रहा था। वे पुल पर इधर से उधर दो तीन बार गयीं। पानी का बहाव इतना प्रबल था कि पुल काँप रहा था। वे कूद पातीं तो सब परेशानियों, लाँछनों, कलंकों से सदा के लिए निष्कृति पा लेतीं। लेकिन चढ़ी हुई रावी को देखने इतने लोग गये हुए थे कि उन्हें साहस नहीं हुआ। एक बार वे बढ़ीं तो एक आदमी ने बाँह खींच कर उन्हें परे हटा दिया कि गिर जाओगी बहन दूर से देखो! फिर जब उन्होंने कोशिश की तो पानी की लहरें जैसे उछल कर उन्हें पीछे फेंकने को बढ़ीं—उन्हें लगा कि वे कूदीं तो शायद लहरें उठा कर उन्हें बाहर पटक देंगी....और सत्या जी जैसे गयी थीं, चुपचाप चली आयीं। वे मुक्ति चाहती हैं, पर शायद उन की किस्मत में इसी तरह चलना लिखा है.....सो वे अपनी नियति से न लड़ेंगी...यदि उन के भाग्य में अफ़रीका जाना ही लिखा है तो जायँगी।

जगमोहन के हृदय में फिर दूर तक कुछ धँसता चला गया। पर
में पैठने का अवसर उस ने नहीं दिया और वह

बोलने लगा।

"मुझे आप से हमदर्दी है," उस ने कहा। "मैं आप की इ
भी करता हूँ। पर हम मिल कर सफल जीवन न बिता सकेंगे, इस
मुझे पूरा विश्वास है। आप मेरा ख्याल छोड़ दीजिए। मैं नहीं कह
आप यहीं शादी कीजिए। पर यदि आप करें तो उसे स
बनाइए!"

.....और उस ने वास्तविक सौन्दर्य पर एक छोटा-मोटा भा
दे डाला। वह क्या बक रहा है, वह स्वयं न समझता था, पर वह
रह कर हारना न चाहता था। वह उदासी जो सत्या जी की कव
आकृति को विचित्र-प्रकार से दयनीय बनाये हुए थी, वह अवसाद
उन के स्वर को कुछ अजीब सी नुकीली-आर्द्रता दे रहा था, जगमो
के सयत्न कठोर बनाये हुए हृदय को छेदे जा रहा था। वह छिदा
खत्म हुआ। यह नारी जो इतने दिन से उस के गिर्द मकड़ी का ज
बुने जा रही है, उस की सारी प्रतिभा का रक्त चूस जायगी।
अनचाहे संग को निभाने के लिए वह बाध्य हो जायगा और उसे जी
भर बाध्य रहना पड़ेगा....और वह बके जा रहा था और इस प्रय
से उस नश्तर को अपने हृदय पर प्रहार करने से रोक रहा था।

"जो बाहर से सुन्दर लगते हैं, वे अन्दर से कितने कुरूप हैं, स
जी, यह आप नहीं जानतीं," वह कह रहा था, "और बाहर से उ
सुन्दर न दिखायी देने वालों के वक्ष में सोने का हृदय होता है। अ
रूप की बदौलत नहीं, उस हृदय के सौंदर्य की बदौलत वे अपने सं
का हृदय जीत लेते हैं। मैं न विद्वान हूँ न उपदेशक, पर मैं आप
यही कहूँगा कि आप यदि वहीं विवाह करने जा रही हैं तो अपने प
को अपनी पूरी वफ़ादारी दीजिए! मुझे पूरी आशा है, आप का जीव
सफल होगा और कभी यह ख्याल भी न रहेगा कि आप ने मुझ जै
निकम्मे, बेकार और अयोग्य व्यक्ति का संग चाहा था।"

सत्या जी की दृष्टि निरन्तर उस पर जमी थी, उन की आँखें सजल हो गयी थीं और दरवाजे के प्रकाश में चमक उठी थीं। सहसा जगमोहन की दृष्टि उन चमकती पनियारी आँखों पर गयी और अपनी वक्तृता का क्रम वह भूल गया और सहसा रुक गया।

वे कुछ आगे झुकीं, "बहुत देर से बैठी हूँ," उन्होंने कहा, "अब जाऊँगी। सारा दिन मैं ने यहीं बिता दिया।"

लेकिन वे उठी नहीं। पूर्ववत बैठी रहीं। फिर ज़रा और आगे झुक कर और पानी से झिलमिल आँखों से उस की ओर देखते हुए और भी धीमे, आर्द्र स्वर में उन्होंने कहा, "अच्छा आप मेरी एक बात मानेंगे ?"

जगमोहन ने आँखें उठायीं।

"मेरी शादी पर आयेंगे ?"

जगमोहन की दृष्टि उन से मिली। उसे लगा कि यदि वह कुछ और क्षण उसी स्थिति में बैठा रहा तो अपने आप को संयत न रख पायेगा। ज़रा भी लड़खड़ाया कि वह बह जायगा, फिर वह कुछ न कर पायेगा और वह उठा और कमरे में घूमने लगा और चुप रहने के बदले बोलने लगा।

"यदि मैं कहूँ कि मैं आप की शादी में शामिल होना चाहता हूँ तो ग़लत न होगा," उस ने कहा, "पर मैं हूँगा नहीं।" मैं नहीं चाहता कि पिछला कोई तार आप को बाँध रखे। आप अपने विगत से अपने आपको सर्वथा तोड़ कर, नयी धरती पर अपने पाँव जमाइए, बढ़िए, फूलिए, फलिए! आप का जीवन सुखी हो, इस की मैं दुआ करता हूँ! मैं आप की शादी में शामिल न हूँगा, न मिलूँगा। आप भी अब मुझ से न मिलिए, न पत्र लिखिए। तभी आप सुखी हो सकेंगी।"

सत्या जी उठी थीं। जगमोहन के जी में आयी, वह उन से अपने इस फूहड़पने के लिए माफ़ी माँग ले, पर उस ने कुछ नहीं कहा। वह उन्हें सीढ़ियों तक छोड़ने गया। भाभी रसोई-घर में न थीं, सत्या जी ने

उन से मिलना जरूरी नहीं समझा। नीचे जा कर उन्होंने व
"अब आप जाइए। मेरी कोई ग़लती हो तो माफ़ कर दीजिएगा !"

तब फिर जगमोहन के मन में आया कि अपने व्यवहार के f
क्षमा माँगे, पर क्षमा माँगने के बदले उस ने कहा, "चलिए मैं होतू f
रोड तक आप को छोड़ आता हूँ।"

अपने कमरे में पहुँच कर उस का मन और भी भारी हो गय
अपने इस फूहड़पने के लिए उसे उन से क्षमा माँग लेनी चाहिए थी-
बार-बार यही विचार उस के मन में आता—वह कमरे से बाहर ः
पर आ गया। बाहर मालिक मकान सूट बूट पहन कर कहीं जाने
प्रस्तुत थे।

"किधर चल दिये बाबू जी।" उस ने योंही पूछा।

"मोरी दरवाज़े जलसा हो रहा है न बूचड़खाने के ख़िलाफ़," ब
जी ने कहा और फिर मकान की ओर देख कर उन्होंने अपनी पत्नी अ
पुत्री को जल्दी आने का आदेश दिया।

तब जगमोहन को ख़याल आया कि उसे जल्दी तैयार हो कर च
देना चाहिए। बूचड़खाना-आन्दोलन के सिलसिले मोरी दरवाज़े के बाह
बड़ी भारी मीटिंग होने जा रही थी। हरीश और दुरो तो उस में व्यस
होंगे। उसे समय से कमर्शल बिल्डिंग्ज़ पहुँचना चाहिए, ताकि यदि
कोई साँझ के स्कूल में पढ़ने आये तो निराश वापस न जाय।

वह नहा धो कर तैयार हुआ, पर जब नीचे उतरा तो उस ने सोच
कि सीधे कमर्शल बिल्डिंग्ज़ पहुँचने के बदले वह पहले मोरी दरवा
जाय, कुछ क्षण जलसे का रंग-ढंग देखे, फिर अनारकली की सैर करत
कमर्शल बिल्डिंग्ज़ पहुँचे। समय अभी काफ़ी था, इसीलिए वह घोड़
अस्पताल की ओर चल दिया।

———

५५

मोरी दरवाज़े के बाहर म्यूनिसिपल गार्डन्ज़ में बड़ी भीड़ थी। वह इतना लम्बा चतुर्भुजाकार मैदान खचाखच भरा हुआ था। भाटी दरवाज़े की ओर को बड़ा ऊँचा मंच बना था और बिजली के हंडों और लाऊड-स्पीकरों का समुचित प्रबन्ध था। जगमोहन को रास्ते में एक तांगा मिल गया था। घास मंडी के सिरे पर वह उतरा और सभा-स्थल की ओर बढ़ा। तभी उस ने गणपत रोड की ओर से एक जलूस आते देखा और उस की दृष्टि मैदान में इकट्ठे होने वाले उस महान जन-समूह की ओर गयी।

शाम के साये काफ़ी बढ़ आये थे, पर डूबते हुए सूरज की किरणें दिन के शव से अभी चिमटी थीं। सड़कों पर हल्का-हल्का उजेला था, पर बत्तियाँ जल उठी थीं। जगमोहन जुलूस के साथ मैदान की ओर बढ़ा। बिजली के हंडे जगमगा रहे थे और सजे हुए मंच पर काँग्रेस के एक बड़े नेता गह्वर-गम्भीर वाणी में भाषण दे रहे थे। मैदान के पास पहुँच कर जलूस के फन से नारे के रूप में एक फुंकार सी उठी जो उस की दुम तक सरसराती चली गयी और फिर जैसे साँप घास में सरक कर गुम हो जाता है, वह जलूस उस जन-समुह में चुप चाप समा गया।

वह इतनी बड़ी विरोध-सभा केवल काँग्रेस की न थी। सरकार के

साथ सहयोग के उस काल में जब अन्य प्रान्तों में काँग्रेस ने मंत्री
बना लिये थे और पंजाब धारा सभा के विरोधी दल में भी और
लोगों में भी अफ़वाह थी कि उस के नेता और सदस्य चाहे ब
कितना सरकार का विरोध करें, व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए सर सि
के कृतज्ञ हैं, पंजाब में काँग्रेस की साधारण सभाओं में उतनी भ
होती थी। इस सभा का आयोजन चाहे काँग्रेस-पार्टी ने किया हं
उसे आर्य-समाज, हिन्दू-महासभा, सनातन-धर्म-प्रतिनिधि-सभा-
का सहयोग प्राप्त था। यों कहना चाहिए कि लाहौर में उस बूच
के विरुद्ध हिन्दुओं में क्रोध की जो लहर उठी थी, उसे काँग्रेस ने स
के विरोध-हित अपना वाहन बना लिया था।

नेता उस समय कुछ आँकड़े देकर समझा रहे थे कि उस स
बूचड़खाने में रोज़ कितनी गायें (और बैल) ज़िबह किये ज
हफ़्ते में कितने और साल में कितने? उन का कहना था कि भारत
जहाँ कभी दूध की नदियाँ बहती थीं, दूध की सूरत तक को
जायगा। यह मामला उन के ख्याल में न धार्मिक था न साम्प्रदा
यह केवल सामाजिक था। समाज के स्वास्थ्य का इस से संबंध
आने वाली पौध के स्वास्थ्य का इस से संबंध था।

"हमें कहा जाता है," उन्होंने अपनी आवाज़ को क़दरे
करते हुए कहा, "कि बूचड़खाने के साथ एक बड़ा डेयरी फार्म
और वहाँ गाये-बैल बकरे पाले जायेंगे और उन्हीं को वहाँ ज़ि
किया जायगा। पर हम जानते हैं कि जब लड़ाई शुरू होगी—
बूचड़खाना दर असल लड़ाई के दिनों में मांसाहारी अंग्रेजी सेना
गोश्त पहुँचाने के लिए बनाया जा रहा है—तो ग़रीब लोग, कीमतें
आसमान छू लेने से अपने दूध देने वाले जानवर लेकर वहाँ बेच दें
हमारे बच्चों के मुँह से न केवल दूध छिन जायगा, बल्कि हमारी
भी छिन जायगी, क्योंकि हमारी काश्त की रीढ़ हमारे हलों को च

वाले बैल भी धीरे धीरे वहीं जा पहुँचेंगे और, बिजली की मदद से क्षणों में सैकड़ों के सिर अलग कर देने वाले, छुरों का शिकार हो जायेंगे। हिन्दू ही नहीं, हमारे देश के मुसलमान भी उतना ही नुकसान उठायेंगे। फिर कौन जान सकता है कि इस बूचड़खाने में सुअर न मारे जायेंगे और उनका गोश्त प्रिजर्व न किया जायेगा।''

तब समूह में एक क्रोध की लहर दौड़ गयी और 'शेम' 'शेम' और 'सिकन्दर हयात मनिस्ट्री मुर्दाबाद' के नारे फ़िज़ा में गूंज उठे।

इस के बाद नेता ने बताया कि किस प्रकार अंग्रेज़ों ने पहले ही हमारी कृषि को नहीं बढ़ने दिया। हमारी खेती बाड़ी का तरीका सदियों पुराना है। अंग्रेज़ नहीं चाहते कि हमारे उद्योग-धन्धे बढ़ें, हमारी खेती बढ़े और हम आत्म-निर्भर होकर इंगिलस्तान का मुकाबिला करें। यदि हम ने यहाँ बूचड़खाना बनने दिया तो दूसरे सूबों में भी, जहाँ काँग्रेस की सरकारें नहीं हैं, ऐसे बूचड़खाने बन जायेंगे। हमारी गायें और बैल सहस्रों की संख्या में वहाँ कटेंगे और हम बिलकुल अपाहिज हो कर रह जायेंगे। यही कारण है कि काँग्रेस ने इस आन्दोलन को अपनाया है। उन्होंने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि हिंस्रता, निर्ममता और निर्दयता का वैसा अड्डा बनाने का काम हरमन मोहता की मारवाड़ी फ़र्म ने लिया है। सभा में 'शेम' 'शेम' के नारों के थमने के बाद उन्होंने घोषणा की कि उन के ज़ोर देने पर मारवाड़ी कम्पनी ने पेशगी सरकार को लौटा दी है और बूचड़खाना बनाने से इनकार कर दिया है। इस पर सभा भर में अनायास तालियाँ गूंज उठीं और 'हरमन मोहता जिन्दाबाद' के नारे लगाये गये।

''लेकिन मारवाड़ी कम्पनी के इनकार करने पर,'' नेता ने कहा कोई और ठेका ले लेगा, कोई अँग्रेज, कोई ईसाई, कोई मुसलमान। हमें चाहिए कि हम इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक न बनायें और इस

में ऐसा बल भर दें कि सरकार को अपनी वह खूनी-स्कीम वापस पड़े।"

इस पर नेता के पीछे बैठे किसी व्यक्ति ने एक परचा उन के में दिया और उन्होंने उसे पढ़ कर एलान किया, "येलो-ट्राँसपोर्ट-स के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री चोपड़ा दो हज़ार की रकम आन्दोलन के दान देते हैं।"

सभा में तालियों से गूँज उठी। श्री चोपड़ा क्षण भर को उठे। जगमं चकित रह गया जब उस ने सूट-हैट के बदले उन्हें दूध जैसी खाद लिबास में आवृत देखा। चोपड़ा के पीछे मंच पर ही उसे खाद वस्त्रों में सुसज्जित सरदार हरनाम सिंह और रौशन लाल भी दिख दिये। चोपड़ा साहब ने सभा के सामने हाथ जोड़ दिये और बैठ ग

सभा फिर तालियों से गूँज उठी। तभी जगमोहन को ख्याल आ कि उसे तो साँझ के स्कूल में पहुँचना है — दुर्गो ने कहा था कि और हरीश जी को मोरी दरवाज़े की मीटिंग का प्रबन्ध सम्भालन इसलिए जगमोहन समय से कमर्शल बिल्डिंग्ज़ पहुँच जाय! यह ध आते ही वह पीछे को मुड़ा। बड़ी कठिनाई से बाहर निकला, क्यों तब तक न जाने कितने जलूस आकर उस जन समूह में समा गये सड़क पर मोटरों का ताँता लगा था और रास्ता बिल्कुल बंद था।

'इस सभा को देख कर मालूम होता है कि हाँ काँग्रेस भी साँस रही है,' उस ने मन ही मन कहा, 'नहीं जब से उस ने अपने मन्त्री-मं बनाये हैं, ऐसा लगता है (कम से कम पंजाब में, उस ने मन ही सुधार किया) जैसे वह कुम्भकर्ण की नींद सो गयी है।'

अनारकली पूरी बहार पर थी। वहाँ सभा में था तो लगता से बाज़ार बंद हो गये हैं और बुद्ध और गाँधी के देश में भुन्नक्ख जैसी संस्था को मिटाने के लिए लोग सभा-स्थल की ओर भागे जा हैं, पर सभा-स्थल से कुछ ही अन्तर पर यहाँ अनारकली में इस बात

आभास-मात्र भी न था कि कहीं निकट ही कोई महत्त्व-पूर्ण सभा भी हो रही है, जिस में एक दूसरे की जेबें ही नहीं, वक्त पड़ने पर गला तक काट देने वाले लोग निरीह पशुओं की जान बचाने की चिन्ता में पसीने-पसीने हो रहे हैं। क्रय-विक्रय उसी निष्ठा से जारी था, अपनी धुन में मस्त लोग इधर से उधर जा रहे थे। शोर शराबा, हँसी-ठहाके गहमा-गहमी—कान पड़ी आवाज़ सुनायी न दे रही थी और भीड़ के कारण बाज़ार से गुज़रना कठिन था—साड़ियाँ, सूट, तहमदें, पाजामें, शलवारें, गरारे हर लिबास जैसे एक न खत्म होने वाली प्रदर्शनी के रूप में आँखों को लुभा रहा था। 'बूचड़खाने का ठेका लेने वाले मारवाड़ी सेठ हरमन मोहता और अनारकली के इन दुकानदारों में क्या अन्तर है?' जगमोहन ने सोचा, 'शायद इन में से एक भी न हो जो रुपये आने पाई को छोड़ बेचारी गौ या उस से भी बेचारे किसान की चिन्ता कर रहा हो।' हरमन मोहता का ध्यान आ जाने से वह हँसा। 'क्या यह विडम्बना नहीं कि माँस छोड़ प्याज़ को भी छूने से परहेज़ करने वाला मारवाड़ी उस बिजली से चलने वाले बूचड़खाने का ठेका ले, जहाँ सहस्रों पशु रोज़ ज़िबह किये जाते हों और उन के गोश्त को खराब होने से बचाने के लिए कोल्ड-स्टोरेज का प्रबन्ध हो और उन के रक्त को खाद्य सामग्री में परिवर्तित करने और उन की खालों को साफ़ कर काम में आने लायक बनाने के लिए मशीनें लगी हों।' हरमन मोहता से हट कर उन का ध्यान चोपड़ा साहब और उन दूसरे पूँजीपतियों की ओर चला गया जो धन से काँग्रेस की सहायता कर रहे थे। 'जिस प्रकार हिन्दुओं के इस आन्दोलन को काँग्रेस ने अपने हित के लिए मोड़ लिया है, काँग्रेस के इस आन्दोलन को पूँजीपति अपने हित में न मोड़ लेंगे? ये लोग जो रुपया कमाने के हित अपने धर्म, विश्वास, रीति-नीति को छोड़ सकते हैं, सत्ता पाने पर क्या ये सब गाँधी और अहिंसा के भक्त बने रहेंगे, किसानों और मज़दूरों को सचमुच लाभ पहुँचायेंगे और देश

में जनता का राज्य कायम करेंगे और ये मनिस्टर जो ५०० रुपया महीना वेतन लेकर अपने त्याग का ढिंढोरा पीट रहे हैं, क्या अँग्रेज़ों के जाने के बाद भी ऐसे ही त्यागी बने रहेंगे ?'

और इन्हीं आशंकाओं में डूबता-उतराता वह कमर्शल बिल्डिंग्ज़ पहुँच गया। उसे भय था कि शायद उसे बहुत देर हो गयी, लेकिन जब हाल में उसे कोई भी दिखायी न दिया तो उस ने सुख की साँस ली।

जहाँ तक 'येलो-[illegible]' के उस आन्दोलन का संबंध है, जगमोहन की स्थिति एक दर्शक की सी थी। राजनीति और समाज-शास्त्र के उस विशाल सागर के किनारे घुटनों तक पानी में खड़े उस व्यक्ति सा वह लहरों को निरख रहा था, जो उन में तैरना तो चाहे, पर जिसे लहरों की गति-विधि और उन में तैरने की कला का कुछ भी ज्ञान न हो।

दुरो के कहने पर वह साँझ के स्कूल में पढ़ाने भी लगा था, हरीश के साथ वर्कर्ज़ के घरों में जाने और उन की सभाओं में भाग भी लेने लगा था, पर उस की वह सब सरगर्मी उस समय अपनी कटु-आर्थिक स्थिति, शिक्षा-प्राप्ति के मार्ग की बाधाओं, प्रोफ़ेसर बैजनाथ और उन की श्रीमती के दुर्व्यवहार और सत्या जी के जोंक सरीखे प्रेम से उस के पलायन के फल-स्वरूप ही थी। पर वह पानी में मौन रूप से खड़ा केवल लहरों के दोलन-प्रदोलन ही को न देखना चाहता था। उन के सीने पर तैरना भी चाहता था। इन कुछ दिनों में दुरो और हरीश से उस ने जो थोड़ा बहुत सीखा था, उसी को Life Buoy* बनाये वह तैरने का प्रयास कर रहा था।

---

*तरेरी या तिरैरी=डूबने से बचाने वाली मशक।

धीरे धीरे वह समझने लगा था कि पूँजी और श्रम का क्या संबंध है ? पूंजी की भूख भोजन पाने पर मिटने के बदले कैसे और बढ़ती है। उस का घेरा नीचे से ऊपर को जाते हुए मिस्र के पिरामिडों की भाँति संकुचित से संकुचिततर होता रहता है, यहाँ तक कि जनता के उस अपार जन-समूह के सिर पर कुछेक पूंजीपति आसन जमाये बैठ जाते हैं। क्यों कुछेक को समस्त सुख सुविधाएँ प्राप्त हैं और क्यों शेष सब कल्पनातीत अभाव में पलते हैं ? क्यों कुछ के लिए शिक्षा-संस्कृति के मार्ग प्रशस्त हैं और क्यों शेष को पग-पग पर दुर्गम कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ? ग़रीबी और अमीरी में क्यों इतना महान-अन्तर है ? यह सब धीरे-धीरे उसकी समझ में आने लगा था। स्पष्ट रूप से नहीं, पर कुछ अस्पष्ट सा, धुँधला-सा आभास इस समस्या के समाधान का उसे मिलने लगा था और हरीश दुरो और उस आन्दोलन में उस की दिलचस्पी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी थी। इसीलिए वह नियमित रूप से साँझ के स्कूल में आने लगा था। वह पढ़ाता था, पर पढ़ता भी था।

जहाँ तक उस के पढ़ने वालों का संबंध है, उन में कोई ऐसा उत्साह न था जो उसका साहस बढ़ाता—इतने दिन से वह पढ़ाने आ रहा था, पर उस के प्रौढ़-पाठकों की संख्या कभी आठ दस से अधिक न बढ़ी थी। अपने थके-हारे अंगों को किसी शराब खाने अथवा सिनेमा घर में आराम देना मज़दूरों को उस स्कूल में आने से कहीं अच्छा लगता था। नये नये पढ़ने वाले आते रहते थे। पर पढ़ने की साध के बदले कुछ तमाशा देखने की भावना उन में अधिक होती। दो एक केवल दुरो के कारण आते। सीढ़ियों में (उतरते अथवा चढ़ते समय) उस ने दो एक बार उन्हें दुरो के संबंध में अश्लील बातें भी करते सुना था और उस के मन में शोला सा लपका था। उस की समझ में न आता था कि हरीश उन अनगढ़, अपढ़, असंस्कृत मज़दूरों को पढ़ाने का काम दुरो को क्यों सौंपे हैं। अपनी आशंका उस ने हरीश के सम्मुख भी रखी

थी। पर हरीश जी का ख्याल था कि वे धीरे-धीरे समझ जायेंगे, "ओं
के स्कूल का यही तो काम है," उन्होंने कहा था, "नारी की स्थि
भारत में पण्य-वस्तु से अधिक नहीं रही। और हमें जहाँ पूँजी
तलिस्म तोड़ कर मज़दूरों को उस के इन्द्रजाल से मुक्त करना है, व
नारी को भी अपनी स्वतन्त्र-सत्ता पाने और पुरुष को उसे स्वीकार क
को तैयार और, जरूरत पड़ने पर, विवश करना है। कांग्रेस के आन्दोल
ने यह बड़ा काम किया है कि नारी को घर की चारदीवारी से बा
निकाल कर पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलने की प्रेरणा दी है
यदि कहीं भारत स्वतन्त्र हुआ, यदि कहीं सचमुच जनता का राज हुआ
तो नारी भी अपना समानाधिकार पायेगी और पुरुष को उस से अच्छ
व्यवहार करने को बाधित होना पड़ेगा। उस समय तक इस फ्रण्ट प
बहुत से पूर्व-ग्रहों से लड़ना होगा। रही दुरो, सो उस की तुम चिन्ता
करो। वह हिमातप से मुरझाने वाली लतर नहीं, प्रबल-शीत और प्रचंड
घाम सहने की शक्ति रखने वाली करीर की झाड़ी है। उसकी अपन
आँखों में पर्याप्त तेज है। साधारण लोगों की मजाल नहीं कि उस
आँखें भी मिला सकें।"

हरीश जी की बात से वह पूर्णतः सहमत न था, पर दुरो के तेज क
वह मानता था। उस के व्यवहार में सत्या जी जैसी रहस्यमयता न थी
कुछ ऐसा खुलापन था जो संगी-भाव के बावजूद मन में आदर औ
श्रद्धा उपजाता था। उस की आँखों में ऐसा तेज था कि आँख मिलने
पर साधारण आदमी को आँखें झुकानी पड़ती थीं।

"आ गये बाबू जी? हम ने तो समझा कि आज हमीं अपने को
पढ़ायेंगे। न बहन जी आयीं न आप।"

जगमोहन अपने विचारों में मग्न कोने की मेज़ पर रखी पत्र

पत्रिकाओं को उलट रहा था कि बाहर बारजे से कलुआ की आवाज़ आयी।

"रास्ते में कांग्रेस की सभा हो रही थी, उसी में देर हो गयी कलुआ।" जगमोहन ने कहा, "हरीश जी और दुरो वहीं हैं। उस के प्रबंध में लगे हैं। उस के खत्म होते ही आयेंगे।"

सांझ के स्कूल में आने वालों में कम्पनी के चौकीदार कलुआ से जगमोहन को विशेष स्नेह हो गया था। जहाँ तक शिक्षा का संबंध है, उस के लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। सात दस दिन जगमोहन को उसे पढ़ाते हुए हो गये थे, पर अभी तक वह 'अ आ, इ ई भी याद न कर सका था। लिखने की तो बात ही दूर रही! जब पूरे एक सप्ताह की माथा-पच्ची के बाद उस ने अ की जगह इ और इ की जगह उ पढ़ा तो जगमोहन झुँझला उठा। तब कलुआ बोला, "बाबू घबराओ नहीं, धीरे धीरे आता है पढ़ना। बुड्ढे तोते जल्दी नहीं सीख सकते।"

जगमोहन की सारी झुँझलाहट शर्म के अहसास में बदल गयी। एक अजीब भोलापन उसे कलुआ की आँखों में दिखायी दिया। और उस ने मन-ही मन संतोष और सब्र से काम लेने की सौगन्ध खायी।

जहाँ तक लिखे हुए अक्षरों को स्वयं पढ़ने का संबंध है. कलुआ चाहे कन्नी कतराता हो, पर जहाँ तक उन्हीं लिखे हुए अक्षरों को किसी दूसरे से सुनने का संबंध है, उस की भूख अमिट थी। दूसरे देशों में जनता ने किस तरह राज-सत्ता को अपने हाथ में ले लिया है; किस तरह किसी एक व्यक्ति द्वारा दूसरे का शोषण उन देशों में असम्भव हो गया है, ऐसी बीसियों बातें जो दुरो और वह और समय मिलने पर वसंत उसे सुनाते, वे कलुआ बड़ी अच्छी तरह याद रखता था। उस ने वर्णमाला, चाहे याद न की हो, पर इन बातों को भली प्रकार हृदयंगम कर लिया है, इस का पता जगमोहन को 'गेरो-दल-यूनियन' के उस छोटे से

आन्दोलन में चल गया था। अपने सभी साथियों में वही था, हरीश जी का साथ न छोड़ा था। उस समय जब 'येलो-बस-यूनि सभी वर्कर्ज़ नूरा की यूनियन में चले गये थे, कलुआ अपने चन्द स के साथ बराबर आता था।

"तुम अकेले ही आज कैसे हो?" जगमोहन ने कहा, शे जलसा देखने चले गये।"

"नहीं बाबू जी, इस जलसे के बदले तो वे सिनेमा जाना समझते। देवदास, लगा हुआ है निशात में, सब उसी के सीछे हैं। किन्तु अब वे यहाँ न आयेंगे।"

"नूरे की यूनियन में चले गये?"

"बड़ा लालच दिया है बाबू रामसहाई ने।" कलुआ बोला माँगें हम ने भेजी थीं, वे सब मैनेजर ने स्वीकार कर ली हैं, तरक्की दे दी है, पर आप देख लीजिएगा, कुछ दिन बाद एक-ए निकाल बाहर करेंगे और किसी की सुनवाई न होगी। सब जमा खर्च है, कहीं कोई लिखा-पढ़ी नहीं हुई। कुछ होने-जाने व वहाँ, यह आप समझ लीजिए।"

"तुम क्यों नहीं गये?" हँसते हुए जगमोहन ने कहा।

"हम तो बाबू जी, अब न जायेंगे। यों भी मर्द की जबा की जबान ही होती है। बाबू रामसहाई कहते थे कि वापस जाओगे तो तरक्की अलग मिलेगी और साहब अलग खुश होंगे। कह दिया कि साहब चाहे खुश हों या नाराज़, हम वहाँ जान छोड़ेंगे। ये सब लोग जो अब खुश हैं, साल छै महीने बाद भुट सिर दे दे कर रोयेंगे। नूरे की यूनियन कोई रजिस्टर तो हुई नूरा उस का सेक्रेट्री है और बाबू राम सहाई प्रेसीडेंट। वह यूनिय जैसे चोपड़ा साहब की जेब में है, जब चाहें खतम कर दें।"....

"अगर तुम्हें नौकरी से जवाब दे दें" जगमोहन ने उ

दिल की थाह पाने को पूछा।

"अभी तो जल्दी हमें जवाब न देंगे। पर देंगे ज़रूर। हम ने भी तय कर लिया है कि हम नौकरी छोड़ देंगे पर मित्र-द्रोह के भागी न बनेंगे। यहाँ नौकरी न रही तो कहीं और कर लेंगे। हमें कौन सी लाटसाहबी करनी है। चौकीदार यहाँ हैं, चौकीदार वहाँ रहेंगे। हमें तो हरीश बाबू रोटी का आसरा दें तो हम कहीं और काम ही न करें।"

"मैं हरीश जी से कहूँगा," जगमोहन ने कहा, "तुम्हारे जैसा वर्कर तो किसी भी पार्टी के लिए एसेट है।"

"एसेट क्या बाबू जी ?"

"एसेट ....अब तुम्हें कैसे समझाऊँ ?" जगमोहन उपयुक्त शब्द न ढूंढ पाने से बोला, "आओ पहले कुछ पढ़-पढ़ा लें, फिर बातें करेंगे।"

और कलुआ ने बड़े शोक से किताब निकाल ली।

५६

"हलो कॉमरेड्ज़ !" हरीश ने हाल में, प्रवेश करते हुए कह

कलुआ अपना पाठ रट रहा था और जगमोहन दुरो से एक पुस्तक पढ़ने में तल्लीन था। चौंक कर दोनों उठे। हरीश पीछे दुरो भी थी।

"मीटिंग खत्म हो गयी ?" जगमोहन ने अपनी जगह हरीश लिए छोड़ते हुए कहा।

"मीटिंग तो अभी दो एक घंटे और चलेगी। दो दिन दौड़ कर रहा हूँ। पहले ही यूनियन के संबंध में थकावट कम न मैं इतना थक गया कि श्याम पर सब कुछ छोड़ कर चला आया।

"कैसी रही सभा ? मैंने तो सिर्फ डाक्टर साहब का लैक्चर सु जगमोहन ने पूछा।

"उनका बस चलता तो सिकन्दर का साथ देते, पर रैंक-एण्ड- ने उन्हें विवश कर दिया। सिकन्दर की सरकार को इसमें निश्‍ शिकस्त होगी और पंजाब के सोये आन्दोलन को बल मिलेगा।"

"क्या ख्याल है आपका इस आन्दोलन के संबंध में ?"

"जैसा बावेला मच रहा है, शायद वैसी हानि तो बूचड़खाने होती, क्योंकि बूचड़खाने के साथ एक बृहद् डेयरीफार्म भी होत फिर दूसरे देशों में, जो मांसाहारी हैं, क्या बूचड़खाने नहीं है ? त

वहाँ क्या दूध की कमी है ? हमारे देश से तो अच्छा ही दूध मिलता है वहाँ। लेकिन इस सवाल पर जनता को बड़ी जल्दी साथ लेकर सरकार के विरुद्ध उभारा जा सकता है।" हरीश हँसे, "धर्म के नाम पर इस पुण्य-भूमि में चाहे जो कुछ कर लो। देश की गौशालाओं में न जाने कितने पशु बेकार पड़े अन्न का अपव्यय करते हैं, उस अन्न को स्वस्थ पशुओं को खिलाने के बदले हमारे देशवासी उन्हीं सिसकते हुए ठठरों को पाले जायेंगे, देश के अकाल में चाहे हज़ारों का सफ़ाया हो जाय, पर लाखों बेकार साधू यहाँ दिन रात पाले जाते हैं। कठिन और निर्मम सामाजिक परिस्थितियों के कारण विधवाएँ यदि वेश्यालयों और कोठी खानों में चली जायँ तो किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती, किन्तु यदि उनमें से कोई अन्तर्जातीय विवाह कर ले तो एक तूफ़ान मच जाता है। जिस देश में स्वस्थ पशु पाले जायें, वहाँ बेकार पशुओं को खत्म करने के लिए बूचड़खाना ठीक ही नहीं, बल्कि ज़रूरी होगा, पर जहाँ अस्वस्थ, बेकार ठठरों को पालना धर्म का अंग समझा जाता हो और दूध तो दूर, कोई दूसरी चीज़ भी जिस पुण्य-भूमि में मिलावट के बिना न मिलती हो, वहाँ भाई गौ या सुअर-हत्या के नाम पर, प्रस्तावित सरकारी बूचड़खाने को, और कुछ नहीं तो विदेशी सरकार के विरुद्ध तो प्रयोग किया ही जा सकता है।" हरीश फिर हँसे और बोले "यहाँ का क्या हाल चाल है ?" "मालूम होता है कलुआ के सिवाय और कोई नहीं आया।"

कलुआ ने वही बात दोहरायी जो उस ने जगमोहन से कही थी।

"हमने ग़लती की," हरीश बोले, "नूरे जैसे आदमी को लेकर किसी यूनियन का संगठन करना ही हिमाक़त था। यह तो ठीक है, इससे शुरू शुरू में सफलता मिली, परन्तु अन्त हमारे सामने है। हमें पहले वर्कर्ज़ को इन मामलों के बारे में पूरी तरह शिक्षित करना चाहिए था, फिर यूनियन संगठित करनी चाहिए थी। वैसी यूनियन को मालिकों

की कोई भी चालबाज़ी न तोड़ सकती। ख़ैर।" उन्होंने ल
भरते हुए कहा, "बड़ा कीमती तजुर्बा हासिल हो गया।"

कुछ क्षण कमरे में निस्तब्धता रही, फिर हरीश ने क
सोचता हूँ, हमें यह दफ़्तर बन्द कर देना चाहिए, स्टडी-सरकल
है, सो वह अभी ग्वालमंडी में चल सकता है। बड़ी सभाएँ
लिए इस का आयोजन किया था, अब तो वैसी कोई ज़रूरत न
पार्टी के पास तो पैसे की कमी है। यहाँ तो किराये में हिस्सा
ही पड़ेगा।"

"ठीक है। वहाँ लाइब्रेरी भी है और फिर साँझ के स्कू
कलुआ भाई के सिवाय और कोई पढ़ने वाला भी अभी नहीं
ने कहा,

"धीरे धीरे सब आयेंगे दीदी," कलुआ बोला, "औ
आयेंगे तो जायेंगे नहीं।

"ठीक कहते हो!" हरीश बोले, "जो संबंध हम ने ब
उन को तोड़ना न चाहिए। हमारी बात उन्होंने नहीं मानी,
हर्ज नहीं। हमें सुख-दुख में उन की ख़बर लेते और संबंध कं
रखना चाहिए। और कुछ नहीं तो सांझ के स्कूल में अथवा स्टडी
में उन्हें लाते रहना चाहिए।"

और हरीश जी उठे।

तब कलुआ ने अपनी बात कही कि यदि उस की रोटी
का प्रबन्ध हो जाय तो वह चोपड़ा साहब की गुलामी छोड़ क
की सेवा करे।

"इस से अच्छी बात और क्या हो सकती है," हरीश ज
"लेकिन तुम्हारा वहाँ रहना बड़ा ज़रूरी है। तुम्हारे द्वारा ही
दूसरे मज़दूरों से संबंध बनाये रख सकेंगे। बल्कि मैं तो तुम
कहूँगा कि तुम उन की यूनियन में भी शामिल हो जाओ अ

तुम्हारे मित्रों को निराशा हो—जो ज़रूर होगी—तो फिर उन्हें इसी रास्ते पर लाने की कोशिश करो ।.........मैं बहुत थक गया हूँ," कुछ रुक कर उन्होंने कहा, "चाहता हूँ जा कर आराम से लेट जाऊँ ।"

जगमोहन ने देखा। दुरो बड़े ही स्नेह और सहानुभूति से हरीश के थके, पीले मुख को देख रही है।

कलुआ ने हाल को ताला लगाया और चारों नीचे उतर आये। तब दुरो ने कहा, "आप बड़ा काम करते हैं, कुछ आराम कीजिए। चलिए मैं आपके सिर में ज़रा सा तेल लगा दूं।"

जगमोहन को लगा कि दुरो की आवाज़ में ज़रा सी हकलाहट है। सीढ़ियों भर जैसे वह यही एक वाक्य कहने के लिए साहस बटोरती आयी थी।

"अरे भाई यह अय्याशी हमारी किस्मत में कहाँ!" हरीश हँसे मुझे तो अभी जाकर रिपोर्ट तैयार करनी है, बम्बई से बुलावा आया है, वहाँ लेबर-वर्कर्ज़ की कान्फ्रेन्स हो रही है। जाने से पहले मुझे रिपोर्ट तैयार कर लेनी है।"

"तो भी थके हैं, आज आराम कीजिए। कल से फिर जुट जाइएगा।"

हरीश चुप रहे, जाने उन का मन बम्बई की गोदियों में लथपथ मज़दूरों में लगा था अथवा वे जुहू के विशाल रेतीले किनारे पर खड़े, दृष्टि की सीमा तक फैले सागर के नीले नीले विस्तार को देख रहे थे।

"आप कब बम्बई जा रहे हैं?" दुरो ने पूछा। उस के स्वर में चिन्ता और हकलाहट बराबर थी।

"परसों चला जाऊँगा।" हरीश ने फिर कहा।

"यहाँ का काम.......''दुरो ने कहना चाहा।

"श्याम है, तुम हो, दूसरे कामरेड हैं, कोई ऐसी बात न आ पड़ी

तो हफ़्ते दस दिन में आ जाऊँगा ।"

और वे जगमोहन की ओर मुड़े, "तुम भी भाई पढ़ाई रं
निकाल कर आते रहना ।"

"मैं तो सारा वक्त काम करने को तैयार हूँ। पढ़ाई का
मैं ने छोड़ दिया है।" जगमोहन ने कहा और चलते चलते
अपनी कठिनाइयां बतायीं।

"तुम्हीं अकेले नहीं हो।" जगमोहन की बात सुन कर हरीश
"इस देश में हज़ारों लाखों ऐसे युवक हैं जिन्हें अपना रास्ता
अँधेरा दिखायी देता है। राजनीतिक-ज्ञान उनका नहीं के
है। इन सब कठिनाइयों के स्रोत को ढूंढ पाना उनके बस कं
नहीं। वे समझते हैं कि उनकी किस्मत खराब है।—किस्मत—किस्
किस्मत! हमारे यहां किस्मत का अखण्ड राज्य है। कोई आदमी
वर्ग में पैदा हुआ तो किस्मत वाला है। अच्छे दिमाग़ का मारि
तो किस्मत वाला है। नौकरी मिल गयी तो किस्मत वाला है
किस्मत उल्टी भी हो सकती है— आम हिन्दुस्तानी युवक को ि
बड़ा भारी जुआ दिखायी देती है।" हरीश किंचित हँसे। "इस ः
जीत-हार किस्मत के हाथ है, लेकिन तुम आते रहोगे तो जानो
जिस तरह आदमी बड़ी बड़ी नदियों को बाँध कर उनको सीधे, उ
मार्गों पर ले आया है, इसी तरह इस किस्मत के मुँह ज़ोर दरिय
भी उसने बांध कर सीधे रास्ते लगा दिया है। कौमों ने अपनी वि
आप बनायी हैं। हम भी अपनी इच्छा के अनुसार अपनी किस्म
बनायेंगे। हम यह व्यवस्था बदल देंगे जिसमें कुछ के पास सब
के साधन हैं और शेष नितांत साधन-हीन हैं। सब को एक सरीखे र
मिलेंगे कि वे अपनी किस्मत को अपनी इच्छा, शक्ति, और रु
अनुसार बना सकें।"

बातें करते हुए हरीश मार्केट तक आ गये थे। सहसा वे ः

"अच्छा भाई मैं तो चला।" उन्होंने जगमोहन से कहा, "तुम ज़रा दुरो को गोपाल नगर तक पहुँचा देना।" फिर हाथों को माथे पर ले जाते हुए मुड़ कर कलुआ से बोले, "तुम तो कलुआ भाई हमारी ओर ही रहते हो, चलो चलें मैकलोड रोड तक साथ साथ।"

"जी, जी।" कलुआ ने कहा और उनके साथ चलने को मुड़ा।

हरीश जी भी तेज़ी से मुड़े। दुरो कुछ क्षण खड़ी उन्हें देखती रही फिर पलटी और जगमोहन के साथ चुपचाप चलने लगी।

आकाश पर हल्के सफ़ेद झीने बादल छाये हुए थे जिनके पीछे चाँद यद्यपि पूरी तरह दिखायी न दे रहा था, पर उस की ज्योत्सना लोअर माल, अजायबघर और गोल बाग़ के पेड़ पौधों और रविशों पर छायी हुई थी। उदास उदास हल्की सफ़ेद रौशनी में लोग-बाग भटकी हुई रूहों से दिखायी दे रहे थे। कुछ पग दोनों मौन चलते गये। फिर सहसा दुरो ने पूछा, "एम० ए० करने की अपेक्षा आपने ट्रेनिंग क्यों नहीं ले ली?"

"ट्रेनिंग लेने का उद्देश्य केवल एक है। नौकरी। अव्वल तो यह कि मेरे पास आगे पढ़ने के साधन नहीं, फिर यही कहाँ तय है कि बी० टी० करते ही नौकरी मिल जायगी। आपकी बात दूसरी है। महिलाओं के लिए इस क्षेत्र में काफ़ी जगह है। जहाँ तक हमारा संबंध है, यदि कहीं एक जगह खाली होती है तो पाँच सौ लोग वहाँ दौड़ पड़ते हैं। नौकरी उसे, मिलती है, जो अव्वल दर्जे में पास हुआ हो अथवा जिसकी पहुँच हो। अव्वल दर्जे में पास होने से ज्यादा पहुँच की ज़रूरत है। शेष के सामने किसी छोटे मोटे प्राइवेट स्कूल में मैनेजिंग कमेटी के अत्याचार सहने और गुलामों से बदतर ज़िन्दगी बसर करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं।"

वह चुप हो गया। दोनो मौन रूप से चलते रहे, फिर सहसा जगमोहन

बोला, "कई बार मैंने कम्पीटीशन में बैठने की भी सोची
कम्पीटीशन में बैठने के लिए दाखिले के रुपये जुटाना मेरे लि
हो गया। फिर कम्पीटीशन में सफलता के लिए जिस मेहनत
मेहनत के लिए जिस शाँति और सुविधा की आवश्यकता है,
पास कहाँ है? आज कम्पीटीशन इतने सख्त हैं और उनमें स
के लिए इतनी मेहनत करनी पड़ती है कि कम्पीटीशन देने
आदमी एकदम निढाल हो जाता हैं। मैं ने ऐसे साथी देखे है
दो तीन तीन बार कम्पीटीशन में बैठे और इसी श्रम में उन्हे
सफ़ेद कर लिये, पर सफल न हो सके। ऐसे भी भाग्यवान मेरे
जो सफल हो गये, पर जो इस श्रम से इतने थक गये कि फिर
किताब की ओर आँख उठाकर नहीं देखा। कुछ उदीयमा
कहानी-लेखक अथवा नाटककार थे। कालेज में उन लोगों से ब
आशाएँ थीं, पर एक बार कम्पीटीशन में आने के बाद कविता
लिखना तो दूर रहा, कविता पढ़ने की बात भी उन्होंने नहीं
मैं जब यह सोचता हूँ तो मुझे इस सब से बड़ी वितृष्णा हो
स्वाभिमानी-दयानतदार के लिए इस व्यवस्था में कोई जगह नहीं

क्षण भर रुक कर उस ने धीरे धीरे दुरो को प्रो० बैजनाथ व
घर का किस्सा सुनाया, "मैं वह सब अपमान सह जाता तो एम
में शायद पास भी हो जाता," उस ने कहा। "शायद डिवीयन
लेता। पर उस सब से गुज़र कर मैं जानता हूँ मेरी दशा नंगे
चलने वाले उस व्यक्ति ऐसी हो जाती, जिस के पैरों से क़िसी र
द्वारा फेंका गया बलग़म का लौंदा चिपट जाता है। वह लाख
से पाँव घसीट-घसीट कर उसे उतारता है, पर वह उसे पूरी
उतार नहीं पाता। नल के नीचे वह उसे धो डालता है, पर कल्पन
कल्पना में वह लिजलिजी सी चिपचिपाहट उसे वहाँ निरन्तर
दिखायी देती है। दूसरे के संबंध में मैं कुछ नहीं कह सकता।

अपमान सहते हुए, गिड़गिड़ाती हुई खुशामद से मिनमिनाते हुए, आगे बढ़ते और ऊँचे उठते हैं। तब वे अपना अपमान भूल जाते हैं। दूसरों का अपमान करते हुए, उनसे खुशामद और रिश्वत पाते हुए अपनी प्रगति पर वे संतुष्ट रहते हैं। अपने उन कठिनाई के दिनों का उल्लेख वे बड़े गर्व से करते हैं। मैं सच कहता हूँ, मैं ऐसे बढ़ूँगा तो अपने आप को कभी क्षमा न कर पाऊँगा। वह अपमान उसी लिजलिजी चिपचिपाहट सा मेरी आत्मा से चिमटा रहेगा।"

दुरो कुछ क्षण चुप रही। फिर बोली, "आप ने ठीक किया।" आज के युग में किसी स्वाभिमानी भारतीय के लिए यह जरूरी है कि वह अपनी सब आशाएँ छोड़, सब से पहले विदेशी गुलमी से देश को आज़ाद करने के इस यज्ञ में आहुति दे। मैं भी शायद ट्रेनिंग न लेती, पर हिन्दुस्तान में स्त्रियों की दशा पुरुषों से भिन्न है। आप दिन भर बेकार, बाज़ारों की खाक छानें, सिनेमा तमाशा देखें, और रात को देर से घर जायें, तो आप को कोई कुछ न कहेगा। मैं दिन भर काम करती रहूँ और इसलिए देर से घर पहुँचूं तो बीस आदमी बीस नाम धरेंगे।" और दुरो ने अपने माता पिता की मृत्यु से लेकर मौसी के पास आने और सुबह शाम अनथक काम करके किसी तरह पढ़ने की सुविधा पाने की कहानी कह डाली।

"मेरे मौसा उम्र में इतने हैं जितने मेरे पिता आज होते," दुरो ने कहा, "वैसा ही स्नेह भी वे मुझ से करते हैं। मौसी उन के इस स्नेह को भी सन्देह की दृष्टि से देखती हैं। घर में रहना मेरे लिए वबाल है। कहीं यदि मौसी हम दोनों को इकट्ठे देख लेती हैं तो चार चार दिन तक मुँह फुलाये रखती हैं। बी० ए० करके ट्रेनिंग करना इसीलिए मैं ने ज़रूरी समझा कि मैं इस अपमान और गुलामी से निष्कृति पा कर अपना पेट भर सकूँ और अपना जीवन जी सकूँ।"

एक आत्मीय-सखा की तरह दुरो जगमोहन से अपनी ज़िन्दगी की

कहानी कहती गयी और जगमोहन को लगा जैसे उन दोनों का जीवन एक-समान है। 'पर वे दोनों मिल कर इस जीवन को सफल और सुखद नहीं बना सकते'--उस ने मन ही मन सोचा—और उस के हृदय से एक लम्बी सांस निकल गयी

"सत्या बहन काँग्रेस में काम करती रही हैं," दुरो फिर बोली, "देर-सवेर घर आती रही हैं, पर उन्हें कभी किसी ने कुछ नहीं कहा। अब उन्हों ने अपनी शादी का फ़ैसला किया तो किसी ने आपत्ति नहीं की। उन्हें देखते हुए दूल्हा बड़ी उमर का और खासा कुरूप लगता है। पर वे चाहती हैं। अपनी मालिक आप हैं। कोई नहीं बोला। वे न अपने पिता पर बोझ हैं, न अपने चाचा पर। मेरी बात दूसरी है। मैं जब से काँग्रेस में काम करने लगी हूँ, हरीश जी को लेकर बीस बातें मौसी बना चुकी हैं। मैं चुप रहती हूँ। यदि कहीं कह दूँ मैं हरीश को चाहती हूँ—तो जाने क्या तूफ़ान खड़ा हो जाय! यह 'फ़ैज़' ही ने लिखा है न—'इक ज़रा सब्र कि फ़रियाद के थोड़े हैं!'—मैं जब घबराती हूं तो यही पंक्ति दोहरा लेती हूं।" और वह हँसी। लेकिन जगमोहन के हृदय से एक और गहरी सांस निकल गयी।

वे तेग़ बहादुर रोड के नाके पर पहुँच गये थे। सहसा जगमोहन रुका। उसे ख्याल आया, कहीं अपने ससुराल से आती जाती सत्या जी आगे न मिल जायँ। उस दिन की घटना के बाद वह फिर उन से साक्षात्कार न करना चाहता था। "मैं यहीं से चलता हूँ," उस ने कहा, "मेरी भी दशा लगभग आप जैसी है। मुझे भी समय से घर पहुँचना है।" और उस ने नमस्कार को हाथ उठाये।

दुरो ने नमस्कार का उत्तर दिया और फिर सहसा बोली, "आप सत्या बहन की शादी में नहीं आये?"

"भाभी की तबीयत ठीक न थी इसलिए आ नहीं सका।" और वह मुड़ा, लेकिन मुड़ते हुए उस ने पूछा, "कैसी हुई शादी ?"

दुरो ने कदम बढ़ा लिया था। रुक कर बोली, "सत्या बहन तो शोर मचाने के पक्ष में नहीं, बड़े सीधे-साधे तौर पर आर्य-समाजी ढंग से हो गयी। उन लोगों ने गहना कपड़ा खूब दिया। सत्या बहन ने खादी के कपड़े तज-रेशमी साड़ियां पहन लीं। क्यों उन्होंने वहाँ शादी करना स्वीकार कर लिया ! मेरी समझ में नहीं आता।" फिर निमिष भर रुक कर दुरो ने कहा, "वे तो परसों चली जायँगी।"

"कहां ?"

"अफ़रीका !"

जगमोहन पूछना चाहता था—"इतनी जल्दी ?" पर उस ने कुछ नहीं कहा। एक बार फिर नमस्कार किया और तेज़-तेज़ मुड़ आया।

•

घर पहुँचा तो भाई और भाभी कदाचित् बच्चों को लेकर सिनेमा देखने चले गये थे। उस की मेज़ पर खाने की ढकी थाली के ऊपर एक बन्द लिफ़ाफ़ा पड़ा था। जगमोहन ने लिफ़ाफ़ा खोला। सत्या जी की ओर से पाँच-सात पंक्तियाँ थीं। कितनी देर तक वहीं खड़ा, जगमोहन उन पंक्तियों को बार बार पढ़ता रहा।

प्रिय मोहन जी,

आप शादी पर नहीं आये। मैं क्या गिला करूँ ! आप ने मुझे वह अधिकार ही नहीं दिया। मैं ने आपकी बात मान ली, मैं लाहौर ही से नहीं, हिन्दुस्तान से भी चली जाऊँगी। आपको अब और परेशान न करूँगी। केवल एक प्रार्थना है। परसों शाम सवा छै की गाड़ी हम यहाँ से जा रहे हैं। आप स्टेशन पर केवल एक बार दर्शन दीजिए, फिर मैं जीवन भर आप को कभी किसी बात के लिए तंग न करूँगी।

५७

जगमोहन न रात ठीक तरह सो सका, न दिन भर कोई काम ही कर सका। वह सत्या जी से मिलने स्टेशन पर जाय या न जाय, निरन्तर इसी एक समस्या पर विचार करता रहा। सांझ हो गयी थी जब उसने सहसा तय किया कि उसे अवश्य जाना चाहिए। गाड़ी के चलने को एक डेढ़ घंटे से अधिक समय न था और ऋषि नगर से स्टेशन तक जाने ही में इतना समय लग सकता था। जल्दी जल्दी हाथ मुँह धो कर जगमोहन ने धोती कुर्ता पहना और घर से निकल गया।

घोड़ा अस्पताल के निकट उसे एक ताँगा मिल गया जो घाँस मंडी तक जा रहा था और एक सवारी की पुकार कर रहा था। जगमोहन को डर था कि उसे घर से चलने में देर हो गयी है, जाने गाड़ी मिले न मिले। ताँगा वाले की आवाज़ सुन कर उसने उसे रोका, उसकी अगली सीट पर जा बैठा और उसने सुख की लम्बी साँस ली।

जगमोहन को जब सत्या जी की चिट्ठी मिली थी, उसी क्षण से पश्चात्ताप की एक विचित्र सी भावना ने उसके हृदय को जकड़ लिया था। उसने सत्या जी से बड़ा क्रूर, रूखा, फूहड़ व्यवहार किया है, यही बात बार-बार उसके मन में आती थी। वह चाहे उनसे शादी न

करता—वह सोचता—पर अपनी उस व्यर्थ की अतिरिक्त और असाधारण सतर्कता से उनकी उस ज़रा सी इच्छा को भी यों रद्द न कर देता।......यदि वह उनके विवाह में चला जाता तो क्या होता? क्या सत्या जी की शादी रुक जाती और वे उसके गले में बाहें डाल देतीं?—वह अपनी उस भीरुता पर स्वयं ही व्यंग से हँसा—उसके उस व्यवहार से उन्हें कितनी तकलीफ़ हुई होगी, कितना मानसिक दुख हुआ होगा? .... और उस दिन जब सत्या जी अन्तिम बार उससे मिलने आयी थीं, उस दिन की उनकी उदास-आकृति, उनके स्वर की करुणा, उस करुणा में छिपी प्रार्थना—उनकी बात चीत, भाव भंगी का हर एक ब्योरा जगमोहन के सामने घूम गया......एक लड़की उसे प्यार करती है। उसके लिए हर तरह की कुर्बानी करने को तैयार है, हर तरह की लांछना, निंदा, कलंक सहने को तैयार है—तो क्या उससे (वह उसे न भी प्यार करता हो) इतना भी नहीं हो सकता कि वह उसको सौहार्द दे सके, व्यर्थ ही उसका दिल न दुखाये, उसके घाव को गहरा न करे......और वह अधिक न सोच कर चला आया था।

घास मंडी पर तांगा रुका तो इन्हीं विचारों में लीन, पैसे चुका कर, वह लोहारी के बाहर तांगों के अड्डे की ओर बढ़ा और वहाँ स्टेशन को जाने वाले एक ताँगे में बैठ गया।

लाहौर के जीवन में रसी-बसी सत्या जी समुद्रपार उस परदेश में कैसे रह पायेंगी?—उस ने सोचा—वे रावी से कूद कर आत्महत्या चाहे न कर पायीं हों, पर लाहौर के जीवन को सदा के लिए छोड़ कर उन्होंने एक तरह से आत्महत्या ही कर ली थी। उस अनजान देश में भटकी हुई उस तन्वी की आत्मा की कल्पना करके जगमोहन का गला भर सा आया। उसके हृदय से एक दीर्घ-निश्वास निकल गया। "यह प्रेम भी मानव की कैसी विवशता है"—उसने सोचा—और उसे राजा भर्तृहरि का प्रसिद्ध श्लोक याद आ गया।

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यरक्तः
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च

जगमोहन ने कभी पहले इस श्लोक का भावार्थ हिंदी पदों में देने का प्रयास किया था। ताँगे में बैठे बैठे, उस श्लोक की याद आते ही अपनी वे पंक्तियाँ भी उसे याद आ गयीं।

जिसे चाहता हूँ, विमुख है व मुझ से,
किसी और पर उसका जी आ गया है।
मगर और वह और पर ही मिटा है,
जिसे मेरी स्मिति मेरा स्वर भा गया है।
है धिक्कार उस प्रेम के देवता पर,
कि जो दुःख यह जग में फैला गया है।

सत्या जी उसे चाहती हैं, वह दुरो को चाहता है, दुरो हरीश को चाहती है और हरीश......उनके दिल की बात वह क्या जाने? लगता है जैसे वे तो व्यक्ति-विशेष से नहीं, देश से, देश की जनता से प्रेम करते हैं। जाने वे अपने अहम् अथवा महत्वाकांक्षा ही से प्रेम करते हों! क्या युगों युगों से प्रेम का यही चक्कर नहीं चलता—दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई—क्या मात्र-कपोल-कल्पना नहीं? क्या यह प्रेमी की निपट दुराशा, केवल Wishful thinking नहीं?—सत्या जी ने समझा होगा कि मैं उनकी ओर मायल हूं। जैसे कभी कभी मुझे लगता है कि दुरो मुझ से घृणा नहीं करती। प्रेमी क्या अपने ही प्रेम का बिम्ब अपने प्रिय में नहीं देखता? वह अपने प्रिय को चाहता है, इसलिए क्या वह यह नहीं समझता कि उसका प्रिय भी उससे प्यार करता

है ?......जगमोहन कुछ भी न समझ पाया—शायद दोनों ओर लगने वाली आग की बात भी ग़लत नहीं और भर्तृहरि भी ठीक है। मानव का मन इतनी गुंझरों से भरा है कि सीधा-सूत्र वहाँ कोई नहीं......उसने सिर को झटका दिया। पर दूसरे क्षण वह उस समस्या को दूसरे ही कोण से देखने लगा। भर्तृहरि ने अपने आप को, अपनी प्रेयसी को, प्रेम के देवता को—सब को धिक्कार देकर जंगल की राह ली थी। प्रेम की चोट खा कर कर्म से विमुख हो, उन्होंने जहाँ तक जग का संबंध है, आत्महत्मा-सी कर ली थी। सत्या जी भी देशसेवा का अपना आदर्श, खादी पहनने का अपना प्रण, सब कुछ छोड़ कर अपने आप देश से निर्वासित होकर जा रही थीं—यह कैसा घातक-प्रेम है ? उसे ऐसा प्रेम क्यों नहीं होता ? दुरो यादि उसे प्रेम न देगी तो क्या उसे भी कुछ इसी तरह की आत्महत्या करनी पड़ेगी ?—जगमोहन ने अपने अन्तर को टटोला—उसका प्रेम तो वैसा अंधा और मुँहज़ोर नहीं ! शायद प्रेम उस का सबसे बड़ा दुख या सुख भी नहीं। और जगमोहन के कानों में अहसान द्वारा गायी हुई 'फ़ैज़' की कविता गूंज गयी—

'और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा

सत्या जी का प्रेम बंधन था। उसे बाँध कर छोटा मोटा क्लर्क बना देता और दुरो का प्रेम—जाने वह उसे क्या बना दे, कितना ऊँचा कितना अच्छा, कितना क्रियाशील—उस की संभावनाएं बड़ी थीं।.........कि ताँगा स्टेशन के अड्डे पर जा रुका। जगमोहन की विचारधारा टूटी, वह उतरा और स्टेशन की ओर बढ़ा।

किन्तु शीघ्र ही उस की चाल धीमी हो गयी और सड़क पार करते-करते एक भारी संकोच ने उसे पकड़ लिया।

क्या वह सत्या जी से क्षमा माँगने का अवसर पा सकेगा ?—

अचानक उस ने सोचा—उन के माता पिता उन्हें छोड़ने आये होंगे। हो सकता है शुक्ला जी आदि भी आये हों। दुरो भी होगी। उन सब के सामने वह कहाँ वैसे एकांत के दो क्षण पा सकेगा कि क्षमा-याचना कर सके। अपनी उस भावुकता-जनित-त्वरा पर उसे हँसी आ गयी। उस की चाल और भी धीमी हो गयी।

ज्यों ज्यों वह स्टेशन की ओर बढ़ता गया, उस की विचारधारा त्वरित-गति से उल्टी दशा को भागती गयी। यद्यपि उस के हृदय के किसी गुह्य-स्तर में अब भी सत्या जी से क्षमा माँगने की भावना वर्तमान थी, पर उसके औचित्य के संबंध में अब वह शंकित था।..... यदि उसे अवसर मिल भी जाय तो क्या उसे सत्या जी से मिलना चाहिए? उनसे क्षमा मांगनी चाहिए? .... ठीक या ग़लत, उन्होंने विवाह कर लिया है। उन्हें अब अपने वैवाहिक जीवन को सफल बनाना चाहिए! यदि उन का ध्यान उसी में लगा रहेगा अथवा उसकी ओर से उन्हें ज़रा भी आशा रहेगी अथवा उन्हें ख़्याल रहेगा कि उसे अपने किये पर पश्चात्ताप है तो क्या वे परदेश के उस जीवन में सुख पा सकेंगी? कुण्ठित होकर संभव है भारत लौट आयें! वह उन से कभी विवाह न कर सकेगा और ऐसी स्थिति में उन से स्टेशन पर मिलना उन के और उस के अपने साथ घोर-अन्याय होगा! एक भूल को बढ़ाते जाना होगा!......न वह ऐसा न करेगा। वह वापस चला जायगा।

जगमोहन यही सब सोचते हुए सेकिंड क्लास के टिकेट-घर से प्लैटफ़ार्म ले चुका था, पर प्लैटफ़ार्म लेकर वह आगे नहीं बढ़ा, पीछे को मुड़ आया। सत्या जी के ध्यान को अपनी ओर लगाये रखना न केवल उन के और उन के पति के साथ अन्याय है— उस ने सोचा— उस के अपने साथ भी है।......जब उन्होंने शादी कर ली तो फिर उस से क्यों मिलना चाहती हैं? उस से क्या लाभ होगा?......

और वह तेज़-तेज़ वापस मुड़ा। तभी बायीं ओर मैकलोड रोड की ओर से उसे तीन चार तांगे आते दिखायी दिये। दूसरे ताँगे की पिछली सीट पर सत्या जी बैठी थीं। उन का ध्यान स्टेशन की ओर था। जगमोहन दायीं ओर के थर्ड-क्लास वेटिंग-रूम की चारदीवारी के अन्दर सरक गया। लेकिन अन्दर जाने के बाद वह मुड़ा और गेट के एक ओर हो कर उन्हें देखने लगा। सत्या जी के साथ एक बड़ा मोटा आदमी बैठा था। जब सेकिंड क्लास के पोर्च में तांगे खड़े हुए तो सब से अगले तांगे से एक मोटी, दोहरी ठोड़ी वाली स्त्री और उस के साथ सत्या जी की माँ, दुरो और उस की मौसी उतरीं। फिर सत्या जी और उन के पति। उस लंबे तगड़े आदमी के साथ खड़ी सत्या जी बड़ी ही छोटी लगती थीं। अन्य दो तांगों पर सत्या जी के पिता तथा अन्य रिश्तेदार थे। सब से पिछले से शुक्ला जी और चातक जी उतरे।

जगमोहन चारदीवारी की ओट में खड़ा देखता रहा और जब वे सब लोग चले गये तो वह फिर स्टेशन की ओर चल पड़ा। सत्या जी एक बड़ी ही भड़कीली साड़ी पहने हुए थीं। उनके कानों में कर्णफूल, माथे पर चाँद और गले में रानीहार दूर से भी दिखायी देता था और वह जानता था कि सत्या जी भड़कीले कपड़ों और आभूषणों से घृणा करती थीं। वह धीरे धीरे चला जा रहा था। मस्तिष्क उसे कह रहा था कि उसे चुपचाप वापस लौट जाना चाहिए, लेकिन न जाने एक बार आँख भर कर बदली हुई उस तन्वी को देखने का कैसा कुतूहल उस के मन में जग उठा था कि वह आगे बढ़ा जा रहा था। सेकिंड क्लास के गेट के बाहर एक स्तम्भ की आड़ में वह ऐसे खड़ा हो गया कि वह तो प्लैटफ़ार्म पर होने वाली हर गति-विधि को देख सके, पर वहाँ के लोग उसे न देख सकें। गाड़ी आने में अभी कुछ देर थी। मोटी स्त्री ने जो रंग ढंग से सत्या जी की सास लगती थी, सामान आदि रखवा और गिनवा लिया तो सत्या जी से एक ट्रंक पर बैठने को कहा। सत्या जी

क्षमा माँग ले, पर तभी सत्या जी अपने पति के साथ वापस आयीं और सहसा गेट से बाहर आ गयीं। यदि जगमोहन एकदम स्तम्भ के पीछे न हो जाता तो वे उसे देख लेतीं। वे अपने पति के साथ बातें करती हुई बाहर को चली गयीं। उनकी निगाहें निरन्तर किसी को ढूँढ रही थीं। उनके बाहर जाते ही जगमोहन प्लैटफ़ार्म के अन्दर चला गया और जिधर से वे अभी वापस आयी थीं, उधर जा कर एक स्तम्भ के पीछे छिप गया।

सत्या जी कुछ ही क्षण बाद फिर वापस प्लैटफ़ार्म पर आगयीं। वे प्रकट बड़ी तल्लीनता और प्रसन्नता से अपने पति से बातें कर रहीं थीं। पर उन की आँखें निरन्तर इधर उधर भटक रही थीं। जब वे अपने पति के साथ वापस वहीं चली गयीं, जहाँ उनका सामान पड़ा था तो जगमोहन के जी में आयी कि एक दम भाग जाय पर तभी चातक जी और शुक्ला जी बातें करते हुए उधर आते दिखायी दिये। वह झट से रिफ्रेशमेंट रूम की ओर बढ़ा। पहला निरामिष (Vegetarian) था। वह उस के अन्दर जाने लगा था कि उसे ख्याल आया, चातक जी कहीं उसी में कुछ खाने न चले आयें! इस लिए वह सामिष (Non vegetarian) में चला गया और उस ने एक सोडा माँगा। रिफ्रेशमेंट रूम में काफ़ी भीड़ थी, चाय या नीबू के शरबत या लेमन का शोर मचा था। जगमोहन बाहर से आने वाले दरवाज़े की ओट में बैठ गया कि आने वाले की दृष्टि सीधी उस पर न पड़े। सामने काउँटर के ऊपर शीशा लगा था, जिसमें दरवाज़े से आने जाने वाले दिखायी देते थे। हालांकि उन लोगों में से किसी के उधर आने की सम्भावना न थी तो भी उस ने एक मेज़ से समाचार-पत्र उठा कर अपनी आँखों के आगे रख लिया।

वह चुपचाप सत्या जी और उन के भावी जीवन की उलझनों को सुलझाता उलझाता तीखा सोडा कंठ के नीचे उतार रहा था कि सामने

के दर्पण में उसे दरवाज़े में खड़े सत्या जी के पति की झलक दिखायी दी। झट उस ने समाचार-पत्र अपने आगे रख लिया। वह अन्दर आया। काउँटर पर जा कर उसने कैफ़ी-एस्पीरीन का पैकेट माँगा। इस बीच में सत्या जी दरवाज़े पर खड़ी रहीं। उन की आँखें निरन्तर किसी को ढूँढ़ रही थीं। जगमोहन का हृदय धक-धक करने लगा। उस ने सोडे का गिलास रख दिया था और समाचार-पत्र को अच्छी तरह अपने आगे कर लिया था।

"एस्पीरीन चाय के साथ लेंगी या लेमोनेड के साथ?" वापस आकर उन के पति ने पूछा।

"पर यहाँ तो माँस मछली पकती है।" सत्या जी ने कहा, "मैं यहाँ पानी भी नहीं पी सकती। साथ के रिफ़्रेशमेंटरूम में चलेंगे।"

और वे बाहर निकल गयीं।

"अरे भाई हम भी तो मांस मछली खाते हैं।" उन के पति ने थकी सी हँसी के साथ कहा, "क्या हमारे घर भी पानी न पीओगी।"

और वह भी उनके पीछे निकल गया। जगमोहन के हृदय से गहरा-निश्वास निकल गयी।—वे जानती हैं कि जगमोहन नहीं आया, कि वह शायद नहीं आयगा तो भी एक दुराशा को लिये हुए वे भटक रही हैं। यदि वह उनसे मिल भी लेगा तो उन्हें कौन सा सुख मिलेगा? कैसा संतोष होगा? ...लेकिन वह क्यों छिपा बैठा है?. क्यों नहीं वह मिल ही लेता? जाने या अनजाने, सही या ग़लत, दोष इसमें उसका हो या उनका—उसके कारण उन्हें काफ़ी दुख मिला है। क्या अब, जब वे लाहौर से ही नहीं, हिन्दुस्तान से चली जा रही हैं, जाने कभी फिर मिलेंगी भी या नहीं, वह उन्हें इतना सा भी सुख नहीं पहुँचा सकता? वह इंसान है, पत्थर नहीं! और वह उठा। तभी घड़घड़ाती हुई गाड़ी प्लैटफ़ार्म पर आगयी। वह जल्दी बाहर निकला। साथ के रिफ़्रेशमेंट रूम से सत्या जी और उनके पति बाहर आये। सामने से शुक्ला जी

और पीछे पीछे सत्या जी के पिता भागे आ रहे थे।

"गाड़ी आ गयी, आप कहाँ बैठे हैं," शुक्ला जी ने घबरा कर सत्या जी के पति से कहा।

"इनकी तबियत खराब थी। एस्पीरीन लेने आये थे।" और वे सब तेज़ तेज़ बढ़े।

इस अफ़रातफ़री में उन सब के पीछे चलती हुई सत्या जी निरन्तर इधर उधर देख रही थीं। जगमोहन ने सोचा—यदि वे पलट कर पीछे देख लें!—उसका हृदय ज़ोर से धक-धक कर उठा। उसके जी में आयी—आवाज़ दे। तेज़ तेज़ चल कर उन्हें चौंका दे। पर उसने उन सब के आगे जाते हुए शुक्ला जी को देखा। उनकी व्यंग-भरी-मुस्कान उसकी आँखों के सामने घूम गयी। उसका उत्साह भंग हो गया, गति मन्द हो गयी। कुछ ही पग चल कर वह एक बेंच पर जा बैठा। उसके दायें हाथ को भार तोलने की मशीन थी। उसकी ओट में बैठा वह उन सब को देखता रहा। सामान लद गया। सत्या जी की सास आदि सवार हो गये। पर सत्या जी अपने माता पिता और दुरो से मिलने के बहाने नीचे प्लैटफ़ार्म पर खड़ी थीं और बातें करते और हँसते हुए उनकी निगाहें निरन्तर इधर उधर भटक रही थीं। जब भी उधर को उनकी दृष्टि ढूँढ़ती हुई सी आती, जगमोहन का जी धड़क उठता। उसका मन होता, जाय! जाती बेर उनसे मिल आये!...मानापमान, सुख दुख, ठीक ग़लत के सब विचार उसके दिमाग़ से निकल चुके थे, लेकिन शुक्ला जी और चातक जी की उपस्थिति के कारण उसके पाँव वहीं बँधे थे।

आखिर गार्ड ने सीटी दी। सत्या जी दुरो, चाची, माँ और पिता से मिलीं; भर आने वाली आँखों को उन्होंने पोंछा; शुक्ला जी और चातक जी को नमस्कार किया और गाड़ी में जा बैठीं।

सत्या जी खिड़की में बैठी अपनी आँखें पोंछ रही थीं और कातर-दृष्टि से गेट की ओर देख रही थीं। गाड़ी चलने लगी, सत्या जी को

छोड़ने वाले साथ चलने लगे पर तभी जगमोहन की आँखों के सामने सब कुछ झिलमिलाने सा लगा। उसकी अपनी आँखें सजल हो गयीं।

गाड़ी चली गयी। सत्या जी के सब रिश्तेदार सत्या जी, उन के पति या सास की बातें करने मग्न उस के सामने से निकल गये। जगमोहन ने आँखें पोंछी। वह उठा। तभी शुक्ला जी उस के पास आकर खड़े हो गये। सत्या जी की विदाई के महा-कर्तव्य से छुट्टी पा अब वे बड़े इतमीनान से खैनी मलते हुए चले आ रहे थे। उसे देख कर खैनी फटक कर, उन्होंने निचले ओठ में रखी और बोले :

"अरे भाई बड़ी देर में पहुँचे, तुम्हारी 'वह' तो तुम्हें छोड़ कर अफ़रीका चली गयी।" और वे मूछों में मुस्कराये।

जगमोहन का जी ऐसा भरा था और दिमाग़ इतना परेशान था कि उस ने उन की बात का उत्तर देना उचित न समझा।

तब चातक जी ने उस के गले में बाँह डालते हुए पूछा, "यहाँ बैठे क्या कर रहे हो?"

"एक मित्र इस ट्रेन से आ रहे थे।" जगमोहन ने खंखार कर गला साफ़ करते हुए कहा। आये नहीं। यहाँ खड़ा देख रहा था कि उतरेंगे तो इधर ही से गुज़रेंगे कि आँख में मच्छर पड़ गया।"

और यह कहते हुए उस ने आँखों को रूमाल से मल लिया।

"तो चलो यहाँ बैठे क्या कर रहे हो?"

अकेले चातक जी होते तो जगमोहन चल पड़ता, पर शुक्ला जी के कारण उस ने कहा "दूसरी गाड़ी - पैसेंजर—घंटे भर में आने वाली है। मैं उस में देख कर जाऊँगा।"

"अरे तो चलो ज़रा बाहर तक!" चातक जी बोले, "यहाँ क्या बैठोगे उमस में?"

और उसी प्रकार उस के गले में हाथ डाले वे उसे अपने साथ लें चले और उन्होंने बताया कि बम्बई से उन के एक धनी-मित्र का बुलावा आया है। वे एक फ़िल्म कम्पनी बना रहे हैं। गीतकार और संवाददाता के रूप में वे उनको चाहते हैं। पर चातक जी गये तो निर्देशन में भी उन का कम हाथ न होगा। उन के मित्र ने उन्हें नायिका का चित्र भेजा है और उन की सम्मति माँगी है। वे वहाँ गये तो ऐसी पिक्चर बनायेंगे कि न्यू-थीएटर्ज़ मात खा जाय।...... फिर चलते चलते उन्होंने अपनी नयी कविता सुनानी आरम्भ की।

चित्र तुम्हारा, री अभिनय की देवि, आज ही देखा मैं ने,
औ', देखी है साथ भाग्य की संगिनि अपने रेखा मैं ने,
जाने कौन सितारे नभ में करते हैं क्या मौन इशारे ?
उनकी गति से बंधे हुए हैं, हम मानव बेबस, बेचारे !

तुम काटोगी पंथ हमारा,
या मैं काटूँ मार्ग तुम्हारा —
क्या जाने विधना करती है,
कौन दिशा को मौन इशारा !

जब चातक जी और शुक्ला जी का ताँगा दृष्टि से ओझल हो गया तो जगमोहन धीरे धीरे पैदल ही चल पड़ा। धिक्तां च तं च मदनं च इमां च माँ च—वह ओठों ही ओठों में बड़बड़ाया। उस के सामने सत्या जी की कातर-आकृति घूम गयी, जिन्होंने अपने हाथों अपना गला रेत लिया था—धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च – वह फिर बड़बड़ाया। क्या असफल प्रेम की परिणति आत्महत्या ही है ? हरीश का चित्र उस के सामने घूम गया। -क्या प्रेम में असफल होकर वे भर्तृहरि की भांति आत्महत्या कर लेंगे अथवा मानव की भलाई के अपने

कर्तव्य और उद्देश्य में द्विगुन-वेग से संलग्न हो जायँगे। मानव प्रेम में क्या मानव का विकास नहीं? किसी एक से प्रेम करता हुआ भी जो जन जन से प्रेम करता है, क्या वह अपने और दूसरों के मार्ग को प्रशस्त नहीं करता?......और उस के कानों में एक दूसरे ही कवि की वाणी गूँज गयी और अहसान की नकल में वह फ़ैज़ की वही पंक्ति गुनगुनाने लगा :

और भी दुख है ज़माने में मुहब्बत के सिवा

धीरे धीरे उस की आवाज़ ऊँची होती गयी। वह अपने आपको भूल कर गाने लगा—कुछ अजीब से नये जोश से, कुछ अजीब सी नयी प्रेरणा और नये उत्साह से -

और भी दुख है ज़माने में मुहब्बत के सिवा

•

साँझ के साये बहुत गहरे हो गये थे। सहसा उसके सिर पर बिजली की बत्ती जल उठी और दूर दृष्टि की सीमा तक बत्तियाँ जलती चली गयीं।